गृहोपयोगी विज्ञान

[गृह-विज्ञान : इंटरमिडियेट (कला) के लिए]

लेखिका

डॉ० (श्रीमती) गौरी गांगुली

पी० एच-डी० (डबलिन), एफ० आर० एम० एस० (लंदन), एफ० आर० इ० एस० (लंदन), एफ० जेड०, एस० आई०, एफ० ए० जेड०, एफ० आई० ए० एस० जेड०, एफ० इ० एस० आई०

रीडर, स्नातकोत्तर प्राणि-विज्ञान-विभाग,

पटना विश्वविद्यालय

पुनरीक्षक

प्रो० महेन्द्रनारायण वर्मा

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

पटना

प्रस्तावना

शिक्षा-संबंधी राष्ट्रीय नीति-संकल्प के अनुपालन के रूप मे विश्वविद्यालयों मे उच्चतम स्तरों तक भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा के लिए पाठ्य-सामग्री सुलभ कराने के उद्देश्य से भारत-सरकार ने इन भाषाओं में विभिन्न विषयों के मानक ग्रंथो के निर्माण, अनुवाद और प्रकाशन की योजना परिचालित की है। इस योजना के अंतर्गत अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रथो का अनुवाद किया जा रहा है और मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे है। यह कार्य भारत-सरकार विभिन्न राज्य-सरकारों के माध्यम से तथा अशत केन्द्रीय अभिकरण द्वारा करा रही है। हिंदीभाषी राज्यों मे इस योजना के परिचालन के लिए भारत-सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य-सरकार द्वारा स्वायत्तशासी निकायो की स्थापना हुई है। विहार मे इस योजना का कार्यान्वयन विहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के तत्त्वावधान में हो रहा है।

योजना के अतर्गत प्रकाश्य ग्रंथो मे भारत-सरकार द्वारा स्वीकृत मानक पारिभापिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, ताकि भारत की सभी शैक्षणिक सस्थाओ मे समान पारिभापिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

प्रस्तुत ग्रंथ *गृहोपयोगी विज्ञान* डॉ० (श्रीमती) गौरी गांगुली की मौलिक कृति है, जो भारत-सरकार के शिक्षा तथा समाज-कल्याण-मंत्रालय के शत-प्रतिशत अनुदान से विहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित की जा रही है।

आशा है, अकादमी द्वारा मानक ग्रंथो के प्रकाशन-सवधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रो मे स्वागत किया जायगा।

पटना,   अध्यक्ष
अक्तूवर, १९७८   विहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

प्रकाशकीय वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रंथ की लेखिका डॉ० (श्रीमती) गौरी गांगुली, एक अनुभवी अध्यापिका है। अपने अध्यापन जीवन के लम्बे अनुभवों के आधार पर इन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं। प्रस्तुत ग्रंथ उन्हीं मे से एक है।

ग्रंथ, पटना तथा कई अन्य विश्वविद्यालयों के इंटरमिडियेट कला के गृह-विज्ञान-विषयक पाठ्यक्रम पर आधारित है। विहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित अन्य तीन ग्रंथ—शरीर क्रिया विज्ञान, स्वास्थ्य एवं जीवाणु-विज्ञान तथा प्रायोगिक गृह-विज्ञान—के साथ, प्रस्तुत ग्रंथ, गृहोपयोगी विज्ञान, भी पटना विश्वविद्यालय द्वारा, गृह-विज्ञान विषय के पाठ्यपुस्तक के रूप में निर्धारित है। इस ग्रंथ में पटना विश्वविद्यालय की गृह-विज्ञान-परीक्षा के प्रथम पत्र का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम समाविष्ट है।

प्रो० रामेश्वरनाथ तिवारी ने इस ग्रंथ का भाषा-संशोधन किया है—साथ ही, पुस्तक के प्रणयन तथा प्रकाशन में अन्य सभी के प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग के लिए अकादमी आभारी है।

कई अनिवार्य कारणों से ग्रंथ के प्रकाशन में कुछ देर हो गई। इसके चलते विद्यार्थियो को जा कठिनाई हुई है, उसके लिए हमें खेद है।

—दामोदर ठाकुर
निदेशक
विहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

पटना,
अक्तूबर, १९७८

दो शब्द

गृह-विज्ञान-शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर, हमारे दैनंदिन जीवन, घरेलू काम-काज, रहन-सहन और आवश्यकताओं को देखते हुए, इस ग्रंथ की विषय-वस्तु प्रस्तुत की गई है। विषय-वस्तु का मुख्य आधार, हमारे दैनंदिन जीवन में विज्ञान का स्थान तथा व्यावहारिक प्रयोग है। ग्रंथ में दिये गए अधिकांश उदाहरण, हमारे घरेलू जीवन के दैनिक व्यवहार से लिये गए है। यह ग्रंथ, पटना तथा अन्य विश्वविद्यालयों मे, गृह-विज्ञान के इंटरमिडियेट कला स्तर के लिए स्वीकृत पाठ्यक्रम पर आधारित है।

विज्ञान की शिक्षा में 'प्रयोग' का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। लेकिन, गृह-विज्ञान की पढाई के लिए, प्रयोगशाला की सुविधा बहुत ही सीमित होती है। इसलिए पुस्तक में, यथासंभव, ऐसे प्रयोगों का वर्णन दिया गया है, जिन्हे इन सीमित सुविधाओं के अंदर किया तथा कराया जा सकता है। इसके लिए भारत-सरकार के प्रकाशन-विभाग (सूचना और प्रसारण-मंत्रालय) द्वारा प्रकाशित 'सरल साज-सामान से वैज्ञानिक प्रयोग' नामक पुस्तक, जो राष्ट्रसंघ शिक्षा और संस्कृति संस्था द्वारा प्रकाशित 'यूनेस्को सोर्स बुक फॉर साइंस टीचिंग' का हिंदी अनुवाद है, की सहायता ली जा सकती है।

ग्रंथ में, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की हिंदी परिभाषा, भारत-सरकार के शिक्षा-मंत्रालय के केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित 'पारिभाषिक शब्द-संग्रह' से ली गई है। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए उचित स्थानों पर, कोष्ठक के अंदर, अंग्रेजी शब्द भी दिये गए हैं।

—गौरी गांगुली

विषय-सूची

विपय-प्रवेश

अध्याय पृष्ठ संख्या

रसायन-शास्त्र

अध्याय पृष्ठ संख्या

भौतिकी

अध्याय पृष्ठ संख्या

अध्याय पृष्ठ संख्या

अध्याय | पृष्ठ संख्या

अध्याय १

विषय-प्रवेश

दैनंदिन जीवन में विज्ञान

पेड़ में फल लगा है, लेकिन इतने ऊँचे पर कि हाथ नहीं आता। भूखा आदिम मानव एक डंडा उठाता है और उसकी सहायता से फल को तोड़ लेता है। इस अति साधारण काम से वह अन्य सभी प्राणियों से अपने को अलग कर लेता है और मनुष्य बन जाता है; क्योकि इस क्रिया से वह, अन्य सभी प्राणियों के विपरीत केवल अपने हाथ-पैर तथा शारीरिक शक्ति पर ही निर्भर न रहकर एक यंत्र का व्यवहार करता है और प्राकृतिक साधन को अपनी आवश्यकता के अनुसार परिर्वात्तित करता है।

वह भूखा था। उसे फल की आवश्यकता थी। उसके सामने प्रश्न था 'फल कैसे मिले'? उसने सोचा और पेड़ से एक लंबी डाली तोड़ ली। इस डाली का प्राकृतिक काम कुछ और ही था; पर उसने उसे परिर्वात्तित करके कुछ दूसरे ही काम में लगाया और इस क्रम में वह 'यंत्र बनाने वाला प्राणी' अर्थात मनुष्य बन गया; क्योकि केवल मनुष्य ही प्राकृतिक साधनों को अपनी आवश्यकता के अनुसार, सोच-विचार करके, परिर्वात्तित कर सकता है, दूसरा और कोई नही। कुछ प्राणी यांत्रिक तौर पर प्रकृति के साधनों को अपने काम मे लगाते हैं—जैसे चिड़ियाँ घोसला बनाने मे पत्ते आदि काम मे लाती हैं; लेकिन केवल मनुष्य ही सोच-विचार करके ऐसा करता है।

मनुष्य की आवश्यकता तथा चिंतन का यही अन्त नहीं हुआ। अपनी आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए वह नये-नये यंत्र बनाता गया, प्रकृति के साधनों मे नये-नये परिवर्त्तन लाता गया और इस प्रक्रिया में वह खुद भी परिर्वात्तित होता गया। यह प्रक्रिया आज भी चालू है और भविष्य मे भी चलती रहेगी।

साथ ही मनुष्य की जिज्ञासा अनंत है और उसकी चिंतन-शक्ति भी अपार है। बादल घिर आते हैं; बिजली चमकती है; पानी बरसता है; आँधी-तूफान प्रलय मचाते हैं। सुबह सूरज निकलता है, शाम को अस्त हो जाता है।

कभी अंधेरी रात तो कभी छिटकती चाँदनी। आदिम मानव ने इन सब चीजों को देखा और उसके मन में जिज्ञासा जगी—ये सव क्यों होते हैं ? कैसे होते हैं ? ये क्या हैं ?

पेड़ से फल गिरकर सडता है और वीज से फिर नया पौधा उगता है। आदिम मानव ने इसे देखा और उसके मन मे फिर वही प्रश्न उठा—क्यों ? क्या ? और कैसे ?

मनुष्य की आवश्यकताओ की पूर्त्ति मे और इन 'क्यों ? क्या ? और कैसे ?' की खोज मे जन्म लेता है—विज्ञान। विज्ञान अर्थात् विशिष्ट ज्ञान, मानव-मन की जिज्ञासा की उपज है। मानव-मन की अनत जिज्ञासा के चलते निरंतर विज्ञान की प्रगति होती जा रही है।

प्रकृति के साधनो को अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्त्तित करने के लिए, या इस परिवर्त्तन हेतु आवश्यक यंत्र वनाने के लिए, यह आवश्यक है कि प्रकृति के नियमों तथा साधनो के संवंध में यथोचित ज्ञान हो। साथ ही, हमारे घरो मे आये दिन नाना प्रकार की समस्याएँ उठती रहती है। विज्ञान का साधारण ज्ञान रहने पर इनमे से वहुतो का समाधान आसानी से किया जा सकता है। दिन-प्रतिदिन घरेलू काम-काज मे यान्त्रिक साधनो का इस्तेमाल वढ़ता जा रहा है। कुएँ से पानी खीचने की घिरनी से लेकर वैद्युतिक पम्प, गैस तथा वैद्युतिक चूल्हा, दाव कुकर, वैद्युतिक इस्तरी, प्रशीतक (refrigerator) आदि साधनो के घरेलू उपयोग वढते जा रहे हैं। इन साधनों के यथोचित व्यवहार तथा इनकी सुरक्षा के लिए, विशेषकर वैद्युतिक साधनों को इस्तेमाल करते समय अपनी सुरक्षा के लिए भी विज्ञान के साधारण ज्ञान की आवश्यकता होती है।

केवल यही नही, स्वस्थ तथा सुखी जीवन के लिए और अपने पारिवारिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यो को सही रूप से निभाने के लिए भी हमे अपने चारों ओर की वस्तुओ तथा जीव-जन्तुओ के विषय मे प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त कर लेना जरूरी है।

साथ ही, विज्ञान की शिक्षा मनुष्य की वुद्धि को तीक्ष्ण करती है और अंधविश्वास तथा रूढ़िवाद की जंजीर से मुक्ति देकर मानसिक विकास का पथ प्रशस्त करती है।

विज्ञान का क्षेत्र विशाल और वहुमुखी है। अध्ययन की सुविधा के लिए इसे अनेक शाखा-प्रशाखाओ में विभक्त किया गया है। गृहोपयोगी सरल विज्ञान के इस खण्ड में, विज्ञान की कुछ प्रमुख शाखाओ के उन कुछ सरल सिद्धातो का अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा जिनका हमारे दैनंदिन जीवन के साथ वड़ा घनिष्ठ संवंध है। वे शाखाएँ हैं—

१. रसायन विज्ञान (Chemistry)
२. भौतिक विज्ञान (Physics)
३. जीव विज्ञान (Biology)
 (क) वनस्पति-विज्ञान (Botany)
 (ख) प्राणि-विज्ञान (Zoology)

अध्याय १

द्रव्य और ऊर्जा

चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा तथा त्वचा—इन पांच इंद्रियों की सहायता से सारी सृष्टि के साथ मनुष्य का परिचय होता है। पृथ्वी में विभिन्न तरह की वस्तुएँ हैं जिन्हें देखकर, सूँघकर, स्पर्श कर, चखकर या सुनकर, उनका ज्ञान मनुष्य को प्राप्त होता है।

इंद्रियों की सहायता से जिनका परिचय मिलता है, उन्हें दो भागों में बाँटा जा सकता है :—द्रव्य (matter) और ऊर्जा (energy)।

द्रव्य

द्रव्य छोटे-बड़े, विभिन्न रूप तथा आकार के हो सकते हैं और विभिन्न अवस्थाओं में मिल सकते हैं। लेकिन सभी द्रव्यों में ये सात साधारण गुण होते हैं—१. वजन या भार (weight), २. आयतन (volume), ३. विभाज्यता (divisibility), ४. संसक्ति (cohesion), ५. प्रत्यास्थता (elasticity), ६. सरंध्रता (porosity), और ७. जड़ता (inertia)।

इस प्रकार द्रव्य वह सृष्टि है जिसे मनुष्य अपनी इंद्रियों की सहायता से जान पाता है और जिसमें वजन, आयतन, विभाज्यता, संसक्ति, प्रत्यास्थता, सरंध्रता तथा जड़ता के गुण होते हैं।

१. वजन या भार (**Weight**)—द्रव्य में, चाहे वह कितना ही छोटा क्यो न हो, कुछ-न-कुछ वजन अवश्य ही होता है। विश्व मे कोई भी द्रव्य वजनहीन नही हो सकता। यहाँ तक कि जो द्रव्य इतना छोटा है कि उसे आँखो से देखा भी नही जा सकता, उसमे भी वजन होता है। बैक्टीरिया इतना क्षुद्र होता है कि उसे सूक्ष्मदर्शी यंत्र की सहायता के विना देखा नही जा सकता—फिर भी उसमें वजन होता है। वायु को भी हम देख नहीं सकते, लेकिन उसमें भी वजन होता है।

२. आयतन (**Volume**)—द्रव्य के अस्तित्व के लिए आवश्यक स्थान को उसका आयतन कहते है। क्षुद्र से क्षुद्र द्रव्य की भी कुछ न कुछ लंबाई,

चौड़ाई तथा मोटाई होती है और उसके अनुसार वह स्थान घेरता है। अति क्षुद्र बैक्टीरिया का भी आयतन होता है।

३. **विभाज्यता (Divisibility)**—द्रव्य को विभाजित किया जा सकता है। अर्थात क्षुद्र से क्षुद्र द्रव्य को तोड़कर क्षुद्रतम भागों मे बाँटा जा सकता है। अंत तक ये टुकड़े इतने छोटे हो सकते हैं कि संभवतः उनमें से एक-एक को पृथक् करके खाली आँखों से देखा भी न जा सके। फिर भी उन टुकड़ों में से प्रत्येक मे उस द्रव्य के समस्त गुण मौजूद होते हैं।

४. **अणु (molecule)**—द्रव्य के क्षुद्रतम कण को, जिसमें उस द्रव्य का समस्त गुण और विशेपता मौजूद रहती है, उस द्रव्यविशेष को अणु (molecule) कहते हैं। छोटा-बड़ा प्रत्येक द्रव्य असंख्य अणुओ की समष्टि से बनता है।

यह समझा जाता है कि अणु सर्वदा गतिशील रहते हैं। ठोस में उसके अणु परस्पर के संबंध मे निश्चित स्थान में बँधे रहते हैं। इनकी गति केवल अणुओ के बीच शून्य स्थान में कंपन के रूप में होती है। द्रव के अणुओ के बीच की दूरी ठोस के अणुओं के बीच की दूरी से अधिक होती है। वे परस्पर के संबंध मे निश्चित स्थान पर बँधे नही होते, बल्कि निरंतर गतिशील रहते हैं। इनकी गतिशीलता पात्र की दीवार और द्रव्य की सतह द्वारा सीमाबद्ध होती है। गैस के अणुओ के बीच की दूरी और भी अधिक होती है और उनकी गतिशीलता केवल पात्र की दीवार द्वारा सीमाबद्ध होती है।

५. **संसक्ति (Cohesion)**—द्रव्य अणुओं की समष्टि से बनता है। इन अणुओ में परस्पर आकर्षण-शक्ति होती है। इस आकर्षण-शक्ति को **संसक्ति** कहते हैं। संसक्ति के कारण प्रत्येक द्रव्य के अणु परस्पर जुड़े रहते है और बिखरकर अलग नही हो जाते हैं।

६. **प्रत्यास्थता (Elasticity)**—प्रत्येक द्रव्य मे, बाहरी बल-प्रयोग के द्वारा, उसके आकार या आयतन बदलने की प्रचेष्टा की प्रतिरोध-शक्ति मौजूद होती है। इसके चलते बाहरी बल के हट जाते ही वह फिर से अपना पहला रूप या आयतन को पा लेने की चेष्टा करता है। द्रव्य के इस गुण को **प्रत्यास्थता** कहते हैं। रबड़ के एक टुकड़े को खीचने से उसके आकार में

परिवर्त्तन हो जाता है और छोड़ देने से फिर से वह अपने पहलेका रूप ले लेता है। कुछ द्रव्य मे प्रत्यास्थता अधिक और कुछ मे कम होती है। जिसकी प्रत्यास्थता जितनी ही अधिक होती है, वाहरी वल-प्रयोग से उसके टूटने की संभावना उतनी ही कम होती है।

७. सरंध्रता (**Porosity**)—यद्यपि अधिकाश द्रव्योंको देखने से उनमें कोई छिद्र नही दिखाई पड़ता है, फिर भी, प्रत्येक द्रव्य के अणुओं के वीच कुछ-न-कुछ खाली स्थान अवश्य ही होता है। इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य में असंख्य अति सूक्ष्म छिद्र होते है। ये छिद्र इतने छोटे होते है कि अणु जैसा इन्हे भी नगी आँखों से देखा नही जा सकता। केवल शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी यंत्र की सहायता से ही ये दिखाई दे सकते हैं। अणुओ के वीच के इन रिक्त स्थानो को अन्तरा-अणुक (intermoleccular) स्थान कहते हैं।

८. जड़ता (**Inertia**)—कोई द्रव्य, वाहरी वल के प्रयोग के विना, अपने-आप, अपनी स्थिति मे परिवर्त्तन नही ला सकता। अगर कोई द्रव्य स्थिर है तो जव तक वाहरी वल के प्रयोग से उसकी स्थिरता मे परिवर्त्तन न लाया जाएगा, तव तक वह स्थिर ही रहेगा। इसी प्रकार गतिशील द्रव्य, जवतक बाहरी वल उसे न रोके, तव तक वह एकरूप वेग से एक ही दिशा मे गतिशील रहेगा। वाहरी वल-प्रयोग के विना द्रव्य की अपनी उपर्युक्त स्थिति मे कायम रहने के गुण को जड़ता कहते है। किसी भी पदार्थ की जड़ता उस पदार्थ मे समाविष्ट द्रव्य का समानुपाती होता है।

किसी विशेष प्रकार के द्रव्य को **पदार्थ** (Substance) कहते हैं। उदाहरण के लिए, पत्थर, लकड़ी, लोहा, जल आदि सभी का साधारण नाम द्रव्य है और अपने-अपने विशेष गुण तथा संरचना के कारण वे अलग-अलग पदार्थ है। पदार्थ से वनी हुई चीजो को वस्तु (body) कहते हैं। लोहे से बना हुआ चाकू, लकडी से वनी हुई कुर्सी आदि 'वस्तु' है। प्रत्येक वस्तु का निर्दिष्ट रूप होता है।

द्रव की तीन अवस्थाएँ

प्रकृति में द्रव्य तीन रूप में पाये जाते है—ठोस (solid) द्रव (liquid) और गैस (gas)। इन्हे 'द्रव्य की तीन अवस्थाएँ' कहते हैं। कपूर आदि कुछ पदार्थों को छोड़कर वाकी प्रायः सभी पदार्थ तीनो अवस्था में प्राप्त हो सकते

हैं। कपूर आदि कुछ पदार्थ साधारणतः केवल ठोस और गैस—इन्ही दो अवस्थाओं मे मिलते हैं। पदार्थों की अवस्था का परिवर्त्तन तापमान की कमी-बेशी के कारण होता है। निम्नलिखित प्रयोग से इसे देखा जा सकता है—

प्रयोग—एक ग्लास पानी लीजिए। उसमें से थोड़ा पानी एक छोटे पात्र में रखकर नमक-मिश्रित बर्फ के अंदर रख दीजिए। थोड़ा और पानी एक दूसरे पात्र मे रखकर आग पर चढ़ा दीजिए। बाकी पानी ग्लास में ही छोड़ दीजिए। इस प्रकार प्रथम पात्र मे रखे हुए पानी का तापमान घटाने की और दूसरे पात्र के पानी का तापमान बढ़ाने की व्यवस्था की गई। ग्लास में रखा हुआ पानी ज्यो-का-त्यों रहा।
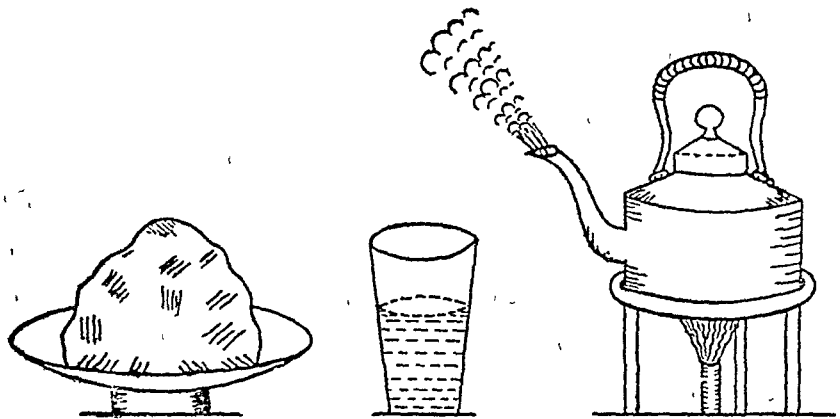
[चित्र १—द्रव्य (पानी) की तीन अवस्थाएँ]

थोड़ी ही देर में बर्फ में रखे हुए पात्र का पानी जमकर बर्फ बन जाएगा। अर्थात् तापमान घटने से पानी द्रव-अवस्था से ठोस बन गया। आग पर रखा हुआ पात्र का पानी भी शीघ्र ही भाप बनकर उड़ने लगेगा। अर्थात् तापमान बढ़ने से पानी द्रव-अवस्था से वाष्प यानी गैस बन गया। तापमान में कमी-बेशी न होने के कारण ग्लास का पानी द्रव-अवस्था में ही रह गया। इस प्रकार एक ही द्रव्य—पानी—साधारण तापमान पर द्रव, अधिक तापमान पर वाष्प यानी गैस और कम तापमान पर ठोस बन जाता है।

विभिन्न पदार्थ के अवस्थांतर के लिए विभिन्न तापमानों की आवश्यकता होती है। साधारण तापमान पर पानी, तेल आदि द्रव-अवस्था में; लोहा,

पत्थर आदि ठोस अवस्था में और आक्सीजन, हाइड्रोजन आदि गैसीय अवस्था मे मिलते हैं। लगभग १५३० डिग्री सेंटीग्रेड तापमान पर लोहा द्रव-अवस्था में आ जाता है। अत्यधिक तापमान पर लोहा गैस बन जाता है। अधिक दाव से भी वहुत-से पदार्थों में अवस्थांतर होता है।

१. ठोस—प्रत्येक ठोस पदार्थ का कोई-न-कोई आकार तथा निश्चित आयतन होता है। पत्थर के टुकड़े को किसी भी आकार के पात्र में क्यों न रखा जाय, उसके आकार या आयतन मे कोई परिवर्त्तन न होगा। ठोस पदार्थ मे सरंध्रता अर्थात उनके अणुओं के वीच की दूरी (अंतरा-अणुक स्थान) वहुत कम होती है। वाहरी वल-प्रयोग के विना ठोस पदार्थ न तो अपने आकार मे ही परिवर्त्तन ला सकता है और न स्थान-परिवर्त्तन ही कर सकता है। ठोस पदार्थ सीधा नीचे की ओर दाव डालता है।

२. द्रव—द्रव पदार्थ का कोई निश्चित आकार तो नहीं होता, पर निश्चित आयतन होता है। द्रव पदार्थ को जव जिस पात्र में रखा जायगा; वह उसीका आकार ले लेगा। एक लीटर पानी को ग्लास, वोतल, कटोरा, डेगची या अन्य किसी भी पात्र में रखा जायगा, उसका आकार उसी प्रकार वन जायगा। लेकिन आकार जैसा भी हो, पानी के आयतन मे कोई परिवर्त्तन न होगा। वह हमेशा एक लीटर ही वना रहेगा। सभी द्रव पदार्थ के साथ ऐसा ही होगा।

द्रव पदार्थ की मुक्त सतह हमेशा क्षितिज-तल मे होती है। वाधा न मिलने पर वह हमेशा ऊपर से नीचे की ओर वहती है। इसी कारण नदियाँ पहाड़ों से निकलकर समुद्र या वडी झीलों मे जा गिरती हैं और समुद्र या झील का पानी नदियो में होकर ऊपर की ओर नही आ पाता है। हौज में जमा हुआ पानी चारों ओर की दीवारों की वाधा के कारण उसीमें जमा रहता है और नाली का पानी उसके खुले-मुँह से निकलकर वह जाता है। इसलिए नाली का ढाल, जिस ओर पानी को ले जाना है, हमेशा उसी ओर होना चाहिए।

द्रव मे अंतरा-अणुक स्थान ठोस की तुलना में अधिक होता है।

एक साथ संवंधित द्रव पदार्थ की ऊपरी सतह हमेशा एक ही तल पर रहती है अर्थात द्रव पदार्थ अपना तल खोजता है।

प्रयोग—विभिन्न आकार के पाँच-छः पात्र लीजिए और उनके पेंदों में छेद करके सब को रबड़ की नली से जोड़ दीजिए। अब किसी एक पात्र में पानी डालिए। देखिएगा कि पानी प्रत्येक पात्र मे चला जाएगा और सभी पात्र में, आकार तथा आयतन में भिन्न-भिन्न होने पर भी, उसकी ऊपरी सतह एक ही तल मे है।
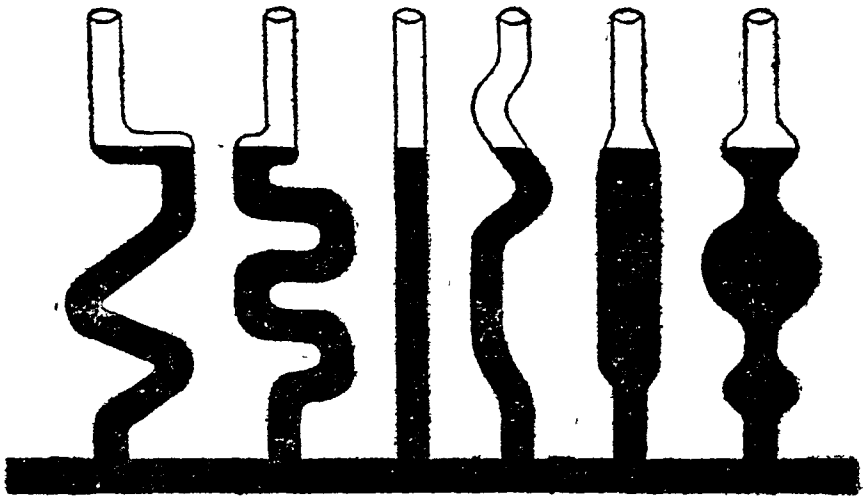
[चित्र २—द्रव का तल]

द्रव के इस गुण के कारण, नल की सहायता से उसे विभिन्न स्थानों में ले जाया जा सकता है और द्रव के इसी गुण से घरों में नल से पानी पहुँच जाता है।

द्रव का पार्श्विक (Lateral) तथा अधोमुखी (Downward) दाव (Pressure)—जिस पात्र मे द्रव पदार्थ रहता है, वह उस पात्र के तल पर सीधा नीचे की ओर दाव डालता है। इस नीचे की ओर के दाव को 'द्रव का अधोमुखी दाव' कहते है।

द्रव पदार्थ अपना तल खोजता है और इसलिए चारों ओर फैलना चाहता है। द्रव को जब किसी पात्र में रखा जाता है, उस समय नीचे की ओर दाव डालने के साथ-साथ वह चारों ओर फैलने की प्रचेष्टा मे पात्र की दीवारों पर दाब डालता है। द्रव के इस दाव को पार्श्विक दाब (lateral pressure) कहते हैं।

द्रव का पार्श्विक दाव पात्र की सब जगहों में समान नहीं होता। दाब का परिमाण द्रव की गहराई पर निर्भर करता है। द्रव की गहराई जितनी अधिक होगी पार्श्विक दाव भी उतना ही अधिक होगा। द्रव-भरे पात्र की पेंदी के पास उसका पार्श्विक दाव ऊपरी सतह के पास के पार्श्विक दाब से अधिक होगा। इस प्रकार द्रव के पार्श्विक दाव मे उसकी गहराई के अनुसार कमी-वेशी होती है। पार्श्विक दाव की कमी-वेशी द्रव के परिमाण पर निर्भर नही करती है। निम्नलिखित प्रयोग से इसे देखा जा सकता है।

प्रयोग—दो वेलनाकार पात्र लीजिए। इनमें एक अधिक मोटा होना चाहिए। दोनों पात्रो मे विभिन्न ऊँचाइयों पर कई छेद कीजिए। ख्याल रहे कि दोनो पात्रों के छेद एक दूसरे के साथ समान ऊँचाई पर हों। सभी छेदों को मोम से वन्द कीजिए और दोनों पात्रो को एक समतल स्थान पर रखिए। अव दोनो में समान ऊँचाई तक पानी भर दीजिए। इस प्रकार दोनो पात्रों मे पानी के परिमाण भिन्न-भिन्न होते हुए भी गहराई एक समान है। अव मोम हटाकर छेदों को खोल दीजिए। देखियेगा कि दोनों पात्रो के प्रत्येक छेद से पानी की धारा निकलने लगी है और जो छेद जितना नीचे है उससे उतनी ही तेजी से धारा निकलकर अधिक दूरी तक
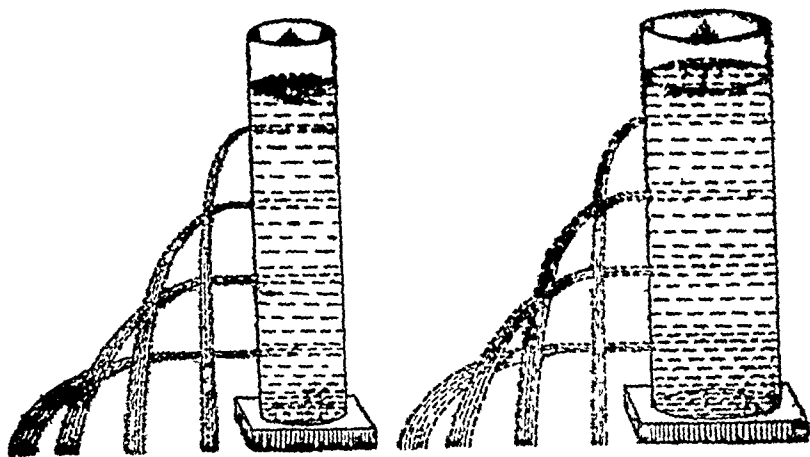
[चित्र ३—द्रव का पार्श्विक दाव]

जा रही है। साथ ही दोनों पात्रों की समान ऊँचाई के छेदों से निकलती हुई धारा समान तेजी से निकलकर समान दूरी तक जा रही है।

इससे प्रमाणित हो जाता है कि द्रव अपनी सतह के नीचे सभी जगह दाव डालता है और दाव की कमी-वेशी, द्रव की गहराई की कमी-वेशी पर निर्भर करती है। साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि दाव द्रव के परिमाण पर निर्भर नही करता है, क्योंकि अगर सभी जगह दाव नही होता तो समस्त छेदों से धारा नही निकलती और अगर सभी जगह समान दाव होता तो सभी छेदो से समान तेजी से धारा निकलती और समान दूरी तक जाती। साथ ही अगर दाव द्रव के परिमाण पर निर्भर करता तो मोटे पात्र के छेदो से धारा अधिकतर तेजी से निकलकर अधिक दूरी तक जाती।

उत्प्लावकता (buoyancy)—अधोमुखी तथा पार्श्विक दाव के साथ-साथ द्रव ऊपर की ओर भी दाव डालता है। कोई वस्तु जव किसी द्रव में गिरती है तव द्रव उस समय उसपर ऊपर की ओर दाव डालता है। इस दाव को 'उत्प्लावकता' कहा जाता है। कुएँ से पानी निकालते समय जव तक वाल्टी पानी के अन्दर रहती है, तव तक उसका वजन कम मालूम पड़ता है। कारण यह है कि उत्प्लावकता के चलते वह अपने वजन का एक अंश आभासी (apparent) तौर पर खो वैठती है और पानी के अन्दर कम वजनी मालूम पड़ती है।

कोई वस्तु जव किसी द्रव मे गिरती है तव अपने वजन के चलते द्रव मे डूवने लगती है। साथ ही साथ, द्रव के ऊपर की ओर दाव या उत्प्लावकता उसे ऊपर ढकेलने लगती है। अगर वजन से उत्प्लावकता अधिक हो तो वस्तु डूवने नही पाती और द्रव मे तैरने लगती है। लेकिन अगर उत्प्लावकता से वजन अधिक हुआ तो वस्तु डूव जाती है।

पैस्कल का नियम (Pascal's law)—द्रव पदार्थ को वाहरी दाव से सपीड़ित नहीं किया जा सकता। अगर इसकी एक जगह पर वाहरी दाव पड़ता है तो वह दाव द्रव के समस्त अगो मे समरूप में व्याप्त हो जाता है। एक वोतल मे पानी भरकर उसके मुँह के पास दाव डालने से दाव वोतल के समस्त स्थानो में समान रूप से पड़ेगा। इस प्रकार बोतल से कुल दाव का परिमाण कई गुना वढ जाएगा। द्रव में दाव-संचार के नियम को, इसके आविष्कारक के नाम पर, **पैस्कल का नियम** कहा जाता है। इसके अनुसार **द्रव के किसी एक भाग में दाव पड़ने पर वह उसके प्रत्येक भाग में**

सम परिमाण में संचारित हो जाता है और यह दाब पात्र की दीवारों पर अभिलंब दिशा में पड़ता है। अर्थात् किसी पात्र में रखे हुए द्रव के एक इकाई क्षेत्र पर जितना दाव लगेगा, उसके प्रत्येक एक इकाई क्षेत्र पर उतना ही दाव पड़ेगा। इस प्रकार अगर द्रव के स्पर्श में पात्र का क्षेत्रफल कुल २० इकाई हो तो द्रव की एक इकाई पर लगने वाला दाव पात्र की सतह पर कुल मिलाकर २० गुना अधिक दाव डालेगा। निम्नलिखित सरल प्रयोग से इसे देखा जा सकता है—

प्रयोग—एक रबड़ का गेंद लेकर उसमें एक छेद कीजिए और गेंद को पानी से पूरा-पूरा भर दीजिए। पानी भरने के बाद रबड़ जोड़नेवाले घोल से छेद को बंद कर दीजिए। फिर गेंद की दीवार मे एक सूई से कई छेद कीजिए। अब अंगूठे से गेंद की दीवार मे किसी जगह दबाइए। देखियेगा कि प्रत्येक छेद से समान तेजी से पानी की धारा निकलकर समान दूरी तक जा रही है। साथ ही प्रत्येक छेद से निकलनेवाली धारा गेंद की दीवार के उस स्थान के साथ समकोण बनाकर कर निकल रही है।
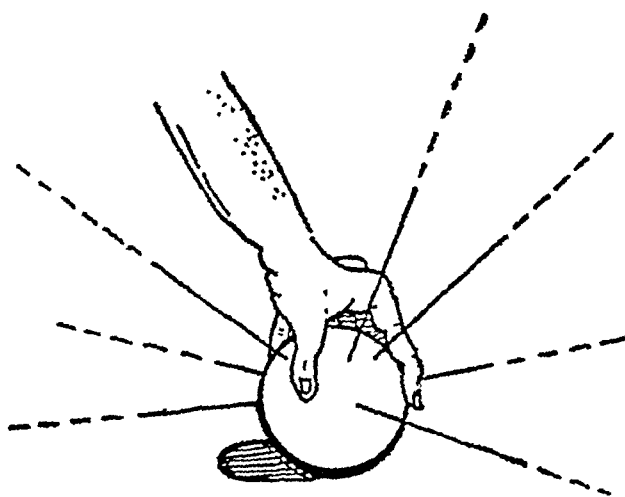
[चित्र ४—द्रव मे दाव-संचार]

इससे पैस्कल का नियम सिद्ध हो जाता है। क्योंकि, अगर एक जगह पड़नेवाला दाव सब जगह समरूप में संचारित न होता तो सभी छेदो से समान तेजी के साथ, समान दूरी तक जानेवाली धाराएँ नहीं निकल सकती।

द्रव-चालित दाब-यंत्र (hydraulic press)—द्रव के किसी भी बिन्दु पर पड़नेवाला दाब सर्वत्र समान रूप से संचारित हो जाता है। इस नियम के आधार पर द्रव-चालित दाब-यंत्र का निर्माण होता है। साधारण द्रव-चालित यंत्र में एक अंग्रेजी अक्षर 'U' जैसा मुड़ा हुआ नल रहता है। नल की एक वाहु दूसरी वाहु से मोटी होती है। नल में पानी या अन्य कोई उपयुक्त द्रव पदार्थ भर दिया जाता है। अब अगर नल की पतली बाहु के मुँह पर दाब डाला जाए तो मोटी वाहु के मुँह पर कुल दाव कई गुना अधिक हो जाएगा। नल की दोनो वाहुओं के व्यास मे जितना अधिक अंतर होगा, दाब भी उतना ही अधिक वढ जाएगा।
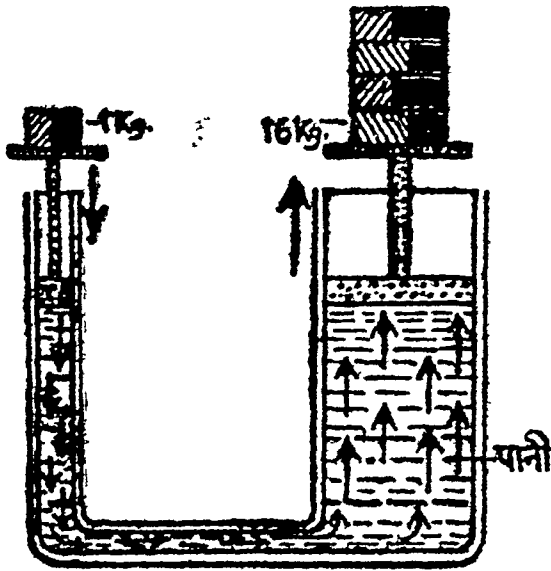
[चित्र ५—द्रव-चालित दाव-यंत्र]

अगर एक का व्यास दूसरे से चार गुना वड़ा हो तो दोनों के क्षेत्रफल का अनुपात १ : १६ होगा और पतले सिरे पर दिया गया कुल दाव मोटे सिरे पर १६ गुना अधिक हो जाएगा। अतः इस प्रकार के यंत्र की सहायता से एक सिरे पर थोड़ा-सा बल लगाकर दूसरे सिरे पर अधिक काम लिया जा सकता है। मोटरगाड़ियों का ब्रेक द्रव-चालित-दाव यंत्र की सहायता से काम करता है।

३. गैस—गैसीय पदार्थ का न कोई निश्चित आकार और न कोई निश्चित आयतन ही होता है। द्रव की तरह इसे भी जिस पात्र मे रखा जाता है, वह उसी का रूप ले लेता है। साथ ही पात्र के आयतन के अनुसार फैलकर उसके समान आकार का बन जाता हैं। इस प्रकार गैसीय पदार्थ का आकार और आयतन—दोनो ही पात्र के अनुसार परिवर्तित होते रहते है।

गैस के प्रत्येक अणु के अत्यधिक गतिशील होने के कारण, इसके लिए इस प्रकार फैलना सभव होता है। गैस मे अतरा-अणुक स्थान ठोस तथा द्रव से कही अधिक होता है और फैलने के साथ-साथ, यह दूरी अर्थात अंतरा-अणुक स्थान भी बढ़ जाता है। एक घन सेंटीमीटर पानी भाप बनने पर
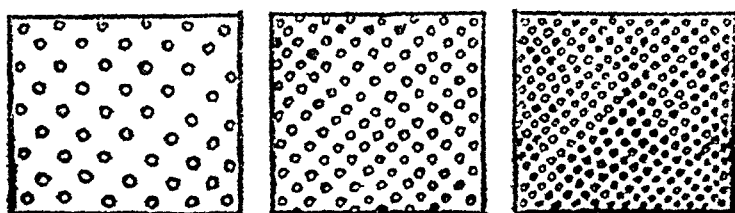
[चित्र ६—द्रव की तीन अवस्था में अंतरा-अणुक स्थान]

अर्थात गैसीय अवस्था प्राप्त करने पर १७०० घन सेंटीमीटर स्थान घेर सकता है। इस प्रकार द्रव से गैस बनने पर पानी के आयतन में १७०० गुना तक की वृद्धि हो सकती है।

भाप बनने पर पानी के आयतन मे इस प्रकार की वृद्धि को बहुत-से कामों में लगाया जाता है। रेलगाड़ियाँ खीचनेवाले, कल-कारखाने चलाने वाले भाप के इंजन, भाप बनने पर पानी के आयतन मे इस प्रकार अत्यधिक वृद्धि से चलते हैं।

द्रव्य अविनाशी है—द्रव्य कभी नष्ट नही होता। द्रव्य के रूप, अवस्था, गुण आदि में परिवर्तन हो सकते है; एक दूसरे से मिलकर तीसरा पदार्थ बन जा सकता है; लेकिन द्रव्य कभी नष्ट नहीं हो सकता। उसके कुल परिमाण मे भी कमी-वेशी नही हो सकती। लकड़ी जलकर राख बन जाती है। राख का वजन लकड़ी से काफी कम होता है। क्योंकि, खुली हवा मे जलते समय लकड़ी मे से कई पदार्थ गैस बनकर वायु मे मिल जाते हैं

और इसलिए बचे हुए राख का वजन कम हो जाता है। यह सही है कि जलने के बाद लकड़ी फिर लकड़ी नही रह गयी, लेकिन लकड़ी बनानेवाले सभी द्रव्य भिन्न-भिन्न रूपों में उतनी ही मात्रा में मौजूद रह गए। निम्नलिखित प्रयोग से इसे देखा जा सकता है—

प्रयोग—एक ऐसा पात्र लीजिए जिसे अच्छी तरह बंद किया जाए ताकि उसमे हवा या अन्य कोई गैस न अन्दर जा सके और न बाहर आ सके। अब लकड़ी का एक छोटा-सा टुकड़ा लीजिए और उस पात्र में रखकर दानों को एक साथ वजन कर लीजिए। अब लकड़ी के टुकड़े मे आग लगाकर पात्र को बद कर दीजिए। लकड़ी का टुकड़ा जल जाने के बाद या उसके एक अंश जल जाने के बाद, जब आग बुझ जाए तब पात्र को फिर तौलिए—देखियगा कि वजन उतना ही है।

इससे प्रमाणित हो जाता है कि लकड़ी जल जाने के बाद भी उसमें मौजूद द्रव्य उतना ही रह गया है और नष्ट नही हुआ है।

ऊर्जा (Energy)

द्रव्य की तरह ऊर्जा के साथ भी मनुष्य का परिचय इद्रियो की सहायता से ही होता है। लेकिन द्रव्य के अन्य गुण—जैसे वजन, आयतन आदि ऊर्जा में नही होते है। गुण मे भिन्नता होने पर भी द्रव्य और ऊर्जा परस्पर पूरक हैं। द्रव्य पर ऊर्जा की क्रिया देखकर ही मनुष्य उसका परिचय पाता है। ऊष्मा, प्रकाश, विद्युत आदि ऊर्जा के विभिन्न रूप हैं। ऊष्मा से द्रव्य गरम हो जाता है और उसे छूकर ऊष्मा का अस्तित्व मालूम हो जाता है। ऊर्जा के विभिन्न रूपो का विस्तार से अध्ययन करते समय हम ऊर्जा के संबंध मे अधिक जानकारी प्राप्त करेंगे।

अध्याय ३

माप

विज्ञान की किसी भी शाखा के अध्ययन के लिए और साथ ही हमारे दैनंदिन जीवन में, हमेशा हमे किसी न किसी प्रकार की माप की आवश्यकता होती है। कपड़ा खरीदना है तो लंबाई मापी जाती है। गेहूँ, चावल लेना है तो वजन किया जाता है। समय जानना है तो घड़ी देखी जाती है। बिजली का बिल चुकाना है तो मीटर में यूनिट का हिसाब किया जाता है। साथ ही किसी भी पदार्थ के संबंध में अध्ययन या अनुसंधान करना है तो भी विभिन्न प्रकार की मापो की आवश्यकता होती है।

प्रत्येक प्रकार की माप के लिए एक मात्रक (unit) की आवश्यकता होती है। इस मात्रक से तुलना करके ही किसी भौतिक राशि—जैसे लंबाई, वजन, द्रव्यमान या समय इत्यादि की माप की जाती है। विभिन्न प्रकार की मापो के लिए कई तरह के मात्रक प्रचलित हैं। ग्रामीण क्षेत्र मे अंगुली, हाथ, डेग, बाँस, रस्सी आदि से लंबाई मापने की प्रथा अभी भी देखने को मिलती है। इसी प्रकार वजन के लिए भी विभिन्न मात्रक—पौंड, किलो, सेर इत्यादि काम मे लाये जाते हैं। लेकिन, इन सब मे समानता न होने के कारण, इनमें से किसी को भी माप का मानक मात्रक नही माना जा सकता है और न ये मात्रक वैज्ञानिक अध्ययन मे ही काम आ सकते हैं। एक मानक माप को मात्रक मानकर ही सही अर्थ मे माप का ज्ञान हो सकता है।

समय, लंबाई तथा द्रव्यमान के मात्रको को 'मूल मात्रक' कहते हैं। बाकी सभी मात्रक इन्ही से व्युत्पन्न है।

दुनिया मे मुख्य तौर पर दो प्रकार की माप-पद्धतियाँ प्रचलित हैं—अँग्रेजी या फुट-पौंड-सेकेंड-पद्धति तथा दशमलव या सेन्टीमीटर—ग्राम सेकेण्ड पद्धति (जिसे मीटरी-पद्धति भी कहा जाता है)। सन् १७९१ ई० मे, सर्वप्रथम फ्रांस मे यह पद्धति चलाई गई थी। इसलिए इसे फ्रांसीसी पद्धति भी कहा जाता है।

इन दिनों पृथ्वी के अधिकांश देशों में दशमलव या मीटरी पद्धति की माप प्रचलित है। अब हमारे देश में भी यह पद्धति चालू हो गई है और मन, सेर, छटाँक आदि के स्थान पर क्विंटल, किलोग्राम, ग्राम आदि तथा मील, गज, फुट आदि के स्थान पर किलोमीटर, मीटर, सेन्टीमीटर आदि की माप प्रचलित हो गई है। वैज्ञानिक कामों के लिए भी पृथ्वी के लगभग सभी देशों में दशमलव-पद्धति की माप ही व्यवहृत होती है।

फुट-पौंड की प्रामाणिक माप

लंदन मे, एक्सचेकर के दफ्तर मे, एक काँसे की छड़ और एक प्लैटीनम का वाट सुरक्षित रूप से रखा हुआ है। छड़ में दो चिह्न लगे हुए हैं। इन चिह्नों के बीच की दूरी, एक मानक गज है। प्लैटीनम के वाट का द्रव्यमान एक मानक पौंड है।

दशमलव-प्रणाली की मानक माप

सेवर्स (फ्रांस) के अन्तरराष्ट्रीय वाट और माप-कार्यालय में एक प्लैटीनम-इरिडियम-निर्मित छड़ तथा प्लैटीनम का एक वाट रखा हुआ है। छड़ पर बने दो चिह्न बीच की दूरी, मानक एक मीटर और वाट का द्रव्यमान मानक एक किलोग्राम है। एक किलोग्राम का द्रव्यमान १००० घन सेन्टीमीटर पानी के, ४ डिग्री सेंटीग्रेड पर, द्रव्यमान के समान होता है। गज तथा पौंड, मीटर तथा किलोग्राम के अपवर्त्तक तथा अपवर्त्य इस प्रकार हैं :—

फुट-पौंड-पद्धति

१२ इंच = १ फुट

३ फुट = १ गज

१७६० गज = १ मील

६ फुट = १ फैदम

१६ ड्राम = १ औंस

१६ आस = १ पौंड

१४ पौंड = १ स्टोन

२ स्टोन = १ क्वार्टर

४ क्वार्टर = १ हंड्रेडवेट

२० हंड्रेडवेट = १ टन

मीटरी पद्धति

१० मिलीमीटर | मिलीग्राम	=	१ सेंटीमीटर | सेंटी ग्राम
१० सेंटीमीटर | सेंटीग्राम	=	१ डेसीमीटर | डेसीग्राम
१० डेसीमीटर | डेसीग्राम	=	१ मीटर | ग्राम
१० मीटर | ग्राम	=	१ डेकामीटर | डेकाग्राम
१० डेकामीटर | डेकाग्राम	=	१ हेक्टोमीटर | हेक्टोग्राम
१० हेक्टोमीटर | हेक्टोग्राम	=	१ किलोमीटर | किलोग्राम
१०० किलोग्राम	=	१ क्विंटल
१० क्विंटल	=	१ मीटरी टन

दूध आदि द्रव पदार्थ मापने के लिए १००० घन सेंटीमीटर के आयतन की माप को एक लीटर कहते हैं।

मन-सेर-छटाक-प्रणाली मे ५ तोले का एक छटाक, १६ छटाक का एक सेर तथा ४० सेर का एक मन होता है।

इन विभिन्न प्रणालियो की मापो में संबंध इस प्रकार है :—

			(लगभग)
१ पौंड	=	४५४ ग्राम	
		या	
		०.४५४ किलोग्राम	"
१ सेर	=	९३३ ग्राम	"
		या	
		०.९३३ किलो ग्राम	"
१ किलोग्राम	=	२.२ पौंड	"
१ किलोग्राम	=	१.०७२ सेर	"
		या	
		१ सेर १.१५२ छटाक	"
१ टन (फु० पौ०)	=	१.०१६ मीटरी टन	"
		या	
		१०१६.०४७ किलोग्राम	"
१ मीटरी टन	=	०.९८४ टन (फु० पौ०)	"
१ औंस	=	२८.३४९ ग्राम	"

१ ग्राम	=	०.०३५ औंस	(लगभग)
१ गैलन	=	४.५४६ लीटर	,,
१ लीटर	=	०.२२ गैलन	,,
१ पिंट	=	०.५६७ लीटर	,,
१ लीटर	=	१.७६ पाइंट	,,
१ इंच	=	२.५४ सें० मी०	,,
१ सें०मी०	=	०.३९४ इंच	,,
१ फुट	=	०.३०५ मीटर	,,
१ गज	=	०.९१४ मीटर	,,
१ मीटर	=	३.२८ फुट	,,
		या	
		१.०९४ गज	,,
१ मील	=	१.६०९ कि० मी०	,,
५ मील	=	८ कि० मी०	,,
१ कि० मी०	=	०.६२१ मील	,,
१ एकड़	=	०.४०५ हेक्टर	,,
		या	
		४०५ वर्गमीटर	,,
१ हेक्टर	=	२.४७१ एकड़	,,
१ वर्ग से० मी० (सी० सी०)	=	०.०६१ वर्ग इंच	,,
१ हॉर्स पावर	=	०.७४५ किलो वाट	,,
१ किलो वाट	=	१.३४१ हॉर्स पावर	,,

घरेलू माप

१ चाय की चम्मच	=	५ घन सेंटीमीटर	,,
३ चाय की चम्मच	=	१ बड़ी चम्मच या टेबल स्पून	,,
१६ बड़ी चम्मच	=	१ कप	,,
२ कप	=	१ पाइंट	,,

समय की माप

सभी देशों मे समय की माप की इकाई सेकेंड है। एक मध्यमान सौर दिवस के ८६,४०० भाग के एक भाग को एक सेकेंड कहा जाता है। एक दिन के मध्याह्न, अर्थात् सूरज जब आकाश के उच्चतम स्थान पर हो, एक से लेकर दूसरे दिन के मध्याह्न के बीच के समय को 'एक सौर दिवस' कहते हैं। पूरे वर्ष के ३६५ सौर दिवसों के औसत समय को 'एक मध्यमान सौर दिवस' कहा जाता है।

इस प्रकार के ६० सेकेंड का एक मिनट, ६० मिनट का एक घंटा तथा २४ घंटों का एक सौर दिन होता है।

प्राचीन काल मे हमारे देश में विपल, पल, दंड तथा प्रहर से समय मापा जाता था। ६० विपल का एक पल, ६० पल का एक दंड और ६½ दंड का एक प्रहर माना जाता है। २४ सेकेंड में एक पल होता है। लेकिन अब समय की यह माप केवल हिन्दुओ की धार्मिक क्रियाओं के लिए सीमाबद्ध रह गई है।

नीचे लंबाई, व्यास, क्षेत्रफल तथा आयतन मापने के कुछ साधारण नियम, जिन्हें सरलता से घर में भी इस्तेमाल किया जा सकता है, दिये जा रहे है। आये दिन हमे इन मापों की आवश्यकता होती रहती है।

लंबाई मापना

लंबाई मापने के लिए साधारणतः अंशांकित पैमाना या स्केल, मापक, फीता आदि व्यवहृत होते है। बड़ी-बड़ी वस्तुओ को फीते से और छोटी-छोटी वस्तुओ को स्केल से मापा जाता है। बाजार में आमतौर पर ५, २५ और ५० फुट लंबा मजबूत कपड़े से बना हुआ चिह्नित मापक फीता मिलता है। स्केल साधारणत. ६ इंच अथवा एक फुट लंबा मिलता है। आजकल सभी स्केलो मे, एक ओर इंच-फुट और दूसरी ओर सेंटीमीटर-मीटर के चिह्न लगे होते है।

रास्ता, जमीन आदि मापने के लिए अमीन या इंजीनियर जरीब की जंजीर काम मे लाते है।

लंबन अशुद्धि

स्केल से लंबाई को ठीक से मापने के लिए स्केल के अंकन को मापी जाने वाली रेखा या वस्तु से एकदम सटाकर रखना चाहिए। अगर स्केल के अंकन को सटाकर न रखा जाए और उसे पट करके रखा जाए तथा आँख को इधर-उधर रखकर माप का पठन लिया जाए तो आँख की भिन्न-भिन्न स्थितियो से लिये गए पठन भिन्न-भिन्न होगे : इसे लंबन (parallax) अशुद्धि कहते हैं। ऐसी अवस्था मे आँख को चिह्न के ठीक सामने रखना चाहिए। ताकि दृष्टि-रेखा, मापी जानेवाली लंबाई और स्केल के निर्दिष्ट विंदु के साथ समकोण में हों।
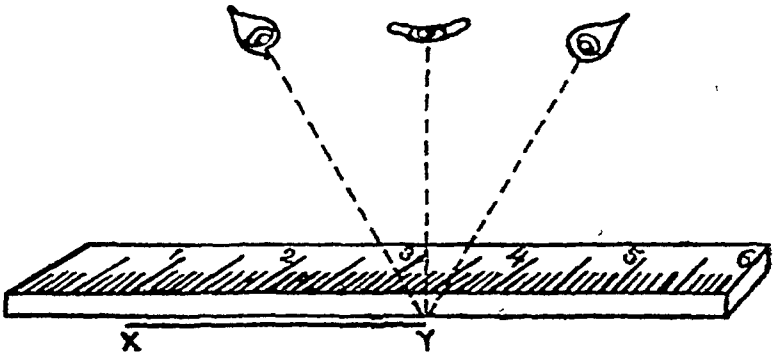
[चित्र ७—लंबन-अशुद्धि]

स्केल को मापे जानेवाली लंबाई (या रेखा) से सटाकर पकड़ने से कहीं से भी देखने पर लंबन अशुद्धि नहीं होती है।

शून्य त्रुटि (Zero error)

साधारणत. स्केल का सिरा थोड़ा-बहुत घिसा हुआ होता है। इसलिए सिरे से माप लेने पर माप में कुछ-न-कुछ त्रुटि रहने की संभावना रहती है। इस प्रकार की त्रुटि को 'शून्य त्रुटि' कहते हैं। शून्य त्रुटि से बचने के लिए हमेशा सिरे को छोड़कर, स्केल के अंदर के किसी विंदु से मापना प्रारंभ करना चाहिए।

वक्र रेखा मापना

साधारण स्केल से वक्र रेखा की लंबाई नहीं मापी जा सकती। बड़ी-बड़ी वक्र रेखा, उसपर फीता या जरीब की जंजीर रखकर, मापी जा सकती है।

छोटी वक्र रेखा को सरलता से मापने के लिए उसपर एक सूत का टुकड़ा बिछा दिया जाता है और फिर उस सूत के टुकड़े की लंबाई माप लेने से वक्र रेखा की लबाई मालूम हो जाती है।

गोले का व्यास मापना

स्केल या फीते के द्वारा साधारण तरीके से, गोले का व्यास नही मापा जा सकता। घर में इसे मापने का एक सरल उपाय है—

किसी समतल स्थान पर दो मोटी किताबो को आमने-सामने समातर खड़ी कर दीजिए। ख्याल रहे कि किताबें समतल स्थान के साथ समकोण में खड़ी हों। जिस गोले का व्यास मापना हो उसे दोनों किताबों के बीच में रखकर किताबो को खिसकाकर गोले से सटाइए। ख्याल रखना पड़ेगा कि किताबें समांतर और समकोण मे खड़ी रहे। दोनो किताबों के बीच की दूरी माप लेने से गोले का व्यास मालूम हो जाता है। किताब के बदले काठ या धातु का बना घन हो तो और भी अच्छा होता है।
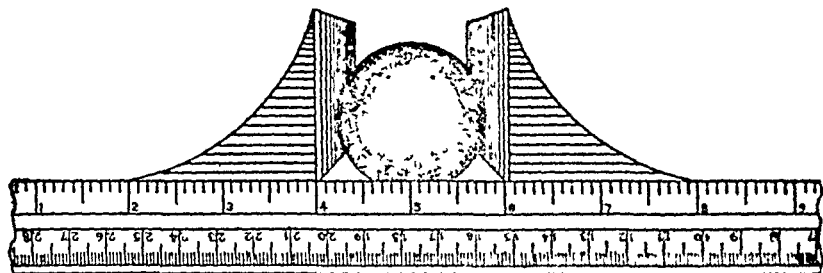
[चित्र ८—गोले का व्यास मापना]

वेलनाकार वस्तु का का व्यास भी इस प्रकार से मापा जा सकता है।

क्षेत्रफल

वर्ग-सेंटीमीटर तथा वर्गफुट क्षेत्रफल मात्रक हैं। एक वर्ग-सेंटीमीटर या एक वर्गफुट उस वर्गाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल है, जिसकी प्रत्येक भुजा एक सेंटीमीटर या एक फुट लम्बी है। नियमित क्षेत्रो का क्षेत्रफल निम्नलिखित सूत्रो से निकाला जा सकता है—

वर्गाकार या आयताकार चतुर्भुज = लंबाई × चौड़ाई

समांतर चतुर्भुज = आधार भुजा × ऊँचाई

त्रिभुज = $\frac{1}{2}$ आधार भुजा × ऊँचाई

वृत्त = π × व्यासार्द्ध^2

गोले की सतह = ४π × व्यासार्द्ध^2

वेलन की वक्र सतह = π व्यास × लंबाई

($\pi = \frac{22}{7}$)

अनियमित क्षेत्र के क्षेत्रफल निकालने के लिए उसे नियमित चतुर्भुज तथा त्रिभुजो में बांट दिया जाता है। फिर, उन नियमित क्षेत्रो के क्षेत्रफल निकालकर जोड़ लिया जाता है और इस प्रकार से उस अनियमित क्षेत्र का क्षेत्रफल मालूम हो जाता है।

छोटे अनियमित क्षेत्रों को वर्गाङ्कित कागज पर रखकर उसका खाका खीच लिया जाता है और खाके के अन्दर के वर्गो को गिनकर उसका क्षेत्रफल मालूम कर लिया जाता है।
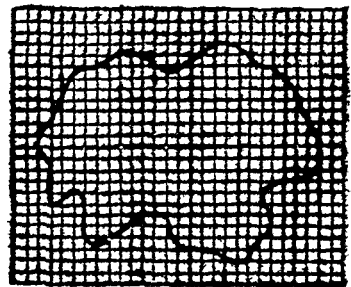
[चित्र ९—अनियमित वस्तु का क्षेत्रफल निकालना]

आयतन (Volume)—जो द्रव्य जितना स्थान घेरता है, उसे उसका आयतन कहते हैं। आयतन-मात्रक घन-सेंटीमीटर तथा घनफुट है। एक घन-सेंटीमीटर या एक घनफुट उस घन का आयतन है जिसकी लंबाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई एक-एक सेंटीमीटर या एक-एक फुट होती है। नियमित आकार की वस्तुओं का आयतन निम्नलिखित सूत्रो से निकाला जा सकता है—

आयताकार वस्तु या घन = लंबाई × चौड़ाई × ऊँचाई

वेलन = आधार का क्षेत्रफल × ऊँचाई

शकु = $\frac{1}{3}$ आधार का क्षेत्रफल × ऊँचाई

गोला = $\frac{4}{3}\pi$ × (व्यासार्द्ध)^3

अनियमित ठोस वस्तु का आयतन मापना

ऊपर दिए गए सूत्रो की सहायता से अनियमित वस्तुओ का आयतन नही निकाला जा सकता हे। निम्नलिखित सरल उपाय से इसे मापा जा सकता है।

जो वस्तु जितना स्थान घेरती है वह उसका आयतन है। इसलिए किसी वस्तु को पानी या अन्य किसी द्रव मे संपूर्ण रूप से डुबा देने से वह अपने आयतन के समान पानी हटाएगी। इस प्रकार हटाए गए पानी को मापकर उस वस्तु का आयतन जाना जा सकता है।

एक मापक वेलन की सहायता से आसानी से इस काम को किया जा सकता है। मापक वेलन के किसी माप तक पानी या अन्य कोई द्रव डालिए। द्रव ऐसा होना चाहिए जिसमे वह वस्तु न घुले और द्रव इतना होना चाहिए कि वह वस्तु सपूर्ण रूप से उसमे डूब जाए। अब वस्तु को वेलन मे डालिए। द्रव की सतह जितना ऊपर चढेगी, उस वस्तु का आयतन
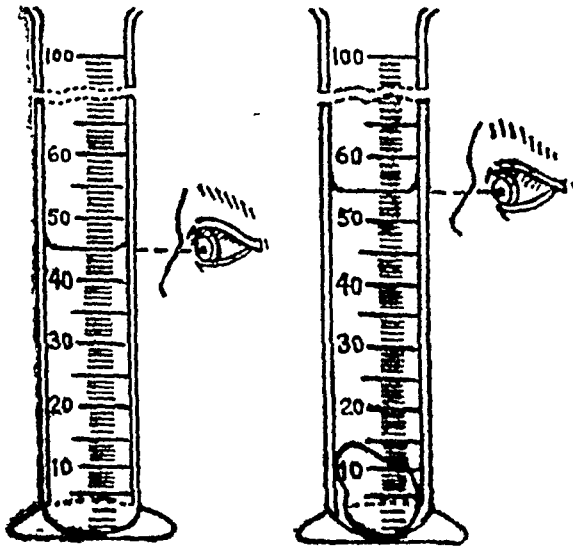
[चित्र १०—अनियमित वस्तु का आयतन निकालना]

उतना है। क्योकि वस्तु ने द्रव मे अपने आयतन के समान स्थान घेर लिया है और द्रव की सतह उस हिसाब से ऊपर चढ़ गई है। अगर द्रव की सतह १०० घ० सें० मी० ऊपर चढ़ी है तो वस्तु का आयतन १०० घन सेंटीमीटर है।

घरेलू काम के लिए अगर मापक वेलन न मिले तो एक छोटे मापक ग्लास की सहायता से भी इस काम को निम्नलिखित उपाय से किया जा सकता है।

प्रयोग—एक पात्र को, जिसमे मापी जानेवाली वस्तु डूब सके, संपूर्ण रूप से द्रव से भर दीजिए और उसे एक वड़े पात्र के अंदर वैठा दीजिए। अव मापनेवाली वस्तु को द्रव मे डालिए। इससे द्रव छलककर वड़े पात्र में आ गिरेगा। इस गिरे हुए पानी को मापक ग्लास से मापकर वस्तु का आयतन मालूम किया जा सकता है। ठीक-ठीक मापने के लिए यह आवश्यक है कि छोटे पात्र की वाहरी सतह और वड़े पात्र की भीतरी सतह, जहाँ पानी छलक कर गिरेगा, गीली हो। लेकिन उसमे द्रव न रहे। ऐसा न होने पर जितना द्रव इनको गीली करने मे लग जाएगा, मापते समय उतनी कमी हो जाएगी।

इस उपाय से न डूवने वाली वस्तु का आयतन निकालने के लिए उसके साथ एक डुवौना लगा दिया जाता है। डुवौना के आयतन को अलग से निकालकर दोनों के संयुक्त आयतन से घटा देने से, वस्तु का आयतन निकल आता है अर्थात् अगर डुवौना का आयतन A हो और दोनो का सयुक्त आयतन B हो, तो B—A=वस्तु का आयतन होगा।

द्रव में डुवाकर नियमित तथा अनियमित सभी आकार की ठोस वस्तुओं का आयतन निकाला जा सकता है। जो वस्तु जिस द्रव मे नही घुलती, उसका आयतन उस द्रव मे ही डुवाकर निकाला जा सकता है।

द्रव का आयतन

द्रव का आयतन, मापक ग्लास आदि से मापकर निकाला जा सकता है। द्रव की सतह समतल नही होती है। पानी आदि द्रव की, जो वस्तुओं को गीली कर देता है, सतह अवतल (concave) अर्थात् वीच में धँसी हुई और पारा आदि द्रव की, जो वस्तुओं को गीली नही करता, सतह उत्तल (convex) अर्थात् वीच मे उठी हुई होती है। द्रव की इस विशेषता के चलते माप का पठन लेने मे लंबन त्रुटि होने की संभावना रहती है। इसलिए शुद्ध माप जानने के लिए आँख को उत्तल या अवतल की सीध में लाकर ही पठन लेना चाहिए।

अध्याय ४

द्रव्यमान (mass) और वजन (weight)

द्रव्यमान और वजन एक नही है। पदार्थ मे वर्त्तमान द्रव्य के परिमाण को द्रव्यमान कहते है। समान आयतन के काठ और लोहे के टुकड़े को उठाने से, लोहे का टुकडा अधिक भारी मालूम पड़ेगा। काठ के टुकडे की तुलना मे लोहे के टुकडे मे द्रव्य की मात्रा अधिक होती है और इसलिए समान आयतन के काठ के टुकडे की तुलना मे लोहे का टुकड़ा अधिक भारी होता है। जब तक यांत्रिक या रासायनिक उपाय से वस्तु के अन्दर के द्रव्य का परिमाण घटाया-बढाया नही जाता है तब तक सभी स्थानो और सभी अवस्थाओ मे वस्तु का द्रव्यमान समान रहता है, अर्थात् स्थान-परिवर्त्तन, का कोई प्रभाव द्रव्यमान पर नही पड़ता है।

पृथ्वी प्रत्येक वस्तु को अपने केन्द्र की ओर आकर्षित करती है। इसे गुरुत्वाकर्षण (gravitation) कहते हैं (इसके संबंध मे हम भौतिकी मे विस्तार से अध्ययन करेगी)। किसी वस्तु पर लगाने वाले पृथ्वी के इस आकर्षण बल या गुरुत्वाकर्षण बल के परिमाण को उस वस्तु का वजन कहा जाता है। जिस वस्तु का द्रव्यमान जितना अधिक होगा, उसपर लगनेवाला गुरुत्वाकर्षण बल भी उसी अनुपात मे अधिक होगा। साथ ही, वस्तु पर लगनेवाला गुरुत्वाकर्षण बल भिन्न-भिन्न स्थानो मे भिन्न-भिन्न हो सकता है; क्योकि जो वस्तु पृथ्वी के केंद्र से जितनी नजदीक होगी, उसपर यह बल उसी अनुपात मे अधिक और पृथ्वी के केंद्र से जितनी दूर होगी, बल उसी अनुपात मे कम होगा। दूसरे शब्दो मे, समुद्र की सतह पर एक वस्तु पर गुरुत्वाकर्षण बल का परिमाण जितना होगा, पहाड़ की ऊँची चोटी पर, जो समुद्र-तल की तुलना मे पृथ्वी के केन्द्र से दूर है, उसका परिमाण कम होगा। इस प्रकार एक वस्तु का वजन समुद्र-तल पर जितना होगा, पहाड़ की ऊँची चोटी पर उससे कम होगा। अतः वजन समस्त स्थानो में एक नही होता है।

किसी वस्तु का वजन अगर भूमध्यरेखा (Equator) पर १०० किलो-ग्राम है तो उत्तर या दक्षिण ध्रुव पर उसका वजन लगभग १०० किलोग्राम

३३३ ग्राम हो जायगा। अर्थात उसके वजन मे प्रति किलो लगभग ३·३ ग्राम की वृद्धि होगी, क्योंकि पृथ्वी का ध्रुवीय व्यास, भूमध्यरेखीय व्यास से लगभग ४४ किलोमीटर कम होने के कारण, अर्थात प्रत्येक ध्रुव पृथ्वी के केंद्र से भूमध्यरेखा की तुलना मे लगभग २२ किलोमीटर निकट होने के कारण, ध्रुवों पर वस्तु का वजन बढ जाता है। ४५ डिग्री अक्षांश में, समुद्र-सतह पर का वजन, वस्तु का मानक वजन माना जाता है।

इस प्रकार द्रव्यमान से वस्तु में मौजूद द्रव्य के परिमाण का ज्ञान तथा वजन से, उस स्थान पर, वस्तु पर लगनेवाला एक प्रकार का बल यानी गुरुत्वाकर्षण बल का ज्ञान होता है।

भिन्न-भिन्न स्थानो पर, भू-पृष्ठ की उच्चता के अनुपात मे, वजन में भिन्नता होने पर भी, यह भिन्नता इतनी कम है कि साधारण माप-तौल पर इसका कोई प्रभाव नही पड़ता है। जैसा कि हम देख चुके है—उच्चता मे लगभग २२ कि० मी० अंतर होने पर, १०० कि० ग्रा० वजन मे केवल लगभग ३३३ ग्राम का अंतर होता है; अर्थात्-समुद्र-सतह पर एक कि० ग्रा० की वजन की वस्तु के वजन मे धरती के सबसे उँचे स्थान, एवरेष्ट शिखर पर, केवल लगभग सवा ग्राम का अंतर होगा। साथ ही एक निश्चित स्थान पर वस्तु का वजन उसके द्रव्यमान का समानुपाती होता है। इसलिए उस स्थान पर समान वजन की वस्तुओं का द्रव्यमान भी समान होता है। इसलिए दैनदिन जीवन मे द्रव्यमान और वजन को एक मान लिया जाता है।

वस्तु का वजन जानने के लिए साधारणत. तराजू व्यवहृत होता है। अधिकांश दूकानों में जो तराजू इस्तेमाल होता है, उसे साधारण तराजू कहते है। साधारण तराजू के अलावा किसी-किसी दूकान मे सौदा तौलने के लिए एक प्रकार का कमानीदार तराजू इस्तेमाल किया जाता है।

साधारण तराजू

साधारण तराजू में एक लकड़ी या लोहे की डंडी के सिरो से डोरी या पतली जंजीर से दो पलड़े लटके हुए होते हैं। आवश्यकता के अनुसार तराजू छोटे या बड़े होते है और उसी अनुपात मे उसकी डंडी और पलड़े भी छोटे या बड़े होते है। बहुत छोटी-छोटी चीजे या कम चीजें तौलने के लिए एक बहुत छोटा पीतल का तराजू इस्तेमाल किया जाता है। इसे 'निकती' कहते हैं।

बड़ी-बड़ी चीजें या अधिक सामान तौलने के लिए लकड़ी या लोहे के कांटे इस्तेमाल होते हैं। साधारणतः कांटे को मजबूत खंभे की सहायता से ऐसे लटकाया जाता है ताकि डंडी बिना बाधा के डोल सके। बड़ी या भारी वस्तुओं को तौलने के लिए, रोमन कांटा, प्लैटफार्म कांटा, कमानीदार चबूतरा तुला आदि भी काम मे लाई जाती हैं।

तौली जानेवाली वस्तु का आकार, आयतन, वजन इत्यादि के अनुसार तराजू भी छोटे-बड़े होते हैं। साधारण तराजू की डंडी को ठीक बीच में से डोरी या जंजीर से लटकाया जाता है। पलड़े लोहे या अन्य धातु के बने हुए होते है। बड़े-बड़े तराजुओं मे लकड़ी के पलड़े भी लगाए जाते हैं। बीच मे लगी हुई डोरी पकडकर उठाने से, अगर डंडी क्षैतिज रहे तो समझना होगा कि तराजू ठीक है। लेकिन पलडे खाली रहने पर भी अगर डंडी एक ओर झुकी हुई रहे तो समझना होगा कि तराजू मे कुछ दोष है। आमतौर पर इसे 'पासंग' कहते हैं।

अच्छी किस्म के तराजू की डंडी को डोरी या जंजीर से लटकाने के बजाए एक स्तंभ पर बने बहुत कड़े पत्थर के क्षुरधार पर रखा जाता है। लटकाने वाली डोरी (या क्षुरधार) डंडी के ठीक बीच में होनी चाहिए ताकि उसके दोनो ओर के अंश समान हों। ऐसा न होने पर भी तराजू मे दोष रह जाता है।

वजन करते वक्त वस्तु को एक पलड़े पर रखा जाता है और दूसरे पलड़े पर बाट रखकर डंडी को क्षैतिज बनाया जाता है। बाट को देखकर वस्तु का वजन मालूम हो जाता है। इस प्रकार व्यवहार मे मानक द्रव्यमान द्वारा वस्तु का वजन मालूम किया जाता है। साधारणत. दुकानों में सौदा तौलते समय इसी प्रकार से तौला जाता है। अगर तराजू मे पासंग हो तो सौदा या बाट रखने के पहले ऊँचे पलड़े पर पत्थर आदि के टुकड़े रखकर डंडी को क्षैतिज बनाया जाता है और तब सौदा तौला जाता है।

साधारण तराजू से मोटे तौर पर पदार्थ का द्रव्यमान मालूम हो जाता है। साधारण तराजू से जहाँ भी तौला जाएगा वस्तु के वजन मे कोई अंतर न पडेगा। क्योंकि विभिन्न स्थानो मे वस्तु पर पृथ्वी के आकर्षण बल में कमी-बेशी होने के साथ-साथ बाट पर भी उसी प्रकार की कमी-बेशी होगी। इस प्रकार स्थान-परिवर्तन से वस्तु के वजन में कोई अंतर नहीं होगा, जब उसका वजन साधारण तराजू से लिया जाय।

अशुद्ध तराजू

आमतौर पर साधारण तराजू में कुछ-न-कुछ दोष रहता है, जिसके चलते उससे ठीक-ठीक तौल नही निकलती है। साधारणत. ये दोष दो प्रकार के होते हैं—

१. डंडी की भुजाओं की लंबाई समान न होना, यद्यपि पलडे खाली रहने पर भी डंडी क्षैतिज ही रहती है।
२. दोनो पलडो का वजन समान न होना और पलड़े खाली रहने पर भी डंडी का क्षैतिज न रहना।

दूसरे दोष को पासंग कहते हैं और हलके पलड़े पर पत्थर आदि रखकर इस अशुद्धि को ठीक कर लिया जाता है। लेकिन, पहला इससे ठीक नही होगा। क्योकि तराजू का सिद्धात इस स्वयंसिद्ध सिद्धात पर आधारित है कि "समान दूरियो पर स्थित समान द्रव्यमान के वजन सतुलित होते है।"
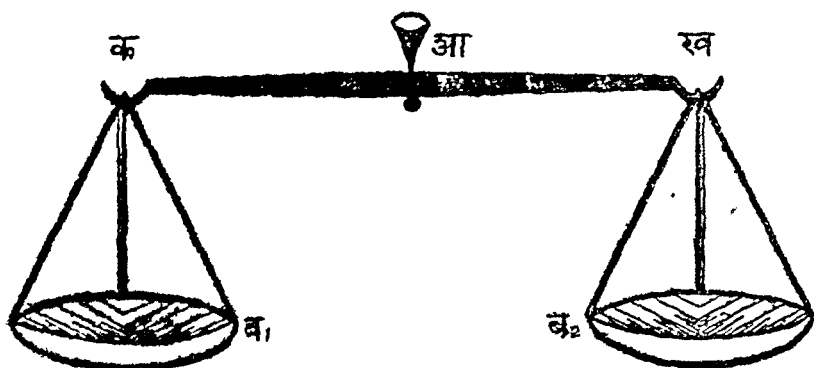
[चित्र ११—साधारण तराजू · क ख—डंडी, आ—मध्य विंदु]

इस प्रकार चित्र में दिए गए तराजू का क ख डंडी है और आ उसका मध्य विंदु है। डडी की दोनां भुजाओ कआ तथा खआ के वजन तथा लबाई समान हैं। साथ ही तराजू के दोनो पलड़ों का वजन भी समान है। इस अवस्था मे क पलड़े पर $व_1$ बाट और ख पलड़े पर तौलने वाली वस्तु $व_2$ रखकर डडी को क्षैतिज बनाया जाय तो—

$$व_1 \times क\,आ = व_2 \times ख\,आ$$

$$\because क\,आ = ख\,आ$$

$$\therefore व_1 = व_2$$

लेकिन अगर क आ तथा ग आ बराबर न हों तो $व_1$ और $व_2$ भी बराबर नहीं होंगे।

इन दोनों प्रकार के दोषों को दूर करने का सबसे सरल उपाय 'बोर्डा की विधि' है। इस विधि के अनुसार जिस वस्तु को तोलना हो उसे एक पलड़े पर रखकर दूसरे पलड़े पर बालू या पत्थर के टुकड़े या अन्य कोई वस्तु रख कर डंडी को क्षैतिज बनाया जाता है। फिर तोलने वाली वस्तु को उतार कर उसी पलड़े पर बाट रखकर डंडी को फिर से क्षैतिज बनाया जाता है। अब इन बाटों को देखकर वस्तु का ठीक तौल मालूम हो जाता है। क्योंकि जितने बालू या पत्थर के टुकड़ों को वह वस्तु संतुलित करती है, उतने ही बालू या पत्थर को संतुलित करनेवाले बाटों का वजन वही होगा जो उस वस्तु का है।

डंडी की दोनो भुजाएं समान न होने से शुद्ध तौल गौस की विधि से मालूम की जा सकती है। इसमें तोलनेवाली वस्तु को पहले एक पलड़े पर रखकर तोला जाता है और फिर दूसरे पलड़े पर रखकर। दोनों तौल के गुणनफल का वर्गमूल उस वस्तु की शुद्ध तौल होती है। अर्थात् अगर एक पलड़े पर रखकर तोलने से तौल २० ग्राम हो और दूसरे पलड़े पर रखकर तोलने से वह २१ ग्राम हो तो शुद्ध तौल $\sqrt{२० \times २१} = २०.४९४$ ग्राम होगी।

साधारण तराजू से बाजार में दैनंदिन खरीद-बिक्री का काम तो चल जाता है लेकिन इससे न तो बहुत छोटी-छोटी चीजे ठीक से तोली जा सकती है और न प्रयोगशालाओं में, जहाँ ठीक-ठीक तौल अत्यावश्यक है, काम नहीं चल सकता है। इस प्रकार के काम के लिए जो तराजू व्यवहार में लाया जाता है उसे भौतिक तुला कहते हैं।

भौतिक तुला (Physical balance)

इसकी डंडी साधारणतः पीतल की होती है। डंडी के बीच में एगेट (agate) नाम के बहुत कठोर पत्थर का एक निम्नमुखी क्षुरधार लगा होता है। इसे मध्य क्षुरधार कहते हैं। डंडी के दोनो सिरे 'L' के आकार के होते

हैं। प्रत्येक सिरे के ऊपर एगेट का एक ऊर्ध्वमुखी क्षुरधार लगा होता है। इन्हे सीमांत क्षुरधार कहते हैं। मध्य क्षुरधार से दोनो सीमांत क्षुरधार की दूरियाँ बराबर होती है। सीमांत क्षुरधार से मध्य क्षुरधार तक की डंडी के अंश को **डंडी की भुजा** कहते हैं।

डंडी एक सीधे खड़े छड़ पर मध्य क्षुरधार के सहारे टिकी हुई होती है। इस छड़ को **स्तंभ** कहते हैं। डंडी के दोनों सिरों के सीमांत क्षुरधारो से दो रकाबें लटकी हुई होती हैं। रकाबो में लगे हुए हुक से दोनों ओर दो पलड़े लटके रहते हैं।

डंडी के ठीक बीच में एक निम्नमुखी सूचक सूई लगी हुई होती है। सूई स्तंभ के निचले भाग में लगे हुए एक पैमाने पर दाहिने-बाएँ घूमती है। अगर डंडी दाहिनी ओर झुके तो सूई पैमाने पर बाँई ओर जायगी। डंडी बाँई ओर झुकने से सूई दाहिनी ओर चली जायगी। डंडी क्षैतिज होने से सूई पैमाने के 'O' चिह्न पर रहेगी। पैमाने पर सूचक सूई के स्थान को देखकर डंडी क्षैतिज है या दाहिने-बाएँ झुकी हुई है, मालूम हो जाता है। डंडी के दोनो सिरों पर एक-एक पेंच लगे हुए होते हैं। इन्हे घुमाकर डंडी के सिरों का भार अल्प मात्रा में कम-बेशी किया जा सकता है और अल्प परिमाण में दाहिने बाएँ झुकी हुई डंडी को क्षैतिज बनाया जा सकता है।

तुला का बाहरी स्तभ खोखला होता है और इसके अंदर एक अंतर्स्तम्भ होता है। अंतर्स्तभ तुला के आधार तख्ते मे लगे हुए एक हत्थे से जुड़ा हुआ होता है। इस हत्थे को घुमाकर अतर्स्तंभ को ऊँचा-नीचा किया जा सकता है। हत्थे को घुमाकर अतर्स्तंभ को ऊँचा कर देने से, डंडी अपने अन्य समस्त आधारो को छोड़कर केवल मध्य क्षुरधार के सहारे अंतर्स्तंभ पर आलंबित हो जाती है। अब छोटी-से-छोटी वस्तु को किसी पलड़े पर रख देने से डडी उस ओर झुक जाती है और सूचक सूई पैमाने पर दूसरी ओर खिसक जाती है। तुला की इस अवस्था को उसकी मुक्त (released) अवस्था कहते हैं। तौलते समय सबसे पहले तुला को मुक्त अवस्था मे लाना पड़ता है।

जब तुला का व्यवहार नही किया जाता है उस समय हत्थे को घुमाकर अंतर्स्तंभ का नीचा कर दिया जाता है। इस अवस्था में डंडी बाहरी स्तभ के दोनो ओर लगे हुए दो उपस्तंभो पर आधारित हो जाती है और डंडी का

डोलना बंद हो । इस अवस्था को तुला की विरामावस्था (arrested) कहा जाता है। तौलने के बाद हमेशा तुला को विरामावस्था में कर देना चाहिए, ताकि बिना कारण क्षुरधार घिसे नहीं।

तुला का स्तंभ एक लकड़ी के आधार तख्ते पर खड़ा रहता है। आधार तख्ते के चारों किनारो पर पेंच लगे हुए होते हैं, जो इसके पाए का कमा करते है। इसे आवश्यकतानुसार घुमाकर, पाए को छोटा-बड़ा करके, आधार तख्ते को क्षैतिज रखा जाता है। पटरी क्षैतिज है या नहीं, इसे देखने के लिए स्तभ के ऊपरी भाग से एक साहुल (plumbline) लटका रहता है। स्तभ के निचले भाग मे ऊपर की ओर नोक वाली एक नोकदार घुंडी इस प्रकार से लगी हुई होती है कि अगर पटरी क्षैतिज हो तो साहुल की नोक घुण्डी के नोक के ठीक ऊपर रहती है। साहुल को देखकर यह मालूम हो जाता है कि आधार तख्ता क्षैतिज है या नही।

भौतिक तुला को धूल, हवा आदि के असर से बचाने के लिए इसे हमेशा
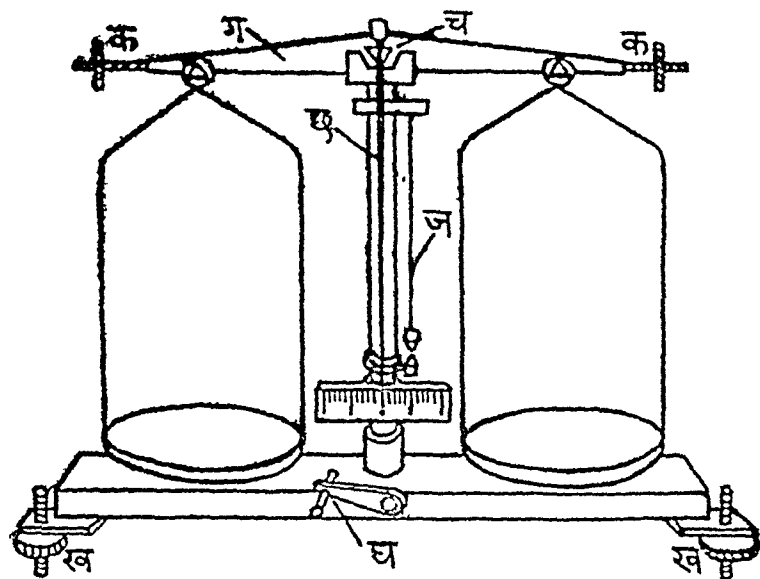
[चित्र १२—भौतिक तुला]

काँच के बक्से मे बन्द रखा जाता है। व्यवहार करते समय बक्से की बगल मे लगा हुआ दरवाजा खोलकर काम लिया जाता है।

भौतिक तुला से तौलना

भौतिक तुला से तौलने के पहले जांच कर लेना चाहिए कि तुला ठीक अवस्था मे है या नही। इसके लिए तौलना शुरू करने से पहले निम्नलिखित कामों को किया जाता है—

१. **तुला का समतलन**—सबसे पहले लटके हुए साहुल से देख लेना चाहिए कि तुला का आधार तख्ता क्षैतिज है या नही। अगर वह क्षैतिज न हो तो तख्ते के किनारो पर लगे हुए पेचों को धीरे-धीरे घुमाकर उसे क्षैतिज कर लिया जाता है।

२. **डंडी का क्षैतिजकरण**—हत्थे को घुमाकर तुला को स्वतंत्र करके देख लिया जाता है कि डंडी क्षैतिज है या नही। अगर सूचक सूई पैमाने के ठीक मध्य मे 'O' पर नही हो या अगर डोलने के समय पैमाने के दोनो ओर समान दूरी तक न जाती हो तो डंडी के सिरो पर लगे हुए पेचो को घुमाकर डंडी को क्षैतिज बनाया जाता है। सूचक सूई जिस ओर हटी हुई हो या डोलते समय जिस ओर अधिक दूर तक जाती हो उस ओर के पेच को बाहर की ओर या दूसरी ओर के पेच को अदर की ओर घुमाकर डंडी को क्षैतिज बनाया जाता है। अर्थात् यदि सूचक सूई दाहिनी ओर हटी हुई हो या डोलते समय दाहिनी ओर अधिक दूर तक जाती हो तो दाहिनी ओर के पेच को बाहर की ओर या बाईं ओर के पेंच को अन्दर की ओर घुमाकर डडी क्षैतिज बनाई जाती है।

जाँच के बाद, तौलना शुरू करने के पहले हत्था घुमाकर तुला को विरामावस्था मे लाया जाता है।

तौली जानेवाली वस्तु को बाएँ पलडे पर रखकर दाहिने पलड़े पर अन्दाज से बाट रखा जाता है। सुविधा के लिए बाटबक्सा को दाहिनी ओर रखना चाहिए। अब हत्थे को घुमाकर तुला को स्वतंत्र किया जाता है। अगर डडी क्षैतिज न हुई हो अर्थात् सूचक सूई मध्य बिन्दु 'O' पर स्थिर न हुई हो या वह अगर डोलती हो तो पैमाने के मध्य बिन्दु 'O' से दोनो ओर समान दूरी तक न जाती हो, तो बाटों को घटा-बढाकर डडी क्षैतिज बनाई जाती है। लेकिन बाटो को घटाते-बढाते समय प्रत्येक बार

तुला को विरामावस्था मे ले आना अत्यावश्यक है। डंडी क्षैतिज हो जाने पर बाटों को देखकर वस्तु का वजन मालूम हो जाता है।

तौलने के समय निम्नलिखित बातो पर ध्यान देना चाहिए—

१. जब तुला स्वतन्त्र अवस्था में हो उस समय न तो उसके पलड़ो पर कोई बाट या अन्य वस्तु रखनी चाहिए और न हटानी ही चाहिए। बाट या अन्य कोई वस्तु पलड़े पर रखने या पलड़े से हटाने के पहले अवश्य ही तुला को विरामावस्था में ले आना चाहिए।

२. तुला को स्वतन्त्र या विरामावस्था मे लाने के समय हत्थे को आहिस्ते से घुमाना चाहिए। हत्थे को कभी भी झटके के साथ नही घुमाना चाहिए।

३. पलड़े पर ऐसी कोई वस्तु नहीं रखनी चाहिए जिससे पलड़े पर दाग लग जाए या पलड़े को कोई नुकसान पहुँचे। ऐसी वस्तु को अगर तौलना हो तो उसे उचित पात्र मे रखकर ही तौलना चाहिए। ऐसा करने के लिए पहले पात्र को और फिर पात्र में रखकर पात्र-समेत वस्तु को तौला जाता है। पात्र-समेत वस्तु के वजन से पात्र का वजन घटा देने से वस्तु का वजन मिल जाता है।

४. तौलते समय बड़े बाट से शुरू करना चाहिए और आवश्यकतानुसार क्रमशः छोटे बाटो को लेना चाहिए।

५. बाटो को कभी हाथ से नही छुना चाहिए। हमेशा उन्हे चिमटी से पकड़ना चाहिए। प्रत्येक बाट-बक्से के साथ चिमटी रहती है। हाथ से पकड़ने पर हाथ के मैल से बाट मे त्रुटि आ सकती है।

६. गरम वस्तु को नही तौलना चाहिए।

७. तौलते समय सूचक सूई का डोलना देखने के लिए बक्से का दरवाजा बन्द कर देना चाहिए ताकि सूई पर हवा का असर न पड़े।

बाट-बक्स—(Weight box)

भौतिक तुला के साथ मानक बाटों का एक बक्सा रहता है। बक्से में विभिन्न माप के बाटो के लिए अलग-अलग खाने होते हैं। बक्से मे बाटों को उठाने के लिए एक चिमटी होती है।

वैज्ञानिक कामो के लिए वाट-वक्से में दशमलव पद्धति के वाट रहते हैं। साधारणतः वक्से मे १००, ५०, २०, १०, ५, २, १, ०.५, ०.२, ०.१ ग्राम
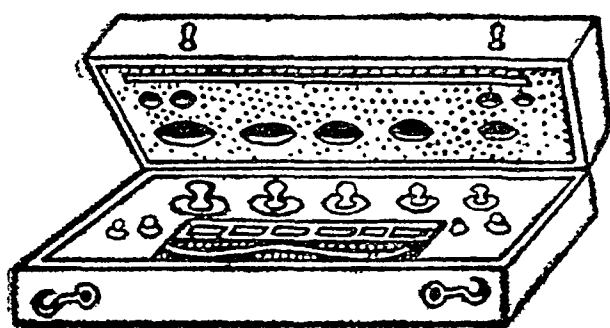
[चित्र सं० १३— वाट-वक्सा]

के वाट होते हैं। अधिक सूक्ष्म कामो के लिए किसी-किसी वाट-वक्से में ०.०५, ०.०२ और ०.०१ ग्राम के भी वाट रहते हैं। व्यवहार के वाद वाट-वक्से को हमेशा वंद करके रखना चाहिए।

रोमन काँटा (Roman steelyard) या विषमभुज तुला

साधारण तराजू तथा भौतिक तुला समभुज तुला कहलाती है। इनकी डंडी का केन्द्र, जहाँ से लटकाकर तुला क्षैतिज वनाई जाती है, डंडी के ठीक बीच में होता है। इस प्रकार इन तुलाओ की दोनों भुजाएँ समान होती हैं। रोमन काँटा या विषमभुज तुला की दोनों भुजाएँ समान नही होती और इसे ठीक बीच से न लटकाकर एक किनारे की ओर हटाकर लटकाया जाता है। इस प्रकार इसकी एक भुजा दूसरी भुजा से वड़ी होती है।

विषमभुज तुला साधारणत. वड़ी और भारी चीजें तौलने में काम आती है। जहाँ जल्दी-जल्दी तौलने की आवश्यकता रहती है तथा मोटे तौर पर तौल से काम चल जाता है, वहाँ इस काँटे का व्यवहार किया जाता है।

इसमे एक लंवा समरूप अंशाकित छड़ होता है। यह छड़ एक किनारे के पास से हुक की सहायता से लटका रहता है। अंशांकित भुजा लंवी होती है और इसपर एक खिसकनेवाले छल्ले मे एक छोटा-सा वाट लगा होता है। तौलनेवाली वस्तु छड की छोटी भुजा मे लटका दी जाती है और छल्ले को

खिसकाकर छड को क्षैतिज बनाया जाता है। अंशाकित भुजा पर छल्ले की स्थिति को देखकर वस्तु का वजन मालूम हो जाता है।
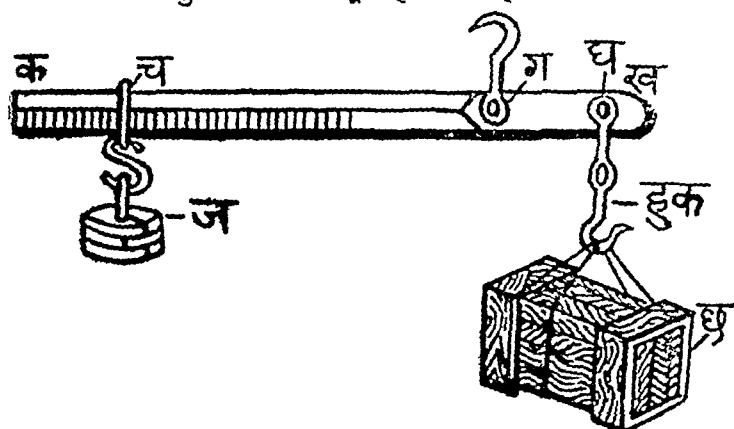
[चित्र १४—विषमभुज तुला · क ख—छड; ग—लटकाने वाला विंदु ; घ—तौलनेवाली वस्तु लटकाने का हुक ; च—खिसकने वाला छल्ला ; छ—तौलने वाली वस्तु ; ज—छल्ले से लटका हुआ वजन]

प्लैटफार्म तुला

रेलवे स्टेशन आदि स्थानो मे जहाँ भारी-भारी चीजे तौलनी पडती हैं, वहाँ यह तुला साधारणत काम मे लाई जाती है। इसमे माल रखने के चबूतरे के नीचे दो लीवर और ऊपर एक अशाकित लीवर लगे होते है। चबूतरे पर बोझ रखने से नीचे के लीवर दब जाते है और ऊपर के लीवर के सिरे को ऊपर उठा देते है। ऊपर के लीवर मे लगे हुए वाट को खिसकाकर उसे क्षैतिज बनाया जाता है और उसपर बने हुए चिह्न पर वाट की स्थिति को देखकर वजन मालूम हो जाता है।
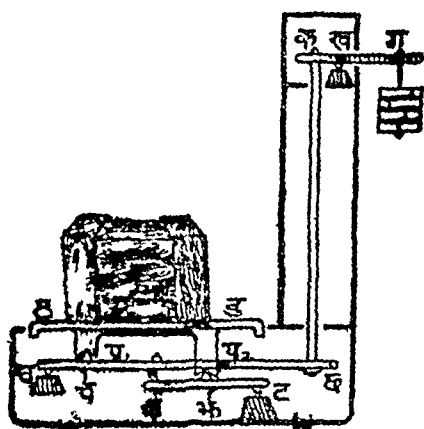
[चित्र १५—प्लैटफार्म तुला]

चौकी तुला

इसपर चढाकर गाडी, मोटर, ट्रक आदि तौले जाते है। पहले माल-समेत गाडी और फिर खाली गाडी को तौलकर माल का वजन मालूम कर

लिया जाता है। गाड़ी आदि चढाने की सुविधा के लिए इसका चबूतरा रास्ते की सतह पर लगाया जाता है। इसके लीवर आदि जमीन के नीचे पक्का कमरा बनाकर, उसमे बैठाए जाते है। ऊपर का अंशाकित लीवर बगल मे एक कमरे के अंदर लगा होता है। तौलते समय इस लीवर को क्षैतिज बनाकर, बाट की स्थिति देखकर वजन मालूम कर लिया जाता है।

कमानीदार तुला (Spring balance)

साधारण तुला या भौतिक तुला से वस्तु का द्रव्यमान और कमानीदार तुला से उसका वजन मापा जाता है। हम पहले ही देख चुके है कि विभिन्न स्थानों मे वजन की भिन्नता मे इतना कम अंतर होता है कि साधारणत. द्रव्यमान माप करके ही वजन के परिमाण का निर्णय किया जाता है। इसलिए दैनंदिन जीवन मे द्रव्यमान और वजन को समान मानकर साधारण तराजू या कमानीदार तराजू, दोनो ही मापने के काम में इस्तेमाल किए जाते है।

कमानीदार तुला वस्तु का वजन अर्थात् उसपर लगनेवाले गुरुत्वाकर्पण बल को दरशाती है। कमानीदार तुला की कमानी से लटकाई गई वस्तु पर गुरुत्वाकर्षण बल के अनुपात मे कमानी फैल जाती है और उससे वस्तु पर लगनेवाला गुरुत्वाकर्पण बल का परिमाण या उस वस्तु का वजन मालूम हो जाता है। वस्तु पर लगनेवाले गुरुत्वाकर्षण बल मे कमी-बेशी होने से कमानी के फैलाव मे भी कमी-बेशी हो जाती है और उसके अनुसार वस्तु पर लगनेवाला गुरुत्वाकर्पण बल या वजन की कमी-बेशी का परिमाण मालूम हो जाता है। इसलिए कमानीदार तराजू से, एक ही वस्तु को, समुद्र-सतह पर तौलने से जो वजन मालूम पडेगा, ऊँचे पहाड़ की चोटी पर, जो समुद्र-सतह की तुलना मे पृथ्वी के केन्द्र से दूर है, तौलने से कम वजन मालूम पड़ेगा।

लेकिन साधारण या भौतिक तुला मे, जिनमे वस्तु को बाट के साथ संतुलित करके मापा जाता है, गुरुत्वाकर्षण बल मे कमी-बेशी से माप में कोई अतर नही पड़ता है; क्योकि गुरुत्वाकर्षण बल मे कमी-बेशी का असर बाट और वस्तु पर एक-सा होने के कारण दोनों के संतुलन पर कोई प्रभाव नही पड़ता और सभी जगह माप एक समान बनी रहती है।

साधारण कमानीदार तुला

साधारण कमानीदार तुला मे एक इस्पात के मोटे तार से बनी कमानी रहती है। कमानी के निचले सिरे के साथ एक लबा छड़ लगा हुआ होता है। छड के नीचे एक हुक लगा दी जाती है। कमानी को एक लबे अर्द्ध-बेलनाकार खोल के अदर इस प्रकार से लगा दिया जाता है कि उसका ऊपरी सिरा खोल के ऊपरी सिरे के साथ मजबूती से जुड़ा रहे। कमानी के निचले सिरे पर एक सूचक सूई लगा दी जाती है। खोल के चिपटे भाग में एक लबी झिरी कटी हुई होती है और सूचक सूई इस झिरी के बाहर निकली हुई होती है। सूचक सूई के स्थान को शून्य और फिर विभिन्न वजन के बाट लटकाकर सूचक सूई द्वारा दरशाए हुए स्थानों पर उनके अंक चिह्नित करके यह पैमाना बनाया जाता है। वजन करते समय हुक से वस्तु को लटका दिया जाता है और पैमाने पर सूचक सूई को देखकर वजन मालूम कर लिया जाता है।
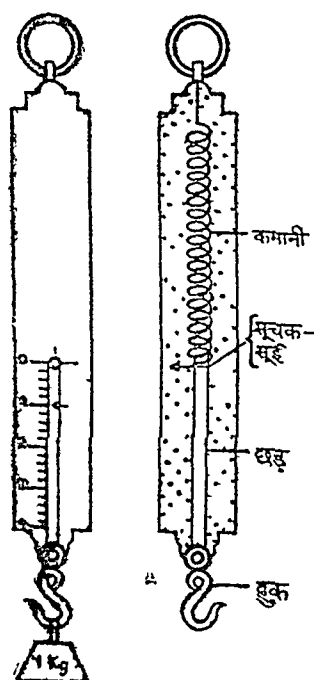
[चित्र १६—साधारण कमानीदार तुला]

इस्तेमाल के समय आवश्यकता पडने पर हुक से एक पलडा लटका दिया जाता है। ऐसी अवस्था मे किसी वस्तु को तौलते समय पहले पलडे का वजन और फिर वस्तु-समेत पलड़े का वजन देख लिया जाता है और पलडे-समेत वस्तु के वजन से पलडे का वजन घटाकर वस्तु का वजन मालूम किया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि पलडे का वजन १०० ग्राम और पलडे-समेत वस्तु का वजन ५०० ग्राम हो तो वस्तु का वजन ५०० − १०० = ४०० ग्राम होगा।

तौलते समय हमेशा देख लेना चाहिए कि सूचक सूई शून्य पर है या नही। अगर नही है तो उसके अनुसार वस्तु के दरशाए हुए वजन मे सशोधन करना पड़ेगा।

कमानीदार चबूतरा तुला

भारी वस्तु तौलने के लिए कमानीदार तुला मे एक चबूतरा होता है और उसके सामने घड़ी जैसी वजन-सूचक अंशाकित गोल पैमाना और सूचक सूई होती है। डाक्टर लोग रोगियो को तौलने के लिए साधारणतः इस प्रकार की तुला काम मे लाते है। इसमे चबूतरे के नीचे एक मजबूत कमानी लगी हुई होती है। तौली जानेवाली वस्तु पर लगनेवाले गुरुत्वाकर्षण बल के अनुपात में कमानी नीचे दबती है और उसके साथ लगी हुई सूचक सूई उस बल के परिमाण या वजन को पैमाने पर दरशाती है।

दुकानो मे सौदा तौलने के लिए इस प्रकार की तुला मे चबूतरे के स्थान पर एक पलडा लगा हुआ होता है और उसके नीचे गोलाकार घड़ी जैसा पैमाना लगा हुआ होता है। पलड़े मे सौदा रखकर पैमाने पर सूचक सूई को देखकर उसका वजन मालूम किया जाता है।

साधारण कमानीदार तुला और इन तुलाओ मे मुख्य अतर यह होता है कि साधारण कमानीदार तुला मे वजन करने के लिए, तौली जानेवाली वस्तु को कमानी के नीचे लटकाया जाता है और कमानी फैलकर वजन दरशाती है। लेकिन इनमे वस्तु को कमानी के ऊपर रखा जाता है और उसके वजन से कमानी दबकर वजन के परिमाण को दरशाती है।

कमानीदार तुलाओ की वजन करने की क्षमता निश्चित होती है। कभी भी किसी कमानीदार तुला से निश्चित क्षमता से अधिक वजनदार वस्तु को नही तौलना चाहिए। ऐसा करने से तुला टूटकर खराब हो जा सकती है।

घर में एक छोटी कमानीदार तुला रखने से छोटा-मोटा सौदा तौलने में काफी सुविधा होती है।

अध्याय ५

समय की माप

हम पहले ही देख चुके हैं कि आजकल समय की माप का सर्वमान्य मात्रक सेकेंड, मिनट तथा घंटा है और एक सेकेंड एक मध्यमान सौर दिवस का ८६,४०० वाँ भाग होता है।

लोलक का नियम

आजकल समय की माप घड़ी देखकर की जाती है। सन् १५८३ में गैलिलियो (Galileo) द्वारा लोलक के दोलन-काल-संबंधी आविष्कार को आज की घड़ी का जनक कहा जा सकता है। लोलक के दोलन-काल के नियम के आधार पर हाइगिन्स ने सन् १६५८ मे पहले-पहल घड़ी का निर्माण किया।

लोलक (**Pendulum**)

सरल लोलक (**Simple pendulum**)—सरल लोलक बनाने के लिए, एक पतली लंबी और मजबूत डोरी में एक छोटी परंतु भारी गोली बाँधकर, उसे किसी स्थिर बिंदु से इस प्रकार लटका दिया जाता है कि गोली बिना बाधा के झूल सके। लोलक के इस गोली को गोलक (bob) कहते हैं। स्थिर बिंदु से गोलक के मध्य बिंदु तक की लंबाई को लोलक की लंबाई कहते हैं।
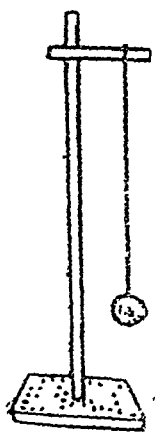
[चित्र १७—सरल लोलक]

अगर गोलक को एक ओर कुछ दूर तक ले जाकर छोड़ दिया जाता है तो गोलक अपने पहले के स्थान पर आकर रुक नहीं जाएगा, बल्कि विपरीत दिशा मे कुछ दूर तक चला जाएगा और फिर लौटकर जहाँ से चला था उस ओर जाएगा। लोलक का इस प्रकार का दोलन-क्रम कुछ समय तक चलता रहेगा।

चित्र में, स्थिर विंदु क से लोलक की डोरी को लटकाया गया है। ख स्थिर अवस्था मे गोलक का स्थान है। गोलक को ग तक ले जाकर छोड़ दिया गया है। गोलक लौटकर ख विंदु तक आता है, लेकिन वहाँ न रुककर ग ख की विपरीत दिशा मे ग घ तक चला जाता है। फिर वह ख से होते हुए
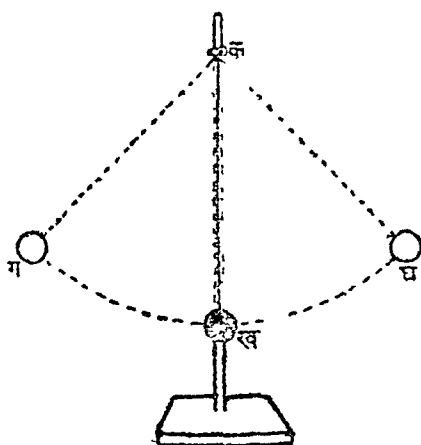
[चित्र १८—दोलन]

ग की ओर लौट जाता है। ख ग को दोलन आयाम (amplitude) या दोलन-विस्तार, ग से घ तक जाने के समय को कंपन-काल तथा ग से घ तक जाने और फिर लौट आने के समय को दोलन-काल कहते है अर्थात् ग से घ तक जाने तथा फिर ग तक लौट आने मे लगनेवाले समय को दोलन-काल कहते हैं।

लोलक का नियम

समकालत्व का नियम

१. प्रत्येक लोलक का अपना दोलन-काल हमेशा समान होता है। आयाम या दोलन-विस्तार वेशी हो या कम, उसका कोई असर दोलन-काल पर नहीं पड़ता है।

प्रयोग—एक साधारण लोलक वनाइए। एक विराम घड़ी की सहायता से विभिन्न दोलन-विस्तार पर दोलन-काल की जाँच कीजिए। ऐसा करने के लिए गोलक को एक वार १ इंच, एक वार २ इंच और एक वार ४ इच दूर

ले जाकर छोड़िए। देखिएगा कि प्रत्येक अवस्था में दोलन-काल एक समान है।

२. दोलन-काल गोलक के वजन या पदार्थ पर निर्भर नहीं करता अर्थात् लोलक के गोलक का वजन कम या वेशी होने से या विभिन्न पदार्थ से बने हुए होने से उसके दोलन-काल में कमी-वेशी नहीं होती है।

प्रयोग—विभिन्न पदार्थों से बने हुए विभिन्न वजनों के कई गोलक लीजिए। इनसे समान लंबाई के उतने लोलक बनाइए। अब प्रत्येक लोलक के दोलन-काल की जाँच, विराम घड़ी की सहायता से कीजिए। देखिएगा कि सभी का दोलन-काल एक समान है।

लंबाई का नियम

१. समान लंबाई के लोलकों के दोलन-काल समान होते हैं।

प्रयोग—समान लंबाई के कई लोलक बनाइए। बारी-बारी से प्रत्येक को विभिन्न दोलन-विस्तार में डोलाइए। देखिएगा कि सभी-के-सभी का दोलन-विस्तार पर दोलन-काल एक ही है। अब गोलकों को बदलकर भिन्न वजनों तथा भिन्न पदार्थों से बने हुए नए गोलक लगाइए। तब भी देखिएगा कि दोलन-काल में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ है।

२. विभिन्न लंबाई के लोलक के दोलन-काल भिन्न-भिन्न होते हैं।

प्रयोग—विभिन्न लंबाई के कई लोलक बनाइए। प्रत्येक को विभिन्न दोलन-विस्तारों में डोलाइए। देखिएगा कि प्रत्येक का दोलन-काल भिन्न-भिन्न है।

३. लोलक का दोलन-काल उसकी लंबाई के वर्गमूल का समानुपाती होता है।

प्रयोग—९ से० मी०, १६ से० मी०, २५ से० मी० और १०० से० मी० लंबाई के चार लोलक बनाइए। बारी-बारी से प्रत्येक के दोलन-काल की जाँच कीजिए। देखिएगा कि इनके दोलन काल का अनुपात ३ : ४ : ५ : १० है अर्थात् अगर ९ से० मी० लंबाई का दोलन-काल ३ सेकेंड हो तो अन्य लोलकों का दोलन-काल क्रमशः चार सेकेंड, पाँच सेकेंड और दस सेकेंड होगा। ये क्रमश ९, १६, २५ और १०० के वर्गमूल है अर्थात इन लोलकों के दोलन-काल $\sqrt{९}$, $\sqrt{१६}$, $\sqrt{२५}$ और $\sqrt{१००}$ के समानुपाती हैं।

४. लोलक की लबाई जितनी अधिक होगी उसका दोलन-काल भी उसी अनुपात मे अधिक होगा। लोलक की लबाई में ४ गुना, ९ गुना और १६ गुना वृद्धि होने से उसके दोलन-काल मे २ गुना, ३ गुना और ४ गुना वृद्धि होगी।

लोलक घड़ी (Pendulum clock)

निश्चित लंबाई के लोलक का दोलन-काल निश्चित होता है। इसी सिद्धांत के आधार पर लोलक घडी बनाई गई है। हम पहले ही देख चुके है कि सन् १५६२ मे गैलीलिओ ने लोलक का दोलन-काल-सबधी आविष्कार किया था। कहा जाता है कि प्रार्थना के समय, पीसा नगर के एक गिर्जे मे, झूलती हुई एक बत्ती को देखकर गैलीलिओ को लगा कि यद्यपि बत्ती के झूलने का आयाम धीरे-धीरे छोटा होता जा रहा है, फिर भी उसके दोलन के समय में कोई परिवर्त्तन नही हो रहा है। उन्होने अपनी नाडी की धड़कन के साथ मिलाकर इस बात की जाँच की और अपने अनुमान को सही पाया। गैलीलिओ ने ही बताया कि इस नियम के आधार पर समय मापने का यंत्र यानी घडी बनाई जा सकती है और इसी सिद्धांत के आधार पर सन १६५८ में डच वैज्ञानिक हाइगिंस ने सर्वप्रथम लोलक घडी बनाई। लेकिन गैलीलिओ इसे देख नही सके। इसके १६ साल पहले ही, सन १६४२ मे उनकी मृत्यु हो गई।

लोलक घडियाँ दीवाल से लटकाई जाती है। दीवाल-घड़ियाँ साधारणतः लोलक घड़ियाँ होती है।

लोलक घडियो के अतिरिक्त कई अन्य प्रकार की घड़ियाँ होती हैं। जैसे--टेबुल-घडी, पाकिट-घडी और कलाई-घडी। इनमे बाल कमानी से नियन्त्रित एक संतुलन चक्र (Balance wheel) के दोलन-काल से समय की माप होती है।

घडियो मे चाहे लोलक लगा हो या सतुलन चक्र, उसे लगातार चलाने के लिए उनमें एक या अधिक कमानी लगी हुई होती है। चाभी की सहायता से कमानी को लपेट दिया जाता है। घड़ी मे ऐसी यान्त्रिक व्यवस्था की जाती है कि कमानी एक निश्चित रफ्तार से खुलती रहे और इस क्रिया मे लोलक या सतुलन चक्र को चलाती रहे। साधारणत. छोटी घड़ी मे यह कमानी

२४ घंटे मे पूरी खुल जाती है और फिर चाभी से इसे लपेट देना पड़ता है। दीवाल-घड़ियो मे कमानी को पूरा खुलने मे एक हफ्ता समय लगता है। किसी-किसी घडी मे कमानी खुलने मे इससे भी अधिक समय लगता है।

विद्युत्-चालित घडियो मे कमानी के स्थान पर वैद्युतिक ऊर्जा की सहायता से लोलक या सतुलन चक्र को चलाया जाता है। स्वचालित (automatic) घडी मे चाभी देने की आवश्यकता नही पड़ती। कुछ देर तक हाथ मे पहने रहने पर ही उनके सतुलन चक्र मे इतनी गति पैदा हो जाती है कि वह एक निश्चित अवधि तक चलती रहती है।

दोलन घडियो मे लगा हुआ लोलक या सतुलन चक्र का एक कपन-काल एक सेकेंड होता है और दोलन-काल दो सेकेंड। इस प्रकार के लोलक को सेकेंड लोलक कहते हैं। घडी के अदर, लोलक के ऊपरी सिरे पर एक छोटे के नाल जैसा लगर लगा हुआ होता है। लोलक के डोलने के साथ-साथ यह लंगर भी ऊपर-नीचे डोलता रहता है। लगर के ठीक नीचे एक दाँतदार चक्र इस प्रकार से लगा हुआ रहता है कि ऊपर-नीचे होते समय लगर का एक-एक सिरा बारी-बारी से चक्र के दाँतो के खाँज मे बैठ जाता है और वहाँ से उठते समय चक्र को ठेल देता है। इस प्रकार लोलक के प्रत्येक अर्द्ध दोलन या कपन-काल मे इस चक्र का एक-एक दाँत घूमता रहता है। इस दाँतदार चक्र के साथ अन्य कई दाँतदार चक्र लगे हुए होते है और वे विभिन्न रफ्तारो से चलते रहते है और साथ-साथ घड़ी की सेकेंड, मिनिट तथा घटे की सुइयो को चलाते रहते है।

हाथ-घडी, जेब-घड़ी या अन्य छोटी घडियो मे यह लगर संतुलन चक्र के साथ जुडा हुआ होता है।

विराम घड़ी (Stop watch)

किसी क्रिया का ठीक-ठीक समय जानने के लिए इस प्रकार की घड़ी का इस्तेमाल होता है। ऐसे तो विराम घडी साधारण घडी के ही सिद्धात पर बनती है और उसी तरह चलती है। फर्क इतना ही है कि यह घड़ी दिन-रात का समय दरशाने के काम मे नही आती है। इसलिए यह घड़ी चौबीसो घटे नही चलती रहती। किसी क्रिया के प्रारभ मे बटन दबाकर इसे चला दिया जाता है। जब तक बटन को दबाकर रखा जाता है तब तक

घड़ी चलती रहती है और बटन को छोड़ देने से बंद हो जाती है। इस प्रकार क्रिया के अंत में बटन को छोड़कर घड़ी को बंद कर दिया जाता है और घड़ी की सूई की स्थिति देखकर क्रिया मे लगनेवाले समय का ज्ञान हो जाता है।

किसी-किसी विराम घड़ी में एक बार बटन दबाकर चलाने तथा दोबारा बटन दबाकर बद करने की व्यवस्था होती है। इस घडी की सहायता से एक सेकेंड के दसवे भाग तक का समय मालूम हो जाता है।

खेल-कूद आदि की प्रतियोगिता, वैज्ञानिक प्रयोग आदि मे इस घड़ी की आवश्यकता पडती है।

पुरानी पद्धति

प्राचीन समय मे साधारणतः आकाश मे सूरज, चाँद तथा तारो का स्थान देखकर समय का अदाज लगाया जाता था। साथ ही, निश्चित समय जानने के लिए बालू घडी, जल घडी, सूर्य घड़ी आदि भी काम मे लाई जाती थीं।

बालू घड़ी और जल घड़ी

बालू घड़ी तथा जल घडी एक ही नियम से बनाई जाती थी। एक पात्र मे बालू या पानी रखा जाता था और उसकी पेंदी मे एक छोटा-सा छेद कर दिया जाता था। छेद से बालू या पानी एक निश्चित रफ्तार से गिरता रहता था। एक निश्चित समय मे कितना बालू या पानी गिरा है, उसके अनुसार पात्र मे चिह्न लगा दिया जाता था। अब गिरे हुए बालू या पानी को देखकर समय जाना जाता था।

बालू या जल घडी बहुत ही आसानी से बनाई जा सकती है। दो समान आकार की बोतलें लीजिए और एक लंबा काग लीजिए जो बोतलो के मुँह मे ठीक से बैठ सके। काग मे एक छोटा-सा छेद कीजिए ताकि बोतल के मुँह पर लगा देने से छेद मे से बालू या पानी गिर सके। काग के दोनों सिरों पर काटकर गहरा बना दीजिए। अब एक बोतल में पानी या बालू भर दीजिए और उसे काग से बद कर दीजिए। फिर इस बोतल को उलट कर दूसरी बोतल के ऊपर रखकर उस बोतल को भी काग के दूसरे सिरे से बद कर दीजिए। घड़ी से समय मिलाकर एक निश्चित समय मे कितना बालू या पानी गिरता है उसे देखकर बोतल मे चिह्न लगा दीजिए। अब बालू या

जल घडी वन गई। गिरे हुए जल या वालू को देखकर समय मालूम हो जाता है। जल घड़ी मे काग का छेद वालू घडी से पतला वनाना पडता है।

[चित्र १९—वालू घड़ी, जल घड़ी : क—घड़ी, ख—काग के बीच का छेद]

सूर्य घड़ी (Sun dial)

प्राचीन काल मे, मान मन्दिरो में समय जानने के लिए सूर्य घडी या धप घड़ी वनाई जाती थी। प्रकट है कि सूर्य घडी से केवल दिन मे, धूप रहने पर ही समय जाना जा सकता है।
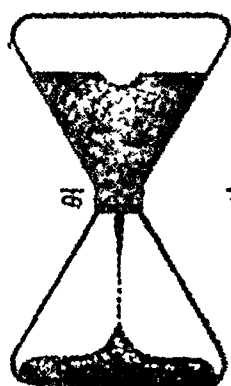
इसमे एक लकडी या धातु-निर्मित डायल या घडी का मुँह होता है। डायल पर समय-मापक चिह्न वने हुए होते हैं। डायल के बीच मे उत्तर-दक्षिण दिशा मे लगी हुई एक ऊँची पतली समकोण त्रिभुजाकार पट्टिका होती है। इसे घड़ी की कील कहते है। जिस समय कील की छाया सवसे छोटी होती है, डायल पर उस स्थान को मध्याह्न यानी दोपहर के समय के रूप मे चिह्नित कर दिया जाता है। इसी प्रकार जब कील की छाया पश्चिम की ओर सवसे लम्वी होती है उस स्थान को सुवह और जव पूरव की ओर सवसे लम्वी होती है उस स्थान को संध्या के समय के रूप मे चिह्नित करके, समस्त डायल को समान भागो मे बाँटकर समय जानने की व्यवस्था की जाती है। भारत के मान-मन्दिरो मे साधारणतः सूर्य घडी के डायल को प्रहर, दड, पल आदि मे बाँटा जाता था।
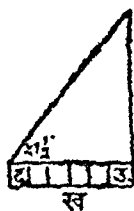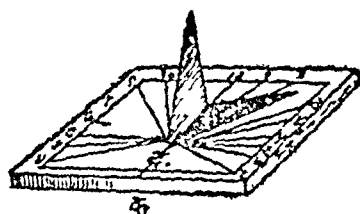
[चित्र २०—सूर्य घड़ी]

काशी के मानमंदिर, दिल्ली के जंतर-मंतर आदि स्थानों में सूर्यघड़ी वनी हुई है।

रसायन-शास्त्र

[CHEMISTRY]

विषय-प्रवेश

रसायनशास्त्र मे पदार्थों के गुण, संघटन (composition), उनमें होनेवाले परिवर्त्तनो तथा विभिन्न प्रकार के पदार्थों की एक दूसरे पर क्रियाप्रतिक्रिया का अध्ययन किया जाता है।

रसायनशास्त्र की चर्चा अति प्राचीन काल से होती आ रही है। आज से कम-से-कम तीन हजार साल पहले भारतीय ऋषियो ने पंचतत्त्व के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। इसके अनुसार विश्व का प्रत्येक पदार्थ क्षिति (मिट्टी), आपस् (जल), तेज (आग), मरुत (वायु) तथा व्योम (आकाश या शून्य स्थान)—इन पांच तत्त्वो से मिलकर वना है। ईसा से पूर्व पांचवी सदी मे कुछ ग्रीक-दार्शनिको ने भी कहा था कि पृथ्वी के सभी पदार्थ मिट्टी, जल, वायु और आग—इन चार तत्त्वो से वने हैं।

हजारो साल पहले एक भारतीय ऋषि—कणाद ने आज के सर्वमान्य परमाणुवाद के सिद्धात का प्रतिपादन किया था। उन्होने वताया था कि दुनिया के प्रत्येक पदार्थ अविभाज्य तथा अदर्शनीय, छोटे-छोटे कणो से वने हैं। वाद मे चलकर ग्रीक-दार्शनीक डेमोक्रीटास तथा एपीक्यूरास ने भी वताया कि प्रत्येक पदार्थ अविभाज्य कणो से वनते है।

प्राचीन काल मे रसायनशास्त्र की प्रगति मुख्यत. दो प्रकार से हुई। प्रथमतः, कुछ लोग दूसरी धातुओ को सोने मे वदलने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रयोग करते थे। उन्हे आलकेमिस्ट कहते थे। वे सोना तो न वना सके लेकिन उनके प्रयोगो से वहुत-सी रासायनिक विधियो, जैसे आसवन (distillation), ऊर्ध्वपातन (sublimation) आदि का आविष्कार हुआ।

दूसरी तरफ, औषधि की खोज मे भी वहुत-से लोग विभिन्न प्रकार की वस्तुओ के गुणो का अध्ययन करने लगे थे। भारत में रासायनशास्त्र की चर्चा मुख्यत. औषधि की ही खोज मे की जाती थी। लगभग दो हजार

साल पहले भारतीय रसायनशास्त्री नागार्जुन ने इस देश मे पहले-पहल आसवन, ऊर्ध्वपातन, निस्तापन (calcination) आदि का आविष्कार किया था।

आधुनिक रसायन-विज्ञान की नीव डालनेवाले अँग्रेज वैज्ञानिक रॉवर्ट व्यॉयेल (Robert Boyle) हैं। उनका जन्म सन् १६२७ मे हुआ था। उन्होने तत्त्व-संबंधी आधुनिक विचारों की स्थापना की। उनके बाद रसायन-विज्ञान की प्रगति तेजी से होती गयी और वह प्रगति आज भी हो रही है और भविष्य मे भी होती रहेगी।

रसायन-विज्ञान के अँग्रेजी नाम कैमिस्ट्री (chemistry) और अरवी नाम कीमिया है। यह अरवी शब्द यूरोप में आकर धीरे-धीरे कैमिस्ट्री में रूपातरित हो गया।

हमारे दैनिक जीवन मे ऐसी वहुत-सी समस्याएँ आती है जिन्हे रसायन-विज्ञान का साधारण प्राथमिक ज्ञान रहने से हम आसानी से समझ सकते और हल कर सकते हैं। किसी-किसी जगह के पानी से कपडा ठीक से साफ नही होता या दाल नही पकती है, यह तो हम आये दिन देखते हैं। क्यो ऐसा होता है और इसे कैसे ठीक किया जा सकता है ? रसायन-विज्ञान का साधारण ज्ञान हमें यह वता देता है। लोहे की चीजो मे जग लगता है—क्यो ? रखे हुए पीतल के वर्तनों की चमक जाती रहती है—क्यों ? फूँकने से सुलगती हुई लकडी तेजी से जलने लगती है—क्यों ?

हमारे रोज के जीवन मे इस प्रकार के असख्य प्रश्न उठते है, जिनके विषय मे जानकारी रहने से हमे तरह-तरह की सुविधाएँ होती हे। साथ ही रसायन-विज्ञान का ज्ञान हमे अपने चारो ओर की चीजो की वनावट, उनमे होनेवाले परिवर्त्तन और एक दूसरे पर होनेवाली क्रिया-प्रतिक्रिया के सवध मे समझा देता है जो हमारे दैनिक जीवन मे काफी लाभदायक सिद्ध होती हैं।

रासायनिक परिवर्तन के साथ-साथ भौतिक परिवर्त्तन भी अवश्य ही होता है। इसलिए रसायन और भौतिक-विज्ञान एक दूसरे से सवधित है। साथ ही, ये दोनो जीव-विज्ञान के साथ भी घनिष्ठ रूप से सवधित है।

अध्ययन की सुविधा के लिए रसायन-विज्ञान को छह मुख्य शाखाओ में विभक्त किया गया है। ये छह शाखाएँ है :—

१. अकार्बनिक रसायन (Inorganic Chemistry)

२. कार्बनिक रसायन (Organic Cbcmistry)

३. जीव रसायन (Bio-Chemistry)

४. भौतिक रसायन (Physical Chemistry)

५. वैश्लेषिक रसायन (Analytical Chemistry)

६. औद्योगिक रसायन (Industrial Chemistry)

प्रत्येक शाखा को भी कई उपशाखाओ में बाँटा गया है।

इस समय हम केवल अकार्वनिक तथा कार्वनिक रसायन का प्रारंभिक अध्ययन करेगे। अकार्वनिक रसायनों मे कार्बन के यौगिकों को छोड़कर विभिन्न तत्त्वो तथा उनके यौगिको के गुण तथा रचना और खनिज पदार्थों का अध्ययन किया जाता है। कार्वन के वहुत-से यौगिक, जीवो मे अर्थात् प्राणियों तथा वनस्पतियों में पाये जाते है।

मानव-समाज की उन्नति मे रसायन-विज्ञान तथा उसके उपयोग का वहुत वड़ा हाथ है। रसायन-विज्ञान के उपयोग ने मानव-समाज के रहन-सहन तथा जीवन-यात्रा को विल्कुल वदल दिया है। उद्योग तथा कला-कौशल मे रसायन-विज्ञान के नये-नये आविष्कार कितने ही क्रातिकारी परिवर्त्तन ले आये है। धातु-शिल्प मे नये-नये आविष्कार से कितने ही उपयोगी मिश्र धातु (alloy) वन चुके है, जिनकी सख्या पाँच हजार से भी अधिक है। इनमे से लगभग एक सौ ऐसे है जो प्रतिदिन हमारे काम मे आते है। कागज, रोशनाई, काँच, चीनी-मिट्टी, रग, प्लास्टिक, कृत्रिम रेशम, सीमेट, चीनी, सेक्रिन, पेट्रोल, स्पिरिट, दवा आदि हमारे जीवन मे हमेशा काम आनेवाली अधिकाश चीजे रसायन-विज्ञान की ही देन है।

तत्त्व, यौगिक, परमाणु, अणु

रसायन-विज्ञान मे हमें द्रव्य के संबंध में अध्ययन करना पड़ता है। हम पहले ही देख चुके है कि द्रव्य के साथ हमारा परिचय ज्ञानेंद्रियो द्वारा होता है। साथ ही, हम यह भी देख चुके है कि किसी विशेष प्रकार के द्रव्य को पदार्थ कहते है।

दुनिया मे लाखों प्रकार के पदार्थ है, इनमे से थोड़े-से पदार्थ ऐसे हैं जिन्हे हम बुनियादी पदार्थ कह सकते है और बाकी सभी एकाधिक बुनियादी पदार्थों के संयोग से बने है। इस प्रकार रसायन-विज्ञान के दृष्टिकोण से पदार्थ दो प्रकार के होते हैं :—

१. बुनियादी पदार्थ, जिन्हें तत्त्व (element) कहते हैं—ऐसे पदार्थ है जो एक ही प्रकार के गुणवाले एक ही पदार्थ से बनते हैं। तत्त्व को रासायनिक या अन्य किसी उपायो से तोड़कर एकाधिक भिन्न गुणवाले पदार्थों मे विभाजित नही किया जा सकता है। उदाहरण के लिए लोहा एक तत्त्व है। लोहे को कितने ही क्षुद्र कणो मे क्यो न विभाजित किया जाए उसका प्रत्येक कण लोहा ही रहता है और उसमे लोहे के सभी गुण मौजूद रहते है। अब तक कुल मिलाकर १०४ प्रकार के तत्त्वो का आविष्कार हुआ है। अध्ययन की सुविधा के लिए प्रत्येक तत्त्व का एक रासायनिक संकेत (symbol), साधारणत. उनके लैटिन नाम के प्रथम अक्षर, या प्रथम दो अक्षर, या दो मुख्य अक्षरों को लेकर, बनाए गए है।

प्रकृति मे ९२ प्रकार के तत्त्व मिलते हैं। अधिकाश क्षेत्र मे ये दूसरे तत्त्वों के साथ मिले हुए होते हैं। बाकी तत्त्व कृत्रिम उपायों से बनाए गए हैं।

२. एकाधिक तत्त्वों के संयोग से बने हुए पदार्थ या यौगिक पदा compounds)—दो या दो से अधिक तत्त्वों के एक विशेष परिमाण में मिलने से जो पदार्थ बनते हैं और जिनके गुण इन तत्त्वों से भिन्न होते हैं;

उन्हे **यौगिक पदार्थ** कहते है। यौगिक पदार्थों को रासायनिक या अन्य उपायों से तोड़ने से अत मे उस पदार्थ से भिन्न गुणवाले तत्त्वो के छोटे-छोटे कण निकल आते है और उस पदार्थ के अस्तित्व का ही अंत हो जाता है। उदाहरण के लिए, लोहे को हवा मे रख देने से उसमे जग लग जाता है। लोहा-तत्त्व के साथ ऑक्सीजन-तत्त्व के मिलने से जग बनता है। लेकिन जंग के गुण लोहा तथा ऑक्सीजन के गुण से भिन्न होते है। यद्यपि लोहा और ऑक्सीजन एक निश्चित परिमाण मे मिलकर जग बनाते है, फिर भी जंग न लोहा है और न ऑक्सीजन। यह एक नया पदार्थ है। लेकिन, इसके अपघटन से अत मे फिर से लोहा और ऑक्सीजन रह जाता है। इसलिए जग एक यौगिक है।

पदार्थ की बनावट

परमाणु—ईंट-पर-ईंट सजाकर मकान बनता है। उसी प्रकार असख्य छोटे-छोटे कणो से मिलकर पदार्थ बनते है। हजारो साल पहले भारतीय ऋषि कणाद ने कहा था कि दुनिया के प्रत्येक पदार्थ अदर्शनीय तथा अविभाज्य कणो से बने है। ईसा-पूर्व चतुर्थ शताब्दी में कुछ ग्रीक-दार्शनिकों ने भी इस प्रकार के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। उन्होने इन कणो का नाम एटम (atom) अर्थात 'अविभाज्य' दिया था। आज यह सिद्धांत सर्वमान्य हो गया है और उन्ही के अनुसार आज भी इन कणो को एटम (atom) या परमाणु कहते है।

लोहे के एक टुकड़े को अगर तोड़ते चले जाय तो अंत में एक बहुत ही छोटा अदर्शनीय कण रह जायेगा, जिसे फिर तोड़ा नही जा सकता (यह सही है कि पदार्थ को इतने छोटे कणो मे तोड़ने के लिए प्रयोगशाला मे विशेष प्रकार के साधनो की आवश्यकता होती है तथा सुयोग्य वैज्ञानिक ही यह काम कर सकते हैं), यह कण लोहे का परमाणु है और लोहा इस प्रकार के असंख्य परमाणुओं से बनता है। इसलिए परमाणु को **पदार्थ बनाने की ईंट** कहा जा सकता है। परमाणु कितना छोटा है इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि एक साधारण दियासलाई के बक्से मे करोड़ो-करोड़ परमाणु अँटाए जा सकते हैं। कलम की नोक से बने हुए एक बिंदु मे जितने परमाणु अँट सकते हैं उनकी संख्या दुनिया की जनसंख्या से अधिक होगी।

इस प्रकार दुनिया को वनानेवाले सभी वुनियादी पदार्थों के क्षुद्रतम कण को परमाणु कहते हैं। वुनियादी पदार्थ या तत्त्व का रासायनिक सकेत न केवल उस पदार्थ का नाम वताता है, वल्कि साथ ही वह उस पदार्थ की एक निश्चित मात्रा अर्थात एक परमाणु भी वताता है। उदाहरण के लिए, लोहे का रासायनिक संकेत Fe है। इसलिए केवल Fe लिखने से लोहा तथा उसका एक परमाणु समझा जाएगा। लोहा तथा उसके दो परमाणु समझने के लिए Fe_2 लिखना पड़ेगा।

परमाणु की वनावट

यह सही है कि परमाणु वुनियादी पदार्थ का क्षुद्रतम कण है। पर यह वात तव तक सत्य है जव तक वह पदार्थ, वही पदार्थ रहता है; क्योंकि परमाणु को भी तोड़ा जा सकता है। लेकिन परमाणु को तोड़ने पर वह पदार्थ, वही पदार्थ नही रह जाता। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि परमाणु पदार्थ का क्षुद्रतम कण है; पर सभी सृष्टि का नही।

प्रत्येक परमाणु तीन प्रकार के क्षुद्रतम कणों से वनते है। इन्हें प्रोटॉन (Proton), न्यूट्रॉन (Neutron) तथा इलेक्ट्रॉन (Electron) कहते है। एक लोहे के परमाणु को तोड़ा जाए तो फिर वह लोहा न रहकर प्रोटॉनो, न्यूट्रॉनो और इलेक्ट्रॉनो मे विभक्त हो जाएगा। ये प्रोटॉन, न्यूट्रॉन और इलेक्ट्रॉन रासायनिक पदार्थ नही है अर्थात् रासायनिक क्रिया मे इनके गुण, वनावट आदि में परिवर्त्तन नही लाया जा सकता।

प्रोटॉन, न्यूट्रॉन तथा इलेक्ट्रॉन सभी पदार्थो के परमाणुओं में विद्यमान रहते हैं और इनके विभिन्न प्रकार के संयोग से विभिन्न प्रकार के पदार्थों के परमाणु वनते है। आक्सीजन का एक परमाणु ८ प्रोटॉन, ८ न्यूट्रान और ८ इलेक्ट्रॉन के संयोग से वनता है। सोडियम के एक परमाणु मे ११ प्रोटॉन, १२ न्यूट्रॉन तथा ११ इलेक्ट्रॉन; कार्वन के एक परमाणु में ६ प्रोटॉन, ६ न्यूट्रॉन और ६ इलेक्ट्रॉन होते है।

इलेक्ट्रॉन मे एक ऋण-विद्युत्-आवेश होता है और तीनो में यह क्षुद्रतम और सवसे हलका होता है। प्रोटॉन में एक धन-विद्युत्-आवेश होता है और यह इलेक्ट्रॉन से १८४० गुना भारी होता है। न्यूट्रॉन में कोई विद्युत्-आवेश नही होता और यह भी इलेक्ट्रॉन से १८४० गुना भारी होता है।

[विद्युत् आवेश तथा धन और ऋण-विद्युत् के संबंध में हम आगे चल कर अध्ययन करेंगे। यहाँ पर हम इतना जान लें कि धन तथा ऋण-विद्युत् एक दूसरे से विपरीत होने के कारण एक दूसरे को निष्प्रभाव बना देती हैं।]

परमाणु में प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन से बना हुआ एक नाभिक या न्यूक्लियस (nucleus) होता है। इसमे धन-विद्युताविष्ट प्रोटॉन होने के कारण नाभिक धन विद्युताविष्ट होता है। नाभिक मे प्रोटॉन और न्यूट्रॉन एक दूसरे से सटे हुए होते हैं और परमाणु का लगभग सपूर्ण द्रव्यमान इसके नाभिक में सकेन्द्रित रहता है। इलेक्ट्रॉन इस नाभिक के चारों ओर बहुत ही तेजी से चक्कर लगाते रहते हैं। एक सेकेंड मे इलेक्ट्रॉन नाभिक के चारों ओर लाखो-करोड़ों चक्कर लगाता है और इसके चलते इलेक्ट्रॉन परमाणु पर एक आवरण-सा बनाता है। जैसे तेजी से चलते हुए बिजली के पंखे की पखियाँ उसके नीचे एक चक्का-सा बना डालती है उसी प्रकार बहुत ही तेजी से चक्कर लगानेवाले इक्ट्रॉन परमाणु के ऊपर आवरण जैसा बन जाता है।

प्रत्येक परमाणु मे प्रोटॉनो तथा इलेक्ट्रॉनो की संख्याएँ समान होती है। इसलिए सामान्य परमाणु मे कोई अतिरिक्त विद्युतावेश नही होता। क्योंकि समसख्यक प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन के क्रमशः धन और ऋण-विद्युतावेश एक दूसरे को निष्प्रभाव बना देते है और परमाणु मे कोई अतिरिक्त विद्युतावेश रह नही जाता है।

प्रत्येक परमाणु की विशेषता उसके केंद्रक में प्रोटॉन की संख्या है। इस संख्या को परमाणु-क्रमांक (atomic number) कहते है। चूँकि प्रत्येक प्रकार के परमाणु मे प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन की संख्या समान होती है इसलिए परमाणु के परमाणु-क्रमांक से उसमें प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन की संख्या मालूम हो जाती है; लेकिन इससे न्यूट्रॉन की संख्या मालूम नही होती। उदाहरण के लिए, सोडियम का परमाणु-क्रमांक ११ है और इसके परमाणु मे ११ प्रोटॉन और ११ इलेक्ट्रॉन हैं; लेकिन इसमें न्यूट्रॉन की संख्या १२ है। उसी प्रकार क्लोरिन मे, जिसका परमाणु-क्रमांक १७ है, यह संख्या क्रमशः १७,१७ और १८ है। साथ ही आक्सीजन में, जिसका परमाणु-क्रमांक ८ है, यह संख्या क्रमश. ८, ८ और ८ है।

एक ही परमाणु-क्रमांक के प्रत्येक परमाणु में प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन की संख्या हमेशा एक रहती है; लेकिन उनमें न्यूट्रॉन की संख्या में हेर-फेर हो

सकता है। एक ही परमाणु-क्रमांक वाले परमाणुओं में भिन्न-भिन्न संख्या में न्यूट्रॉन होने पर उन परमाणुओं को परस्पर के समस्थानिक (isotope) कहा जाता है।

प्रकृति में पाए जानेवाले तत्त्वों में युरेनियम में सबसे अधिक संख्या में प्रोटॉन होते है। इसमें प्रोटॉन की संख्या ९२ है। इसलिए परमाणु-क्रमांक भी ९२ है।

प्रकृति में ९२ प्रकार के तत्त्व मिलते है। लेकिन इनमें थोड़े ही ऐसे हैं जो साधारणतः मिलते हैं और वे महत्वपूर्ण है। भू-पृष्ठ (earth crust) की बनावट मे वजन के हिसाब से विभिन्न तत्त्वो का परिमाण (फ्रेसमैन के हिसाब के अनुसार) निम्नलिखित है—

ऑक्सीजन	४९.१३	प्रतिशत
सिलिकन	२६.००	,,
अल्युमीनियम	७.४५	,,
लोहा	४.२०	,,
कैलसियम	३.२५	,,
सोडियम	२.४०	,,
पोटैसियम	२.३५	,,
मैगनेसियम	२.३५	,,
हाइड्रोजन	१.००	,,
अन्यान्य	१.८७	,,

मनुष्य तथा अन्य जीवों के शरीर में ऑक्सीजन, कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, गंधक, फॉसफोरस, पोटैसियम, कैलसियम, सोडियम, मैगनेसियम, लोहा, आयोडिन आदि तत्त्व मिलते हैं।

तत्त्व दो प्रकार के होते हैं—धातु तथा अधातु। प्रकृति में तत्त्व ठोस, द्रव तथा गैसीय, तीनो अवस्थाओं में मिलते हैं। कुछ साधारण तत्त्वो के नाम, उनके परमाणु-क्रमांक, रासायनिक सकेत तथा साधारण तापक्रम पर अवस्था की सूची इस प्रकार है—

धातु

परमाणु-क्रमांक	नाम	रासायनिक संकेत	साधारण तापमान पर अवस्था
११	सोडियम (Sodium)	Na	ठोस
१२	मैगनेसियम (Magnesium)	Mg	"
१३	अल्युमीनियम (Aluminium)	Al	"
१९	पोटैसियम (Potassium)	K	"
२४	क्रोमियम (Chromium)	Cr	"
२५	मैंगनीज (Maganese)	Mn	"
२६	लोहा (Iron)	Fe	"
२७	कोवाल्ट (Cobalt)	Co	"
२८	निकेल (Nickel)	Ni	"
२९	ताँवा (Copper)	Cu	"
३०	जस्ता (Zink)	Zn	"
३३	आरसेनिक (Arsenic)	As	"
४७	चाँदी (Silver)	Ag	"
५०	टिन (Tin)	Sn	"
५१	एंटीमॉनी (Antimony)	Sb	"
७८	प्लैटिनम (Platinum)	Pt	"
७९	सोना (Gold)	Au	"
८०	पारा (Mercury)	Hg	द्रव
८२	सीसा (Lead)	Pb	ठोस

अधातु

परमाणु-क्रमांक	नाम	रासायनिक संकेत	साधारण तापमान पर अवस्था
१	हाइड्रोजन (Hydrogen)	H	गैसीय
५	वोरन (Boron)	B	ठोस
६	कार्वन (Carbon)	C	"
७	नाइट्रोजन (Nitrogen)	N	गैसीय
८	आक्सीजन (Oxygen)	O	"
९	फ्लोरिन (Flourine)	F	"

१४	सिलिकन (Silicon)	Si	ठोस
१५	फास्फोरस (Phosphorus)	P	"
१६	गधक (Sulphur)	S	"
१७	क्लोरीन (Chlorine)	Cl	गैसीय
३५	ब्रोमीन (Bromine)	Br	द्रव
५३	आयोडीन (Iodine)	I	ठोस

अणु (Molecule)

पानी के लाखो-करोड़ ($\frac{1}{3} \times 6 \times 10^{23}$ कण) क्षुद्र कण मिलकर एक घन से० मी० पानी बनाते है। एक घन से० मी० पानी या किसी भी मात्रा के पानी के सभी गुण पानी के क्षुद्रतम कण मे वर्त्तमान रहते हैं। लेकिन पानी के ये क्षुद्रतम कण दो प्रकार के भिन्न-भिन्न गुणवाले पदार्थों के परमाणुओं के एक निश्चित परिमाण में मिलने से बनते है। हाइड्रोजन के दो परमाणु तथा आक्सीजन के एक परमाणु मिलकर पानी (H_2O) बनाते है। हाइड्रोजन H और आक्सीजन O दोनो के गुण पानी से भिन्न-भिन्न हैं। दोनो साधारण तापमान पर गैसीय अवस्था में मिलते है, जबकि पानी द्रव-अवस्था में। इस प्रकार पानी H_2O एक यौगिक पदार्थ है। पानी के क्षुद्रतम कण को, जिसमें पानी के गुण मौजूद रहते है (अर्थात जो पानी ही बना रहता है), पानी का अणु (molecule) कहते हैं। इस प्रकार पानी का स्वतत्र अस्तित्व उसके अणु तक बना रहता है।

अणु पदार्थ का क्षुद्रतम कण है जो मुक्तावस्था में रह सकता है और पदार्थ के संपूर्ण रासायनिक गुणो को बनाये रखता है। तत्त्व के अणु में एक ही प्रकार के परमाणु होते है लेकिन यौगिक पदार्थो के अणु मे एक से अधिक प्रकार के परमाणु रहते है। लोहे या ताँबे के एक अणु मे बहुत-से, लेकिन एक ही प्रकार के, परमाणु एक साथ मिले हुए होते हैं। उसी प्रकार आक्सीजन तथा हाइड्रोजन के एक अणु मे दो-दो एक ही प्रकार के परमाणु होते हैं। नीयन (neon) के एक अणु मे उसका एक ही परमाणु होता है। ये सब तत्त्व हैं।

लेकिन पानी के एक अणु मे दो हाइड्रोजन के और एक आक्सीजन के परमाणु होते हैं। कार्बन-डाइ-आक्साइड के अणु मे एक कार्बन तथा दो आक्सीजन के

परमाणु और नमक (Sodium chloride) में सोडियम का एक परमाणु तथा क्लोरीन का एक परमाणु होता है। अतः ये सब यौगिक पदार्थ हैं।

एकाधिक तत्त्वों के निश्चित परिमाण मे मिलने से ही कोई यौगिक बनता है और उस समय ऊष्मा या अन्य किसी प्रकार की ऊर्जा या तो ग्रहण की जाती है या उत्पन्न होती है। अर्थात् यौगिक बनते समय या तो ऊष्मा का अवशोषण या उत्सर्जन होता है।

परमाणु उतने ही प्रकार के है जितने प्रकार के तत्त्व हैं। अर्थात् १०४ प्रकार के है। दुनिया के सभी पदार्थ इन १०४ प्रकार के परमाणुओ मे से किसी एक से या एक से अधिक के संयोग से बने हुए है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि तत्त्व १०४ प्रकार, परमाणु १०४ प्रकार तथा अणु और यौगिक पदार्थ असख्य प्रकार के होते है।

रासायनिक सूत्र (Chemical Formula)

जिन पदार्थों के अणु मे एक से अधिक परमाणु होते है उन्हे बताने के लिए उन परमाणुओ का रासायनिक संकेत एक के बाद एक लिखा जाता है। अगर उस अणु मे किसी एक ही प्रकार के परमाणु एक से अधिक हो तो उस परमाणु के रासायनिक सकेत के बाद छोटे अक्षर में उसकी संख्या लिख दी जाती है। इस प्रकार रासायनिक सूत्र से पदार्थ के नाम के साथ-साथ उसके एक अणु मे किस प्रकार के कितने-कितने परमाणु हैं, मालूम हो जाता है। उदाहरण के लिए, केवल O से आक्सीजन तत्त्व के एक अणु, केवल H से हाइड्रोजन तत्त्व और उसके एक अणु, Ne से नीयन तथा उसके एक अणु का बोध होता है। उसी प्रकार H_2O से पानी और उसके एक अणु, NaCl, से साधारण नमक और उसके एक अणु, CO_2 से कार्बन-डाइ-आक्साइड और उसके एक अणु तथा H_2SO_4 से गंधकाम्ल तथा उसके एक अणु का बोध होता है।

मिश्रण

अगर दो या दो से अधिक पदार्थों को एक साथ मिलाया जाए तो या तो भिन्न प्रकार के गुणवाला नया पदार्थ बनेगा, जिसे रासायनिक यौगिक पदार्थ कहा जाएगा या मिलनेवाले पदार्थ साथ-साथ बने रहेगे और अपने-अपने गुणो को बनाए रखेगे, इसे यान्त्रिक मिश्रण (physical or mechanical mixture) कहा जाएगा।

यान्त्रिक मिश्रण एकाधिक पदार्थों को केवल मिला देने से ही बन जाता है। ये एकाधिक पदार्थ तत्त्व हो सकते हैं, यौगिक हो सकते है या एक तत्त्व और दूसरा यौगिक हो सकता है। इसमे सभी घटक पदार्थों के अस्तित्व बने रहते हैं और उनके गुणो की समष्टि ही बनी हुई वस्तु के गुण बन जाती है। इसलिए मिश्रण से आसानी से घटक पदार्थों को अलग किया जा सकता है।

मिश्रण मे घटक पदार्थों का कोई निश्चित परिमाण नही होता है। लौह-चूर्ण के साथ गंधक-चूर्ण किसी भी परिमाण मे मिलाया जा सकता है। यह एक यांत्रिक मिश्रण है। दोनो को मिलाते समय न ऊष्मा ही उत्पन्न होती है और न ऊष्मा का शोषण ही होता है। मिला देने के बाद लोहा और गधक अपने-अपने गुणो को बनाये रखते है और उस मिश्रण मे कोई भिन्न गुण नही उत्पन्न होता है। अगर इस मिश्रण को एक कागज पर बिछा दिया जाए और उसपर एक चुम्बक को धीरे-धीरे आगे-पीछे किया जाए तो लौह-चूर्ण अलग होकर चुम्बक में चिपक जाएगा और कागज पर केवल गधक बच जाएगा।

साथ ही, अगर इस मिश्रण को परखनली मे लेकर उसमे कार्बन-डाइ-सल्फाइड डालकर हिलाया जाए तो गधक कार्बन-डाइ-सल्फाइड मे घुल जाएगा और लोहा बचा रहेगा।

उसी प्रकार अगर इस मिश्रण को गंधकाम्ल मे डाला जाए तो अम्ल में लोहा घुल जाएगा और हाइड्रोजन गैस निकलेगी, लेकिन गधक ज्यो-का-त्यो बना रहेगा।

इन सभी प्रयोगो मे मिश्रण से अलग की गई वस्तुओं के गुणो मे कोई परिवर्तन नही होगा।

लेकिन अगर वजन से पाँच भाग लौह-चूर्ण और तीन भाग गंधक-चूर्ण को एक परखनली मे डालकर खूब गर्म किया जाए तो दोनों मिलकर एक काले रंग का पिंड बन जाएगा। यह एक नया पदार्थ होगा। यह एक यौगिक पदार्थ—आयरन सल्फाइड है। इसपर न तो चुम्बक का कोई असर होगा और न इसमे का गंधक कार्बन-डाइ-सल्फाइड मे घुलेगा और न लोहा ही गंधकाम्ल में गलकर अलग हो जाएगा। आयरन सल्फाइड पर गंधकाम्ल की क्रिया से एक बदबूदार गैस निकलेगी।

लौह-चूर्ण और गंधक-चूर्ण मिलाने से ऊष्मा न उत्सर्जित होती है और न शोषित होती है, लेकिन आयरन-सल्फाइड बनते समय ऊष्मा उत्सर्जित होती है।

मिश्रण विषमांग (heterogeneous) तथा कुछ क्षेत्र में समांग होते है। लौह-चूर्ण और गधक-चूर्ण कितने ही बारीक क्यो न हो, उन्हें कितने ही अच्छे तरीके से क्यो न मिलाया गया हो ; मिश्रण को सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखने पर दोनो घटक अलग-अलग दिखाई पड़ेगे और साथ ही इस मिश्रण के विभिन्न भागो मे लौह-चूर्ण तथा गधक-चूर्ण का सापेक्ष परिमाण एक-सा न होगा। ऐसे मिश्रण को, जिसमे घटक पदार्थ एक दूसरे से घुलमिल नही जाते है अर्थात् अलग-अलग देखे जा सकते है और जिसके समस्त भाग मे घटकों का सापेक्ष परिमाण एक-सा नही होता है, विषमांग कहते है।

लेकिन कुछ मिश्रण समाग भी होते हैं। अर्थात् इनमे घटक पदार्थ घुल-मिल जाते है और समस्त भाग में घटको के परिमाण समान होते है। पानी और चीनी का मिश्रण इस प्रकार का मिश्रण है। उसी प्रकार पानी और नमक का मिश्रण भी समाग मिश्रण है। एक ग्लास पानी और चीनी का मिश्रण या पानी और नमक के मिश्रण के सभी अश बराबर मीठे या नमकीन होते है। अर्थात् पूरे मिश्रण मे पानी और चीनी या पानी और नमक का आपेक्षिक परिमाण समान होता है।

विलयन (Solution)

द्रव मे किसी पदार्थ को घुलाकर जो मिश्रण बनता हे उसे विलयन कहते है। पानी मे चीनी या नमक घोल देने से चीनी या नमक घुलकर

अदृश्य हो जाते हैं। पानी के साथ चीनी या नमक का यह घोल मिश्रण है। क्योंकि पानी के साथ चीनी या नमक घुल जाने के वाद भी पानी, चीनी या नमक के गुणो मे कोई अंतर नही आया। मिश्रण का गुण—दोनो के, अर्थात् पानी और चीनी या पानी और नमक के, गुणो की समष्टि, मीठा पानी या नमकीन पानी, हो गया। ऐसे मिश्रण मे घुलने वाले पदार्थों को **विलेय** (solute) और घुलाने वाले पदार्थों को **विलायक** (solvent) कहते है। चीनी या नमक विलेय तथा पानी विलायक है। विलेय और विलायक का घोल विलयन है।

प्रत्येक विलेय एक ही प्रकार के विलायक मे नही घुलता है। पानी में नमक, चीनी आदि घुलते है ; लेकिन इसमे रवड़, लोहा आदि नही घुलते। पानी मे अल्कोहल घुल जाता है पर तेल नहीं। ईथर में रवड़, तेल, चर्वी, मोम, वेसलीन आदि घुल जाते है। ये सव चीजे वेंजीन (benzene) मे भी घुलती है। वेंजीन मे रवड़ गलाकर रवड़ का विलयन वनाया जाता है, जिससे साइकिल के ट्यूव, फुटवॉल के व्लाडर आदि के छेद मरम्मत किये जाते है। अलकोहल (alcohol) मे आयडीन, कपूर, लाख अदि गलते है। एक औस अलकोहल में १० ग्रेन आयडीन और १० ग्रेन पोटैशियम आयोडाइट मिलाकर टिंचर आयडीन वनता है। शरीर के किसी भाग में कट जाने पर टिंचर आयडीन लगाया जाता है। अलकोहल मे लाख गलाकर लकड़ी पर लगाने वाला पालिश वनता है।

सतृप्त विलयन (Saturated solution)

निर्दिष्ट परिमाण के विलायक मे एक निर्दिष्ट परिमाण का विलेय ही घुल सकता है। अगर विलायक मे विलेय का परिमाण अधिक हो जाय तो परिमाण से अधिक विलेय नही घुलकर पड़ा रह जाता है।

जिस विलयन के विलायक मे निर्दिष्ट परिमाण विलेय घुल चुका है और जिसमें और अधिक विलेय नही घुल सकता उसे संतृप्त विलयन कहते है।

विलायक का तापमान वढ़ाकर उसमे अधिकतर परिमाण मे विलायक घुलाया जा सकता है। लेकिन ऐसे विलयन के तापमान घटाने से निर्दिष्ट परिमाण से अधिक विलेय दाने के रूप मे फिर से दिखाई देने लगते है।

प्रयोग—एक ग्लास पानी मे जितना नमक घुल सके, मिलाइए। इसमें अब और नमक डालने से नही घुलेगा। यह साधारण तापमान पर नमक-पानी का सतृप्त विलयन है। इसमे और थोड़ा नमक डालकर गरम कीजिए। देखियेगा कि अब यह नमक भी पानी में घुल गया है। यह अधिक तापमान पर संतृप्त विलयन है। विलयन को ठंढा होने के लिए छोड़ दीजिए। ठंढा होने पर देखियेगा कि विलयन के नीचे नमक के दाने जम गए हैं।

विभिन्न प्रकार के पदार्थो से विभिन्न मिश्रण बन सकते हैं—

१. तत्त्व से तत्त्व का मिश्रण—जैसे लोहा Fe तथा गंधक S का मिश्रण।
२. यौगिक और यौगिक का मिश्रण—जैसे पानी H_2O तथा नमक NaCl का मिश्रण।
३. तत्त्व और यौगिक का मिश्रण—जैसे लोहा Fe और नमक NaCl का मिश्रण।

लेकिन मिश्रण का कोई रासायनिक सूत्र नहीं होता है।

विभिन्न अवस्थाओं के पदार्थो से मिश्रण बन सकते हैं—

१. ठोस और ठोस का मिश्रण—जैसे चीनी और बालू का मिश्रण।
२. द्रव और द्रव का मिश्रण—जैसे दूध और पानी का मिश्रण।
३. गैस और गैस का मिश्रण—जैसे आक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन-डाइ-ऑक्साइड आदि का मिश्रण (वायु)।
४ द्रव और ठोस का मिश्रण—पानी और नमक का मिश्रण।
५. द्रव और गैस का मिश्रण—जैसे पानी और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड का मिश्रण (सोडावाटर)।

तत्त्व, यौगिक और मिश्रण में अंतर

तत्त्व	यौगिक	मिश्रण
एक ही बुनियादी पदार्थ मे बनता है।	एकाधिक बुनियादी पदार्थो से बनता है।	एकाधिक पदार्थो को मिलाने से बनता है।
अणु मे केवल एक ही प्रकार के परमाणु होते है।	अणु में एक से अधिक प्रकार के परमाणु होते है।	एक से अधिक प्रकार के अणु अलग-अलग रहते हैं।

तत्त्व	यौगिक	मिश्रण
अणुओ को रासायनिक या अन्य उपायो से अलग-अलग करके एकाधिक भिन्न-भिन्न गुण वाले अंशो मे विभाजित नही किया जा सकता है ।	अणुओ को विघटित करके भिन्न-भिन्न गुणवाले एकाधिक अंशों मे अर्थात् परमाणुओ में विभाजित किया जा सकता है ।	
एकाधिक पदार्थो को मिलाकर नही बनाया जा सकता है ।	एकाधिक बुनियादी पदार्थो को मिलाकर ही बनाया जा सकता है ।	एकाधिक पदार्थो को मिलाकर बनाया जा सकता है ।
	समस्त घटक पदार्थ मिलकर एक हो जाते है और घटको के स्वतंत्र अस्तित्व का लोप हो जाता है ।	समस्त घटक मिलकर एक नही होते वल्कि सभी घटक साथ-साथ बने रहते हैं ।
	गुण, घटको के गुणो से भिन्न होते है ।	गुण, घटको के गुणो की समष्टि होता है ।
	घटको को आसानी से अलग नही किया जा सकता है ।	घटकों को अपेक्षाकृत सरलता से अलग किया जा सकता है ।
	घटको का सापेक्ष परिमाण निर्दिष्ट होता है ।	घटको का कोई निर्दिष्ट सापेक्ष परिमाण नही होता है ।
	वनते समय या तो ऊष्मा का उत्सर्जन या अवशोषण होता है ।	वनते समय ऊष्मा मे कोई परिवर्त्तन नही होता है ।
	सर्वदा समाग होता है ।	समाग तथा विषमांग, दोनो हो सकते हैं ।

अध्याय ४

मिश्रित पदार्थों का पृथक्करण

साधारण प्रयोगशाला-विधि—यान्त्रिक मिश्रण मे मिश्रित पदार्थों को कई विधियो से अलग किया जा सकता है। मिश्रित पदार्थों के गुण, आकार, विलयशीलता आदि पर पृथक्करण की विधि निर्भर करती है। कुछ साधारण विधियाँ इस प्रकार है—

यांत्रिक विधि—ठोस पदार्थों के मिश्रण से, उसके घटको को यदि उनके टुकड़े वड़े-वड़े हो तो हाथ से चुनकर अलग किया जा सकता है। साधारणतः घर मे चावल से पत्थर आदि के टुकड़े इसी विधि से अलग किये जाते हैं।

वडे और छोटे आकार के ठोस पदार्थों के मिश्रण से मिश्रित पदार्थों को चलनी से चालकर पृथक् किया जा सकता है। आटा, मैदा आदि में मिला हुआ भूसी-चोकर इसी विधि से अलग किया जाता है।

मिश्रित ठोस पदार्थ मे यदि एक दूसरे से हल्का हो तो हवा मे उड़ाकर उन्हे अलग किया जा सकता है। अनाज से भूसा अलग करने के लिए ऐसा किया जाता है। किसी ठोस पदार्थ के साथ अगर लौह-चूर्ण मिल जाय तो चुम्बक की सहायता से लोहे को अलग किया जा सकता है।

प्रयोगशाला-विधि

इन यांत्रिक विधियों के अलावा कई और साधारण प्रक्रियाओ द्वारा मिश्रित पदार्थों को अलग किया जा सकता है। इनमें तलछटीकरण (Sedimentation), नियारना (Decantation), छानना (Filtration), आसवन (Distillation) ऊर्ध्वपातन (Sublimation), मणिभीकरण (Crystallisation) आदि प्रधान है। इनमे से कई प्रक्रियाओ का व्यवहार हम आये दिन घरेलू कामो मे करते रहते है।

तलछटीकरण (Sedimentation) और नियारना (Decantation)

द्रव मे मिले हुए अविलेय ठोस पदार्थ को, जो उस द्रव से भारी हो, पात्र के पेंदे मे वैठ जाने देने की विधि को तलछटीकरण कहते है।

तलछटीकरण द्वारा द्रव से ठोस पदार्थ अलग होकर वैठ जाने के वाद द्रव को पसा कर अलग करने की क्रिया को **निथारना** कहते हैं।

प्रयोग—वालू पानी से भारी होता है तथा पानी मे नही घुलता है। किसी पात्र मे पानी और बालू को मिला दीजिए। देखिएगा कि धीरे-धीरे वालू पात्र के पेंदे पर नीचे जमा हो रहा है। समस्त वालू जमा हो जाने पर धीरे-धीरे सावधानी से पानी को दूसरे पात्र मे ढालिए। इस प्रकार वालू और पानी अलग किए जा सकते है। पात्र के नीचे, पेंदे पर वालू के जमा होने की क्रिया तलछटीकरण और पानी को ढालकर अलग करने की क्रिया निथारना है।

तलछटीकरण और निथारना प्रयोगशाला की सवसे सरल क्रिया है। लेकिन मिश्रित ठोस और द्रव पदार्थों को अलग करने का बहुत अच्छा उपाय नही है। क्योंकि इस प्रक्रिया से अलग करने के वाद भी द्रव पदार्थ मे ठोस के वहुत-से छोटे-छोटे कण रह जा सकते है। मिला हुआ ठोस पदार्थ अगर द्रव से हल्का हो तो ये उपाय काम मे नही आ सकते है। साथ ही, तलछटीकरण में काफी समय की आवश्यकता होती है। इसलिए अगर जल्दी से पृथक् करने की आवश्यकता हो तो इन प्रक्रियाओं से काम नही चलता। न घुलनेवाले ठोस पदार्थों को, चाहे वे द्रव से हल्के हो या भारी, द्रव से अलग करने की इससे अच्छी विधि छानना है।

निस्यंदन या छानना (Filtration)

द्रव को किसी वहुत ही सूक्ष्म छिद्रवाली वस्तु के अंदर से पार कराने की प्रक्रिया को **निस्यंदन या छानना** कहते हैं।

आये दिन हम घरो में दूध, पानी आदि कपड़े से छानकर साफ करते हैं। पकड़े के अंदर से पार करते समय इन द्रवो मे पड़े हुए अघुलनशील ठोस पदार्थ कपड़े में अँटककर रह जाते हैं। लेकिन कपड़े से छानने पर भी द्रव में पडे हुए इन ठोस पदार्थों के कुछ सूक्ष्मतर कण, जो कपड़े के छेद से भी छोटे हैं, द्रव के साथ मिले हुए रह जाते हैं। इसलिए प्रयोगशाला में छानने के लिए वहुत ही सूक्ष्म छेदवाले एक प्रकार के कागज का इस्तेमाल होता है। छानने के लिए व्यवहृत इस कागज को निस्यदन पत्र या फिल्टर पत्र (Filter paper) कहते हैं। यह कागज, लिखने की स्याही

सुखाने के लिए जो सोख्ता कागज या ब्लॉटिंग पेपर (Blotting paper) इस्तेमाल किया जाता है, उससे मिलता-जुलता होता है। सोख्ता कागज से भी छानने का काम लिया जा सकता है। फिल्टर पत्र खाली आँखो से देखने से छिद्रयुक्त मालूम नहीं पड़ता, लेकिन वास्तव मे इसमे असंख्य छोटे-छोटे छिद्र होते है जिनमे से होकर द्रव पदार्थ तो निकल जाता है पर ठोस पदार्थ निकल नही पाता।

प्रयोगशाला मे आमतौर पर छानने के लिए फिल्टर पत्र को एक कीप (funnel) मे वैठाया जाता है और कीप को किसी पात्र के मुँह पर या उपस्तम्भ (stand) में वैठाकर काँच के एक पतले छड़ की सहायता से मिश्रित द्रव को धीरे-धीरे कीप मे डाला जाता है। कीप के नीचे रखे हुए पात्र में द्रव जमा हो जाता है और ठोस पदार्थ कीप में कागज पर रह जाता है।

कीप मे वैठाने के लिए फिल्टर पत्र को शंकु के आकार मे मोड़ना पड़ता है। इसके लिए गोल फिल्टर पत्र को पहले वीच से समान करके मोड़ा जाता है। पहले मोड़ के वाद फिल्टर पत्र देखने में चित्र संख्या-२१ के ख जैसा वन जाता है। अब इस मोड़े हुए फिल्टर पत्र को वीच से मोड़ कर चित्र मे ग की तरह चार तह कर दिया जाता है। अब इसके नुकीले सिरे को नीचे करके कीप मे वैठा दिया जाता है।
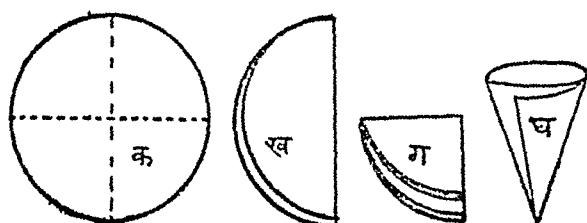
[चित्र २१—फिल्टर पत्र मोड़ना]
क-फिल्टर पत्र, ख-पहला मोड, ग-दूसरा मोड़

प्रयोग—एक कीप को एक फलास्क के मुँह पर रखिए। कीप के अंदर एक फिल्टर पत्र को मोड़ कर वैठा दीजिए। एक ग्लास में थोड़ा पानी लेकर उसमें थोड़ा-सा वालू कीचड़ आदि मिला दीजिए। अव इस गदे पानी को एक पतले शीशे के छड़ के सहारे धीरे-धीरे कीप में डालिए। देखिएगा कि पानी साफ

होकर नीचे के फलास्क मे चू कर गिर रहा है और कीचड़, वालू आदि फिल्टर पत्र पर जमा हो रहा है।

अधिक द्रव को छानना हो तो आवश्यकतानुसार फिल्टर पत्र को वदल देना पड़ता है।

थोड़ा नमक और बालू लेकर मिला दीजिए। इस मिश्रण को एक पात्र मे रखे पानी मे घोलिए। अव इस घोल को फिल्टर पत्र की सहायता से छान डालिए। देखिएगा कि वालू फिल्टर पत्र पर रह गया है और नमक मिला पानी नीचे के पात्र मे जमा हो गया है। अब इस पानी को आग पर गरम करके सुखा डालिए। देखिएगा कि पात्र के नीचे नमक वच गया है।

प्राय: चीनी से भरे हुए काँच का पात्र हाथ से गिरकर टूट जाता है और चीनी में काँच का चूर्ण मिल जाता है। ऐसी हालत मे इस विधि से चीनी और काँच को अलग किया जा सकता है और चीनी को फिर से व्यवहार-योग्य वनाया जा सकता है।

अल्प परिमाण में द्रव पदार्थ छानने के लिए फिल्टर पत्र से काम चल जाता है। लेकिन अधिक परिमाण मे द्रव पदार्थ, विशेषकर पीने का पानी, छानने के लिए इससे काम नही चलता। वैसे स्थानो मे निस्यदक या फिल्टर से काम लिया जाता है। फिल्टर छोटे-बड़े तथा विभिन्न प्रकार के होते है। साधारण फिल्टर वहुत आसानी से घर मे वनाया जा सकता है। जिन स्थानों में साफ पानी नही मिलता है वहाँ इस प्रकार के फिल्टर से पानी को साफ करके काम में लाया जा सकता है।

साधारण घरेलू फिल्टर

साधारण घरेलू फिल्टर वनाने के लिए लकड़ी या बाँस का एक ऐसा तीन-पाया फ्रेम बनाना पडता है जिसमें चार घड़े—एक के थोडा ऊपर एक के हिसाव से—अलग-अलग वैठाये जा सकें। चार मिट्टी या पीतल के घड़े लेकर तीन की पेंदियों मे एक-एक छोटा-सा छेद करना पड़ता है और इन छेदों में साफ कपड़े से वनी हुई वत्ती इस प्रकार डाल देनी पड़ती है कि वत्ती नीचे के घड़े के मुँह के अंदर तक चली जाए और पानी केवल उसमे से चू-चू कर नीचे के घडे मे आ सके। बिना छेदवाले घड़े को फ्रेम के सबसे नीचे वैठाना पड़ता

है। एक घड़े मे साफ वालू भरकर उसे इसके ऊपर और एक घड़े में साफ लकडी का कोयला भरकर उसके ऊपर बैठाना पड़ता है। सबसे ऊपर वाला घड़ा खाली रहता है और उसमें साफ करने वाला पानी भरना पड़ता है। यहाँ से पानी चू कर कोयले वाले घड़े में और फिर वहाँ से बालू वाले घड़े में होकर नीचे के घड़े मे जमा होता है। कोयला और वालू के अंदर से आते समय पानी छनकर साफ हो जाता है और नीचे के घड़े में शुद्ध जल जमा हो जाता है।

[चित्र २२—साधारण घरेलू फिल्टर, क—अशुद्ध पानी, ख—लकड़ी का कोयला, ग—वालू, घ—शुद्ध पानी]

छानने की क्रिया से पानी या अन्य द्रव में मिली हुई अघुलनशील ठोस वस्तु अलग हो जाती है, लेकिन इससे घुलनशील वस्तुएँ तथा बैक्टीरिया आदि अलग नही होते है। बैक्टीरिया आदि से फैलाये जानेवाले रोगों से बचने के लिए या तो पानी को उवालना पड़ता है या उसमें आवश्यक दवा मिलानी पड़ती है। साथ ही, छानने से द्रव में मिले हुए अन्य द्रव पदार्थों को भी अलग नही किया जा सकता।

आसवन (Distillation)

किसी भी विलयन से विलेय तथा विलायक पदार्थों को शुद्ध रूप से पाने के लिए आसवन सर्वश्रेष्ठ विधि है। विलयन के विलायक द्रव पदार्थ को गरम करके, वाष्प वनाकर, दूसरे पात्र मे ले जाकर, फिर से ठंढा करके द्रव वनाने की क्रिया को आसवन कहते है।

द्रव पदार्थ को गैसीय अवस्था मे परिणत करने की क्रिया को वाष्पन (evaporation) तथा गैसीय अवस्था से द्रव अवस्था मे लाने की प्रक्रिया को द्रवण (liquefaction) या संघनन (condensation) कहा जाता है।

जब किसी विलयन को गरम किया जाता है, तब विलायक द्रव पदार्थ वाष्प बनकर उड़ने लगता है और अंत में विलेय ठोस पदार्थ नीचे पड़ा रह जाता है।

प्रयोग—एक पात्र में थोड़ा-सा पानी लेकर उसमें नमक मिलाइए। नमक अच्छी तरह मिल जाने के बाद पात्र को आग पर रखकर पानी को गरम कीजिए। थोड़ी ही देर मे पानी भाप बनकर उड़ जाएगा और पात्र के नीचे शुद्ध नमक पड़ा रह जाएगा।

अगर उस द्रव को फिर से पाना है तो हमें वाष्प को उड़ने नही देना चाहिए। बल्कि उसे एक दूसरे पात्र में जमा करना पड़ेगा और ठंढा करके फिर से द्रव बनाना पड़ेगा। ऐसा करने पर पहले पात्र में शुद्ध विलेय और दूसरे में शुद्ध विलायक मिल जायगा।

अतः आसवन की क्रिया मे पहले विलयन के विलायक का वाष्पन और फिर उस वाष्प का द्रवण या संघनन करना पड़ता है। इसलिए आसवन के लिए विशेष प्रकार के बंद पात्र की आवश्यकता होती है ताकि वाष्प उडकर बाहर न जा सके और साथ-साथ उसका द्रवण हो सके।

लैबिग्स संघनक (Leibig's condenser)

प्रयोगशाला में साधारणतः आसवन के लिए व्यवहृत उपकरण को लैबिग्स संघनक (Leibig's condenser) कहते हैं। इसमें शीशे की एक भीतरी नली और उसके ऊपर एक शीशे की मोटी बाहरी आवरण-नली होती है। संघनक की बाहरी आवरण-नली के दोनों सिरों के पास दो टोटियाँ होती है।

आसवन के समय एक फ्लास्क में विलयन रखा जाता है और उसे एक स्टैंड में लगाकर गरम करने के लिए बैठा दिया जाता है। शीशे की मुड़ी हुई नली की सहायता से सघनक के ऊपरी सिरे को फलास्क से जोड़ दिया जाता है। संघनक के दूसरे सिरे को एक अन्य फ्लास्क मे रख दिया जाता है। निचले सिरे की पासवाली टोटी को रबड़ की नली की सहायता से पानी के नल के साथ जोड़ दिया जाता है और नल को खोलकर पानी चालू कर दिया जाता है। इस प्रकार पानी निचली टोंटी से संघनक

की आवरण-नली मे आ जाता है और ऊपर की टोंटी से बाहर निकल जाता है तथा संघनक की भीतरी नली के चारो ओर पानी का प्रवाह चालू हो जाता है।

अब विलयन से भरे फ्लास्क को गरम किया जाता है। गरम होकर विलायक द्रव पदार्थ वाष्प बनकर संघनक की भीतरी नली में आने लगता है। यह नली पानी के प्रवाह से ठंढी रहने के कारण वाष्प इसमे ठंढा होकर फिर से द्रव बन जाता है और नीचे के सिरे से होकर दूसरे फ्लास्क में जमा होता जाता है। अंत में समस्त द्रव पदार्थ दूसरे फ्लास्क मे जमा हो जाता है और विलेय ठोस पदार्थ पहले फ्लास्क मे जमा रह जाता है।
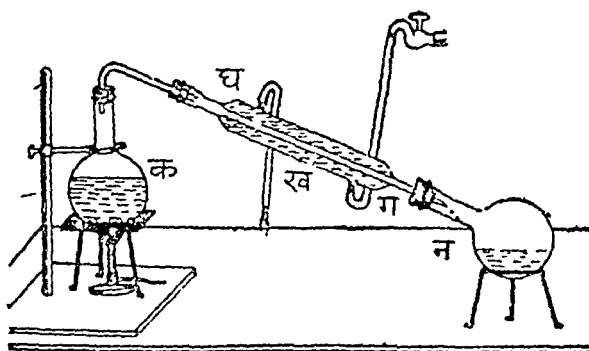
[चित्र २३—लैबिग्स संघनक की सहायता से आसवन : क—विलयन से भरा फ्लास्क, ख—लैबिग्स संघनक, ग—पानी के नल से जुड़ी हुई टोंटी, घ—पानी निकलने की टोंटी, न—आसवित द्रव जमा होने का फ्लास्क।]

काँच या धातु-निर्मित वकयंत्र—भभके—(Retort) की सहायता से भी आसवन किया जा सकता है। प्रयोगशाला मे साधारणत. काँच का वकयंत्र इस्तेमाल किया जाता है।

बड़े पैमाने पर आसवन के लिए बड़े आकार का धातु-निर्मित वकयंत्र काम मे लाया जाता है। आसवित पानी संपूर्ण रूप से शुद्ध होता है। इसलिए दवा आदि बनाने के लिए इसका प्रयोग होता है।

सभी द्रव पदार्थ एक ही तापमान पर गैसीय नही वनते हैं। इसलिए जव ऐसे कई द्रव पदार्थ मिले हुए होते हैं जो भिन्न-भिन्न तापमान पर गैसीय
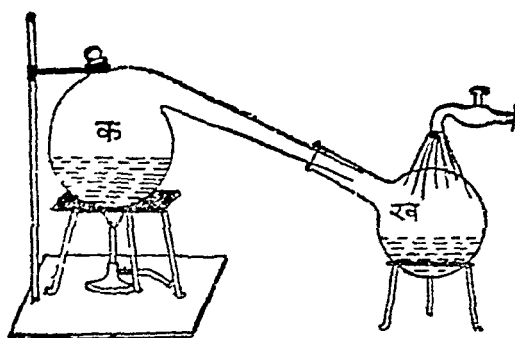
[चित्र २४—वकयंत्र की सहायता से आसवन]

अवस्था प्राप्त करते है तव वैसे मिश्रण के घटको को आंशिक आसवन (Fractional distillation) द्वारा अलग किया जा सकता है। इसके लिए ऐसे उपकरण की आवश्यकता पड़ती है जिसमे तापमान को नियंत्रित किया जा सकता है।

पानी का क्वथनांक १०० ^{0}C और अलकोहल का ७८ ^{0}C है इसलिए इन दोनो के मिश्रण को ७८ ^{0}C तक गरम करने से अलकोहल वाष्प वन कर पानी से अलग हो जाता है और संघनक में ठंढा हो-होकर द्रव के रूप में नीचे के फ्लास्क में जमा हो जाता है। इस प्रकार एकाधिक द्रवों के मिश्रण में से किसी एक को आसवन की सहायता से अलग करने की क्रिया को आंशिक आसवन कहते है।

उर्ध्वपातन (Sublimation)

साधारणत. ठोस पदार्थो को गरम करने से वे पहले द्रव और फिर गैसीय अवस्था प्राप्त करते है। लेकिन कुछ ठोस पदार्थ ऐसे हैं जिन्हें गरम करने पर वे द्रव न वनकर सीधे गैस वन जाते हैं।

कपूर, नौसादर, नैपथलिन, आयडीन आदि इसी प्रकार के पदार्थ है। यही कारण है कि हवा में रखा हुआ कपूर धीरे-धीरे गायव हो जाता है या कपड़ो मे रखी हुई नैंपथलिन की गोलियाँ धीरे-धीरे छोटी होती जाती हैं। ये साधारण तापमान पर ही धीरे-धीरे ठोस से सीधे वाष्प वनकर उड़ जाते हैं।

ऐसा पदार्थ यदि वालू या ऐसे किसी अन्य पदार्थ से, जो ताप से द्रवित हुए विना गैस नही वनता है, मिल जाए तो उसे निम्नलिखित प्रक्रिया से अलग किया जा सकता है।

मिश्रण को एक पात्र मे रखकर दूसरे पात्र से उसे ऐसे ढक दिया जाता है कि उसमे से गैस न निकल सके। पात्र को आग पर रखकर मिश्रण को धीरे-धीरे गरम किया जाता है और ढक्कन को ठंढा रखने के लिए उसपर मोटा कपड़ा गीला करके लपेट दिया जाता है। नीचे के पात्र से गैस वनकर उड़नेवाले पदार्थ ठंढे ढक्कन के संस्पर्श मे आकर ठढे होकर उसमे जमने लगते है और पुन. ठोस पदार्थ वन जाते हैं। इस क्रिया को उर्ध्वपातन कहा जाता है। अर्थात ठोस पदार्थ को ताप द्वारा सीधा गैसीय वनाकर, फिर से ठंढा करके सीधे ठोस वनाने की क्रिया को उर्ध्वपातन कहते हैं।

प्रयोग—एक छोटी कटोरी मे थोड़ा-सा नौसादर और वालू का मिश्रण लीजिए। ऊपर से एक और कटोरी से इस कटोरी को ढक दीजिए और किनारे को मिट्टी लेप कर अच्छी तरह वंद कर दीजिए। नीचे की कटोरी को धीमी आँच पर गरम कीजिए और ऊपर की कटोरी को गीले कपड़े से लपेटकर ठंढा रखिए। थोड़ी देर के वाद आँच पर से हटाकर कटोरियो को ठंढा कीजिए। ठंढा होने पर खोलने से देखिएगा कि ऊपर की कटोरी में नौसादर जमकर लगा हुआ है।
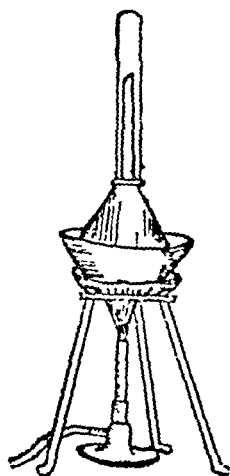
[चित्र २५—प्रयोगशाला मे उर्ध्वपातन]

प्रयोगशाला में उर्ध्वपातन के लिए मिश्रण युक्त पात्र को एक कीप से ढँक दिया जाता है और उसके ऊपर एक परखनली उलटकर वैठा दी जाती है। गैस वनकर उड़नेवाले पदार्थ इस परखनली में ठंढे होकर जम जाते हैं। मिश्रण को गरम करने के लिए पात्र को सीधे आग पर न रखकर उसे एक वालू भरे पात्र में वैठा दिया जाता है और उस वालू-भरे पात्र को आग पर रखकर वालू को गरम किया जाता है, जिससे मिश्रण भी धीरे-धीरे गरम होने लगता है।

क्रिस्टलीकरण (crystallisation)

ठोस पदार्थों में कुछ पदार्थ दानेदार होते हैं। इन दानो को क्रिस्टल (crystal) कहते हैं। कुछ ठोस पदार्थ क्रिस्टलीय नही होते हैं। नमक, चीनी, तूतिया, फिटकिरी, गंधक आदि पदार्थ क्रिस्टलीय हैं। काँच, मैदा, प्लास्टिक, रवर आदि पदार्थ क्रिस्टलीय नही होते हैं।

विभिन्न पदार्थों के क्रिस्टलों की आकृति भिन्न-भिन्न होती है। किसी एक पदार्थ के क्रिस्टल आकार मे छोटे-वड़े हो सकते हैं, पर उनकी आकृति हमेशा एक-सी होती है।
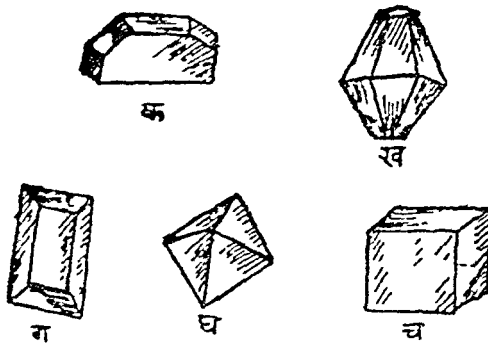
[चित्र २६—कुछ पदार्थों के क्रिस्टल]
क—तूतिया, ख—गंधक, ग—कपड़ा धोने का सोडा,
घ—फिटकिरी, च—साधारण नमक

अधिक तापमान पर किसी दानेदार पदार्थ का संतृप्त विलयन वनाने के वाद, उसे ठंडा करने पर विलयन मे मिला हुआ अतिरिक्त पदार्थ दाने के रूप में, अर्थात क्रिस्टल वनकर, नीचे जम जाता है। धीरे-धीरे ठंढा करने पर क्रिस्टल वड़े और सुडौल वनते है।

अधिक तापमान पर सतृप्त विलयन वनाकर ठंढा करके क्रिस्टल वनाने की क्रिया को क्रिस्टलीकरण कहते है।

प्रयोग—एक पात्र में थोड़ा-सा पानी लेकर उसमे कुछ अधिक परिमाण में तूतिया डाल दीजिए। कुछ तूतिया पानी मे घुल जाएगा क्योकि तूतिया पानी मे विलेय है। लेकिन कुछ तूतिया वचा रह जाएगा। साधारण तापमान पर तूतिया का विलयन वन गया।

अब विलयन को गरम कीजिए। धीरे-धीरे सब तूतिया घुलकर पानी में मिल जाएगा। इस बार अधिक तापमान पर तूतिया का संतृप्त विलयन बन गया। इस संतृप्त विलयन को ठढा होने के लिए छोड़ दीजिए। ठंढा होने पर देखिएगा कि पात्र के नीचे तूतिया के क्रिस्टल जम गये हैं।

इस विधि से नमक, चीनी, शोरा, सोडा आदि पदार्थों का क्रिस्टलीकरण किया जा सकता है।

बड़े आकार का क्रिस्टल बनाना

ऊपर दी गई विधि से बनाये गए क्रिस्टल साधारणतः छोटे होते हैं। किसी पदार्थ का बडा क्रिस्टल निम्नलिखित विधि से बनाया जा सकता है—

प्रयोग—एक काँच के ग्लास में आधा ग्लास तूतिया का सतृप्त विलयन बनाइए। तूतिया का एक छोटा-सा क्रिस्टल लेकर उसे बहुत पतले धागे या सिर के लम्बे बाल से बाँधकर ग्लास के विलयन के अदर लटका दीजिए। धागे या बाल के दूसरे सिरे से एक पेंसिल या कलम को बाँधकर उसे ग्लास पर रख दीजिए ताकि क्रिस्टल ग्लास के विलयन के अंदर लटकता रहे। ग्लास को किसी सुरक्षित स्थान मे रख छोड़िए। दो-तीन दिन बाद क्रिस्टल को निकाल लीजिए। देखिएगा कि तूतिया का काफी बडा क्रिस्टल बन गया है।

अन्य पदार्थों के बड़े क्रिस्टल भी इसी विधि से बनाये जा सकते है।

क्रिस्टलीकरण द्वारा पदार्थों का पृथक्करण

जिन पदार्थों के क्रिस्टल बनते हैं, उन्हे एक दूसरे से या किसी अक्रिस्टलीय पदार्थ से क्रिस्टलीकरण द्वारा अलग किया जा सकता है।

प्रयोग (१)—तूतिया और फिटकिरी का मिश्रण लेकर पानी मे घोलिए और अधिक ताप पर सतृप्त विलयन बनाइए। ठंढा होने पर नीचे तूतिया और फिटकिरी के क्रिस्टल अलग-अलग दिखाई पडेंगे। इन्हे चुन-चुनकर अलग कीजिए।

(२)—बालू और तूतिये का मिश्रण लीजिए। मिश्रण को पानी मे घोलिए। बालू पानी मे विलेय पदार्थ न होने के कारण नही घुलेगा, लेकिन तूतिया पानी मे घुलेगा। गरम करके समस्त तूतिये को घुलाकर अधिक ताप पर संतृप्त विलयन बनाइए। गरम अवस्था मे ही छानकर

विलयन से वालू को अलग कर दीजिए। अब केवल तूतिया का विलयन रह जाएगा। ठंढा होने पर नीचे तूतिया के क्रिस्टल जम जाएँगे। इस प्रकार क्रिस्टलीकरण द्वारा वालू और तूतिये को अलग किया जा सकता है।

क्रिस्टलन जल (Water of crystallisation)—वहुत-से पदार्थों के क्रिस्टल देखने से तो सूखे मालूम पड़ते हैं तथापि उनमे थोड़ा-सा जल होता है। इन पदार्थों के क्रिस्टल क्रिस्टलन के समय थोड़ा-सा जल ग्रहण कर लेते हैं और इस जल पर ही उनका आकार तथा रंग निर्भर करता है। इस जल को **क्रिस्टलन** जल कहते हैं।

प्रयोग—तूतिये के थोड़े-से क्रिस्टल को एक परखनली मे रखकर धीरे धीरे गरम कीजिए। गरम होने के साथ-साथ, तूतिये के नीले रंग के पारदर्शी क्रिस्टल धीरे-धीरे सफेद रंग के चूर्ण मे वदल जाएँगे। ध्यान से देखिएगा तो परखनली के मुँह के पास पानी की वहुत छोटी-छोटी बूँदे दिखाई पड़ेगी स्पष्ट है कि पानी की ये बूँदे तूतिये के क्रिस्टल से ही निकली हैं। यही क्रिस्टलन जल था। इसके न रहने से क्रिस्टल टूट गए हैं और उनका रग भी जाता रहा है।

अव परखनली मे दो-चार बूँद पानी डाल दीजिए—देखिएगा कि तूतिया फिर नीले रंग का वन गया है।

फिटकिरी, कपडा धोने का सोडा आदि के क्रिस्टलो मे क्रिस्टलन जल होता है। गरम करके यह जल निकाल देने से क्रिस्टल टूट जाते हैं और उनका रग भी वदल जाता है। नमक, शोरा आदि कुछ पदार्थों के क्रिस्टल मे क्रिस्टलन जल नही होता है।

अवक्षेपण (Precipitation)

कुछ पदार्थों के विलयनो को मिला देने से रासायनिक क्रिया से एक तीसरा पदार्थ वन जाता है जो उस विलायक मे विलेय नहीं होता है। अत: उस तीसरे पदार्थ को छानकर अलग किया जा सकता है।

दो प्रकार के विलयन को मिलाने से एक अविलेय पदार्थ वनकर मिश्रण से अलग हो जाने की क्रिया को अवक्षेपण कहते हैं। पृथक् होनेवाले पदार्थ को अवक्षेप (Precipitate) कहा जाता है।

प्रयोग—दो परखनलियाँ लीजिए। एक मे थोड़ा-सा साधारण नमक का स्वच्छ विलयन और दूसरे मे थोड़ा-सा सिल्वरनाइट्रेट का स्वच्छ विलयन डालिए। दोनो परखनलियों के स्वच्छ तथा पारदर्शी विलयन को एक साथ मिला दीजिए। देखिएगा कि एक साथ मिलते ही विलयन का रंग सफेद हो गया है और मिला हुआ विलयन अपारदर्शी बन गया है। मिले हुए विलयन को छानिए—देखिएगा कि छनना-कागज पर एक सफेद पदार्थ जम गया है।

पानी मे घुले हुए सोडियम-क्लोराइड या साधारण नमक तथा सिल्वर-नाइट्रेट मिलकर पानी मे अविलेय सिल्वर-क्लोराइड बनाते हैं। सिल्वर-क्लोराइड का रंग सफेद होने के कारण और उसके पानी मे न घुलने के कारण पानी अपारदर्शी और सफेद बन जाता है। सिल्वर-क्लोराइड बनने की क्रिया अवक्षेपण और सिल्वर-क्लोराइड अवक्षेप है।

प्रयोग—एक बड़े-से काँच के पात्र मे पानी लेकर एक नली की सहायता से कुछ देर तक पानी फूँकते रहिए। इस प्रकार से पानी में अधिक परिमाण के कार्वन-डाइ-आक्साइड मिल जाएगा। जलज पौधों की थोड़ी-सी ताजी हरी पत्तियाँ लेकर इस पानी में डाल दीजिए। फिर एक काँच का कीप उलटकर इन पत्तियों को ढँक दीजिए और एक काँच की परखनली मे जल भरकर कीप पर उलट कर वैठा दीजिए।
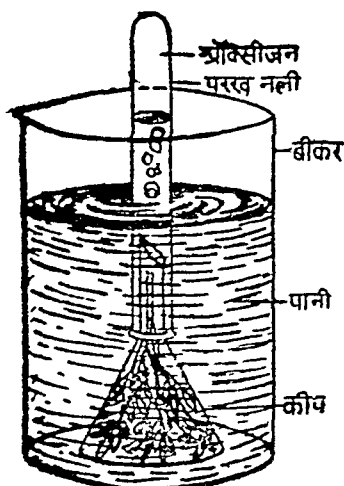
[चित्र ३३—वनस्पति द्वारा आक्सीजन त्यागना]

अव इन सवको पात्रसहित वाहर धूप मे रख दीजिए। दो-तीन घंटे वाद देखिएगा कि पत्ती पर वुलवुले जमा रहे है और ऊपर उठते जा रहे हैं। साथ ही परखनली मे पानी नीचे उतरता आ रहा है। इस प्रकार जव परखनली मे कुछ गैस जमा हो जाए, तव उसके मुँह को अंगुली से दवाकर सावधानी से वाहर निकाल लीजिए। एक सुलगती हुई पतली लकडी लेकर परखनली मे डालिए ; देखिएगा कि उसमे आग जल उठेगी। इस प्रकार मालूम हो जाएगा कि परखनली में जो गैस जमा है, वह आक्सीजन है ; क्योंकि आक्सीजन सुलगती हुई आग को जला देती है।

ख्याल रखना होगा कि यह प्रयोग केवल धूप में ही हो सकता है, क्योंकि वनस्पति केवल सूरज की किरणों में ही कार्वन-डाइ-आक्साइड गैस से कार्वन तथा आक्सीजन को अलग कर सकती है। इस क्रिया को प्रकाश-सश्लेपण (Photosynthesis) कहते हैं।

प्राणियो द्वारा आक्सीजन-ग्रहण और कार्वन-डाइ-आक्साइड-त्याग तथा वनस्पतियों द्वारा कार्वन-डाइ-आक्साइड ग्रहण-और आक्सीजन-त्याग की क्रिया द्वारा वायु मे आक्सीजन और कार्वन की संतुलन-रक्षा को आक्सीजन-कार्वन-डाइ-आक्साइड-चक्र कहते हैं।

सूरज की किरणो तथा ऊष्मा से अधिकाश रोग के जिवाणु मर जाते हैं और इस प्रकार वायु इनसे मुक्त हो जाती है।
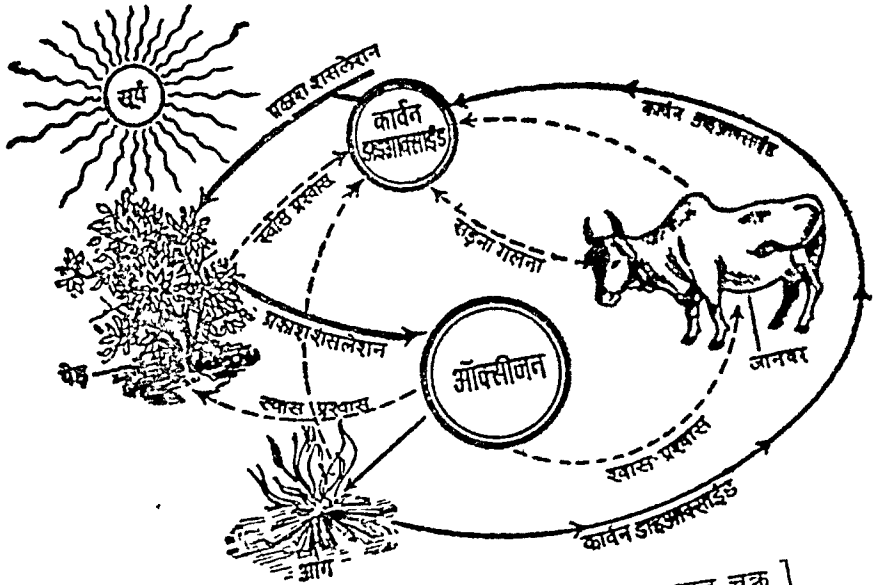
[चित्र ३४—आक्सीजन कार्वन-डाइ-आक्साइड चक्र]

वर्षा का पानी वायु मे मिले हुए विषाक्त गैसो को घुलाकर वायु को साफ कर देता है। साथ ही, हवा मे मिली हुई धूल तथा अन्य पदार्थों को धोकर नीचे ले आता है और इस प्रकार वायु शुद्ध हो जाती है।

वायु-प्रवाह एक स्थल पर जमी हुई अशुद्धियो को उड़ा ले जाता है और वहाँ की वायु शुद्ध हो जाती है।

दहन : श्वास-क्रिया : जंग लगना

(Burning : Respiration : Rusting)

अधिकतर पदार्थ आग लगने से जलने लगते हैं। लकड़ी, कागज, कोयला, तेल आदि पदार्थ आसानी से जलते है—इन्हे दहनशील पदार्थ (combustible substance) कहते है। दहन-क्रिया या आग जलने का प्रधान सहायक वायुस्थ आक्सीजन है। हम देख चुके हैं कि वायु न रहने से आग नहीं जल सकती। इसलिए जहाँ भी आग जलाने की आवश्यकता होती है, वहाँ वायु का पथ भी रखा जाता है। अंगीठी या कोयले के चूल्हे के नीचे इसीलिए छेद रखा जाता है। अगर कपड़े मे आग लग जाए तो इधर-उधर दौड़ने से आग अधिक तेज हो जाती है और समस्त शरीर जल जाने का खतरा पैदा हो जाता है। ऐसी हालत मे कम्बल, टाट आदि ओढ़ लेने से या मिट्टी मे लोट-पोट करने से आग बुझ जाती है। आग बुझाने का सर्वप्रधान उपाय है, हवा बंद करना। क्योंकि हवा से आक्सीजन न मिलने पर आग नहीं जल सकती है।

दहन

दहन-क्रिया में दहनशील पदार्थ तथा वायुस्थ आक्सीजन मिलकर एक नये यौगिक पदार्थ का निर्माण करते है।

निम्नलिखित प्रयोगों से हम इसे देख सकते हैं—

१—एक तार लेकर उसके एक सिरे को मोड़कर उसपर एक मोमबत्ती बैठा दीजिए। एक दफ्ती के गोलाकार टुकड़े के बीच मे छेद करके, दूसरे सिरे से तार में घुसा दीजिए। मोमबत्ती को जलाकर एक लंबे गैसजार के अंदर ले जाइए और दफ्ती से उसका मुँह ऐसे बंद कीजिए कि अंदर वायु न जा सके। थोड़ी देर में मोमबत्ती बुझ जाएगी और जार के अंदर पानी की बूँदें दिखाई पड़ेंगी।

अब मोमबत्ती को बाहर निकाल लीजिए और जल्दी से जार को एक काँच के ढक्कन से ढक दीजिए। मोमबत्ती को फिर से जलाकर अंदर कर

देने से वह फौरन बुझ जाएगी। थोड़ा-सा चूने का पानी लेकर जार में डाल दीजिए और उसे अच्छी तरह हिलाइए; देखिएगा कि अब पानी साफ न रहकर दुधिया हो गया है। ख्याल रखना पड़ेगा कि शुरू से जार का मुँह ठीक से बंद रहे।

चूने के साफ पानी को किसी भी साफ पात्र मे रखकर हिलाने से उसमें कोई परिवर्त्तन नही होता। अतः यह स्पष्ट है कि जार में बत्ती जलने से ऐसा कोई पदार्थ बना है जो चूने के पानी मे परिवर्त्तन ला सकता है। मोम एक यौगिक पदार्थ है जिसमे कार्बन तथा हाइड्रोजन होते हैं। आग जलने से मोम वायुस्थ आक्सीजन के साथ मिलकर पानी तथा कार्बन-डाइ-आक्साइड गैस की सृष्टि करती है। जार मे जो पानी की बूँदें दिखाई देती हैं वे इसी क्रिया से बनी है। चूने के पानी के साथ मिलकर कार्बन-डाइ-आक्साइड खड़िया मिट्टी बनाती है और इसलिए जार में चूने का पानी दुधिया हो जाता है। साथ ही, इन्हे बनाने मे पात्र के अंदर के सभी आक्सीजन शेष हो जाने के कारण इसमे फिर से मोमबत्ती नही जल सकी।

वायु का मुख्य सक्रिय अंश आक्सीजन है। किसी बंद जगह आग जलने से यह नष्ट हो जाता है।' इसलिए लालटेन आदि को ठीक से जलाने के लिए उनमें उचित मात्रा मे वायु के यातायात का प्रबंध करना पड़ता है। वायु-यातायात (संवातन) ठीक से न होने पर आक्सीजन की कमी हो जाती है और उनमे अधिक धुआँ होने लगता है। दहन से वस्तु का वजन भी बढ़ जाता है।

२—एक बरतन मे पानी भरकर उसमें एक छोटी अल्युमिनियम की कटोरी तैरा दीजिए। कटोरी में थोड़ा-सा मैगनेशियम का तार, जिसे पहले ही तौल लिया गया हो, रखकर उसमे आग लगा दीजिए और एक गैसजार उलटकर कटोरी को ढक दीजिए। थोड़ी देर तक तेज रोशनी के साथ मैगनेशियम का फीता जलता रहेगा। उसके बुझ जाने के बाद देखिएगा कि गैसजार के अंदर पानी की सतह ऊपर चढ़ गई है और पानी जार के अंदर बंद वायु के लगभग $\frac{1}{5}$ भाग तक भर गया है। अब मैगनेशियम के एक दूसरे तार को जलाकर सावधानी से उसके अंदर रखिए। देखिएगा कि वह फौरन बुझ जाएगा। मोमबत्ती या अन्य कोई

भी वस्तु मे आग जलाकर उसमे डालिए। देखिएगा कि वह भी फौरन बुझ जाएगी। कटोरी के अंदर मैगनेशियम जलकर सफेद रंग की राख बन गई है। आप मैगनेशियम के तार को पहले ही तौल चुके थे, अब इस राख को तौल कर देखेंगे कि राख का वजन तार के वजन से अधिक है अर्थात् उसमें हवा का आक्सीजन मिल जाने से राख का वजन बढ़ गया है। इस प्रकार हम देखेंगे कि आक्सीजन और मैगनेशियम, दोनो के मिलने से एक नया यौगिक पदार्थ मैगनेशियम आक्साइड बना है और जार की वायु मे केवल उसका अक्रिय अश रह गया है। इस प्रयोग से यह भी मालूम हो जाता है कि वायु का सक्रिय अवयव अर्थात् आक्सीजन उसका $\frac{1}{5}$ अश है।

इस प्रयोग से यह भी सिद्ध हो जाता है कि दहन-क्रिया मे दहनशील वस्तु वायुस्थ आक्सीजन के साथ मिलकर एक नया यौगिक पदार्थ बनाती है और साथ-ही-साथ ऊष्मा और प्रकाश की उत्पत्ति होती है। वस्तु का वजन भी दहन के बाद बढ़ जाता है। इसका कारण यह है कि दहन-क्रिया मे उस वस्तु के साथ आक्सीजन का सयोग होता है।

श्वास-क्रिया

हम देख चुके है कि मोमबत्ती मे आग लगने पर द्रुतगति से रासायनिक क्रिया होकर कार्बन-डाइ-आक्साइड गैस उत्पन्न होता है। साथ ही, प्रकाश तथा ऊष्मा भी उत्पन्न होते है। श्वास-क्रिया भी एक प्रकार की दहन-क्रिया है। अतर केवल यह है कि यह क्रिया, जो जीवो के शरीर के भीतर होती है, बहुत ही मद गति से होती है। इस क्रिया मे ऊष्मा की उत्पत्ति कम होती है और प्रकाश की उत्पत्ति नही होती। प्रत्येक जीव को, चाहे वह प्राणी हो या वनस्पति, जीवित रहने के लिए साँस लेने की आवश्यकता होती है। हमलोग प्रति मिनट मे साधारणत. १६ से १७ बार साँस लेते है।

साँस लेते समय वायु के साथ आक्सीजन फेफड़े मे प्रवेश करता है और शरीर के अंदर का कार्बन वायुस्थ आक्सीजन के साथ मिलने से, मंद दहन-क्रिया से कार्बन-डाइ-आक्साइड गैस उत्पन्न होता है। प्रश्वास के साथ यह

कार्बन-डाइ-आक्साइड गैस शरीर से बाहर निकल जाता है। एक सरल प्रयोग से यह देखा जा सकता है।

आप देख चुके हैं कि चूने के साफ पानी में कार्बन-डाइ-आक्साइड गैस मिलने से चूने का पानी दुधिया हो जाता है। अगर प्रश्वास में कार्बन-डाइ-आक्साइड गैस हो तो उससे चूने का साफ पानी सफेद हो जाना चाहिए।

प्रयोग—एक ग्लास मे चूने का साफ पानी लीजिए। एक नली की सहायता से उसमें साँस छोड़िए। थोड़ी ही देर मे चूने का पानी दुधिया हो जाएगा। साँस छोड़ते समय फेफड़े से प्रश्वास के साथ निकलने वाले कार्बन-डाइ-आक्साइड चूने के पानी के साथ मिलकर उसका रंग दुधिया बना दिया है।

इस प्रकार श्वास-क्रिया के समय शरीर के अंदर आक्सीजन तथा कार्बन के मिलने से रासायनिक क्रिया द्वारा एक नया यौगिक पदार्थ—कार्बन-डाइ-आक्साइड गैस-उत्पन्न होता है।

जंग लगना

वायु का सक्रिय अवयव आक्सीजन केवल दहन-क्रिया या श्वास-क्रिया के समय ही दूसरे पदार्थों मे सम्मिलित नही होता है, बल्कि साधारण अवस्था मे भी वह बहुत-से पदार्थों के साथ मिल जाता है। लोहा, पीतल, ताँबा आदि से बनी हुई वस्तुओ को खूब साफ करके खुली हवा मे कुछ दिनो तक रख देने के बाद उनकी चमक जाती रहती है और उनपर एक प्रकार का मैल जम जाता है। इन धातुओ के साथ आक्सीजन के मिलने से ही वह मैल पैदा होता है। लोहे पर मैल सबसे अधिक जमता है। इसीको 'जंग लगना' भी कहा जाता है। बंद जगह मे लोहा आदि मे जंग लगने पर वहाँ ठीक दहन-क्रिया जैसा प्रभाव देखने को मिलता है। निम्नलिखित प्रयोगों से इसे देखा जा सकता है—

प्रयोग—थोड़ा-सा लोह-चूर्ण वजन कर लीजिए और एक टुकड़ा पतला कपड़ा गीला करके उसमें बाँध दीजिए। इस पोटली को एक छोटी-सी काँच की छड़ मे लटका दीजिए। एक पात्र में पानी भर लीजिए और एक गैसजार

में पोटली समेत कांच की छड़ को रखकर उसे पात्र के पानी में उलटकर ऐसे बैठा दीजिए कि लौह-चूर्ण की पोटली पानी के ऊपर रहे।
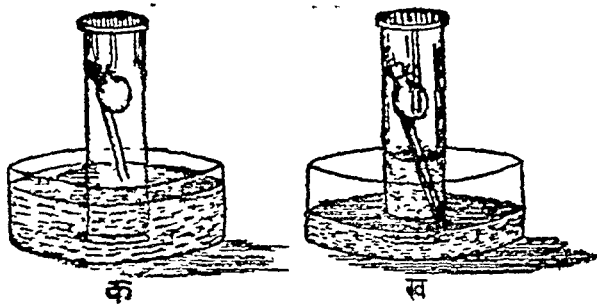
[चित्र ३५—जंग लगना : क—जंग लगने के लिए लौह-चूर्ण रखना, ख—जंग लगने के बाद पानी का ऊपर चढना]

कुछ दिनो के बाद देखिएगा कि गैसजार में पानी की सतह पात्र के पानी की सतह से ऊपर उठ गई है। नाप कर देखिएगा तो मालूम हो जाएगा कि पानी जार के अंदर के वायुपूर्ण स्थान के $\frac{1}{5}$ अंश ऊपर चढ़ गया है।

अब एक ढक्कन से जार का मुँह बंद करके उसे सीधा कीजिए और एक मोमबत्ती जलाकर उसके अंदर ले जाइए ; देखिएगा कि मोमबत्ती तुरत बुझ जाएगी।

फिर लौह-चूर्ण की पोटली निकालकर खोलिए, देखिएगा कि उसमें लाल रंग का मैल पैदा हो गया है। वजन करने पर देखिएगा कि उसका वजन बढ़ गया है। हाथ से दबाने पर अब वह पहले की तरह कठिन नही लगेगा बल्कि वह आसानी से चूर हो जाएगा। एक चुम्बक लेकर उसमे डालिए। फिर चुम्बक उठाकर देखिएगा तो मालूम होगा कि अब यह चूर्ण चुम्बक से नही चिपकता। इस प्रकार मालूम हो जाता है कि लौह-चूर्ण अब लोहा नही रह गया है। वह वायुस्थ आक्सीजन से मिलकर एक दूसरा पदार्थ आयरन-आक्साइड या जंग बन गया है। साथ ही, यह भी प्रमाणित हो जाता है कि दहन-क्रिया मे जिस प्रकार दहनशील पदार्थों के साथ आक्सीजन का संयोग होता है, उसी प्रकार लौह-चूर्ण के साथ आक्सीजन का संयोग होने से जंग बन गया है तथा इससे लौह-चूर्ण का वजन बढ़ गया है। जार के अंदर

का आक्सीजन इस प्रकार मे शेष हो जाने के कारण पानी जार में ऊपर चढ़ गया है और उसका रिक्त स्थान पूर्ण कर दिया है।

अत., पदार्थ मे जंग लगने से या उसे आग मे जलाने से उसका आक्सीजन के साथ संयोग होता है और एक नया यौगिक पदार्थ बनता है।

जंग लगने में नमी की आवश्यकता

जग लगने के लिए वायु मे नमी की भी आवश्यकता होती है अर्थात् वायुस्थ आक्सीजन लोहे मे मिलकर तभी जंग बना सकता है, जब वायु मे जलवाष्प मौजूद हो। किन्तु, जंग लगने की क्रिया मे वायुस्थ दूसरे तत्त्वों की तरह जलवाष्प का भी लोहे या आक्सीजन से किसी प्रकार संयोग नही होता है। फिर भी इसकी उपस्थिति के बिना आक्सीजन और लोहे मे सयोग नहीं हो सकता।

प्रयोग—एक परखनली मे पानी लेकर उसमे आग पर सुखाया हुआ थोड़ा-सा लोह-चूर्ण डाल दीजिए। परखनली को आग पर गरम कीजिए और पानी को काफी देर तक उबलने दीजिए। इस प्रकार पानी, लौह-चूर्ण तथा नली के अदर का समस्त वायु बाहर हो जाएगा। अब काग लगाकर परखनली के मुँह को अच्छी तरह बंद कर दीजिए और मोम गलाकर काग पर इस प्रकार लगाइए कि वायु किसी भी प्रकार से अदर न जा सके। परखनली पर '१' लिखकर उसे स्टैंड मे रख दीजिए।

'२' चिह्नित एक परखनली लेकर उसे आग पर सुखाइए और उसमें आग पर अच्छी तरह सुखाया हुआ लौह-चूर्ण डाल दीजिए। परखनली के मुँह को काग लगाकर मोम की सहायता से बंद कर दीजिए कि उसमें बाहर की आर्द्र वायु नही जा सके। इसको भी स्टैंड मे रख दीजिए।

एक और परखनली लेकर उसमें '३' का चिह्न लगा दीजिए। इसमें बहुत थोड़ा-सा पानी लेकर उसमे कुछ लौह-चूर्ण डाल दीजिए और इसे खुला ही स्टैंड मे रख दीजिए।

कुछ दिनो तक तीनो परखनलियों को वही छोड़ दीजिए। फिर तीनो को निकालकर देखिए। '१' और '२' चिह्नित परखनलियो मे रखे हुए लौह-चूर्ण मे कोई परिवर्त्तन नही दिखाई पड़ेगा; लेकिन '३' चिह्नित परख-नली मे रखे हुए लौह-चूर्ण पर लाल रंग की काई दिखाई देगी। यह जंग है।

पहली परखनली वायु-शून्य थी इसलिए उसमें आक्सीजन न रहने के कारण जंग नही लग सका। दूसरी परखनली मे यद्यपि वायु तो थी, लेकिन वह जल-शून्य थी। अतः उसमे रखे हुए लौह-चूर्ण पर इस कारण से जंग न लग सका कि उसके अदर की वायु में जलवाष्प नहीं था ; किन्तु तीसरी मे नमी तथा वायु, दोनों ही मिलने से लौह-चूर्ण में जंग लग गया।

दहन, श्वास-क्रिया और जग लगने मे मूलत. कोई अंतर नही है। तीनों क्रियाओ में वायु के सक्रिय अवयव आक्सीजन के साथ पदार्थविशेष के संयोग से नये यौगिक पदार्थ की सृष्टि होती है। दहन-कार्य मे आक्सीजन का संयोग द्रुतगति से होता रहता है और पदार्थ अत्यंत उत्तप्त हो जाने के कारण जलने लगता है तथा ऊष्मा और प्रकाश की उत्पत्ति होती है। किन्तु श्वास-क्रिया तथा जग लगने की क्रिया में आक्सीजन का सयोग बहुत धीरे-धीरे होता है तथा प्रकाश की उत्पत्ति नही होती है। श्वास-क्रिया मे अल्प ऊष्मा उत्पन्न होती है। सक्षेप में कहा जा सकता है कि दहन, जग लगना और श्वास-क्रिया तीनो एक ही प्रकार की घटनाएँ है।

दहन	श्वास क्रिया	जंग लगना
(१) दहन के समय दहनशील वस्तुओ के साथ आक्सीजन का सयोग बहुत द्रुत गति से होता है।	(१) श्वास-क्रिया मे शरीर के अंदर के कार्बन के साथ आक्सीजन का संयोग मद गति से होता है।	(१) पदार्थ के साथ आक्सीजन का सयोग बहुत धीरे-धीरे होता है।
(२) दहन-क्रिया में प्रकाश और ऊष्मा की सृष्टि होती है और नाना प्रकार के गैस तथा आक्साइड बनते है।	(२) श्वास-क्रिया मे शरीर के अदर के कार्बन के साथ आक्सीजन का मद गति से संयोग होता है और कार्बन-डाइ-आक्साइड गैस बनता है। अल्प ऊष्मा की सृष्टि होती है।	(२) बहुत ही कम ऊष्मा की सृष्टि होती है। जिस पदार्थ मे जंग लगता है, उसका आक्साइड बनता है।

दहन	श्वास-क्रिया	जंग लगना
(३) दहन-क्रिया के लिए साधारणतः आग लगाने की आवश्यकता होती है। सोडियम, फास्फोरस, पोटाशियम आदि कुछ पदार्थो मे दहन-क्रिया के लिए आग लगाने की आवश्यकता नही होती है।	(३) श्वास-क्रिया में आग लगाने की आवश्यकता नही होती है।	(३) आग लगाने की आवश्यकता नहीं होती है, बल्कि वायु मे नमी रहने से जंग लगने की क्रिया तेज हो जाती है।

अध्याय १०

जल

जीवन धारण के लिए वायु जितनी आवश्यक है उतना ही आवश्यक जल है। जल के बिना न तो प्राणी बच सकता है और न पेड़-पौधे ही बच सकते हैं। गरमी के दिनो में पेड़ पौधे सूख जाते है, किन्तु बरसात मे पानी पाते ही सब फिर हरे-भरे नजर आने लगते है। हमारे शरीर की रचना के लिए पानी एक अत्यंत आवश्यक वस्तु है। साथ ही सभी प्राणियो और वनस्पतियों के शरीर की रचना मे वजन के हिसाब से बड़ी मात्रा मे जल रहता है।

जल एक यौगिक पदार्थ है, जो हाइड्रोजन तथा आक्सीजन के सम्मिश्रण मे बनता है। शुद्ध जल रंगहीन, गंधहीन तथा स्वादहीन होता है।

जल का उद्गम

पृथ्वी पर जल का सबसे बडा भडार समुद्र है। सही माने मे कहा जा सकता है कि समुद्र ही समस्त जल का उद्गम स्थान है। समुद्र का पानी सूर्य की ऊष्मा से वाष्प बन जाता है। वाष्प वायु के साथ बादल बनकर चारों ओर फैल जाता है। उन्ही बादलो से देशदेशांतर मे पानी बरसता है। वही पानी पर्वतो पर बरफ के रूप मे जमा होता है तथा नदी बनकर निकल आता है। झील, तालाब आदि मे भर जाता है और मिट्टी के नीचे जाकर पानी का सोता बनता है।

समुद्र

पृथ्वी का तीन चौथाई अश समुद्र है। समुद्र का विशाल जल-भंडार खारा होने के कारण मनुष्य के पीने योग्य नही है। स्थल-भाग के अंदर से प्रवाहित होकर असंख्य नदियाँ आकर समुद्र मे गिरती है। एक ओर ये नदियों भू-पृष्ठ से कितने ही पदार्थ अपने पानी मे घुलाकर ले आती है तथा समुद्र मे मिलाती जा रही है और दूसरी ओर समुद्र का जल सूर्य की ऊष्मा से वाष्प बनकर उड़ता जाता है। वाष्प बनते समय विशुद्ध पानी ही केवल वाष्प बनता है और सभी घुले और अनघुले पदार्थ समुद्र मे ही रह जाते है। इस प्रकार दिनप्रतिदिन समुद्र के पानी मे इन अशुद्धियो की

मात्रा बढती जा रही है। किन्तु समुद्र इतना विशाल है कि अशुद्धियो के बढ़ने की दर अपेक्षाकृत बहुत ही कम है और करोड़ो साल बीतने के बाद आज भी समुद्र के पानी मे औसत अशुद्धि की मात्रा ३½ प्रतिशत से अधिक नहीं है। अशुद्धियों में लगभग पौने तीन प्रतिशत केवल नमक है इसलिए समुद्र का पानी खारा लगता है और इसे सुखाकर नमक बनाया जाता है। ठोस अशुद्धियाँ घुली हुई रहने के कारण समुद्र के पानी का घनत्व शुद्ध पानी से ०.०३ अधिक है।

वर्षा

पृथ्वी के स्थल-भाग पर जहाँ-जहाँ हमे जो भी पानी मिलता है, वह सभी मुख्यत वर्षा का ही पानी है। सूर्य की ऊष्मा से समुद्र का पानी वाष्प बनता है। मौसमी वायु इस जलवाष्प को उड़ाकर स्थल-भाग पर ले आती है। यहाँ जलवाष्प ठंढा होकर फिर से पानी बनकर वर्षा के रूप में स्थल-भाग पर बरसता है। इस पानी से नदी-नाले पुष्ट होते हैं; झील, तालाब आदि भरते है और यही पानी मिट्टी के नीचे जाकर कुएँ, नलकूप आदि मे जल पहुँचाता है। वर्षा नही होने से न केवल इनका पानी सूख जाता है बल्कि साथ ही खेती आदि भी नही हो पाती है। पेड़-पौधे मर जाते है और देश मे अकाल तथा भुखमरी का खतरा पैदा हो जाता है।

जिस समय जलवाष्प फिर से पानी बनकर बरसता है, उस समय वह स्रवित होने के कारण विशुद्ध होता है। किन्तु गिरते समय वायुस्थ कुछ अशुद्धियाँ इसमें घुल जाती है। धूलि-कण आदि ठोस अशुद्धियो के अलावा आक्सीजन, अमोनिया, कार्बन-डाइ-आक्साइड आदि गैस इसमे मिल जाते है। साधारण पानी पीते समय जो स्वाद मालूम होता है, वह पानी में मिले हुए आक्सीजन के कारण होता है। पानी को उबालने मे उसमे घुला हुआ आक्सीजन निकल जाता है। इसलिए उबाला हुआ पानी पीने मे अच्छा नही लगता है। कुछ देर तक पानी बरस जाने के बाद वायुस्थ अशुद्धियाँ घुलकर साफ हो जाती है और बाद मे जो पानी बरसता है, वह लगभग स्रवित जैसा विशुद्ध होता है। इस पानी को जमा करके स्रवित जल के रूप मे काम मे लाया जा सकता है। कुछ स्थानो मे, जैसे शिमला के तारादेवी पहाड़ मे, वर्षा का पानी सावधानी के साथ जमा करके रखा जाता है और पीने के काम मे लाया जाता है।

नदी

स्थल-भाग में नदी पानी का मुख्य भडार है। वड़ी-वड़ी नदियों से वारहो महीने हमें पानी मिलता रहता है। नदी का पानी पीने, नहाने, खेती आदि के काम में आता है। नदी जिन स्थानो से होकर वहती है, उन स्थानों की मिट्टी या पत्थरो में जो घुलनशील पदार्थ रहते है, नदी के पानी मे वह सव मिल जाते हैं। इनके अलावा वहुत-से ठोस पदार्थो के कण भी इस पानी मे मिले हुए होते है। इसलिए नदी का पानी प्राय: गंदा और मैला रहता है। इसे थिराकर तथा छानकर साफ करके काम मे लाया जाता हैं। वड़े-वड़े शहरो में नदी के पानी को ही साफ करके नल की सहायता से व्यवहार के लिए घरो में पहुँचाया जाता है। ऐसा करने के पहले पानी को साफ कर लिया जाता है।

नदी को वाँधकर जगह-जगह पानी जमा करके, साल भर उससे खेती आदि की जाती है। इस प्रकार जमा किया हुआ पानी, नहर काटकर, दूर-दूर तक पहुँचाया जाता है।

झील और तालाव

वरसात का पानी झील और तालाव आदि में जमा होता है। झील, तालाव आदि मे पानी वद रहने के कारण इसमे अधिक अशुद्धियाँ रहने की संभावना रहती है। कुछ वड़ी-वड़ी झीलो से नदियाँ निकली हैं। इससे पानी निकलते रहने के कारण उसमे कम अशुद्धियाँ जमा हो पाती है और पानी पीने के योग्य मीठा होता है। मानसरोवर इसी प्रकार की एक झील है।

कुछ झीलो से नदियाँ तो नहीं निकलती है, किन्तु उनमे नदियाँ आकर गिरती है। इनमें भी नदियाँ स्थल-भाग से तरह-तरह की अशुद्धियाँ लाकर वैसे ही मिलाती रहती है जैसे सागर मे। उन अशुद्धियो के लिए निकल जाने का कोई पथ न रहने के कारण वे वहीं रह जाती है। इसके चलते उन झीलो के पानी मे अशुद्धियो की मात्रा वहुत अधिक होती है और उनमें नमक वहुत अधिक होने के कारण पानी खारा तथा पीने के योग्य नही रहता। मृतक सागर (dead sea) इसी प्रकार की एक झील है। इसमें अशुद्धियाँ इतनी अधिक है कि इसके पानी में मछली आदि जलचर प्राणी भी जिन्दा नही रह सकते हैं।

छोटे होने के कारण तालाब आदि में केवल बरसात का पानी, या तो सीधे तौर पर या मिट्टी के अंदर से सोते के रूप में आकर, जमा होता है। इसलिए तालाब के पानी का स्वाद उस स्थान की मिट्टी में मिले हुए घुलनशील पदार्थों के अनुसार होता है।

तालाब के पानी में जीवाणु आदि के अधिक रहने की संभावना होती है। इसलिए इसे साफ तथा विशुद्ध किये बिना नहीं पीना चाहिए। नहाने, धोने आदि में काम आने के अलावा इसके पानी से खेती आदि भी की जाती है।

कुएँ, नलकूप (Tube well)

मिट्टी के नीचे जमे हुए बरसात के पानी को हम कुआँ खोदकर या ट्यूबवेल (नलकूप) बैठाकर निकालते हैं। कुएँ तथा ट्यूबवेल का पानी प्राकृतिक रूप से फिल्टर किया हुआ होने के कारण उनमें अशुद्धियाँ कम होती हैं। किन्तु इसमें उस स्थान की मिट्टी में मिला हुआ घुलनशील पदार्थ मौजूद रहता है। इसी कारण किसी-किसी कुएँ या ट्यूबवेल का पानी खारा होता है। गहरे कुएँ का पानी साधारणतः स्वादिष्ट तथा शुद्ध होता है। बाहर से दूषित पदार्थ मिल जाने के कारण कुएँ का पानी भी कभी-कभी अशुद्ध हो जाता है। ऐसी हालत में उसे शुद्ध करके ही काम में लाना चाहिए।

पम्प, रहट, लट्ठा-कूजी, पर्शियन ह्वील आदि की सहायता से कुएँ से पानी निकालकर खेती की जाती है। आजकल विद्युत्-चालित या इंजन-चालित पंप की सहायता से, ट्यूबवेल से खेती में पानी देने का प्रबंध किया जाता है। इसे लिफ्ट इरिगेशन (lift irrigation) कहते हैं।

झरना और सोता

बहुत जगहों में, विशेषकर पहाड़ी इलाकों में झरने, सोते आदि निकलते हैं। यह भी बरसात का ही पानी है जो जमीन के अंदर से चट्टानों में से होकर इस रूप में निकल जाता है। निकलते समय इनका पानी भी प्रायः शुद्ध होता है। किन्तु इनमें भी उन स्थानों में मौजूद घुलनशील पदार्थ घुले हुए होते हैं।

कहीं-कहीं ऐसे झरनों, सोतों आदि से गरम पानी निकलता है। राजगीर के गरम पानी के सोते तथा मुंगेर के सीताकुंड इसी प्रकार के सोते हैं।

झरनो, सोतो आदि के पानी को बाँधकर कृत्रिम झील की सृष्टि की जाती है और इससे खेती आदि की सिंचाई की जाती है।

तुषार

पर्वतो की ऊँची चोटियो पर पानी जमकर तुषार के रूप मे रहता है। यह भी बरसात का पानी है जो जमकर तुषार बन जाता है। गरमी से तुषार गलकर नीचे की ओर आता है और नदी, सोते आदि का रूप ले लेता है। हिमालय पर्वत से निकलने वाली नदियो मे तुषार गलकर पानी आने के कारण बारहो महीने काफी पानी रहता है।

खनिज पानी तथा मीठा पानी

पानी मे घुले हुए खनिज लवण की मात्रा के अनुसार प्राकृतिक पानी दो तरह के होते है—खनिज पानी तथा स्वच्छ या मीठा पानी।

कहीं-कहीं खनिज पानी नमकीन, क्षारीय अथवा गंधकीय तथा गरम भी होता है। मीठे पानी मे घुला हुआ लवण नही होता है या उसकी मात्रा बहुत कम होती है।

पानी शुद्ध करना

पानी मे मिली हुइ अशुद्धियाँ कई उपायो से दूर की जाती हैं। पानी मे दो प्रकार की अशुद्धियाँ होती है—घुलनशील तथा अघुलनशील। अघुलनशील अशुद्धियो को दूर करना अपेक्षाकृत सहज होता है।

छानना

अघुलनशील अशुद्धियो को दूर करने का सबसे सहज उपाय छानना है। फिल्टर पत्र, कपड़े आदि से छानने का काम किया जाता है। घरेलू फिल्टर से पानी छानने की विधि के संबंध मे हम 'मिश्रित पदार्थ का पृथक्करण' नामक अध्याय मे पढ चुके है। बड़े पैमाने पर पानी छानने के लिए दूसरा प्रबंध करना पड़ता है।

बड़े पैमाने पर पानी साफ करना तथा जल संभरण तंत्र

बडे पैमाने पर पानी साफ करने के लिए पानी को बडे-बड़े तालाबनुमा हौजो मे जमा किया जाता है। जमा किए हुए पानी को थिराकर उसमे

मिले हुए भारी ठोस पदार्थों को अलग कर लिया जाता है। वाद में वालू, पत्थर के टुकडे आदि के अदर से ले जाकर पानी को संपूर्ण रूप से साफ कर लिया जाता है। फिर क्लोरिन आदि जीवाणु-नाशक दवाएँ मिलाकर उसे जीवाणुरहित किया जाता है और पप की सहायता से ऊँची-ऊँची टंकियों में चढा दिया जाता है। वहाँ से नल की सहायता से इच्छानुसार स्थानों मे पानी पहुँचाया जाता है। वडे शहरो मे इस प्रकार से पानी साफ करके घरो मे पहुँचाया जाता है। 'इसे जल संभरण तत्र' कहते है।
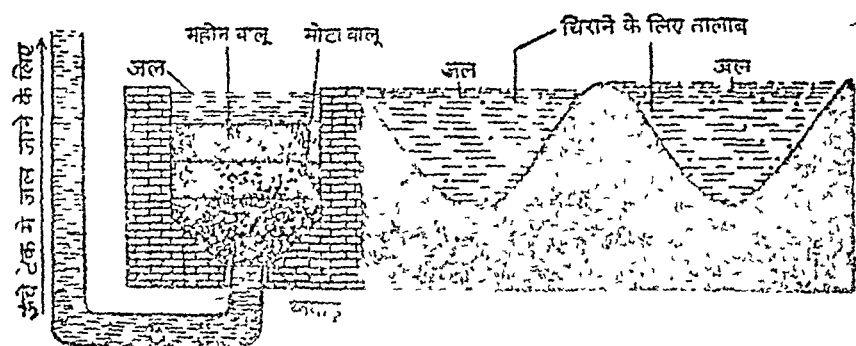
[चित्र ३६—वड़े पैमाने पर जल-शोधन]

रासायनिक विधि

छानकर साफ करने के वाद भी पानी मे कई प्रकार की अशुद्धियाँ रह जा सकती है। विशेपकर छानने के वाद भी पानी में रोगो के जीवाणु आदि रह जा सकते है। इन्हें दूर करने के लिए पानी मे दवा मिलाई जाती है। अगर किसी इलाके मे हैजा आदि संक्रामक रोग फेले हुए हो तो वहाँ कुएँ, तालाव आदि के पानी को शुद्ध करने के लिए उनमे क्लोरिन, पोटैशियम परमैगनेट, चूना आदि मिलाया जाता है। कुएँ के पानी को शुद्ध करने के लिए वीच-वीच मे कुएँ में पोटैशियम परमैंगनेट देना चाहिए।

स्रवण

पानी मे मिली हुई घुलनशील अशुद्धियाँ दूर करने के लिए तथा संपूर्ण रूप से शुद्ध जल पाने के लिए स्रवण सर्वोत्तम उपाय है। स्रवण करने की विधियो के संवध मे हम पहले ही पढ चुके है।

उबालना

पानी को उबालकर उसमे से घुले हुए गैसो को अलग किया जाता है। साथ ही पानी उबालने पर उसमे मिले हुए रोगो के जीवाणु नष्ट हो जाते है।

जल के उपादान

जल तत्त्व नही है। यह हाइड्रोजन तथा आक्सीजन के संयोग से बनता है। पानी के अंदर विद्युत्-धारा प्रवाहित करके दोनो गैसो को अलग किया जा सकता है। जिसे 'पानी का वैद्युत्-अपघटन' कहते है। जल के वैद्युत्-अपघटन की क्रिया से उत्पन्न गैसो मे एक का आयतन सदा दूसरे का आधा होता है। परीक्षा करके देखने से पता लगेगा कि कम आयतन वाला गैस आक्सीजन और दूना आयतन वाला गैस हाइड्रोजन है। अर्थात् पानी दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग आक्सीजन से बनता है। शुद्ध जल का रासायनिक सूत्र H_2O है अर्थात् इसके एक अणु मे हाइड्रोजन के दो और आक्सीजन के एक परमाणु होते है।

अगर एक ग्लास पानी मे सोडियम का एक टुकड़ा डाला जाए तो पानी अपघटित हो जाएगा और उससे गैस निकलने लगेगा। इस गैस को जमा करने पर यह हाइड्रोजन गैस साबित होगा। सोडियम मे हाइड्रोजन गैस नही होता इसलिए यह गैस पानी के अपघटन से ही प्राप्त हुआ है।

खूब गरम लोहे के ऊपर से भाप-रूप मे जल को प्रवाहित करने से भी जल अपघटित हो जाता है। हाइड्रोजन-मुक्त होकर बाहर निकल जाता है और आक्सीजन लोहे मे मिल जाता है।

हाइड्रोजन तथा आक्सीजन के सयोग से पानी तभी बन सकता है जब उसको मिश्रित करके इस मिश्रण मे आग लगाई जाए। केवल मिश्रित करके रख देने पर पानी नही बनेगा। पानी बनाने के लिए इन गैसो का मिश्रण एक विशेष मात्रा मे होता है। दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग आक्सीजन के सयोग से पानी बनता है। अगर दोनों मे से कोई परिमाण मे अधिक हो जाए तो पानी बनने के बाद वह बचा रह जाएगा।

सोडावाटर की बोतल मे हाइड्रोजन तथा आक्सीजन भरकर उसके मुँह को आग के सामने रखने पर उसमे एक धमाका होगा और गैसो का रासायनिक सयोग होगा तथा बोतल के अंदर पानी की बूँदे दिखाई देगी।

इस प्रयोग को यदि १००° C तापमान पर किया जाए तो बोतल में पानी के बजाए भाप मिलेगी, क्योंकि पानी १००°C पर भाप बन जाता है। यह प्रयोग सावधानी से करना चाहिए।

हाइड्रोजन

प्रकृति मे हाइड्रोजन गैस कभी-कभी मुक्त तत्त्व के रूप मे मिलता है। सूरज के चारों ओर यह गैस है तथा ज्वालामुखी पहाड़ो के विस्फोट के समय यह गैस मुक्त तत्त्व के रूप मे निकलता है। हम इसे पानी, अम्ल, क्षार, मास, चर्बी तथा तेल आदि मे यौगिक अवस्था में पाते है। पृथ्वी का तीन चौथाई भाग पानी है और वजन के हिसाब से पानी का एक नवाँ भाग हाइड्रोजन है। इसका रासायनिक सकेत H है।

हाइड्रोजन गैस बनाने की विधि

(१) पानी से—गधकाम्ल (sulphuric acid) मिश्रित पानी के अंदर से विद्युत्-प्रवाह चलाकर वैद्युत्-अपघटन करने पर उनसे आक्सीजन तथा हाइड्रोजन गैस मिलते हैं। आक्सीजन बनाने की विधियों मे हम इसके संबध मे जान चुके है।

(२) सोडियम या पोटैशियम धातु पर पानी की क्रिया से—इस प्रयोग को बहुत सावधानी से करना चाहिए, नही तो भयानक दुर्घटना होने की संभावना रहती है। सोडियम धातु के पानी के सपर्क मे आने से इतनी अधिक ऊष्मा निकलती है कि उत्पन्न हाइड्रोजन गैस तुरत ही जलने लगता है और इससे विस्फोट हो सकता है। इस कारण प्रयोग मे सोडियम की मात्रा बहुत ही कम होनी चाहिए। शुद्ध सोडियम के स्थान पर पारे मे घुला हुआ सोडियम व्यवहार किया जाता है ताकि उससे धीरे-धीरे हाइड्रोजन गैस निकलता रहे।

प्रयोगशाला में हाइड्रोजन बनाने की विधि

प्रयोगशाला मे दानेदार जस्ते पर तनु गंधकाम्ल की क्रिया द्वारा हाइड्रोजन गैस बनाई जाती है।

प्रयोग—दो मुँहवाली एक उल्फ बोतल लीजिए और उसमे थोड़े-से दानेदार जस्ते के टुकड़े डाल दीजिए। बोतल के दोनो मुँह पर छिद्रयुक्त काग लगाइए। काग के एक छेद मे एक थिस्लकीप इस भाँति लगाइए कि वह बोतल के तल तक चला जाए। दूसरे काग के छिद्र मे एक मुडी हुई काँच की निकासनली लगा दीजिए।

थिस्लकीप की सहायता से उल्फ बोतल मे इतना पानी भरिए कि कीप का निचला भाग पानी मे डूब जाए। अब एक गैसजार को पानी से भर कर, एक जलपूर्ण पात्र मे उलट कर, बी-हाइव शेल्फ पर रखिए और निकासनली का दूसरा सिरा इस गैसजार मे डालिए।

अब कीप की सहायता से उल्फ बोतल मे तनु गंधकाम्ल धीरे-धीरे डालिए। ज्यो ही गंधकाम्ल जस्ते के टुकड़े पर गिरेगा, त्यो ही हाइड्रोजन गैस निकलने लगेगा और मुडी हुई निकासनली मे से होकर गैसजार मे भरने लगेगा।

हाइड्रोजन गैस पानी मे नही घुलता है। इसलिए वह जार के पानी को
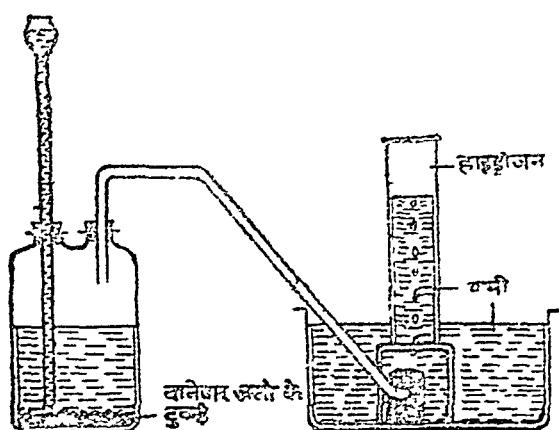
[चित्र ३७—प्रयोगशाला में हाइड्रोजन बनाना]

हटाकर उसमे जमा होने लगेगा और थोड़ी ही देर मे गैसजार जल-शून्य हो जाएगा। अब गैसजार के मुँह को काँच के ढक्कन से बंद करके उसे

सावधानी से निकाल लीजिए और उसके स्थान पर दूसरा जार रख दीजिए। इस प्रकार से कई जारों में हाइड्रोजन गैस भर लीजिए।

सावधानियाँ—इस प्रयोग से हाइड्रोजन गैस बनाने के समय निम्नलिखित बातों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए :

(१) प्रयोग के समय सभी उपकरण—जैसे उल्फ बोतल, निकासनली तथा गैसजार वायुरोधी हों, क्योंकि हाइड्रोजन गैस वायु में उपस्थित आक्सीजन से मिलने पर विस्फोटक मिश्रण बनाता है। इसलिए, प्रयोग में पहले जाँच कर लेना आवश्यक है कि उपकरण वायुरोधी है या नहीं, और फिर ध्यान रखना चाहिए कि प्रयोग के समय वायु उपकरण के अंदर न जा सके। पहले जार में बोतल से कुछ वायु आ जाती है। अतः इसे इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।

(२) प्रयोग के समय ध्यान रखना चाहिए कि उपकरण के पास किसी प्रकार की आग न हो, नहीं तो विस्फोट होने का डर है।

(३) थिस्लकीप का निम्न भाग प्रयोग के समय उल्फ बोतल के पानी में डूबा रहना चाहिए, नहीं तो हाइड्रोजन गैस बनने के बाद थिस्लकीप से होकर निकल जा सकता है।

हाइड्रोजन के गुण

भौतिक गुण—देखकर, चखकर, सूँघकर, रंग, स्वाद तथा गंध की जाँच करने से मालूम हो जाएगा कि हाइड्रोजन एक रंगहीन, गंधहीन और स्वाद-हीन गैस है।

हाइड्रोजन सबसे हल्का गैस है। इस गैस से वायु $14\frac{1}{2}$ गुना भारी है। बैलून में यह गैस भर देने से वह ऊपर उठ जाता है। इसी कारण हाइड्रोजन-गैसपूर्ण पात्र का मुँह नीचे की ओर रखा जाता है और एक पात्र से दूसरे पात्र में हाइड्रोजन गैस भरते समय गैसपूर्ण पात्र के ऊपर दूसरा पात्र उलट कर पकड़ा जाता है।

प्रयोग—एक वायुपूर्ण गैसजार को उलट कर पकड़िए और उसके मुँह के नीचे हाइड्रोजनपूर्ण एक जार को थोडा टेढा करके पकड़िए। हाइड्रोज़न नीचे के जार मे से निकल कर, ऊपर के जार से वायु को हटाकर उसमें भर जायगी। इससे प्रमाणित हो जाता है कि हाइड्रोजन गैस वायु से हल्का है। वायुपूर्ण जार के बजाय एक-एक करके आक्सीजन तथा कार्बन डाइ-आक्साइडपूर्ण जार लेकर परीक्षा कीजिए। देखिएगा कि इन्हे भी हटाकर हाइड्रोजन जार मे भर जाता है। कोई भी गैस लेकर परीक्षा करने पर यही दिखाई पड़ेगा। इससे मालूम हो जाता है कि हाइड्रोजन गैस सबसे हल्का गैस है। असल मे हाइड्रोजन ही सबसे हल्का तत्त्व है।

रबड़ का एक मामूली गुब्बारा लेकर नली की सहायता से उसमे हाइड्रोजन गैस भर दीजिए। हाइड्रोजन भर जाने के बाद गुब्बारे का मुँह डोरी से कसकर बाँध दीजिए और उसे हवा मे छोड़ दीजिए। देखिएगा कि गुब्बारा ऊपर उठता जा रहा है। हाइड्रोजन के वायु से हल्का होने के कारण ही ऐसा होता है।

हाइड्रोजन पानी मे घुलनशील नही है। इसलिए हाइड्रोजन बनाने के समय गैसजार मे से पानी को हटाकर उसमें गैस जमा किया जाता है।

रासायनिक गुण

हाइड्रोजन गैस स्वयं दहनशील है, किंतु वह दहन-क्रिया में सहायता नही करता है। अर्थात् इस गैस मे आग लगा देने से यह खुद तो जलने लगता है, किन्तु आग लगी हुई वस्तु इसके अदर डाल देने से वह बुझ जाती है।

प्रयोग—एक मोमबत्ती जलाकर उसे एक हाइड्रोजनपूर्ण गैसजार के अदर ले जाइए। देखिएगा कि जार के मुँह पर हल्की नीली रोशनी से

आग जलने लगी है, किन्तु जार के अंदर जलती हुई मोमबत्ती बुझ गई है। इससे प्रमाणित हो जाता है कि हाइड्रोजन स्वयं जलता है, किन्तु उसमें दूसरी वस्तु नही जल सकती। हाइड्रोजन जलते समय आक्सीजन के साथ मिलकर पानी बनाता है।

प्रयोग—प्रयोगशाला मे जिस विधि मे हाइड्रोजन बनता है, उस विधि से उल्फ की बोतल मे हाइड्रोजन बनाइए। एक U जैसी मुड़ी हुई यू-नली मे कैलशियम क्लोराइड रखकर उसके दोनो मुँहो पर छेद वाला काग लगा दीजिए। उल्फ की बोतल मे निकासनली कैलशियम क्लोराइड भरी हुई नली के एक मुँह के काग के अंदर प्रवेश करा दीजिए और उसके दूसरे मुँह के काग मे एक अन्य मुडी हुई नली लगा दीजिए। अब उल्फ की बोतल से हाइड्रोजन गैस निकलकर, यू-नली मे आकर, कैलसियम क्लोराइड के अंदर होकर दूसरे मुँह पर लगी हुई नली मे बाहर निकलने लगेगा। कैलसियम क्लोराइड के अंदर से आते समय हाइड्रोजन गैस पूर्णरूप से सूख
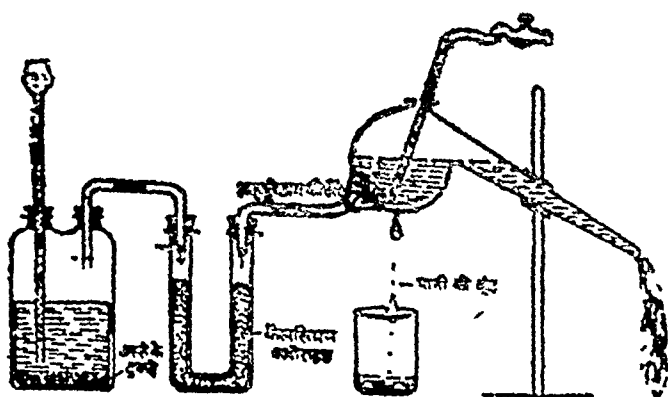
[चित्र ३८—वायु में हाइड्रोजन के जलने से पानी बनना]

जाता है और नली से सूखा हाइड्रोजन गैस निकलने लगता है। स्टैंड मे एक रिटॉर्ट लगाकर उसे इस नली के सामने रखिए और पानी के नल से एक

नली लगाकर रिटॉर्ट के अंदर कर दीजिए, ताकि रिटॉर्ट के अंदर पानी गिरता रहे। रिटॉर्ट के नीचे एक कांच का पात्र रख दीजिए और हाइड्रोजन में आग लगा दीजिए। हलकी नीली रोशनी के साथ हाइड्रोजन जलने लगेगा। इस लौ को पानी से ठंढे किए हुए रिटॉर्ट के नीचे लगने दीजिए। देखिएगा कि रिटॉर्ट पर पानी की बूंद जम रही है और टपक-टपक कर नीचे के पात्र मे जमा हो रही है। इससे मालूम हो जाता है कि हाइड्रोजन जलकर अर्थात् आक्सीजन से सम्मिलित होकर पानी बनाता है।

हाइड्रोजन गैस का लिटमस पर कोई प्रभाव नही होता है अर्थात् यह उदासीन है, न अम्लीय है और न क्षारीय।

हाइड्रोजन का उपयोग

१. इस गैस को धातुओ के काटने, पिघलाने या जोड़ने के लिए आक्सीजन के साथ व्यवहार किया जाता है। आक्सी-हाइड्रोजन-लौ का ताप बहुत अधिक होता है। आक्सी-हाइड्रोजन की लौ को चूने के टुकड़ो पर टकरा कर लाइम लाइट उत्पन्न की जाती है।

२. बैलून को उडाने या हवाई जहाज को हल्का करने के लिए बैलून में तथा हवाई जहाजो मे यह गैस भरा जाता है।

३ अनाक्सीकरण अपचयन के लिए व्यवहार किया जाता है। अर्थात् किसी वस्तु मे आक्सीजन अधिक हो जाने से उसे घटाने के लिए इसका व्यवहार होता है।

४. वानस्पतिक तेल को ठोस चर्वी या वनस्पति घी (डालडा आदि) में परिवर्तित करने के काम मे लाया जाता है। उदाहरण के लिए, मूंगफली के तेल मे अधिक दाव पर हाइड्रोजन प्रवाहित करने से, तेल का रंग तथा गंध नष्ट हो जाती है और तेल जमकर वनस्पति घी वन जाता है। इसे हाइड्रोजेनेशन कहते है।

आक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन-डाइ-आक्साइड तथा हाइड्रोजन के गुणों की तुलना

आक्सीजन	नाइट्रोजन	कार्बन-डाइ-आक्साइड	हाइड्रोजन
१. एक तत्त्व है।	१. एक तत्त्व है।	१. एक यौगिक है।	१ एक तत्त्व है।
२. स्वादहीन है।	२ स्वादहीन है।	२. बहुत हल्का अम्लीय स्वाद होता है।	२ स्वादहीन है।
३. गधहीन है।	३ गंधहीन है।	३ बहुत हल्की अप्रिय गंध होती है।	३. गधहीन है।
४. वर्णहीन है।	४. वर्णहीन है।	४. वर्णहीन है।	४. वर्णहीन है।
५. वायु से कुछ भारी है।	५. वायु से कुछ हल्का है।	५. वायु से काफी भारी है।	५. वायु से बहुत हल्का है। सबसे हल्का तत्त्व है।
६. पानी मे बहुत कम घुलता है।	६ पानी मे बहुत कम घुलता है।	६ पानी मे आसानी से घुलता है।	६ पानी मे नही घुलता है।
७. दहन-क्रिया मे सहायता करता है। स्वय दहन-शील नही है।	७. न दहन-क्रिया मे सहायक है और न स्वय दहनशील है।	७. दहन-क्रिया मे सहा-यता नहीं करता बल्कि आग बुझाने में काम आता है। स्वयं दहनशील नही है।	७. दहन-क्रिया मे सहायता नही करता है लेकिन स्वय दहनशील है।

आक्सीजन	नाइट्रोजन	कार्बन-डाइ-आक्साइड	हाइड्रोजन
८. श्वास-क्रिया मे सहायक है।	८. श्वास-क्रिया मे सहायक नहीं है—लेकिन आक्सीजन के साथ मिलकर उसे श्वास-ग्रहण-योग्य बनाता है।	८ श्वास-क्रिया मे सहायक नही है।	८. श्वास-क्रिया मे सहायक नही है।
९. साफ चूने के पानी पर कोई प्रभाव नही होता है।	९ साफ चूने के पानी पर कोई प्रभाव नही होता है।	९ साफ चूने के पानी को दुधिया बना देता है।	९ साफ चूने के पानी पर कोई प्रभाव नही होता है।
१०. उदासीन है। लिटमस पर कोई असर नही पडता है।	१० उदासीन है। लिटमस पर कोई प्रभाव नही पडता है।	१० पानी मे घुलकर अम्ल बनाता है, नीले लिटमस को लाल बनाता है।	१० उदासीन है। लिटमस पर कोई असर नही पडता है।

कठोर तथा कोमल जल
(Hard and soft water)

अधिकाश वस्तुएँ पानी मे घुलती है। इसलिए पानी जहाँ भी होता है या जहाँ-जहाँ से बहकर निकलता है उन जगहो की बहुत-सी वस्तुएँ घुल कर पानी मे मिल जाती है। विभिन्न स्थानो के जल के स्वाद, गुण आदि मे जो अतर पाये जाते है, उनका कारण यह है कि उन जगहो की मिट्टी से भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुएँ पानी मे मिल जाती है।

किसी-किसी कुएँ, तालाव या नदी के पानी मे साबुन का झाग आसानी से नही निकलता। ऐसे पानी मे कपड़ा साफ करने के लिए ज्यादा साबुन खर्च करना पडता है। आमतौर पर ऐसे पानी मे दाल भी आसानी से नही गलती है। जिस पानी मे आसानी से साबुन का झाग नही निकलता उसे **कठोर जल** (hard water) कहते हैं। ऐसा पानी पीने मे साधारणत खारा लगता है।

जिस पानी मे आसानी से साबुन का झाग निकलता है और अल्प प्रयास से कपडे साफ हो जाते हैं उसे **कोमल जल** (soft water) कहते हैं। साधारणत. यह पानी पीने मे स्वादिष्ट होता है और इसलिए इसे 'मीठा जल' भी कहा जाता है।

कठोर जल

कठोर जल मे कैलशियम बाइकार्बोनेट, मैगनेशियम बाइकार्बोनेट, कैलशियम क्लोराइड, कैलशियम सल्फेट, मैगनेशियम क्लोराइड, मैगनेशियम सल्फेट आदि मिले हुए होते हैं। जल मे मैगनेशियम तथा कैलशियम के तथा अन्य लवण मिल जाने से कठोरता आ जाती है और उसमे साबुन का झाग नही बनता।

कठोर जल मे साबुन का झाग न बनने का कारण यह है कि साबुन असल मे कार्बनिक अम्ल का सोडियम लवण है जो जल मे घुल जाता है। साबुन और पानी के इस घोल के अंदर हवा रहने के कारण झाग बनता है। साबुन का झाग कपड़े के मैल को घुलाकर अपने मे मिला लेता है और कपडे साफ हो जाते हैं। लेकिन जल मे कैलशियम या मैगनेशियम के लवण मिले हुए रहने पर, साबुन पानी मे घुल जाने के बजाए कैलशियम या मैगनेशियम के

लवण के साथ प्रतिक्रिया करके कार्बनिक अम्ल का कैलशियम या मैगनेशियम लवण बन जाता है, जो पानी में अघुलनशील होने के कारण पानी के साथ मिलकर घोल नही बना पाता। इसलिए ऐसे पानी मे साबुन रगड़ने पर न तो झाग ही निकलता है और न कपडे का मैल ही घुलकर निकल पाता है। काफी साबुन रगडने पर जब इस्तेमाल मे लाए गए पानी मे मिला हुआ कैलशियम या मैगनेशियम के समस्त लवण कार्बनिक अम्ल का कैलशियम या मैगनेशियम लवण बन जाते है, तभी उस पानी में साबुन का झाग बनता है और उसमें कपड़े साफ होते हैं। इसलिए कठोर जल मे किसी उपाय से इन लवणो को निकाल देने से पानी फिर मे कोमल बन जाता है।

जल की कठोरता दो प्रकार की होती है—

(१) अस्थायी कठोरता और

(२) स्थायी कठोरता

अस्थायी कठोरता

कुछ कठोर जल ऐसे होते है जिन्हें उबाल कर ठंढा करने से नीचे एक प्रकार का सफेद पदार्थ जम जाता है। इस पानी को छान लेने के बाद इसमें साबुन का झाग आसानी से निकल आता है अर्थात् उबाल लेने से ऐसे पानी की कठोरता दूर हो जाती है और वह कोमल जल बन जाता है। ऐसे पानी में कैलशियम या मैगनेशियम के बाइकार्बोनेट घुले हुए होते हैं। गरम करने पर घुलनशील कैलशियम बाइकार्बोनेट या मैगनेशियम बाइकार्बोनेट से कार्बन-डाइ-आक्साइड गैस निकल जाता है और वे अघुलनशील कैलशियम कार्बोनेट या मैगनेशियम कार्बोनेट मे परिवर्तित हो जाते है, जो सफेद ठोस कणो के रूप में पानी के नीचे बैठ जाते हैं।

जिस कठोर जल की कठोरता उबालने से दूर हो जाती है, उसकी कठोरता को **अस्थायी कठोरता** कहते हैं अर्थात् पानी मे कैलशियम बाइ-कार्बोनेट या मैगनेशियम बाइकार्बोनेट की उपस्थिति से जो कठोरता आ जाती है, उसे **अस्थायी कठोरता** कहा जाता है।

जल की अस्थायी कठोरता निम्नलिखित उपायो से भी दूर की जा सकती है—

चूने के पानी मे मिलाकर—निश्चित मात्रा में चूने का पानी मिलाने से अस्थायी कठोर जल में मिले हुए कैलशियम बाइकार्बोनेट या मैगनेशियम बाइकार्बोनेट अघुलनशील कैलशियम कार्बोनेट या मैगनेशियम कार्बोनेट में परिवर्तित हो जाते है। छानकर अघुलनशील ठोस पदार्थों को अलग कर देने मे जल की कठोरता दूर हो जाती है।

सावधानी—आवश्यकता मे अधिक चूना मिल जाने से पानी में स्थायी कठोरता आ जाती है। इसलिए चूना नियत मात्रा में ही मिलाना चाहिए।

सोडा या कास्टिक सोडा द्वारा—अस्थायी कठोर पानी मे सोडा या कास्टिक सोडा (सोडियम कार्बोनेट या सोडियम हाइड्रोक्साइड) मिला देने से घुलनशील बाइकार्बोनेट अघुलनशील कार्बोनेट में बदल जाता है और उसे छानकर अलग करके पानी को कोमल बनाया जा सकता है।

स्थायी कठोरता

जल मे कैलशियम क्लोराइड, मेगनेशियम सल्फेट, मैगनेशियम क्लोराइड, कैलशियम सल्फेट या कैलशियम तथा मैगनेशियम के अन्य लवण मिले हुए होने से उसमे जो कठोरता आ जाती है वह उबालने से दूर नही होती। उबालने से पानी की जो कठोरता दूर नही होती, उसे पानी की **स्थायी कठोरता** कहा जाता है। केवल रासायनिक विधि से ही इसे दूर किया जा सकता है।

सोडियम कार्बोनेट या कपड़ा धोने के सोडा द्वारा—स्थायी कठोरता वाले जल मे कपडा धोने का सोडा मिला देने से जल की स्थायी तथा अस्थायी, दोनो कठोरताएँ दूर हो सकती है। क्योंकि सोडा पानी में घुलकर उसमे मिश्रित क्लोराइड या सल्फेट से मिलकर सोडियम क्लोराइड तथा कैलशियम कार्बोनेट या सोडियम सल्फेट तथा कैलशियम कार्बोनेट बनता है। कार्बोनेट जल मे नही घुलता और पानी के नीचे जमने लगता है। इसे छानकर निकाल देने से जल कोमल बन जाता है। सोडियम क्लोराइड या सोडियम सल्फेट पानी मे घुलनशील होने के कारण उसीमे रह जाता है; लेकिन इससे पानी की कोमलता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस पानी में साबुन से कपडा साफ किया जा सकता है; लेकिन यह पानी पीने योग्य नही होता।

सावुन द्वारा—हम पहले ही देख चुके हे कि सावुन के साथ प्रतिक्रिया से कैलशियम तथा मैंगनेशियम के घुलनशील लवण, जिनके चलते पानी में कठोरता आ जाती हे, कैलशियम या मैंगनेशियम कार्वोनेट वन जाता है, जो पानी मे अघुलनशील होने के कारण अलग कर दिए जा सकते हैं और पानी की कठोरता दूर हो जाती है। सावुन या कपड़ा धोने के सोडा की सहायता से दोनों प्रकार की कठोरताएँ दूर की जा सकती हैं। लेकिन यह पानी भी पीने योग्य नही होता हे।

परम्यूटिट permutit) विधि द्वारा—परम्यूटिट कृत्रिम जिओलाइट है। ऐसे तो जिओलाइट एक प्रकार का खनिज पदार्थ है, लेकिन परम्यूटिट के रूप मे इस्तेमाल के लिए सोडियम कार्वोनेट, सिलिका और अल्यूमिना के मिश्रण को एक साथ गलाकर कृत्रिम जिओलाइट वनाया जाता है।

एक वेलनाकार पात्र मे नीचे मोटा वालू और ऊपर कृत्रिम जिओलाइट या परम्यूटिट भर दिया जाता है। ऊपर से कठोर जल डालने से वह जिओलाइट के अंदर से आते समय परम्यूटिट के सोडियम के साथ प्रतिक्रिया से अघुलनशील कैलशियम या मैंगनेशियम परम्यूटिट वन जाता है और छन-कर निकलने वाला पानी कोमल हो जाता है। क्योंकि पानी मे कैलशियम या मैंगनेशियम के लवण रहने के कारण ही उसमे कठोरता होती है। इस प्रक्रिया मे कैलशियम तथा मैंगनेशियम अलग हो जाने के कारण जल कोमल वन जाता है। जल मे सोडियम के लवण घुले रह. से जल की कोमलता पर कोई प्रभाव नही पड़ता।

एक गैलन पानी में ५ ग्रेन तक कैलशियम या मैंगनेशियम के लवण रहने पर पानी कोमल वना रहता है। लवण की मात्रा इससे अधिक हो जाने से पानी कठोर हो जाता है। एक गैलन में २० ग्रेन तक लवण रहने से **साधारण कठोर** और उससे अधिक होने पर पानी को **अति कठोर** कहा जाता है।

कठोर जल से नुकसान

पानी गरम करने की केतली के नीचे अक्सर एक सफेद रंग की पपड़ी-सी जम जाती है। अगर उसे समय पर साफ न किया गया तो थोड़े ही दिन में केतली के नीचे और दीवारों मे इसकी मोटी परत जम जाती है। ऐसी

हालत में उस केतली मे पानी गरम करने मे अधिक समय लगता है और अधिक जलावन खर्च करना पड़ता है। कठोर जल मे ठोस पदार्थ मिले रहने के कारण ही ऐसा होता है। क्योकि हम देख चुके है कि कुछ घुलनशील लवण उबालने से अघुलनशील लवण मे परिवर्त्तित हो जाते हैं और पात्र के नीचे जमने लगते है। साथ ही, नीचे लवण जम जाने से पात्र भी जल्द ही खराब हो जाता है।

भाप के इंजन से चलनेवाले कल-कारखानों मे, वायलरो मे पानी गरम करके भाप बनाया जाता है। कठोर जल से भाप बनाने मे, केतली की तरह वायलर मे भी लवणो की परत जमा हो जाती है। ऐसी हालत मे यह परत गरमी को पानी तक पहुँचने मे रुकावट डालती है और पानी गरम करने के लिए बहुत अधिक इंधन खर्च करना पडता है। साथ ही, लवण की क्रिया से वायलर की दीवारें कमजोर हो जाती हैं और वायलर फटकर दुर्घटना हो जाने की संभावना पैदा हो जाती है।

कठोर जल मे कपडे साफ करने के लिए अधिक साबुन खर्च करना पड़ता है।

इसमे दाल देर से गलती है। इसलिए दाल पकाने में अधिक जलावन खर्च हो जाता है।

लेनकि, कई प्रकार के कठोर जल, जिनमे कैलशियम के लवण घुले हुए होते हैं, मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होते हैं।

धातु और अधातु

हमारी दैनिक जीवन-यात्रा के लिए धातु अत्यावश्यक है। सूई से लेकर खाने-पकाने के वर्त्तन आदि लगभग सभी चीजे किसी-न-किसी धातु से ही वनती हैं। जूते के नीचे लगनेवाली कील से लेकर सुन्दर-सुन्दर गहने, रेल, मोटर, हवाई जहाज, वड़े-वडे कल-कारखाने आदि धातुओं से ही वनाये जाते हैं। सही माने मे कहा जा सकता है कि मानव-समाज की सभ्यता का इतिहास धातुओं के साथ संपूर्ण रूप से जुडा हुआ है।

अत्यंत प्राचीन काल से ही हमारे देश मे नाना प्रकार की धातुओं का प्रचलन था। धातु-विद्या मे प्राचीन भारत कितना अग्रसर था—दिल्ली के कुतुवमीनार के पास का लौह-स्तंभ आज भी उसका साक्षी वनकर खडा है।

लोहा, सोना, चाँदी, ताँवा, अल्युमिनियम, प्लैटिनम, क्रोमियम आदि कितनी ही साधारण तथा विरल धातुएँ किसी-न-किसी रूप मे सर्वदा हमारे काम मे आ रही है। प्रत्यक्ष रूप से धातुओ से न वनने पर भी लकड़ी की चीजें, कपड़े-लत्ते, कागज आदि सभी का वनना धातु-निर्मित औजार या कल-पुर्जों पर निर्भर है। रंग, इत्र, फिल्म, दवाई आदि भी नाना प्रकार के कल-पुर्जों की ही देन है। अतः धातु को, सभ्य मनुष्य का, जन्म से लेकर मृत्यु तक, प्रति मुहूर्त्त का सहचर कहा जा सकता है।

धातुओं तथा अधातुओं में अंतर

हम पहले पढ चुके हैं कि तत्त्व दो प्रकार के होते हैं—धातु तथा अधातु। धातुओ तथा अधातुओ का उनके भौतिक गुणो और रासायनिक गुणो के आधार पर भेद किया जाता है। किन्तु इस प्रकार के भेद में भी कुछ-न-कुछ अपवाद पाया जाता है।

(क) भौतिक गुणों के आधार पर अंतर

धातु	अधातु
धातु साधारण ताप पर ठोस अवस्था मे पायी जाती है। अपवाद—पारा, जो साधारण ताप पर द्रव अवस्था मे पायी जाती है।	अधिकतर अधातु साधारण ताप पर गैसीय तथा ठोस अवस्था मे पाई जाती है। आक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन आदि गैसीय अवस्था मे तथा कार्बन, गंधक, सिलिकन, आयोडिन, फास्फोरस आदि—ठोस अवस्था मे होते हैं। अपवाद—ब्रोमीन, जो साधारण ताप पर द्रव अवस्था मे पाया जाता है।
धातुओ मे एक प्रकार की चमक होती है जिसे धातव-चमक (Metallic lusture) कहा जाता है। साफ करके धातुओ को वहुत चमकदार वनाया जा सकता है।	अधातुओं मे इस प्रकार की कोई चमक नही होती है। अपवाद—ग्रेफाइट और आयोडीन।
आपेक्षिक घनत्व अधिक होता है। अपवाद—सोडियम, पोटाशियम आदि।	आपेक्षिक घनत्व कम होता है।
धातु प्रकाश का प्रवल परावर्त्तन करती है।	अधातु प्रकाश का दुर्वल परावर्त्तन करती है।
धातु ऊष्मा तथा विद्युत् का सुचालक है। अपवाद—सीसा।	अधातु उष्मा तथा विद्युत् का कुचालक है। अपवाद—ग्रेफाइट, जो विद्युत का सुचालक है। हाइड्रोजन अधातु होते हुए भी ऊष्मा का सुचालक है।

धातु	अधातु
धातु दृढ होती है और इसे पीट कर चादर का रूप दिया जा सकता है। अपवाद—एन्टीमनी, आरसेनिक, विसमथ।	अधातु दृढ़ नही होता है और इसे पीट कर चादर का रूप नही दिया जा सकता।
धातु को हथौडा आदि से पीटने से एक प्रकार की ध्वनि निकलती है, जो धातव-ध्वनि (Metallic sound) कहलाती है।	अधातु को पीटने पर धातव-ध्वनि नही निकलती है।

(ख) रासायनिक गुणों के आधार पर अंतर

धातु	अधातु
धातु के आक्साइड क्षारीय होते है। अर्थात् अगर धातु के आक्साइड को पानी मे घोलकर लिटमस पर घोल का प्रभाव देखा जाए तो वह घोल लाल लिटमस को नीला वना देता है। अपवाद—क्रोमियम और मैंगनीज के क्षारीय आक्साइड के अतिरिक्त अम्लीय आक्साइड भी होते है।	अधातु के आक्साइड अम्लीय होते हैं। इनके आक्साइड को पानी मे घालने से अम्ल वनता है, जो नीले लिटमस को लाल वना देता है।
धातु साधारणत: अम्लो मे घुलती है और इस रासायनिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हाइड्रोजन गैस निकलता है।	अधातु प्राय: अम्लो मे नही घुलती है और न अम्ल के प्रभाव से इनसे हाइड्रोजन गैस ही निकलता है।
धातु हाइड्रोजन के साथ साधारणत. यौगिक नही वनाती है और जो भी धातु के हाइड्राइड होते है वह अस्थायी होते है।	अधातु आसानी से हाइड्रोजन के साथ स्थायी हाइड्राइड वनाती है।
वैद्युत्-अपघटन मे धातु ऋणाग्र (cathode) पर ही जमा होती है, अर्थात् धातु धन-विद्युतीय (electro-positive) तत्त्व है।	वैद्युत् अपघटन मे ये प्राय· धनाग्र (anode) पर इकट्ठी होती है। अर्थात् ये ऋण-विद्युतीय (Electro-negative) तत्त्व है।

खनिज

प्रकृति मे धातु तत्त्व के रूप मे मुक्त तथा संयुक्त, दोनों अवस्थाओं में पायी जाती है। उदाहरण के लिए सोना, चाँदी, प्लेटिनम, पारा आदि मुक्त अवस्था मे और प्रायः बाकी सभी—जैसे सोडियम, मैग्नेशियम, सीसा, लोहा आदि—यौगिक रूप मे पाए जाते है। धातुओं के यौगिक, जिनके साथ अशुद्धियाँ मिली रहती हैं और जो पृथ्वी के भीतर खान मे पाए जाते है, खनिज (Minerals) कहलाते हैं। खनिज केवल धातुओं के यौगिक ही नही होते हैं। बहुत-से खनिज अधातुओं के यौगिक भी होते है। साधारणतः खान से अर्थात् भू-पृष्ठ के नीचे से जो भी शुद्ध या अशुद्ध यौगिक या तत्त्व निकाले जाते है वे खनिज के नाम से पुकारे जाते हैं।

आदि काल से ही भारतवर्ष नाना प्रकार के खनिजो के लिए प्रसिद्ध है। अब देश मे औद्योगिक विकास के साथ-साथ नई-नई खानों का पता लग रहा है और उनसे देश समृद्धशाली बनता जा रहा है। खनिज के अध्ययन के लिए इन्हे तीन श्रेणियो मे बाँटा जाता है। वे हैं—

(१) धातु खनिज,
(२) अधातु खनिज,
(३) ईंधन खनिज।

धातु खनिज

धातुओ के वे यौगिक, जो अशुद्धियो के साथ मिली हुई अवस्था मे प्रकृति मे पाए जाते हैं—उन्हे धातु खनिज कहते है। जिन खनिज पदार्थों से धातु का निकालना आसान तथा व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक होता है, उन्हे अयस्क (Ore) कहते है। नाना प्रकार के अयस्को मे विभिन्न धातुएँ कई रूपो मे पायी जाती है। जैसे—

१. आक्साइड के रूप मे—चाँदी, ताँबा, ऐल्युमिनियम, टीन, मेगनीज आदि।

२ सल्फाइड के रूप मे—चाँदी, ताँबा, शीशा, जस्ता, पारा आदि।

३ कार्बोनेट के रूप मे—कैलशियम, मैगनेशियम आदि।

४. नाइट्रेट के रूप मे—सोडियम और पोटैशियम।

अधातु खनिज

भारत मे कई तरह के अधातु खनिज भी पाए जाते है जैसे—अभ्रक (Mica), मोनाजाइट वालू (Monazite sand), ग्रेनाइट, एसवेस्टस, जिप्सम (Gypsum), पाइराइटिज (Pyrites) आदि।

अभ्रक (Mica, अवरख)

ससार-भर का सर्वोत्तम अभ्रक विहार मे मिलता है। अभ्रक-उत्पादन मे भारत का स्थान ससार मे सर्वप्रथम है। विहार के अलावा ट्रावनकोर, मैसूर और राजस्थान मे भी अभ्रक पाया जाता है।

मोनाजाइट वालू (Monazite sand)

यह ट्रावनकोर मे पाया जाता है और इससे थोरियम नामक तत्त्व मिलता है। थोरियम एक वहुमूल्य तत्त्व है, जिससे अणुशक्ति का उत्पादन होता है।

पाइराइटिज (Pyrites)

इस अयस्क से गधक प्राप्त होता है। विहार मे भी गंधक का खनिज मिलता है।

ईंधन खनिज

कुछ ऐसे खनिज है जिनसे जलाने की वस्तु या ईंधन प्राप्त होती है। भारत मे दो प्रमुख ईंधन खनिज पाए जाते है—(१) कोयला तथा (२) पेट्रोलियम।

कोयला

भारत के ईधन-खनिजो मे कोयला का महत्त्व सवसे अधिक है। विहार मे भारत का ८० प्रतिशत कोयला प्राप्त होता है। केवल झरिया-क्षेत्र में ही ५८ प्रतिशत कोयला निकलता है। झरिया-क्षेत्र के अलावा विहार में रामगढ, चन्द्रपुरा, वोकारो, गिरीडीह आदि और कई प्रमुख कोयला-उत्पादन के क्षेत्र है। वंगाल मे भी कई कोयला-उत्पादन-क्षेत्र है जिनमें रानीगंज, आसनसोल-क्षेत्र प्रमुख है। उड़ीसा, हैदरावाद और मध्यप्रदेश मे भी कोयला पाया जाता है।

पेट्रोलियम

इस खनिज को भू-तैल (Mineral oil) कहा जाता है। भारत के असम राज्य के डिगबोई-क्षेत्र मे बहुत दिनो से पेट्रोलियम निकाला जा रहा है। हाल मे ज्वालामुखी, काम्बे आदि स्थानो मे पेट्रोलियम मिलने लगा है। बंबई के निकटस्थ समुद्र के तल मे भी पेट्रोलियम के भंडार प्राप्त हुए है। पेट्रोलियम शुद्ध करके किरासन तेल, डिजल, पेट्रोल आदि प्राप्त होता है। पेट्रोलियम को शुद्ध करने की क्रिया मे पेराफिन, नैपथा आदि भी प्राप्त होते है। बिहार-राज्य के बरौनी मे पेट्रोलियम शुद्ध करने का एक बड़ा कारखाना बनाया गया है।

धातु-विज्ञान (Metallurgy)

धातुओ को उनके अयस्को से निकालने की क्रिया को **धातु निष्कर्षण** या **धातुकर्म** कहते है। इसकी कई प्रक्रियाएँ हैं। खनिज के साथ प्राय मिट्टी या पत्थर मिला रहता है जिसे **गांग** (Gangue) या **मैट्रिक्स** (Matrix) कहते है। इस मैट्रिक्स से अयस्क को पहले अलग करना होता है। इस क्रिया को **सांद्रण** (Concentration) कहते हैं।

सांद्रण

सांद्रण से अयस्क शुद्ध हो जाता है। सांद्रण कई प्रकार से किया जाता है—(१) भारात्मक (२) झाग द्वारा पृथक्करण (३) चुम्बकीय पृथक्करण। इन विधियो से शुद्ध या **सांद्र अयस्क** प्राप्त होता है। सांद्र अयस्क से विभिन्न विधिओ से धातु निकाली जाती है।

मिश्र धातु (Alloys)

मिश्र धातु दो या अधिक धातुओं के या एक धातु और दूसरे अधातु के मिश्रण से बनती है। साधारण भाषा मे इसे अशुद्ध धातु कहा जाता है। पीतल, काँसा, जर्मन सिल्वर आदि मिश्र धातु है।

मिश्र धातु के गुण अवयवी धातुओ के माध्यमिक गुण नही है बल्कि उनसे भिन्न होते है।

मिश्र धातु अपने अवयवी धातुओ से कठोर होती है जैसे—चाँदी और सोना में ताँबा मिलाने से मिश्रण की कठोरता बढ़ जाती है। मिश्र धातु की

दृढता भी अधिक होती है। इस्पात मे निकल मिलाने से मिश्रण अधिक दृढ़ तथा शक्तिशाली बन जाता है। मिश्र धातु का द्रवणांक उसमें मिश्रित धातुओ के द्रवणांक से कम ही रहता है। इसलिए धातुओ का द्रवणाक कम करने के लिए भी मिश्र धातु वनाई जाती है। मिश्र धातुओ के रासायनिक गुण भी अवयवी धातुओ के रासायनिक गुणो से भिन्न होते है। मिश्र धातु की घुलनशीलता भी कम हो जाती है।

संसार में जितनी शुद्ध धातुएँ पाई जाती है— उससे कई गुना अधिक मिश्र धातुएँ तैयार की जाती है।

मिश्र धातु वनाने की विधियाँ

(१) गलाकर—इस क्रिया मे दो या अधिक धातुओ को निश्चित अनुपात मे साथ-साथ गलाया जाता है और गलित अवस्था मे कोयले के टुकड़ो के साथ हिलाकर आवरण द्वारा ढक दिया जाता है जिससे आक्सीकरण न होने पाए और ठंढा होने पर उचित पदार्थ प्राप्त हो सके। पीतल, कांसा आदि मिश्र धातुएँ इसी विधि से वनाई जाती है।

(२) उच्च दाब के प्रभाव से—निश्चित मात्रा मे शीशा, टीन, विस्मथ तथा कैडमियम मिलाकर उच्च दाव से दवाकर एक मिश्र धातु वनती है जिसे ऊड्स मेटल (Woods metal) कहा जाता है।

(३) विद्युत् द्वारा विसर्जित करके—तांवे और जस्ते को विद्युत द्वारा साथ-साथ विसर्जित करने से पीतल वनता है।

धातु १२

धातु

तांवा (Copper)

तांवा, चांदी और सोने को मुद्रा धातु भी कहा जाता है। क्योंकि प्राचीन काल से ही इन धातुओ का व्यवहार मुद्रा (सिक्के) बनाने के लिए होता आ रहा हैं। इसके अतिरिक्त तांवा और कुछ हद तक चादी भी हमारे दैनिक उपयोग के नाना प्रकार वरतनो आदि के निर्माण मे प्राचीन काल से प्रयुक्त होती आ रही है। अति प्राचीन काल से ही भारत मे तावे का व्यवहार प्रचलित है। उन दिनो की ताम्र-निर्मित मूर्त्तियाँ तथा नाना प्रकार के पात्र आदि प्राचीन भारत की उच्च सभ्यता के परिचययक के रूप मे हमारे सामने वर्त्तमान हैं। प्रागैतिहासिक युग मे भी मनुष्य तांवे के अस्तित्व का पता लगा चुका था और इसका उपयोग करने लगा था।

तांवा एक तत्त्व है। इस धातु का रासायनिक सकेत Cu है। इसका रासायनिक नाम क्यूप्रम (Cupram) है। कहा जाता है कि साइप्रस के एक टापू मे इस धातु के अधिक परिमाण मे पाये जाने के कारण ग्रीको ने उस टापू के नाम पर इस धातु का नाम क्यूप्रम रखा था।

उपस्थिति

तांवा मुक्त तथा अमुक्त, दोनो अवस्थाओ मे मिलता है। मुक्त अवस्थ में तांवा, उत्तरी अमेरिका की सुपीरियर झील के पास, साइवेरिया के यूराल पर्वत में आस्ट्रेलिया, मैक्सिको, चीन तथा असम मे पाया जाता है।

तांवा अधिकतर यूक्त अवस्था मे पाया जाता है और पृथ्वी के अनेका स्थानों में इसका निष्कर्षण (Extraction) होता है। विहार में घाटशिला के पास तांवे की खानें है तथा वहाँ भारतीय कॉपर कारपोरेशन के कारखाने में आधुनिक विधि से इसका निष्कर्षण होता है। राजस्थान में भी इसकी खानें हैं।

तांबे के गुण

भौतिक गुण

शुद्ध तांबे का रंग विशेष प्रकार का चमकदार लाल (ताम्र वर्ण) होता है। यह धातु ऊष्मा तथा विद्युत् का सुचालक होती है। विद्युत् के सुचालक होने में इसका स्थान चाँदी के नीचे ही है। यह आघातवर्द्धनशील या तन्य (ductile) होती है तथा इससे आसानी से तार खींचा जा सकता है। तांबे का आपेक्षिक घनत्व ८.९३ है। यह १०८३°C पर पिघलता है।

रासायनिक गुण

तांँवा निष्क्रिय धातु है। अतः शुष्क वायु तथा साधारण पानी, साधारण ताप पर, इसपर कोई असर नही डालते है। लेकिन वायु में नमी होने से उसमे उपस्थित कार्वन-डाइआक्साइड तांवे पर असर डालकर उस पर एक हरे रंग का भास्मिक कार्वोनेट की पर्त जमा देता है। पर इस पर्त के नीचे तांवा संपूर्ण रूप से सुरक्षित रह जाता है। साधारण ताप पर तनु सल्फ्यूरिक या तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्लो की इसपर क्रिया नही होती है। लेकिन तनु नाइट्रिक अम्ल मे तांवा घुलता हैं। अधिक गरम अवस्था में आक्सीजन, क्लोरिन आदि के साथ प्रतिक्रिया से आक्साइड, क्लोराइड आदि बनते हैं।

तांवे का उपयोग

वर्त्तमान युग मे तांवे का सर्वप्रधान उपयोग विद्युत्-संवंधी यंत्रादि तथा वैद्युतिक तार वनाने मे होता है। विद्युत् का सुचालक होने के कारण पृथ्वी में उत्पादित तांवे का लगभग आधा भाग विद्युत्-उद्योग मे खर्च होता है। पुराने समय से लेकर आज तक सिक्के और वरतन वनाने के लिए भी इसका इस्तेमाल होता हैं। आभूषण तथा मूर्त्तियाँ वनाने में भी यह काम आता हैं। इलेक्ट्रोप्लेटिंग (Electroplating), इलेक्ट्रोटाइपिंग (Electrotyping) में तांवे का व्यवहार होता है। इनके अलावा वहुत-सी अत्यावश्यक मिश्र-धातुओं के लिए यह प्रधान अवयवी धातु है। नीचे तांवे की कुछ मिश्र-धातुओं का वर्णन दिया जा रहा है।

(१) पीतल (Brass)—पीतल चमकदार पीले रंग का होता है। वरतन आदि वनाने मे काम आता है। ६० से ८० प्रतिशत तांवा और ४० से

२० प्रतिशत जस्ता मिलाकर पीतल बनाया जाता है। जस्ते की मात्रा अधिक होने से पीतल कड़ा हो जाता है और कम रहने से मुलायम होता है।

(२) काँसा (Bronze)—चमकदार होता है तथा आसानी से पालिश हो जाता है। बरतन और मूर्त्तियाँ बनाने मे इसका इस्तेमाल होता है। इसमे ७५ से ९० प्रतिशत तक ताँबा और २५ से १० प्रतिशत टिन होता है।

(३) गन मेटल (Gun metal)—अत्यंत कड़ा होता है। तोप आदि बनाने में काम आता है। इसमे ८७ प्रतिशत तांबा, १० प्रतिशत टिन और ३ प्रतिशत जस्ता होता है।

(४) बेल मेटल (Bell metal)—८० प्रतिशत ताँबा और २० प्रतिशत टिन मिलाकर बनता है। इसकी ध्वनि मधुर होने के कारण इससे घंटा आदि बनाया जाता है।

(५) जर्मन सिल्वर (German silver)—चमकदार, सफेद और कड़ा होता है। बरतन आदि बनाने में प्रधानतः काम आता है। ५० प्रतिशत ताँबा, २५ प्रतिशत जस्ता और २५ प्रतिशत निकल मिलाकर बनाया जाता है।

इसके अलावा और कई प्रकार की मिश्र धातुएँ तथा नाना प्रकार के ब्रांज—जैसे फास्फोरस-ब्रांज, मैंगनीज-ब्रांज, अल्युमीनियम-ब्रांज आदि बनाने में ९८.७५ प्रतिशत से लेकर ८८ प्रतिशत ताँबे की आवश्यकता होती है। मशीन आदि बनाने के लिए ब्रांज अत्यावश्यक मिश्र धातु है। ताँबे के यौगिको में क्यूपरिक सल्फेट या कॉपर सल्फेट (Coppersulphate) सबसे महत्त्वपूर्ण है। साधारण भाषा में इसे तूतिया या नीला थोथा कहते है।

अल्प गरम तनु गंधकाम्ल को क्यूपरिक आक्साइड या क्यूपरिक कार्बोनेट के साथ प्रतिक्रिया से तूतिया प्राप्त होता है। सांद्रित गंधकाम्ल के साथ ताँबे की कतरन गरम करने से सल्फर डाइआक्साइड गैस और क्यूपरिक सल्फेट का घोल तैयार होता है। क्रिस्टलन द्वारा इस घोल से तूतिया मिलता है। व्यापार के लिए बड़े पैमाने पर तूतिया इस प्रक्रिया से बनता है।

तूतिया एक व्यापारिक वस्तु है। इसका उपयोग प्रधानत. दवा बनाने में; कीड़े-मकोड़े मारनेवाली औषधियाँ बनाने मे, कपड़ों की रंगाई-छपाई

आदि में, ताँबा शुद्ध करने में, इलेक्ट्रोप्लेटिंग आदि मे, विद्युत्-सेल वनाने मे तथा अन्य वहुत-से कामो मे होता है।

लोहा

मनुष्य ने लोहे का व्यवहार कव से सीखा यह तो कहना कठिन है, किन्तु यह सही है कि प्रागैतिहासिक काल मे ही मनुष्य ने लोहे का आविष्कार कर लिया था और अयस्क से लोहा प्राप्त करने लगा था। शुरू में लोहे का प्रयोग प्रधानतः शिकार तथा युद्ध के अस्त्रादि वनाने के लिए होता था। किन्तु वर्त्तमान युग मे मनुष्य-जीवन के हर पहलू के साथ लोहे का कुछ-न-कुछ संवंध अवश्य ही रहता है। आज किसी भी देश की समृद्धि उस देश मे उत्पादित लोहे के परिमाण पर वहुत हद तक निर्भर करती है। यह एक तत्त्व है और इसका रासायनिक सकेत Fe है।

लोहे का अयस्क

प्रकृति में लोहा काफी मात्रा में मौजूद है। भू-पृष्ठ का लगभग ४.५ भाग लोहा है। समस्त जीवित पदार्थों में लोहा पाया जाता है। लाल रक्त-कणों में तथा हरी पत्तियों मे भी लोहा होता है। किन्तु प्रकृति मे लोहा मुक्तावस्था में वहुत ही कम मिलता है। कही-कही उल्कापातिक लोहा (Meteoritic iron) पाया जाता है और ग्रीनलैंड मे वहुत अल्प मात्रा मे मुक्त लोहा भी पाया जाता है।

लोहा साधारणतः यौगिक रूप मे मिलता है जिसे लौह अयस्क (Iron ore) कहते हैं। विहार-राज्य के सिंहभूम जिले मे लोहे की कई वड़ी-वड़ी खानें हैं। विहार-राज्य के जमशेदपुर और वोकारो मे अयस्क से लोहा वनाने के वड़े-वड़े कारखाने है।

अयस्क से साधारणतः पहले ढलवाँ लोहा वनाया जाता है और फिर उससे पिटवाँ लोहा तथा इस्पात वनाए जाते हैं।

लोहे का गुण

(१) ढलवाँ लोहा या वूँदा (Cast iron or pig iron)—इस लो मे सवसे अधिक अशुद्धियाँ मिली रहती है और कार्वन की मात्रा २ सेहे४ प्रतिशत होती है। यह कड़ा होता है पर साथ ही भंगुर भी होता है। इस

कारण इसे पीट कर कोई वस्तु नही बनाई जा सकती है। इसके द्रवणाक कम होने के कारण इसको ढाल कर विभिन्न वस्तुएँ बनाई जाती हैं। इनमे जल्दी जंग नही लगता और इसलिए पानी निकालने की नलियाँ आदि बूँदा लोहे से बनती हैं। इससे स्थायी चुंबक नही बनता।

(२) **पिटवाँ लोहा या नरम लोहा (Wrought iron)**—इसमे कार्बन की मात्रा केवल ०.१२ से ०.२५ तक होती है। ढलवाँ लोहे को शुद्ध करके इसे बनाया जाता है। यह लोहा नरम होता है तथा इसे पीट कर इससे नाना प्रकार की वस्तुएँ बन सकती हैं। इससे भी स्थायी चुंबक नहीं बनता है। लेकिन विद्युत् चुम्बक (Electro magnet) बनाने में नरम लोहे का ही इस्तेमाल होता है।

(३) **इस्पात (Steel)**—इसमे ०.२ से लेकर १.५ प्रतिशत कार्बन होता है। इसका गुण कार्बन की मात्रा पर निर्भर करता है। कार्बन जितना कम होगा, इस्पात उतना ही पीटने योग्य नरम होगा। कार्बन की मात्रा जितनी अधिक होगी इस्पात उतना ही कठोर और भगुर होगा।

लाल गरम इस्पात को एकाएक पानी या तेल मे डुबा कर ठंढा करने से उसकी कठोरता बढ़ जाती है और साथ ही उसकी भंगुरता भी बढ जाती है। वस प्रक्रिया को **पानी चढ़ाना (Tempering or heat treatment)** कहते है। पानी चढाए हुए इस्पात को विभिन्न समय तक विभिन्न ताप पर गरम करके और धीरे-धीरे ठंढा करके उसकी भंगुरता दूर की जाती है। इस्पात लोहे का सबसे उपयोगी रूप है। इससे स्थायी चुम्बक बनाया जा सकता है।

लोहे की मिश्र धातु

इस्पात मे क्रोमियम, निकेल, मैंगनीज आदि अल्प मात्रा मे मिला देने से उसमे नाना प्रकार के विशेष गुण उत्पन्न हो जाते है। लोहे की कुछ मुख्य मिश्र धातुएँ इस प्रकार हे :—

क्रोमियम इस्पात या स्टेनलेस स्टील (Stainless steel)—इसमें साधारणत ११.५ से १२ प्रतिशत क्रोमियम मिलाया जाता है। यह धातु चमकदार उजली होती है। इसमे न जग लगता है और न अम्ल की ही क्रिया होती है। साथ ही यह बहुत कड़ी होती है। इससे बॉल-बियरिंग, ब्लेड, डाक्टरी औजार, नाना प्रकार के बरतन आदि बनते है।

निकल इस्पात :—इसमें ३.५ प्रतिशत निकल होता है। इससे धातु मे अधिक लचीलापन हो जाता है। इसमें जंग भी कम लगता है। बिजली के तार, धुरे, हवाई जहाज आदि के कई अश, कवच प्लेट (Armour plate) आदि इससे बनाये जाते है।

मैनगेनीज इस्पात—१२ से १५ प्रतिशत तक मैनगनीज के सम्मिश्रण से यह मिश्र धातु बनती है। यह बहुत कड़ी और कम घिसनेवाली धातु है। इसका मुख्य उपयोग रेल की पटरी, मजबूत तिजोरी, पत्थर तोड़ने के यंत्रादि बनाने के लिए होता है।

टंगस्टन इस्पात .—इसमे १४ से २० प्रतिशत टगस्टन मिलाया जाता है। यह मिश्र धातु अत्यत कडी और मजबूत होती है। इससे अधिक तेजी से चलनेवाले औजार, काटनेवाले औजार, स्प्रिंग आदि बनते है।

इनवार इस्पात —इस्पात मे ३ से ६ प्रतिशत निकल मिलाकर इस धातु को बनाया जाता है। ऊष्मा से इसका प्रसारण बहुत ही कम होता है। इससे घड़ी के दोलक (Pendulum) की छड़े, लम्बाई नापने के स्केल आदि बनाए जाते है।

लोहे के यौगिक (**Iron compounds**)—व्यापारिक दृष्टि से लोहे के यौगिको मे फेरस सल्फेट (Ferrous sulphate) या हरा थोथा प्रधान है।

ऐल्युमिनियम (**Alluminium**)

ऐल्युमिनियम एक नित्य प्रयोजनीय धातु है। आजकल प्राय: प्रत्येक घर मे बरतन आदि के रूप मे ऐल्युमिनियम का व्यवहार होता है। इसके चूर्ण को अलसी के तेल मे मिलाकर जो रग बनता है उसका लेप लगा देने से धातु पर जंग नही लगता और वह सक्षारित नही होती है। इसका रासायनिक सकेत Al है। यह भी एक तत्त्व है।

प्रकृति से ऐल्यमिनियम युक्त अवस्था मे काफी मात्रा मे है। भू-पृष्ठ का लगभग ७.३ भाग इस धातु से बना है। किन्तु ऐल्युमिनियम कही भी मुक्त अवस्था मे नही पाया जाता। प्रकृति में निम्नलिखित यौगिकों के रूप मे यह पाया जाता है—

(१) ऑक्साइड—लाल, नीलम, कुरड पत्थर (Carundum stone) (Al_2O_3) आदि।

(२) हाइड्रेटेड ऑक्साइड—डायसपोर (diaspore) ($Al_2O_3H_2O$) बौक्साइट (Bauxite) (Al_2O_3, $3H_2O$)।

(३) फ्लोराइड—क्रायोलाइट (Cryolite) (AlF_3, 3NaF)।

(४) सिलिकेट—फेल्सपार (Felspar), काओलिन (Kaolin), चीनी मिट्टी (China clay), टूरमेलीन (Tourmaline), अवरख (Mica) आदि।

(५) सल्फेट—एल्युनाइट या एलमस्टोन।

साधारणतः बौक्साइट से ऐल्युमिनियम निकाला जाता है। बिहार राज्य के राँची जिले मे प्रचुर परिमाण मे बौक्साइट मिलता है और मूरी में ऐल्युमिनियम बनाने का बडा कारखाना है। इसके अलावा हमारे देश के मध्यप्रदेश, बबई, मद्रास, कश्मीर आदि राज्यो मे भी बौक्साइट मिलता है। सयुक्तराष्ट्र अमेरिका, फ्रास तथा आयरलैंड मे प्रचुर परिमाण मे बौक्साइट मिलता है।

ऐल्युमिनियम के गुण

यह हल्की धातु है। इसका रंग हल्का नीलापन लिए हुए सफेद होता है। ऐल्युमिनियम ऊष्मा तथा विद्युत् का सुचालक है। यह ६५८^{0}C पर पिघलता है।

ऐल्युमिनियम पर शुष्क वायु की कोई प्रतिक्रिया नही होती है किन्तु आर्द्र वायु से इसपर आक्साइड की हलकी तह जम जाने से इसकी चमक मलीन हो जाती है। शुद्ध पानी का शुद्ध ऐल्युमिनियम पर कोई प्रभाव नही होता है। नमक मिले हुए पानी मे व्यावसायिक ऐल्युमिनियम क्षारित होता है।

ऐल्युमिनियम पर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की प्रतिक्रिया से हाइड्रोजन प्राप्त होता है। कॉस्टिक सोडा के गरम घोल में इस धातु को घुलाने से सोडियम अलूमिनेट बनता है तथा हाइड्रोज निकलता है। आक्सीजन में ऐल्युमिनियम जलाने से तीव्र प्रकाश तथा ताप उत्पन्न होता है।

उपयोग—(१) हलका होने के कारण हवाई जहाज बनाने का ऐल्युमिनियम एक प्रधान उपकरण है।

(२) यह ऊष्मा और विद्युत् का सुचालक होने के कारण जहाज, मोटर आदि के इंजन वनाने में तथा विजली के तार वनाने में काम आता है।

(३) ऐल्युमिनियम पर वायु का असर वहुत कम होता है। इसलिए ऐल्युमिनियम के चदरों से मकान की छतें, दरवाजे तथा खिड़कियाँ आदि वनाई जाती है।

(४) यह वरतन आदि वनाने के काम मे लाया जाता है।

(५) इसके चूर्ण को तीसी के तेल मे मिलाकर चमकीला, सफेद रंग वनाया जाता है, जो साधारणत. **ऐल्युमिनियम पेंट** के नाम से वाजार में पाया जाता है। इस पेंट का लेप लोहे पर लगा देने से उसमें जंग नही लगता तथा संक्षारित नही होता है।

(६) ऐल्युमिनियम से नाना प्रकार की मिश्र धातुएँ बनती है जो हमारे लिए बहुत उपयोगी है।

(७) प्रकृति में पाए जानेवाले अधिकतर बहुमूल्य रत्न इस धातु के यौगिक है।

ऐल्युमिनियम का मिश्र धातु

ऐल्युमिनियम से कई अत्यंत उपयोगी मिश्र धातुएँ बनती है। उनमे कुछ मुख्य मिश्र धातुओ का वर्णन नीचे दिया जा रहा है :—

ऐल्युमिनियम ब्रांज (Alluminium bronze)

इस मिश्र धातु में ताँवा ८७ ९ प्रतिशत और ऐल्युमिनियम १२.१ प्रतिशत होता है। इसका रंग सुनहरा होता है तथा यह संक्षारित नही होती है। इससे कई देशो मे सिक्के वनाए जाते है। वरतन तथा सस्ते गहने आदि भी इससे वनते है।

ड्यूरेलुमिन (Duralumin)

यह मिश्र धातु हलकी तथा मजवूत होती है तथा संक्षारित नही होती है। हवाई जहाज वनाने में इसका उपयोग होता है। इसमें ९५ प्रतिशत अल्युमिनियम, ०·५ प्रतिशत मैगनेशियम, ४ प्रतिशत ताँवा और ०·५ प्रतिशत मैंगनीज होता है। यह अल्युमिनियम की सवसे महत्त्वपूर्ण मिश्र धातु है।

मैगनेलियम (Magnalium)

यह मिश्र धातु भी काफी मजबूत होती है तथा इसे खरादा जा सकता है। इससे मशीन के पुरजे बनते हैं। इसमें १२ प्रतिशत तक मैगनेशियम रहता है।

निकालॉय (Nickeloy)

ऐल्युमिनियम ६५ प्रतिशत, तांबा ४ प्रतिशत और निकल १ प्रतिशत के मिश्रण से यह मिश्र धातु बनती है। यह बहुत हल्की तथा मजबूत होने के कारण हवाई जहाज बनाने मे अधिक व्यवहृत होती है।

मिश्र धातु

इसमें ९२.५ प्रतिशत ऐल्युमिनियम, ४ प्रतिशत तांवा, २ प्रतिशत निकल और १.५ प्रतिशत मैगनेशियम होता है। यह मिश्र धातु संक्षारण-विरोधी, मजबूत तथा हलकी होती है। इसे पिघलाकर सांचे में ढाली जा सकती है। इंजन के पिस्टन आदि बनाने के काम में आती है।

ऐल्युमिनियम के यौगिक

ऐल्युमिनियम ऑक्साइड

पुखराज (Topaz), लाल (Ruby), नीलम (Sapphire), एमरी (Emery) आदि प्रकृति में पाए जानेवाले बहुत से बहुमूल्य रत्न असल में ऐल्युमिनियम ऑक्साइड के ही विभिन्न रूप हैं। इसलिए ऐल्युमिनियम ऑक्साइड या अल्युमिना से ऐल्युमिनियम लवण आदि बनाने के अलावा कृत्रिम रत्नादि भी बनाये जाते है।

ऐल्युमिनियम सल्फेट

अल्युमिना या ऐल्युमिनियम हाइड्रॉक्साइड को गरम गंधकाम्ल में घोल-कर क्रिस्टलन द्वारा यह प्राप्त होता है। व्यापारिक रूप से इसे बनाने के लिए चीनी मिट्टी के बारीक चूर्ण को गंधकाम्ल के साथ गरम करके फिर पानी में घोला जाता है और उस घोल से क्रिस्टलन द्वारा ऐल्युमिनियम सल्फेट प्राप्त किया जाता है। कपडे रँगने तथा छापने के लिए पक्का रंग बनाने में, चमडा पकाने में, पानी साफ करने मे, आग बुझाने के यंत्रों में, कागज बनाने की प्रक्रिया आदि में इसका प्रयोग होता है।

फिटकिरी (Alum)

पोटैशियम तथा ऐल्युमिनियम का युग्म सल्फेट होने के कारण इसे मिश्र लवण (Double salt) कहते हैं। व्यापारिक तौर पर साधारण फिटकिरी बनाने के लिए फिटकिरी पत्थर (Alum stone) या अल्युनाइट (Alunite) को बारीक पीसकर तनुगंधकाम्ल के साथ उबाला जाता है। फिर इसे छान-कर पोटाशियम सल्फेट मिला दिया जाता है इस घोल से क्रिस्टलन द्वारा फिटकिरी प्राप्त होती है।

कटे हुए स्थान से खून निकलना बन्द करने के लिए फिटकिरी का इस्तेमाल होता है। ऐल्युमिनियम सल्फेट जिन कामों मे आता है– फिटकिरी भी लगभग उन सभी कामो मे व्यवहृत होती है।

अध्याय १३

अधातु

कार्वन

प्रकृति में जितनी चीजें मिलती हैं उनमें लगभग सभी में कुछ-न-कुछ मात्रा में कार्वन है। समस्त सजीव पदार्थों मे कार्वन एक मुख्य तत्त्व है। पृथ्वी में असंख्य वस्तुएँ हैं, जो सजीव पदार्थों के सड़ने-गलने तथा जलने से पैदा होती हैं—इसलिए उनमे भी कार्वन होता है। कार्वन के यगिको की संख्या भी वहुत ही अधिक है। कार्वन का रासायनिक संकेत C है।

प्रकृति मे कार्बन मुक्तावस्था में तथा यौगिक अवस्था मे मिलता है। मुक्तावस्था में कार्वन प्रधानत. दो तरह के होते हैं—क्रिस्टलीय (Crystalline) और अक्रिस्टलीय (Aamorphous)।

हीरा

हीरा संसार मे सवसे कठोर पदार्थ है। यह पृथ्वी की सवसे मूल्यवान वस्तुओ में से एक है। प्राचीन काल से आभूषण के रूप मे हीरे का उपयोग होता आ रहा है। कोहिनूर हीरा, होप हीरा आदि कई हीरे अपने विचित्र इतिहास के लिए ससार-भर में प्रसिद्ध है।

उपस्थिति

इन दिनों सवसे अधिक मात्रा मे हीरा दक्षिण तथा पूर्व अफ्रीका मे प्राप्त होता है। इन स्थानों के अलावा आस्ट्रेलिया, ब्राजील सोवियत सघ तथा भारत में भी हीरा पाया जाता है। कहा जाता है कि मुगल बादशाहों के समय राँची के पहाड़ों मे भी हीरा मिलता था।

गुण

हीरा कार्वन का शुद्ध रूप है। इसमे ९९·५ प्रतिशत कार्वन होता है। शुद्ध हीरा रगहीन पारदर्शी होता है। लेकिन कुछ हीरे लाल, नीले, गुलाबी, हरे आदि रंगो के भी होते हैं। हीरे मे रंग, उसमें उपस्थित विभिन्न

अशुद्धियों के कारण ही होता है। वोर्ट (Bort) तथा कार्वोनाडो (Carbc-nado) नाम के काले और भूरे रंग के हीरे भी मिलते है। हीरा जितना ही रंगहीन होगा, उसकी कीमत उतनी ही अधिक होगी। अधिकतर हीरे के रंग में थोड़ा-सा पीलापन होता हैं।

हीरे का क्रिस्टल घनाकार (Cubical) तथा अष्टफलक (Octohedral) होता है। प्राकृतिक हीरे को काटकर इसे इच्छानुसार रूप दिया जाता है।

हीरा विद्युत् तथा ऊष्मा का कुचालक होता है। नमी, हवा, पानी आदि का न तो इसपर कोई प्रभाव ही होता है और न किसी द्रव में यह घुल ही जाता है। ऑक्सीजन में या हवा मे इसे गरम करने से कार्वन-डाइऑक्साइड गैस वनता है। पोटाशियम डाइक्रोमेट तथा गंधकाम्ल के मिश्रण के साथ २००^{0}C पर गरम करने से भी कार्वन-डाइऑक्साइड गैस वनता है।

प्राकृतिक हीरा एक्स-किरण (X-ray) के लिए पारदर्शी होता है। कांच एक्स-किरण के लिए पारदर्शी नही होता है। इसलिए असली तथा नकली हीरे को एक्स-किरण की सहायता से वहुत आसानी से पहचाना जा सकता है।

कृत्रिम हीरा

वैज्ञानिको ने प्रयोगशाला मे भी हीरा वनाने की विधि का आविष्कार कर लिया है। लेकिन यह हीरा वहुत छोटा होता है और इसे वनाने में इतना खर्च होता है कि व्यापारिक दृष्टि से इसका कोई महत्त्व नही है।

वैज्ञानिक मोयसों (Moission) के द्वारा किये गए प्रयोग के अनुसार कृत्रिम हीरा वनाने के लिए एक पात्र मे शुद्ध लोहे और कोयले को मिलाकर गरम किया जाता है। तापमान ३५००^{0}C से ४०००^{0}C हो जाने पर लोहा गल जाता है और उस द्रव के अदर कोयला मिल जाता है। इसके वाद ३२७^{0}C तापमान पर पिघले हुए सीसे (lead) के अंदर पात्र को डालकर एकाएक ठंढा किया जाता है। एकाएक ठढा होने की क्रिया मे लोहे का ऊपरी हिस्सा ठढा होकर ठोस हो जाता है और भीतर के द्रव पर दाव वढ़ता जाता है। इस ऊष्मा और दाव से अंदर मिले हुए कोयले का कुछ अंश हीरा तथा कुछ अश ग्रेफाइट वन जाता है। लोहे को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा

जलाकर अलग कर लिया जाता है और पात्र में हीरा तथा ग्रेफाइट बचा रहता है जो अंत में निकाल लिया जाता है।

उपयोग—आभूषण आदि बनाने के अलावे हीरे का अन्य व्यापारिक उपयोग भी होता है। हीरे से कांच काटने तथा उनमे छेद करने के औजार बनते हैं। कुछ यंत्र बनाने के लिए विशेषकर पत्थरो की चट्टान मे छेद करने के यंत्र—ड्रिल—बनाने के लिए हीरे का व्यवहार होता है।

ग्रेफाइट (Graphite)

ग्रेफाइट साधारणतः काले रग का होता है। यह चिकना, मुलायम तथा चमकदार होता है। इसके क्रिस्टल षट्कोणीय (Hexagonal) होते हैं। इसको घिसने से काला दाग पड़ जाता है और यह बहुत ही आसानी से घिस भी जाता है। इस गुण के कारण पेंसिल बनाने के लिए ग्रेफाइट का व्यवहार होता है। नमी, वायु आदि का इसपर प्रभाव नही पड़ता है। अधिक तापमान पर आक्सीजन के संस्पर्श मे आने से इससे कार्बन-डाइऑक्साइड गैस बनता है। लेकिन गरम करने पर ग्रेफाइट पिघलता नही है। ग्रेफाइट विद्युत् का सुचालक है।

उपस्थिति

प्राकृतिक ग्रेफाइट लंका, दक्षिण भारत, इटली, रूस के साइबेरिया प्रात, अमेरिका आदि देशों मे अधिक मात्रा मे मिलता है।

ग्रेफाइट से लिखने की पेंसिल बनाने के अलावा, विद्युत् के सुचालक होने के कारण, इससे इलेक्ट्रोड्स (Electrodes) बनते है। टार्च की बैटरी बनाने में इसका इस्तेमाल होता है। दुर्गलनीय (ताप से न गलनेवाला) होने के कारण इससे घड़िए (क्रुसिबल्स—Crucibles) बनाये जाते है। यंत्रो के चलायमान अंशों को घिसने से बचाने के लिए यह स्नेहक (Lubricant) का काम करता है तथा लोहे को जंग लगने से बचाने के लिए भी ग्रेफाइट का प्रयोग होता है।

कृत्रिम ग्रेफाइट

ग्रेफाइट कृत्रिम उपाय से भी बनाया जाता है। इन दिनों साधारणतः ग्रेफाइट बनाने के लिए एचीसन प्रक्रिया (Acheson process) काम में

लाई जाती है। वालू और कोयले के चूर्ण को विद्युत् भट्ठी मे, उच्च तापमान पर तीस घटे तक गरम करके कृत्रिम ग्रेफाइट वनाया जाता है।

अक्रिस्टलीय कार्वन

अक्रिस्टलीय कार्वन के प्रधान तीन रूप होते हैं—कोयला (Charcoal), कजली (Lamp black) और पत्थर कोयला (Coal)।

कोयला

कोयला कई प्रकार का होता है—(१) लकड़ी का कोयला, (२) चीनी कोयला, (३) अस्थि कोयला तथा (४) रक्त कोयला।

लकड़ी का कोयला

लकड़ी का कोयला या काष्ठ-कोयला लकडी का सीमित हवा मे जलाकर वनाया जाता है। वड़े पैमाने पर लकड़ी का कोयला वनाने के लिए हवा आने-जाने का रास्ता रखकर लकड़ी का ढेर लगाया जाता है और उसे ऊपर से मिट्टी, घास आदि से ढँक दिया जाता है। लकड़ी जलकर जव अंगारे का रूप ले लेती है और उससे नीली शिखाएँ निकलने लगती हैं, उस समय हवा आने-जाने के रास्ते को वन्द करके उसे वुझा दिया जाता है। इस प्रकार, समय पर वुझा देने से अंगारे राख होने के वजाए कोयला वन जाते है।

काष्ठ-कोयला वनाने की यह रीति वहुत पुराने समय से प्रचलित है। आजकल लकडी के शुष्क आसवन या विच्छेदक आसवन (Dry or destructive distillation) से भी काष्ठ-कोयला वनाया जाता है। इस प्रक्रिया मे काष्ठ-कोयले के साथ-साथ काष्ठ-राल (Woodtar), काष्ठ-गैस तथा अन्य कई पदार्थ मिलते है। वस्तु को वायु की अनुपस्थिति में वंद पात्र के अंदर उत्तप्त करके विभिन्न पदार्थों में विभाजित करने की क्रिया को **शुष्क या विच्छेदक आसवन** कहते है।

शुष्क आसवन के लिए लोहे के वडे-वड़े रिटॉर्टो या वक यंत्रो मे लकड़ी को रखकर उसे काफी देर तक (लगभग ४००^{0}C तापमान पर) गरम किया जाता है। इस प्रकार से वंद जगह मे जलने से लकड़ी मे से कोई भी पदार्थ हवा में

अस्थि-कोयला

अस्थि-कोयला पाने के लिए हड्डियो को ठीक से साफ करके शुष्क आसवन किया जाता है। आसवन से मिले हुए कोयले को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (Hydrochloric acid) से साफ करके शुद्ध कार्बन प्राप्त किया जाता है। इसका इस्तेमाल कारखाने मे चीनी साफ करने के लिए किया जाता है।

रक्त-कोयला

रक्त-कोयला रक्त के शुष्क आसवन द्वारा प्राप्त होता है।

कजली (Lamp black or soot)

जिन वस्तुओ मे कार्बन की मात्रा अधिक होती है उन्हे जलाते समय उनसे काला-काला धुआँ निकलता है। जलते समय जितनी कम हवा लगेगी, धुआँ उतना ही अधिक निकलता है। इस धुएँ पर कोई वस्तु रखने से उसमे कालिख लग जाती है। इस प्रकार की कालिख को जमा करके कजली बनाई जाती है। आँखो मे लगानेवाला काजल, सरसों के तेल के जलते हुए दीप पर, काजलदान रखकर बनाया जाता है। कजली स्याही बनाने के काम मे आती है।

पत्थर-कोयला (Coal)

पत्थर-कोयले को खनिज कोयला भी कहा जाता है। इसे खानों से काट कर बाहर निकाला जाता है। भारतवर्ष के बिहार-राज्य मे सबसे अधिक पत्थर-कोयला मिलता है।

सही माने मे पत्थर-कोयले को कार्बन का एक रूप नही कहा जा सकता है, क्योकि इसमे मुक्त कार्बन की मात्रा कम होती है। अधिक मात्रा में कार्बन इसमे सयुक्त रूप मे ही रहता है। फिर भी इसमे सब मिलाकर ६०% से ६५% तक कार्बन रहता है और इसलिए इसे कार्बन ही माना जाता है।

पत्थर-कोयला भी लकड़ी के कोयले जैसी वनस्पति से ही बनता है। लाखो-लाख साल पहले जो पेड़-पौधे किसी प्राकृतिक दुर्घटना के कारण मिट्टी के नीचे दब गये थे, वे भूगर्भ के अंदर उच्च ऊष्मा और उच्च दाब के कारण धीरे-धीरे अपघटित होकर कोयला बन गए है। पेड़-पौधे जितने अधिक दिन

तक मिट्टी के नीचे दवे रहेंगे उनका अपघटन उतना ही अधिक होगा और उसमें कार्वन की मात्रा वढ़ती जाएगी। कार्वन की मात्रा के हिसाव से पत्थर-कोयले को निम्नलिखित चार प्रधान भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

१. पीट (Peat) :—इसमें कार्वन की मात्रा लगभग ५७% से ६०% होती है। इसे साधारणतः इस्तेमाल नही किया जाता है।

२ भूरा कोयला (Brown coal or lignite) :—इसमें लगभग ६०% से ६७% तक कार्वन होता है। इसे जलाने में इस्तेमाल किया जाता है। इसको जलाने से ऊष्मा कम निकलती है और राख अधिक।

३. विटुमिनस कोयला (Bituminous coal):—यह साधारण कोयला है। इसमें लगभग ८५% कार्वन रहता है। इस कोयले से कोक (Coke) और कोल गैस (Coal gas) वनाए जाते हैं।

४. एन्थ्रासाइट कोयला (Anthracite coal) .—इसमें कार्वन की मात्रा सवसे अधिक होती है—लगभग ९४ प्रतिशत। यह चमकदार, काला और कड़ा होता है और इसे जलाने से राख तथा धुआँ वहुत कम निकलता है।

पत्थर-कोयला सभ्य समाज की एक नित्य प्रयोजनीय वस्तु है। ईंधन के रूप मे घरो मे खाना पकाने मे लेकर रेल, जहाज, कल-कारखाने आदि चलाने के लिए इसकी आवश्यकता होती है। इसके उपोत्पादों (Byproducts) से वहुत तरह की चीजें वनती हैं।

विच्छेदक आसवन द्वारा, वड़े पैमाने पर कोक और कोल गैस वनाते समय वकयंत्रो के ऊपरी भाग मे कालिख-सी जम जाती है। इसे गैस कार्वन (Gas carbon) कहते हैं। यह लगभग शुद्ध कार्वन होता है तथा विद्युत् और ऊष्मा का सुचालक होने के कारण इसे टार्च आदि की वैटरी वनाने मे इस्तेमाल किया जाता है।

पत्थर-कोयले का शुष्क या विच्छेदक आसवन

वंद पात्र मे, $1000^{0}C$ से $1400^{0}C$ तापमान पर कोयले का शुष्क या विच्छेदक आसवन करने पर निम्नलिखित वस्तुएँ मिलती हैं :—

१. कोल गैस—मुख्यतः यह ईंधन के रूप मे जलाने के काम मे लाया जाता है। यह कार्वन-मनोआक्साइड, हाइड्रोजन, मिथेन इत्यादि कई गैसों

का सम्मिश्रण है। यह गैस रंगहीन है। वहुत-से स्थानो में इससे बत्ती भी जलाई जाती है।

२ कोलतार या अलकतरा (Coaltar)—इससे कई प्रकार के रंग, दवाएँ, सुगंधियाँ तथा वेंजिन आदि वनते है। इससे सड़क वनानेवाला पिच (Pitch) भी वनता है। यह काले रंग का गाढा द्रव होता है। लकड़ी, बाँस, लोहा, पीतल आदि को पानी, नमी आदि के प्रभाव से वचाने के लिए उनपर इसका लेप लगाया जाता है। कोलतार लकडी आदि को दीमक लगने से भी वचाता है।

३. अमोनियम द्रव (Ammonical liquor)—इस रंगहीन द्रव से मुख्यत अमोनिया गैस वनाया जाता है। साथ ही, इससे अमोनियम सल्फेट नाम का रासायनिक खाद तथा नौसादर भी वनता है।

४. कोक—यह कई प्रकार के धातुओ के अयस्क से धातु-निष्कर्षण के लिए काम आता है। साथ ही इसे ईंधन के रूप मे भी व्यवहार किया जाता है।

कोलतार का आशिक आसवन (Fractional distilation) करने से निम्नलिखित चीजे मिलती है :—

१. ८०°C से १७०°C के वीच हल्का तेल (Light Oil) मिलता है। इससे मुख्यत वेंजिन बनाया जाता है।

२. और अधिक तापमान पर अर्थात् १७०°C से २३०°C के वीच मध्य तेल या कार्बोलिक अम्ल (Middle Oil or Carbolic acid) मिलता है। यह फिनाइल तथा नैंप्थलीन वनाने मे काम आता है।

३. तापमान और वढाने पर यानी २३०°C से २७०°C के वीच भारी तेल या क्रियोजोट तेल (Heavy oil or Creosote oil) मिलता है। इससे क्रिसोल (Cresole) मिलता है।

४ अंत मे २७०°C से ३६०°C तापमान के वीच एंथ्रासीन या हरा तेल (Anthracne oil or Green oil) मिलता है।

५. अवक्षेप के रूप में पीच (Pitch) मिलता है। इससे मुख्यतः सड़कें बनाई जाती हैं।

हम देखते है कि प्रकृति में कार्बन एकाधिक रूप में मिलता है। इनके भौतिक तथा रासायनिक गुणो मे बहुत अंतर रहने के बावजूद ये सब कार्बन तत्त्व के ही विभिन्न रूप है। तत्त्वो के इस प्रकार के एकाधिक रूप को उनके अपररूप (Allotrope) कहते है। इस प्रकार हीरा, ग्रैफाइट, कोयला तथा पत्थर-कोयला कार्बन के अपररूप हैं। कार्बन के सभी अपररूपो मे कार्बन के गुण पाए जाते है। ये सब कम तापमान पर अक्रिय और हवा में जलने से कार्बन-डाइऑक्साइड गैस बनाते हैं। अधिक तापमान पर ये सभी धातुओ के साथ कारबाइड और गंधक के साथ कार्बन-डाइसल्फाइड बनाते हैं। इन बातो से प्रमाणित होता है कि ये सब कार्बन के ही विभिन्न रूप है।

गंधक (Sulphar)

गंधक एक बहुप्रचलित अधातु तत्त्व है। गंधक का इस्तेमाल पुराने जमाने से होता आ रहा है। प्राचीन भारत, रोम तथा ग्रीक-साहित्य में गंधक का वर्णन पाया जाता है। सबसे पहले इसका इस्तेमाल दवा बनाने के लिए होता था। बाद मे बारूद का आविष्कार होने पर इसका मुख्य प्रयोग बारूद बनाने में होने लगा। इसका रासायनिक संकेत S है।

प्रकृति में गंधक मुक्त तथा यौगिक, दोनों अवस्थाओ में मिलता है। बलूचिस्तान के सामरी नामक स्थान मे जमीन के नीचे से गंधक निकाला जाता है। इटली, जापान, सिसली आदि देशों मे भी ज्वालामुखी पहाड़ों के आस-पास गधक मुक्तावस्था मे मिलता है। इनके अलावा बहुत-से खनिजो के अयस्को मे यौगिक अवस्था मे गंधक मिलता है। अडा, सरसो के तेल, प्याज, लहसुन आदि में भी गंधक यौगिक अवस्था मे मौजूद रहता है।

गंधक-उत्पादन

सिसली, जापान आदि स्थानों में गंधक निकालने के लिए ढलवा स्थान पर इसको जमा करके आग लगा दी जाती है। आग से ऊपर का गंधक जल जाता है और नीचे का गंधक पिघलकर एक गढ़े में जमा होता है। इसमे ३ से ५ प्रतिशत अशुद्धियाँ रहती हैं और इसे **कच्चा गंधक** (Crude sulphur) कहते है।

मिट्टी के नीचे से गंधक निकालने के लिए **फ्रास प्रक्रिया** (Frasch process) नाम की विधि से काम लिया जाता है। इसमे पाँच **संकेंद्रीय नल**

(Concentric Pipes) युक्त एक यंत्र का जमीन के भीतर धँसाकर गंधक की तह तक पहुँचा दिया जाता है। इस यन्त्र के बाहरी नलो से अति तप्त (१८०°C) पानी को अत्यधिक दाब से नीचे भेजा जाता है। फिर बीच के नल से गरम हवा के झोके अदर भेजे जाते है और हवा के दाब से गर्म पानी से पिघला हुआ गंधक मध्य नल के दोनो बगल के नलो से होकर बाहर निकल आता है। इस विधि से निकाला। गया गंधक ९९.५ प्रतिशत शुद्ध होता है। अमेरिका के लूसियाना मे इस विधि से गंधक निकाला जाता है।
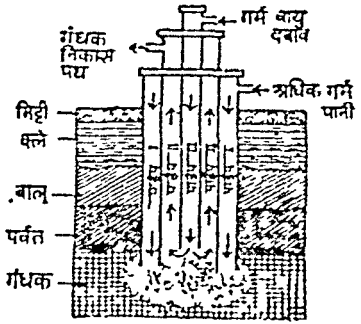
[चित्र ४०—फ्रास विधि से गधक निकालने का यंत्र]

बेलनाकार गंधक

कच्चे गंधक को आसवन द्वारा शुद्ध किया जाता है। आसवित गंधक को द्रव अवस्था मे ही बेलनाकार साँचो मे डालकर ठंढा किया जाता है। इस प्रकार से प्राप्त गंधक को बेलनाकार गंधक (Roll Sulphur) कहते है।

गंधक का गुण और उपयोग

गंधक एक ठोस पदार्थ है। इसका रंग साधारणत. पीला होता है। यह विद्युत् तथा ऊष्मा का कुचालक होता है। गधक पानी में नही घुलता है, लेकिन कार्बन-डाइसल्फाइड, अलकोहल, ईथर, बेंजिन तथा तारपीन मे घुल जाता है। शुष्क हवा का इसपर कोई प्रभाव नही पडता है; लेकिन आर्द्र हवा मे गधक-चूर्ण रखा रहने से धीरे-धीरे वह गंधकाम्ल मे परिवर्त्तित होता रहता है।

बारूद, दियासलाई, नाना प्रकार की औषधियाँ, कीटाणुनाशक दवाएँ, विरंजक तथा नाना प्रकार के औद्योगिक रासायनिक पदार्थ बनाने में गधक काम आता है।

गंधक पर ऊष्मा का विचित्र प्रभाव पड़ता है। गरम करने पर पहले १३०°C ताप पर गंधक पिघलकर पीले रग का बहनेवाला द्रव बन जाता है। लेकिन अधिक तप्त होने पर धीरे-धीरे यह काला होता जाता है और

गाढा होने लगता है। २३०^{0}C तापमान पर पहुँचकर यह लगभग ठोस और काला वन जाता है। २३०^{0}C तापमान से अधिक तप्त होने पर गंधक फिर से पिघलने लगता है। ४४०^{0}C तापमान पर यह उवलने लगता है और इससे वादामी लाल रंग का वाष्प निकलने लगता है।

गंधक के अपररूप (Allotropic modifications of sulphar)

गधक के दो क्रिस्टलीय तथा दो अक्रिस्टलीय—ये चार प्रधान अपररूप होते है।

क्रिस्टलीय—(१) रॉम्विक या अष्ट फलकीय गंधक (Rhombic or octahedral sulphur) तथा (२) प्रिज्मीय या एकनताक्ष गंधक Prismatic or monoclinic Sulphar)।

अक्रिस्टलीय (१) लचीला गंधक (Plastic Sulphar) तथा (२) दुधिया गंधक (Milk Sulphur)।

गधक के इन चारो अपररूपो को सम परिमाण मे लेकर हवा मे जलाने से सम परिमाण मे सल्फर-डाइऑक्साइड गैस मिलता है। इससे प्रमाणित हो जाता है कि ये चारो एक ही गंधक के अपररूप है।

सल्फर-डाइऑक्साइड (sulphur dioxide)

गंधक से वने पदार्थों मे सल्फर-डाइऑक्साइड गैस एक प्रमुख पदार्थ है। यह एक व्यापारिक महत्त्व का पदार्थ है। सर्वप्रथम वैज्ञानिक प्रीस्टले ने पारे के साथ सांद्रित गंधकाम्ल गरम करके इसे प्राप्त किया था। उन्होने इसका नाम विट्रियोलिक अम्ल वायु (Vitriolic acid air) दिया। इसके कई साल वाद विख्यात फ्रांसीसी वैज्ञानिक लावोसिये ने इसे वनाने वाले तत्त्वों का पता लगाया और तब से इसका नाम सल्फर-डाइऑक्साइड पड़ा। इसका रासायनिक सूत्र SO_2 है।

प्रकृति मे सल्फर-डाइऑक्साइड गैस ज्वालामुखी से निकले हुए गैसो मे मिलता है। गंधक-युक्त कोयला जलाने से जो धुआँ निकलता है उसमे यह गैस मिलता है। इस कारण से कल-कारखाने से पूर्ण शहरो की वायु मे यह गैस मिलता है। ज्वालामुखी पहाड़ी के इलाकों के झरनों के पानी मे भी कही-कही यह गैस घुला हुआ रहता है।

सल्फर-डाइऑक्साइड गैस वनाना

गंधक को हवा या ऑक्सीजन में जलाने मे सल्फर-डाइऑक्साइड गैस मिलता है। सांद्रित गंधकाम्ल को ताँवे, चाँदी, गधक, कोयले तथा पारे के साथ गरम करने से भी सल्फर-डाइऑक्साइड गैस निकलता है। व्यवसायिक उद्योग के लिए वड़े पैमाने पर सल्फर-डाइआक्साइड गैस वनाने के लिए गधक या लौह-अयस्क को विशेप प्रकार के पात्र मे जलाया जाता है।

प्रयोगशालाओ मे सल्फर-डाइऑक्साइड गैस निम्नलिखित उपाय से वनाया जाता है—

प्रयोग—एक फ्लास्क मे थोड़ी-सी ताँवे की कतरन डाल दीजिए और उसके मुँह पर दो छिद्रयुक्त एक काग लगाकर एक छिद्र मे एक थिस्लकीप और दूसरे छिद्र मे एक मुडी हुई निकासनली लगा दीजिए। निकासनली का दूसरा सिरा एक गैसजार मे डाल दीजिए। अव थिस्लकीप की सहायता से फ्लास्क मे सांद्रित गधकाम्ल डालिए। ख्याल रखना पड़ेगा कि सांद्रित गधकाम्ल से ताँवे की कतरन ढँक जाए और थिस्लकीप का निचला भाग उसमें डूवा हुआ रहे। अव फ्लास्क को गरम कीजिए। थोड़ी देर मे अंदर का द्रव काला हो जाएगा और गैस निकलने लगेगा। इस समय आग को फ्लास्क के नीचे से हटा लीजिए। सल्फर-डाइऑक्साइड गैस वायु से भारी होने के कारण निकासनली से निकल कर गैसजार के अंदर की वायु को हटाकर उसमे भर जाएगा। जार गैस से भरा है या नही यह जानने के लिए उसके मुँह के पास एक जलती हुई सीक ले जाइए। अगर वह वुझ जाती है तो समझना चाहिए कि जार गैस से भर गया है। कई जारो मे गैस भरकर इसके गुणो की परीक्षा कीजिए।
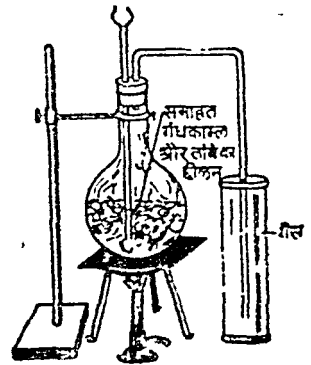
[चित्र ४१—प्रयोगशाला मे सल्फर-डाइऑक्साइड वनाना]

सल्फर-डाइऑक्साइड के गुण

सल्फर-डाइऑक्साइड गैस का कोई रंग नही होता है। यह एक जह-रीला गैस है। इसकी गध से खाँसी आने लगती है तथा दम घुटने लगता

है। इसके असर से आँख को भी तकलीफ पहुँचती है। इस पर दवाव डाल-कर या वरफ तथा नमक के मिश्रण में ठंढा करके इसको द्रव अवस्था में लाया जा सकता है।

यह पानी मे अच्छी तरह घुल जाता है। पानी के साथ इसका घोल अम्लीय होता है। जलपूर्ण पात्र मे गैस भरे हुए एक गैसजार को उलटकर रखिए। पहले उसमे पानी नही चढेगा। लेकिन बाद मे धीरे-धीरे गैसजार मे पानी चढ जाएगा। इससे पता चल जाता है कि यह गैस पानी मे घुलन-शील है; अव इस पानी मे नीला लिटमस डालने पर वह लाल हो जाएगा। इससे प्रमाणित होता है कि पानी और सल्फर-डाइ-आक्साइड का घोल अम्लीय है।

यह गैस न तो खुद जलता है और न दहन-कार्य में सहायता ही करता है। जलती हुई लकड़ी को गैसजार मे डालिए। देखिएगा कि वह बुझ जाएगी और गैस मे भी आग नही लगेगी। किंतु इसके अदर मैगनेशियम, सोडियम, पोटैशियम आदि जलते है।

यह गैस पोटैशियम परमैगनेट तथा फेरिक-डाइक्लोराईड के घोल को रंगहीन वना देता है और पोटैशियम-डाइक्रोमेट के घोल को हरा वना देता है।

यह गैस कार्वनिक पदार्थों को विरंजित कर देता है। फूलों को भिगाकर इस गैस मे डालने से उनका रंग उड जाता है। लेकिन फूलो को निकालकर हवा मे रख देने से, आक्सीजन मिल जाने के कारण, फिर उनका रंग लौट आता है।

सल्फर-डाइऑक्साइड का जलीय घोल गंधकाम्ल है। यह एक प्रमुख व्यापारिक पदार्थ है।

उपयोग—सल्फर-डाइ-ऑक्साइड गैस का प्रयोग प्रधानतः गंधकाम्ल वनाने के लिए, ऊन, रेशम आदि के विरंजन (Bleaching) के लिए, चीनी-शोधन तथा विरंजन के लिए, प्रशीतन (Refrigeration) के लिए, कीटाणुनाश के लिए तथा चमड़ा नरम करने और पकाने के लिए होता है। द्रव सल्फर-डाइ-ऑक्साइड मिट्टी के तेल के शोधन के काम मे आता है।

कुछ यौगिक

सोडियम क्लोराइड

सोडियम क्लोराइड या साधारण नमक, जिसे हम रोज इस्तेमाल करते है, समुद्र तथा कुछ वडी-वड़ी झीलो के पानी मे घुला हुआ मिलता है और साधारणत समुद्र या इन झीलो के पानी को सुखाकर इसे प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार से मिलनेवाले नमक मे अन्य अशुद्धियाँ मिली हुई होती है; जिन्हे साफ करके इसे खाने लायक वनाया जाता है। खनिज लवण या सेंधा नमक के रूप में भी यह पाया जाता है।

सोडियम क्लोराइड एक रंगहीन, क्रिस्टलीय ठोस पदार्थ है। इसमें कोई गंध नही होती है। इसका स्वाद नमकीन होता है। यह पानी मे आसानी से घुल जाता है तथा अति आर्द्रताग्राही है। ऊष्मा से इसके रंग, स्वाद आदि में कोई परिवर्त्तन नही होता है। जलने से इससे सुनहरी लौ निकलती है।

इसका मुख्य उपयोग खाद्य के रूप मे होता है। कॉस्टिक सोडा, हाइ-ड्रोक्लोरिक अम्ल आदि वनाने मे इसका प्रयोग होता है। इसका रासायनिक सूत्र NaCl है। अर्थात् इसके एक अणु में सोडियम के एक और क्लोरिन का एक परमाणु होता है।

हाइड्रोक्लोरिक अम्ल

हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के लवण काफी मात्रा में प्रकृति में पाए जाते हैं। सोडियम क्लोराइड (साधारण नमक), मैगनेशियम क्लोराइड, पोटाशियम क्लोराइड आदि यौगिको के रूप में यह अम्ल मिलता है।

सर्वप्रथम ग्लौवर (Glaubar) नाम के एक वैज्ञानिक ने साधारण नमक के साथ गंधकाम्ल मिलाकर गरम करके लवण द्वारा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल प्राप्त किया था। इसे नमक का अम्ल भी कहा जाता है। मनुष्य के शरीर के अंदर आमाशय के पाचनरस मे ०·२ से ०·४ प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिश्रित रहता है। इससे भोजन पचने में सहायता मिलती है।

हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के गुण

हाइड्रोक्लोरिक अम्ल हाइड्रोजन क्लोराइड गैस और पानी का घोल है। इसलिए दोनों का गुण एक ही है।

हाइड्रोजन क्लोराइड गैस वायु मे भारी, रंगहीन तथा तीक्ष्ण गंधवाली गैस है। यह गैस न तो जलती है और न जलने मे सहायता ही करती है। आर्द्र वायु के संपर्क से यह सफेद धुआं देती है। पानी मे यह अत्यंत घुलनशील है; इसलिए इससे भी अमोनिया जैसा फौव्वारा प्रयोग किया जा सकता है। इसका जलीय घोल अम्लीय (हाइड्रोक्लोरिक अम्ल) होने के कारण नीले लिटमस को लाल कर देता है।

हाइड्रोक्लोरिक अम्ल कार्बोनेट का विभाजन कर देता है तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड बनाता है। धातुओ के ऑक्साइड तथा हाइड्रो-ऑक्साइडो के साथ क्रिया करके लवण और पानी बनाता है। मैंगनीज डाइ-ऑक्साइड, पोटैशियम परमैंगनेट तथा लेड-डाइ-ऑक्साइड आदि के साथ इसकी क्रिया से क्लोरीन बनता है।

अम्लराज (Aquaregia)

सांद्रित हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के साथ सांद्रित नाइट्रिक अम्ल ३ : १ के अनुपात से मिला देने से अम्लराज बनता है। अम्लराज में सोना, प्लैटिनम आदि लगभग सभी धातु घुल जाती हैं।

हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का उपयोग

यह एक व्यापारिक वस्तु है। कपड़ा रँगने, छापने तथा चमड़ा पकाने और रँगने मे इसका इस्तेमाल होता है। कई प्रकार की दवा बनाने के लिए भी इसकी आवश्यकता होती है। प्रयोगशालाओं में इसे एक प्रधान प्रतिकारक (Reagent) के रूप मे इस्तेमाल किया जाता है। अम्लराज बनाने के लिए इसकी आवश्यकता होती है।

शोरा (Saltpetre or potassium nitrate)

भारतवर्ष मे कई स्थानों की मिट्टी मे शोरा मिला हुआ पाया जाता है। चीली देश मे, सोडियम नाइट्रेट या चीली शोरा के रूप मे बहुत अधिक परिमाण मे मिलता है। चीली शोरे के साथ पोटैशियम क्लोराइड मिलाकर

शोरा (potasium nitrate) बनाया जाता है। इस क्रिया से साधारण नमक (Sodium chloride) भी बनता है।

शोरा, सफेद रँग का गंधहीन, क्रिस्टलीय तथा तेज नमकीन स्वाद का पदार्थ है। यह आर्द्रताग्राही तथा पानी मे आसानी से घुलनशील पदार्थ है। इसका घोल रगहीन होता है और घुलने की क्रिया मे घोल का तापमान घट जाता है। गरम करने से शोरा पिघल जाता है और अधिक गरम करने से इससे ऑक्सीजन अलग हो जाता है।

शोरा का प्रधान उपयोग वारूद तथा खाद बनाने मे होता है। रेफ्रीजरेशन (प्रशीतन) और दवा आदि बनाने के काम मे भी शोरा इस्तेमाल होता है। इसका रासायनिक सूत्र KNO_3 है।

कपड़ा धोने का सोडा (Washing soda or sodium carbonate)

यह सोडा सोडियम क्लोराइड से बनता है। इससे कपड़ा आदि धोया जाता है। इसलिए इसे कपड़ा धोने का सोडा कहते हैं।

सोडा सफेद रग का अपारदर्शक, क्रिस्टलीय, गधहीन तथा नमकीन स्वादयुक्त पदार्थ है। यह आर्द्रताग्राही तथा आसानी से पानी में घुलनशील है। इसका घोल क्षारीय होता है जिसमे लाल लिटमस डालने से नीला हो जाता है। इसके क्रिस्टल मे क्रिस्टलीय जल होता है, जो गरम करने पर निकलने लगता है और यह पिघलकर उवलने जगता है। सोडे को जलाने से पीली रोशनी निकलती है। इसपर कई अम्लो की क्रिया मे कार्वन डाइ-ऑक्साइड गैस निकलता है।

इसका सर्वप्रधान उपयोग कपड़ा धोने मे तथा साबुन वनाने मे होता है। कपड़े और कागज बनाने मे भी इसकी आवश्यकता होती है। सोडा मिलाने से जल की कठोरता दूर हो जाती है। कॉस्टिक सोडा आदि बनाने के लिए भी सोडे का इस्तेमाल होता है। इसका रासायनिक सूत्र Na_2CO_3 है।

नौसादर (Sal-ammoniac or ammonium chloride)

हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और अमोनिया के सयोग से नौसादर बनता है। व्यापारिक तौर पर साधारण नमक और अमोनियम सल्फेट को गरम करके नौसादर बनाया जाता है।

नौसादर सफेद रंग का अपारदर्शक, क्रिस्टलीय, गंधहीन तथा तेज नमकीन स्वादयुक्त ठोस पदार्थ है। यह सरलता से पानी मे घुल जाता है। घुलते समय ऊष्मा का शोषण करता है ; इसलिए घोल ठंडा हो जाता है। इसके घोल मे लाल लिटमस नीला हो जाता है अर्थात् इसका घोल क्षारीय होता है। गरम करने पर नौसादर ठोस से सीधा गैसीय बन जाता है तथा ठंडा होने पर गैसीय से सीधा ठोस बनता है। नौसादर के साथ क्षार मिलाकर गरम करने से अमोनिया गैस निकलता है और गंधकाम्ल के साथ इसे गरम करने पर हाइड्रोजन क्लोराइड गैस निकलता है।

बहुत-सी दवाएँ बनाने के लिए नौसादर का इस्तेमाल होता है। शुष्क सेल बनाने मे, कपड़े की रँगाई तथा छपाई के कामों में, और बरतनों पर कलई चढाने मे इसकी आवश्यकता होती है।

चूना (Lime)

चूना-पत्थर (Calcium carbonate) को गरम करने से उसमें से कार्बन-डाइऑक्साइड अलग हो जाता है और पत्थर कली चूना (Cuick Lime) बन जाता है। चूना का रँग सफेद होता है तथा कली चूना देखने मे पत्थर के टुकड़े जैसा होता है। यह एक अक्रिस्टलीय पदार्थ है। पानी मे डालने से यह गरम हो जाता है तथा फूल जाता है। पानी डाला हुआ चूना चूर हो जाता है और उसे बुझा चूना (Slaked Lime) कहते हैं। यह पानी मे कम घुलता है। इसके घोल मे लाल लिटमस डालने से नीला हो जाता है, अर्थात् इसका घोल क्षारीय होता है। चूने के साफ पानी मे कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस मिलाने से पानी दुधिया हो जाता है।

चूने का इस्तेमाल मकान आदि बनाने तथा सफेदी पोतने में बहुत बड़े पैमाने पर होता है। कई प्रकार की दवाइयाँ तथा रासायनिक पदार्थ बनाने के लिए भी इसका उपयोग होता है। फलो के मुरब्बे बनाने के लिए भी चूने के पानी की आवश्यकता होती है। हमारे देश मे पान खाने के लिए चूने का बहुत उपयोग होता है। इसका रासायनिक सूत्र $Ca(OH)_2$ है।

तूतिया (Copper sulphate or blue vitriol)

तूतिया को चलती भाषा में 'नीला थोथा' भी कहते हैं। यह एक व्यापारिक वस्तु है।

प्रयोगशाला मे समाहृत गंधकाम्ल के साथ ताँबे के छीलन को गरम करके तूतिया बनाया जाता है।

इसका रंग साधारणत: नीला होता है। यह क्रिस्टलीय ठोस पदार्थ है और आसानी से पानी मे घुल जाता है। इसके क्रिस्टलो मे क्रिस्टलीय जल होता है। तूतिया को गरम करके क्रिस्टलीय जल सुखा देने से वह सफेद रंग का चूर्ण बन जाता है, जिसमे दो बूँद पानी मिला देने से वह फिर से पहले का रूप प्राप्त कर लेता है। इसके घोल में जस्ता डालने से उस पर ताँबा जमा हो जाता है। इस पर नाइट्रिक, हाइड्रोक्लोरिक तथा तनु गंधकाम्ल का कोई प्रभाव नही पड़ता है ; लेकिन सांद्रित गंधकाम्ल इसके क्रिस्टलीय जल को सुखा देता है। जलाने से इससे हरे रग की लौ निकलती है, जिसका मध्य भाग नीला होता है।

तूतिया से कई प्रकार की दवाएँ तथा कीटाणुनाशक औषधियाँ बनाई जाती है। इलेक्ट्रोप्लेटिंग तथा इलेक्ट्रोटाइपिंग मे, बिजली की बैटरी बनाने मे, कपड़े की रँगाई-छपाई मे तथा ताँबे के शोधन के काम मे इसका प्रयोग होता है। इसका रासायनिक सूत्र NH_4CL है।

हरा कसीस (Ferrous sulphate or green vitriol)

हरा कसीस हरे रग का ठोस पदार्थ है। लोहे को गंधकाम्ल मे घुलाकर क्रिस्टलन द्वारा हरा कसीस बनाया जाता है। इसमे क्रिस्टलीय जल होता है तथा इसे गरम करने पर क्रिस्टलीय जल निकल जाता है और भूरे रग का अवशेष, फेरिक ऑक्साइड (Ferric oxide) बचा रहता है। यह पानी मे घुल जाता है। घोल का रग पीला हो जाता है। हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का इस पर कोई असर नही होता है। हर्रे के पानी के साथ इसका घोल मिलाने से मिश्रण का रंग नील-कृष्ण (Blueblack) बन जाता है, जिससे लिखने की रोशनाई तैयार होती है।

लिखने की रोशनाई बनाने के अलावा हरा कसीस रँगाई के काम, चमड़ा पकाने तथा कई दवाएँ और रासायनिक पदार्थ आदि बनाने मे इस्तेमाल होता है।

अध्याय १५

कार्वनिक रसायन

रसायनशास्त्र की जिस शाखा मे कार्वन के यौगिको का अध्ययन किया जाता है उसे कार्वनिक रसायन (Organic chemistry) कहते हैं।

कार्वन के अधिकाश यौगिक, प्रकृति में, केवल प्राणियों तथा वनस्पतियों के शरीर मे पाए जाते है। कार्वन के ये यौगिक प्राणियो तथा वनस्पतियो के शरीर को वनाने के मुख्य उपादान होते हैं। यही कारण है कि वहुत पहले से ही कार्वन के इन यौगिको को जैव यौगिक (Organic compound) अर्थात 'जैव शरीर मे पाये जानेवाले यौगिक' कहते है। इसके विपरीत पानी, वालू, विभिन्न प्रकार की धातु, कार्वन डाइ-ऑक्साइड गैस आदि को अजैव यौगिक (inorganic compound) कहा जाता है।

प्राचीन काल मे यह विश्वास किया जाता था कि कार्वन के ये यौगिक केवल जैव शरीर के अंदर अर्थात प्राणियो तथा वनस्पतियो के शरीर के अंदर ही, जैव-शक्ति (vital force) नाम की एक रहस्यमय शक्ति के प्रभाव से निर्मित हो सकते है। जैव शरीर के वाहर ये यौगिक वन नही सकते हैं।

वाद मे चलकर वैज्ञानिको ने इनमे से वहुत-से यौगिको को कृत्रिम उपाय से वनाने मे सफलता प्राप्त की। इसके चलते कार्वन के इन यौगिको के सवंध मे इस अंधविश्वास का अत हो गया। लेकिन, इन यौगिको का साधारण नाम जैव यौगिक ही रह गया। साथ ही, रसायनशास्त्र की उस शाखा का नाम, जिसमे इन यौगिको का अध्ययन किया जाता है, अग्रेजी मे जैव रसायन या ऑरगैनिक केमिस्ट्री ही रह गया।

प्रत्येक जैव यौगिक मे कार्वन अवश्य ही मौजूद होता है, इसलिए अव इन यौगिको को कार्वनिक यौगिक तथा रसायनशास्त्र की जिस शाखा में इन यौगिको का अध्ययन किया जाता है, उसे कार्वनिक रसायन कहते हैं। अव तक आविष्कृत कार्वनिक यौगिको मे अधिकांश ऐसे है जो जीव शरीर में होते ही नही है और केवल कृत्रिम उपाय से ही वनाये जाते हैं।

कार्वनिक यौगिको का एक विशेष गुण यह है कि गरम करने से उनमें महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन आ जाता है और पूर्णत. भिन्न गुणवाले एक या अधिक दूसरे पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, लकड़ी को वायुशून्य स्थान मे गरम करने पर कई नई वस्तुएँ मिलती है। साथ ही लकड़ी को वायु मे जलाने से, उसके अदर के कार्वन और हाइड्रोजन, कार्वन-डाइ-ऑक्साइड तथा पानी वन जाते है और लकड़ी के अंदर का नाइट्रोजन मुक्त हो जाता है।

कार्वनिक यौगिक, मुख्यत, कार्वन के साथ हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, क्लोरीन, ब्रोमीन, फ्लोरीन, गधक, आयोडीन तथा फासफोरस ; इन नौ तत्त्वो मे से एक या एकाधिक के संयोग से वनते हैं।

कार्वनिक यौगिको की रचना अकार्वनिक यौगिको की रचना से काफी भिन्न होती है और दोनो के गुणो मे भी काफी अतर होता है। साथ ही, कार्वनिक यौगिको की सख्या, अकार्वनिक यौगिको से वहुत ही अधिक है। इसलिए कार्वनिक यौगिको का ठीक से अध्ययन करने के लिए रसायनशास्त्र की एक विशेप शाखा का होना लाभदायक है। साथ ही, अध्ययन की सुविधा के लिए, कार्वन के कुछ यौगिक—जैसे धातुओ के कार्वोनेट, कार्वन-डाइ-ऑक्साइड, कार्वन-मनोक्साइड आदि—का अध्ययन अकार्वनिक रसायन के साथ ही किया जाता है।

दैनदिन जीवन में काम आनेवाले कुछ कार्वनिक यौगिक

मिथेन (Methene)

मिथेन कार्वन के उन यौगिको मे से है जिन्हे हाइड्रोकार्वन (Hydrocarbon) कहा जाता है ; क्योकि हाइड्रोकार्वन-श्रेणी के यौगिको के अणु में केवल हाइड्रोजन तथा कार्वन के परमाणु होते है। मिथेन का रासायनिक सूत्र CH_4 है, अर्थात् इसके प्रत्येक अणु मे एक कार्वन और चार हाइड्रोजन के परमाणु होते है।

मिथेन वायु से हल्का गैस है। इसका न कोई रंग होता है और न गध। यह जलनेवाला गैस है, और प्रकृति मे काफी मात्रा मे मिलता है। धरती से निकलने वाले प्राकृतिक गैस का अधिकतर भाग मिथेन गैस है। दुनिया मे वहुत-से स्थानो मे, जहाँ धरती के अदर यह गेस मिलता है, इसे नल की सहायता से घरो मे पहुँचाया जाता है और वहाँ इसे ईंधन के रूप मे जलाया जाता है।

दलदल, बंद पानी आदि के नीचे दवे हुए पेड़-पौधों के; सड़ने से भी मियेन गैस पैदा होता है, जिसे साधारण तौर पर मार्श गैस (Marsh gas) कहते हैं। जंगल आदि जनशून्य स्थानों में, इस प्रकार से पैदा हुए मियेन गैस को जलते-बुझते देखकर नासमझ लोग डर जाते हैं और भूत-प्रेत आदि की कल्पना करने लगते है।

खानो के अंदर भी कभी कभी यह गैस जमा हो जाता है। वायु के साथ मिलकर यह गैस विस्फोटक मिश्रण वनाता है और खानों के अदर खतरा पैदा करता है। वहुत-सी खान-दुर्घटनाएँ इस गैस के कारण घटी है।

इथेन C_2H_6 प्रोपेन C_3H_8, व्युरेन C_4H_{10} आदि भी मियेन जैसे गुणवाले हाइड्रोकार्वन है।

एसिटीलिन (Acetylene)

एसिटीलिन भी एक हाइड्रोकार्वन है, जिसका रासायनिक सूत्र C_2H_2 है; अर्थात् एसिटीलिन के प्रत्येक अणु मे दो कार्वन और दो हाईड्रोजन के परमाणु होते है। एसिटीलिन एक रगहीन गैस है।

कैलसियम कारवाइड (Calciam carbide) के ऊपर पानी की क्रिया से यह गैस वनाया जाता है। एसिटीलिन भी एक जलनेवाला गैस है और इसके जलते समय वहुत अधिक ऊष्मा उत्पन्न होती है। इसलिए यह गैस लोहे आदि की गैस-जुड़ाई (Gas welding) के लिए वहुत उपयोगी है। ऑक्सीजन और एसिटीलिन को मिलाकर जलाने से लगभग ३२००^{0}C तापमान प्राप्त होता है। इस प्रकार से उत्पन्न लौ को 'ऑक्सी-एसिटीजिन लौ' कहते है। इस लौ की सहायता से लोहे की चादर आदि को वहुत ही सफाई के साथ और जल्दी से काटा जा सकता है। कारखानो में, लोहा आदि काटने तथा पिघलाकर जोडने के लिए इस लौ का काफी इस्तेमाल होता है।

कृत्रिम रवर, नाना प्रकार के प्लैस्टिक, एसेटिक अम्ल (Acetic acid) आदि वहुत-से नित्य प्रयोजनीय तथा औद्योगिक पदार्थों का मुख्य उपादान एसिटीलिन है।

अलकोहल (Alcohol)

अलकोहल-वर्ग मे कार्वन के वहुत-से यौगिक होते है। इनमे मिथाइल अलकोहल, इथाइल अलकोहल तथा ग्लिसरीन (glycerine) हमेशा हमारे काम आते हैं।

मिथाइल अलकोहल (Methyl alcohol)

यह एक रंगहीन द्रव पदार्थ है। इसकी तेज गंध से इसे आसानी से पहचाना जा सकता है। इसमे शराव जैसी गंध होती है। मिथाइल अलकोहल का रासायनिक सूत्र CH_3OH है।

मिथाइल अलकोहल जहरीला पदार्थ है। इसे पी लेने से मनुष्य मे अंधापन आदि कई प्रकार की वीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यहाँ तक कि इससे मृत्यु तक हो सकती है। असाधु व्यापारी कभी-कभी पानी मे मिथाइल अलकोहल मिलाकर शराव के नाम से वेचते है। इससे अक्सर दुर्घटनाएँ घटती हैं।

मिथाइल अलकोहल का क्वथनाक ६५^{0}C है। काष्ठ के शुष्क आसवन द्वारा वड़े पैमाने पर इसे वनाया जाता है। इसलिए मिथाइल अलकोहल को काष्ठ अलकोहल (Wood alcohol) भी कहते हैं।

नाना प्रकार की दवाइयाँ, वार्निस, पालिश, कई प्रकार के सुगंधित पदार्थ, मेथिलेटेड स्पिरिट, पावर अलकोहल आदि वनाने के लिए इसका इस्तेमाल होता है।

इथाइल अलकोहल (Ethyl alcohol)

इथाइल अलकोहल एक वहुत ही महत्त्वपूर्ण औद्योगिक पदार्थ है। यह एक रगहीन द्रव पदार्थ है, जिसका रासायनिक सूत्र C_2H_5OH है। इसमे एक विशेप प्रकार की गध होती है जो काफी देर तक वनी रहती है। इथाइल अलकोहल एक मादक द्रव्य है जिसके पीने से गले मे जलन मालूम पड़ती है और नशा उत्पन्न होता है। शरावो मे इथाइल अलकोहल की उपस्थिति के कारण ही वे नशीली होती है। साधारणत: इसे केवल अलकोहल कहा जाता है। वहुत प्राचीन काल से ही विभिन्न प्रकार की शर्करा तथा स्टार्चयुक्त पदार्थों से यह वनता आ रहा है। आजकल हमारे देश में, वड़े पैमाने पर

इथाइल अलकोहल, चीनी के कारखानों के उपोत्पाद (byproduct) छोए से बनाया जाता है। शर्करा या स्टार्चयुक्त पदार्थों का पहले किण्वन (fermentation) और फिर आसवन द्वारा इसे तैयार किया जाता है। इस तरह से बनाये हुए अलकोहल में ५ से १० प्रतिशत पानी रहता है। ऐसे अलकोहल को 'रेक्टीफायड स्पिरिट' (rectefied spirit) कहते हैं। विशेष प्रक्रिया द्वारा इसे जलशून्य करके इससे विशुद्ध अलकोहल (absolute alcohol) बनाया जाता है।

शर्करा या स्टार्चयुक्त पदार्थों के किण्वन से उनमें अलकोहल उत्पन्न होता है। अलकोहल रहने के कारण ही इन्हें तथा अन्य शराबों को पीने से नशा उत्पन्न होता है। छोटानागपुर तथा संथालपरगना के गाँवों में बननेवाली हँडिया, डियांग आदि जैसी नशीली पेय वस्तु स्टार्चयुक्त पदार्थों के किण्वन से उत्पन्न अलकोहल के कारण ही नशीली होती है। ज्यादातर ये चावल से बनती है और इनमे अलकोहल की मात्रा १० से १५ प्रतिशत तक होती है। इसी प्रकार ताड़, खजूर आदि के शर्करायुक्त रस के किण्वन से ताड़ी नाम की नशीली वस्तु बनती है। इसमे भी लगभग १० प्रतिशत अलकोहल होता है। ये सब अस्रावित शराब हैं।

स्रावित शराबो मे बीयर, व्हिस्की, वदका आदि स्टार्च (जौ) से तथा ब्राडी, कनियाक, शेरी, शैंपेन आदि शर्करायुक्त पदार्थ (अंगूर) से बनते हैं। शर्करायूक्त छोए से रम नामक शराब बनाई जाती है। इन सबमे अलकोहल का परिमाण एक-सा नही होता। बीयर में ३ से ५ प्रतिशत, व्हिस्की, ब्राडी और कनियाक मे ४० से ५० प्रतिशत, वदका मे ४० से ५७ प्रतिशत, रम मे ४५ से ५० प्रतिशत, शेरी मे १८ से २४ प्रतिशत तथा शैंपेन मे ८ से १० प्रतिशत अलकोहल होता है। महुआ, गुड़, छोए आदि से बनाई गई देशी आसवित शराब मे ३० से ५० प्रतिशत अलकोहल होता है।

बाजार मे मिलनेवाले मेथिलेटेड स्पिरिट को पीने के अयोग्य बनाने के लिए इथाइल अलकोहल के साथ जहरीला मिथाइल अलकोहल मिला दिया जाता है।

इथाइल अलकोहल दवा, टॉनिक, शराब आदि तथा वार्निश, पालिश, ईथर आदि बनाने के लिए और विभिन्न प्रकार के कार्बनिक यौगिक तैयार

करने के लिए काम आता है। यह जीवाणुनाशक है तथा इसमें डुबोकर मरे हुए जीवो का संरक्षण किया जा सकता है। यह अत्यधिक दहनशील तथा वाष्पशील होता है।

ग्लिसरीन या ग्लिसरॉल (glycerine or glycerol)

ग्लिसरीन या ग्लिसरॉल एक रंगहीन तथा गंधहीन गाढ़ा द्रव पदार्थ है। इसका स्वाद मीठा होता है तथा यह आसानी से जल मे घुल जाता है। इसका रासायनिक सूत्र $C_3H_8O_3$ है। ग्लिसरीन सभी वनस्पति तेलो तथा वसा मे मौजूद रहता है।

शृंगार-सामग्री, अच्छा साबुन, मीठा पेय, दवा, विस्फोटक आदि बनाने के लिए इसका उपयोग होता है। जाड़े में मुँह, हाथ, पैर आदि फट जाने पर ग्लिसरीन लगाने से फायदा होता है।

ईथर (ether)

ईथर अत्यधिक दहनशील पदार्थ है। इस वर्ग में सबसे महत्त्वपूर्ण यौगिक को डाइथाइल ईथर (diethyl ether) कहते है। यह अत्यधिक वाष्पनशील द्रव है। खुला रख देने से कुछ ही देर मे यह वाष्प बनकर उड़ जाता है। इसका रासायनिक सूत्र $(C_2H_5)_2O$ है। कई प्रकार की दवाएँ बनाने के लिए तथा विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगो मे इसकी आवश्यकता होती है। यह एक अच्छी सवेदनाहारी (Anaesthetic) वस्तु है तथा कुछ देर तक श्वास के साथ इसके वाष्प को ग्रहण करने से मनुष्य बेहोश हो जाता है। इसलिए शल्य-क्रिया (operation) आदि करते समय चिकित्सक रोगी को बेहोश करने के लिए इसका प्रयोग करते है। साथ ही, यह जीवाणुनाशक भी है।

एसेटिक अम्ल (acetic acid)

संभवत. मनुष्य द्वारा सर्वप्रथम बनाया गया अम्ल एसेटिक अम्ल है। शराब बनाने के लिए किण्वन के समय यह अम्ल बनता है। एसेटिक अम्ल का रासायनिक सूत्र CH_3COOH है। खाने के लिए इस्तेमाल होनेवाले सिरके (Vinegar) मे एसेटिक अम्ल होता है। गन्ने आदि के रस को धूप मे पकाने से उसमें एसेटिक अम्ल उत्पन्न हो जाता है और रस मीठा से खट्टा हो जाता है। सिरके से अचार आदि भी बनाए जाते हैं। नाना प्रकार के

रंग, दवाएँ, कृत्रिम सूत, कई प्रकार के प्लैस्टिक आदि बनाने के लिए एसेटिक अम्ल की आवश्यकता होती है।

फॉर्मिक अम्ल (Formic acid)

फॉर्मिक अम्ल का रासायनिक सूत्र H_2CO_2 है। चीटियों के शरीर मे यह अम्ल मिलता है। पहले-पहल लाल रग की एक प्रकार की चीटियो को पानी में उबालकर, उस पानी के आसवन से फॉर्मिक अम्ल प्राप्त किया गया था। मधुमक्खी, वर्रे आदि के डक मे भी यह अम्ल होता है। इसी कारण से चीटी काट लेने से या मधुमक्खी वर्रे आदि के डंक मार देने से जलन पैदा होती है।

फॉर्मिक अम्ल कीटाणुनाशक होता है। फलो के रस के संरक्षण के लिए, वनस्पति घी बनाने के लिए, चमड़ा पकाने के लिए तथा कपड़े रँगने के लिए इस अम्ल की आवश्यकता होती है।

लैक्टिक अम्ल (Lactic acid)

लैक्टिक अम्ल पानी मे घुलनशील, रंगहीन गाढा द्रव पदार्थ है। इसका रासायनिक सूत्र $C_3H_6O_5$ है। लैक्टिक अम्ल की विशेषता यह है कि इसमे अम्ल तथा अलकोहल, दोनो के गुण होते है। यह अम्ल खट्टे दूध, दही तथा रक्त मे मिलता है। वायु मे एक प्रकार का जीवाणु होता है, जिसे बेसिलस लैक्टिस एसिडी (bacillus lactis acidi) कहते है। यह जीवाणु दूध के लैक्टोज या दुग्धशर्करा (lactoes or milksugar) के साथ मिलकर लैक्टिक अम्ल बनाता है, जिससे दूध खट्टा हो जाता है। इसी जीवाणु के प्रभाव से दही जमता है।

कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate)

हमारे भोजन का एक मुख्य भाग कार्बोहाइड्रेट होता है। भात, रोटी, आलू, चीनी, फल आदि से हमे कार्बोहाइड्रेट मिलता है। खेत और बगीचे मे उगनेवाले लगभग सभी खाद्य-पदार्थों मे कार्बोहाइड्रेट होता है। शरीर में ऊर्जा तथा ऊष्मा उत्पन्न करना कार्बोहाहाड्रेट का मुख्य काम है। शरीर की वृद्धि मे भी इससे अल्प सहायता मिलती है। कार्बन के इस यौगिक की कमी होने से मनुष्य सुस्त हो जाता है और उसमे परिश्रम करने

की शक्ति की कमी हो जाती है। हल्का काम करनेवाले आदमी को प्रतिदिन ३७० ग्राम, साधारण काम करनेवाले को ५०० ग्राम तथा कठोर श्रम करनेवाले को ५७० ग्राम कार्बोहाइड्रेट मिलने चाहिए। एक ग्राम कार्बोहाइड्रेट से शरीर को ४ १ कैलोरी ऊष्मा मिलती है।

विभिन्न प्रकार की शर्कराओ तथा ऐसे पदार्थो को, जो जल के अपघटन से शर्करा-जातीय पदार्थ मे बदल जाते है, कार्बोहाइड्रेट या शर्करा-वर्गीय पदार्थ कहते है। भौतिक गुण के आधार पर कार्बोहाइड्रेट को दो भागो मे बाँटा जा सकता है :—

(१) मीठे स्वादवाले, जल मे घुलनशील तथा क्रिस्टलीय। चीनी, ग्लूकोज फ्रूक्टोज आदि इस श्रेणी के कार्बोहाइड्रेट है।

(२) स्वादहीन, जल में अघुलनशील तथा अक्रिस्टलीय। स्टार्च, सेल्यूलोज आदि इस श्रेणी के कार्बोहाइड्रेट है।

ग्लूकोज (glucose)

ग्लूकोज अंगूर मे काफी मात्रा मे मौजूद होता है। इसलिए इसे द्राक्षाशर्करा (grape sugar) भी कहते है। पके हुए अंगूर मे ३० प्रतिशत तक ग्लूकोज होता है। शहद मे ४० प्रतिशत तक ग्लूकोज पाया जाता है। अन्य कई मीठे फलो मे भी काफी मात्रा मे ग्लूकोज होता है। मनुष्य तथा अन्य प्राणियो के रक्त मे ग्लूकोज होता है। प्राणि-शरीर की पेशियाँ मुख्यत: ग्लूकोज के ही ऑक्सीकरण से उत्पन्न ऊर्जा की सहायता से कार्य करती है। ग्लूकोज बहुत आसानी से शरीर मे स्वागीकृत (Assimilated) होकर रक्त में मिल जाता है।

ग्लूकोज का रासायनिक सूत्र $C_6H_{12}O_6$ है। यह कार्बोहाइड्रेट के मोनोसैकेराइड (mono-sachcharide) वर्ग मे आता है।

चीनी या इक्षु-शर्करा (sucrose or cane suger)

चीनी या इक्षु-शर्करा कार्बोहाइड्रेट के डाइसैकेराइड-वर्ग मे आता है। पृथ्वी मे उत्पन्न चीनी का बहुत बड़ा अंश इक्षु या गन्ने से बनता है। यूरोप के कुछ देशों मे चुकंदर से भी चीनी बनती है। गन्ने के रस मे लगभग २० प्रतिशत तथा चुकंदर मे १० से १५ प्रतिशत चीनी रहती है। खजूर तथा

ताड़ के रस में भी यह शर्करा मिलती है। कई प्रकार के फलों के रस मे भी यह शर्करा होती है। इसका रासायनिक सूत्र $C_{12}H_{22}O_{11}$ है।

भारत मे बननेवाली सभी चीनी गन्ने के रस मे बनती है। चीनी-मिलो में गन्ने के रस को निकाल लेते है। इस रस में शर्करा के अलावा फॉसफेट, प्रोटीन, साइट्रिक अम्ल आदि होते है। इसको गर्म करके, उसमे आवश्यकतानुसार, दो या तीन प्रतिशत चूना मिला दिया जाता है और फिर छान लेने से ये अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं। इस शुद्ध रस के अंदर से कार्बन-डाइ-ऑक्साइड गैस प्रवाहित करके उसका कार्बनीकरण किया जाता है। कार्बनीकृत रस के अंदर से सल्फर-डाइ-ऑक्साइड प्रवाहित करने से रस रंगहीन और स्वच्छ बन जाता है। इस स्वच्छ रस को गर्म करके सांद्रित किया जाता है। सांद्रित रस ठंडा होने पर उसमे चीनी के रवे जमने लगते हैं। अपकेन्द्री (centairfugal) यंत्र मे घुमाकर इस रस मे से चीनी के रवे अलग किए जाते है। बचे हुए रस को 'छोआ' कहते है। छोआ अलकोहल, शराब आदि बनाने मे काम आता है। हुक्के मे पीने के तंबाकू में भी छोआ मिलाया जाता है।

स्टार्च या मंड (starch)

स्टार्च कार्बोहाइड्रेट के पॉली सैकेराइड-वर्ग मे आता है। पौधो की हरी पत्तियो में, सूर्य-किरण की सहायता से, प्रकाश-संश्लेषण से स्टार्च बनता है। पत्तियो में बना हुआ स्टार्च पौधो की जड़, कंद, दाने आदि मे जमा होता है और उनमे से हमे खाने के लिए यह मिल जाता है। आलू, गेहूँ, चावल, मक्का आदि मे काफी मात्रा मे स्टार्च होता है। हम पहले ही देख चुके है कि हमारे शरीर के लिए कार्बोहाइड्रेट कितनी आवश्यक वस्तु है। हम अधिकांश कार्बोहाइड्रेट स्टार्च के रूप मे ही ग्रहण करते हैं।

मनुष्य तथा अन्य प्राणियो के पाचक-तंत्र के अंदर स्टार्च ग्लूकोज में बदल जाता है और शरीर में स्वांगीकृत (assimilated) हो जाता है। मुँह के अंदर ही यह क्रिया शुरू हो जाती है; इसीलिए रोटी को, जो मुख्यतः स्टार्च है, अधिक देर तक चबाते रहने से वह मीठी लगने लगती है।

सैलूलोज (cellulose)

स्टार्च की तरह सैलूलोज भी कार्बोहाईड्रेट के पॉली सैकेराइड-वर्ग में आता है। पौधों के शरीर की कोशिकाओ की दीवार, जिसे कोशिका भित्ति

(cell wall) कहते है, मुख्यतः सैलूलोज से बनती है। कपास की रूई के रेशे (cotton fibre) प्रकृति मे मिलनेवाला सबसे शुद्ध सैलूलोज है। इसमें ८५ से ९० प्रतिशत सैलूलोज होता है।

सैलूलोज हमारे लिए एक अत्यावश्यक वस्तु है। हमारे पहनने के कपड़े, ओढना, बिछौना आदि मुख्यतः सैलूलोज की ही देन है। केवल सूती कपड़े ही नही, सैलूलोज से विभिन्न रासायनिक प्रक्रिया से कृत्रिम धागे, कागज, कार्डबोर्ड, प्लैस्टिक, वार्निस, अलकोहल आदि भी बनाये जाते है। औद्योगिक कामो के लिए लकड़ी से सैलूलोज बनाया जाता है।

प्रोटीन (protein)

प्रोटीन एक अत्यंत जटिल कार्बनिक यौगिक है। जीवन का यह मुख्य उपादान है और इसके बिना जीवन संभव नहीं है। प्रोटीन की संरचना (structure) तथा सश्लेपण के संबंध मे अभी तक पूर्ण जानकारी नहीं हो पाई है। संभव है कि इसकी संपूर्ण जानकारी हो जाने के बाद प्रयोगशालाओ मे ही कृत्रिम उपाय से जीवन की सृष्टि की जा सकेगी।

प्राणि-शरीर के समस्त अंग-प्रत्यगो मे—रक्त, हड्डी, चमड़े, बाल, ऊन, पंख, सीग, खुर, नाखून आदि सभी मे—प्रोटीन होता है। वनस्पतियो के शरीर में भी प्रोटीन होता है।

प्रोटीन हमारे खाद्य का एक मुख्य तथा अत्यावश्यक अंग है। प्रोटीन का मुख्य काम शरीर की वृद्धि मे सहायता देना तथा शरीर की क्षय-क्षति की पूर्त्ति करना है। शरीर की मांसपेशियाँ मुख्यत प्रोटीन से बनती है। इसलिए पूर्ण वयस्को की तुलना मे बच्चो को अधिक प्रोटीन की आवश्यकता पड़ती है; क्योकि बच्चो के शरीर की तेजी से वृद्धि होती है। प्रोटीन से शरीर को अल्प मात्रा मे ऊर्जा भी मिलती है। साथ ही, शरीर के अदर रोग-प्रतिरोधक पदार्थ प्रस्तुत करने के लिए भी प्रोटीन की आवश्यकता पड़ती है। प्रोटीन की कमी से शरीर की वृद्धि रुक जाती है और मनुष्य कमजोर हो जाता है तथा आसानी से बीमार पड़ जाता है। राष्ट्रसंघ की स्वास्थ्य उप-समिति की राय मे साधारण पूर्ण वयस्क मनुष्य को रोजाना अपने वजन के प्रति किलोग्राम पर एक ग्राम प्रोटीन अवश्य मिलना चाहिए अर्थात् एक व्यक्ति का वजन अगर ५० कि० ग्रा० हो तो उसे प्रतिदिन ५० ग्राम प्रोटीन

मिलना चाहिए। बच्चों को उससे लगभग चार गुना तथा होनेवाली और स्तन पिलानेवाली माताओं को उससे दो गुना प्रोटीन की आवश्यकता होती है।

प्राणियों से मिलनेवाले प्रोटीन, वनस्पतियों से मिलनेवाले प्रोटीन से उत्तम श्रेणी के माने जाते है। क्योंकि ये आसानी से पच जाते है और शरीर में स्वांगीकृत (assimilated) हो जाते है। इसलिए मास, मछली, अंडे, दूध आदि से मिलनेवाले प्रोटीन को प्रथम श्रेणी का प्रोटीन तथा चना, मटर, गेहूँ, चावल, फरासबीन आदि से मिलनेवाले प्रोटीन को द्वितीय श्रेणी का प्रोटीन कहते है। संतुलित भोजन मे वानस्पतिक तथा प्राणिजात प्रोटीन का अनुपात ३ : १ होना चाहिए अर्थात् भोजन में प्रति ४ ग्राम प्रोटीन में कम-से-कम एक ग्राम प्राणिजात प्रोटीन होना चाहिए। वानस्पतिक प्रोटीन मे केवल सोयाबीन से मिलनेवाला प्रोटीन प्रथम श्रेणी का प्रोटीन होता है।

हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन तथा कार्बन के रासायनिक सयोग से प्रोटीन बनता है। इन तत्त्वों के अलावा इसमे अति अल्प मात्रा मे गंधक तथा फॉसफोरस भी मिलते है।

प्रोटीन के जल-विश्लेषण से एमिनो अम्ल (amino acid) प्राप्त होता है।

भौतिकी

PHYSICS

यंत्र (Machine)

कुछ नित्य प्रयोजनीय साधारण यंत्र

मनुष्य को 'यंत्र बनानेवाला प्राणी' कहा जाता है। हम रोज कितने ही यंत्रों का व्यवहार करते है। शायद हम कभी सोचते ही नही कि ये भी यंत्र हैं। साधारण डडे से लेकर रोटी बेलने का चकला-बेलना भी तो यंत्र ही है! कम परिश्रम और आसानी से अधिकाधिक काम हो, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्य ने यंत्रो का आविष्कार किया था और आज भी वे इस क्षेत्र में नये-नये आविष्कार करते ही जा रहे है। यंत्र का दूसरा उद्देश्य है अपने सुविधानुसार एक स्थान पर बल लगाकर दूसरे स्थान पर काम लेना। जिन साधनों या औजारों की सहायता से एक बिंदु पर किसी दिशा में बल लगाकर उसके प्रभाव से दूसरे बिन्दु तथा दूसरी दिशा में कुछ काम किया जा सके, उन्हे यंत्र कहा जाता है।

लाठी एक यंत्र है। इसके एक सिरे पर हाथ से बल लगाकर दूसरे सिरे से चोट करने का काम लिया जाता है। काम करने के लिए यंत्र पर जो बल लगाया जाता है, उसे आयास (effort) कहते है। यंत्र पर आयास लगाकर जिस प्रतिरोध का संतुलन किया जाता है उसे बोझ (load) या प्रतिरोध (resistance) कहते हैं।

उत्तोलक (Lever)

उत्तोलक एक बहुत ही पुराना तथा साधारण यंत्र है। शायद यह मनुष्य के यंत्र-आविष्कार के प्रयास का पहला फल है। रोज-रोज हम, बिना इसके सिद्धात को समझते हुए, इसका व्यवहार करते हैं। साधारण उत्तोलक एक मजबूत लकड़ी या बाँस या लोहा या अन्य किसी धातु का दड होता है।

एक भारी पत्थर को उठाना है। हाथ से ठेलने से वह हिलता ही नही है। ऐसी हालत मे उसे उठाने के लिए उत्तोलक की सहायता ली जाती है। एक

मजवूत दंड लेकर उसका एक सिरा पत्थर के नीचे लगा दिया जाता है। फिर एक लकड़ी का टुकड़ा या ईंट या पत्थर को उसी सिरे के पास दंड के
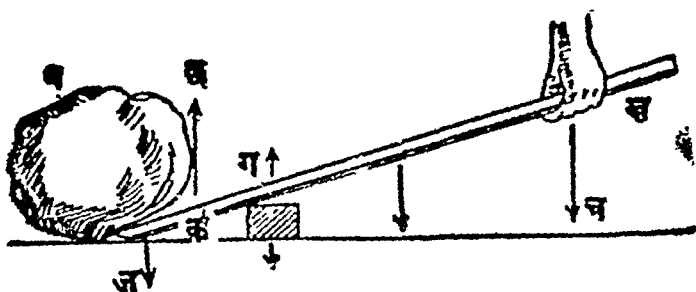
[चित्र ४२—उत्तोलक (लीवर) की सहायता से भारी पत्थर उठाना]

नीचे रख दिया जाता है। अव दूसरे सिरे को दवाकर आसानी से पत्थर को उठाया जा सकता है।

यहाँ दंड उत्तोलक (lever) का काम करता है। हाथ से नीचे की ओर दवाकर उसके ऊपर आयास लगाया जाता है। पत्थर वोझ है, उसके प्रतिरोध को असफल करके उसे ऊपर उठाया जाता है।

उत्तोलक दंड प्रयोजनानुसार सीधा या मुडा हुआ होता है। इसके एक सिरे पर वल लगाने से उसके दूसरे सिरे पर वल आरोपित होता है। दंड एक निश्चित विंदु पर इस प्रकार से आधारित होता है कि संपूर्ण दंड उसपर घूम सके। इस विंदु को आलंव (fulcrum) कहते हैं। चित्र मे क ख एक उत्तोलक है। ग आलव है, जिसके ऊपर आधारित रहकर क ख उत्तोलक घूम सकता है। क ग और ख ग उत्तोलक की दो भुजाएँ हैं। घ वोझ है। ख विंदु के पास ख ग वाहु पर आयास लगाया जाता है। यहाँ आयास की दिशा ख च नीचे की ओर है। यह आयास क ग भुजा पर ऊपर की दिशा क छ मे काम करके, वोझ घ को ऊपर उठाता है। क ज वोझ के प्रतिरोध की दिशा है।

उत्तोलक की जिस भुजा पर आयास लगता है, उसे आयास भुजा (चित्र मे ख ग) और जिस भुजा से वोझ उठाया जाता है या प्रतिरोध को असफल किया जाता है, उसे प्रतिरोध भुजा या भार भुजा (चित्र में क ग) कहते हैं।

आयास, आलंब तथा बोझ के अवस्थान के हिसाब से तीन श्रेणी के उत्तोलक होते हैं।

प्रथम श्रेणी के उत्तोलक

इसमे आयास तथा बोझ उत्तोलक के दो सिरो पर होते है और आलंब इन दोनो के बीच किसी एक स्थान पर होता है। चित्र-संख्या ४२ मे इस श्रेणी का उत्तोलक दिखाया गया है। किसान बोझा ले जाने के लिए जिस बहँगी या वजनी चीज उठाने के लिए जिस डंडे का व्यवहार करते है वे इस श्रेणी के उत्तोलक के बहुत सरल उदाहरण हैं। ढेकी, तराजू की डंडी, कुएँ से पानी निकालने की लट्ठा-कूँड़, पानी-पंप की मूठ, कुदाल, बेलचा आदि नित्य प्रयोजनीय हमारे बहुत-से उपकरण इस श्रेणी के उत्तोलक यंत्र हैं। कैंची, सँड़सी आदि इस श्रेणी के दोहरे उत्तोलक यंत्र है।

इस श्रेणी के उत्तोलक मे यान्त्रिक लाभ एक से अधिक या एक से कम हो सकता है। आयास भुजा, प्रतिरोध भुजा से जितनी अधिक बड़ी होगी, यान्त्रिक लाभ उतना ही अधिक होगा। आयास भुजा छोटी होने से यांत्रिक लाभ १ से कम अथवा यान्त्रिक हानि होती है।

यान्त्रिक लाभ

प्रतिरोध और आयास के अनुपात को यंत्र का यान्त्रिक लाभ कहते हैं। अर्थात्—

$$\frac{\text{प्रतिरोध या बोझ}}{\text{आयास}} = \text{यांत्रिक लाभ}$$

इस प्रकार उत्तोलक के सिद्धांत के अनुसार—

$$\frac{\text{आयास भुजा}}{\text{प्रतिरोध भुजा}} = \text{यांत्रिक लाभ } (+ \text{ या } -)$$

इस श्रेणी के उत्तोलक की भुजाओं की लंबाई के अनुसार यांत्रिक लाभ एक, एक से अधिक या एक से कम हो सकता है।

द्वितीय श्रेणी के उत्तोलक

इस श्रेणी के उत्तोलक मे आयास तथा आलंब के बीच किसी स्थान पर बोझ रहता है। किसी भारी वस्तु को लुढ़काने के लिए जिस डंडे से काम लिया जाता है वह इस श्रेणी का सबसे साधारण उत्तोलक यंत्र है। लकड़ी

का लट्ठा लुढकाते समय डंडे का एक सिरा उसके नीचे डालकर मजबूती से जमीन पर जमाया जाता है। डंडे का यह बिंदु आलंब का काम करता है। दूसरे सिरे पर ऊपर की ओर आयास लगाकर लट्ठे को सामने की ओर लुढकाया जाता है।

एक सिरे पर चक्का लगी हुई सामान ढोनेवाली गाड़ी, पंचिंग मशीन, नाव के डांड (खेने के समय) आदि इस प्रकार के उत्तोलक हैं। सरौता, नीबू निचोड़नेवाला यंत्र आदि इस श्रेणी के दोहरे उत्तोलक है।

नाव खेते समय डांड का जो सिरा हाथ मे रहता है, वहाँ पर आयास लगता है। डांड का दूसरा सिरा पानी के अंदर आलंब का काम करता है तथा डांड जहाँ पर नाव से जुडा रहता है, वहाँ बोझ रहता है। इस स्थान पर प्रतिरोध का अतिक्रमण करके डांड नाव को आगे बढ़ाता है।

इस श्रेणी के उत्तोलको मे हमेशा यांत्रिक लाभ अधिक होता है अर्थात् अपेक्षाकृत कम बल लगाकर अधिक परिमाण के प्रतिरोध का संतुलन किया जा सकता है।

तृतीय श्रेणी के उत्तोलक

इस श्रेणी के उत्तोलक में भी आलंब उत्तोलक के एक सिरे पर होता है। बोझ उत्तोलक के दूसरे सिरे पर रहता है और आयास दोनो के बीच मे किसी स्थान पर लगता है। इस प्रकार के उत्तोलक यंत्र का उदाहरण, हमारी भुजाएँ हैं। जब हथेली पर रखी हुई किसी वस्तु को हम उठाते है, उस समय केहुनी आलंब का काम करती है तथा हथेली और केहुनी के बीच की मांसपेशियाँ आयास लगाती हैं। पांव से चलनेवाली सीने की मशीन का पा दान भी इसी प्रकार का एक उत्तोलक यंत्र है। चिमटा, चिमटी आदि इस श्रेणी के दोहरे उत्तोलक यंत्र है।

इस श्रेणी के उत्तोलकों मे बोझ से अधिक आयास लगता है तथा यांत्रिक लाभ एक से कम होता है यानी इसमे यान्त्रिक लाभ के बजाए हानि होती है। लेकिन काम की सुविधा के लिए इनका व्यवहार किया जाता है।

घिरनी (Pulley)

उत्तोलक जैसा घिरनी भी एक बहुत साधारण यंत्र है। हमारे दैनंदिन जीवन मे इसका भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। विशेपकर कुएँ से पानी खीचने

के लिए हम प्रतिदिन घिरनी से काम लेते हैं। लकड़ी या धातु के बने हुए चक्के या चक्की की परिधि की चौड़ाई मे खाँच बनाकर घिरनी तैयार की जाती है। चक्के के ठीक वीच मे एक छेद होता है। इस छेद में धुरी डाल दी जाती है, जिसपर घिरनी स्वतंत्रता से घूमती रहती है। धुरी एक चौखटे मे जड़ दी जाती है। घिरनी की परिधि मे वनी हुई खाँच मे से रस्सी या जंजीर डाल दी जाती है। रस्सी या जंजीर के एक सिरे पर वोझ लटकाया जाता है और दूसरे सिरे पर वल लगाया जाता है। घिरनी यंत्र कई प्रकार के होते है।

(१) **स्थिर एक घिरनी का यंत्र**—इस घिरनी का यंत्र साधारणत. स्थिर (fixed) होता है। चौखटे मे जड़ी हुई घिरनी या तो हुक (hook) के सहारे किसी स्थिर स्थान पर लटकायी जाती है या चौखटे को ही स्थिर स्थान मे जड़ दिया जाता है। साधारणत कुएँ से पानी खीचने के लिए या नीचे से भारी चीज ऊपर उठाने के लिए इस प्रकार की घिरनी काम मे लाई जाती है। घिरनी मे रस्सी डालकर उसके एक सिरे मे वालटी या वोझ लटका दिया जाता है तथा दूसरे सिरे पर वल लगाकर वालटी से पानी खीचा जाता है या वोझ ऊपर उठाया जाता है।

सैद्धातिक तौर पर इसमे वोझ के समान आयास (वल) लगता है। यानी इसका यान्त्रिक लाभ समान है। लेकिन वास्तव मे घर्षण आदि के कारण वोझ से कुछ अधिक वल लगाने की आवश्यकता होती हैं। लेकिन इस प्रकार की घिरनी से यह लाभ होता है कि आयास अपनी सुविधा से इच्छित दिशा में लगाया जा सकता है।

[चित्र ४३—स्थिर एक घिरनीवाला यंत्र]

(२) **एकाधिक घिरनिओं का यंत्र (Combination of pulleys)**—साधारणत. चलायमान घिरनीयुक्त यंत्र मे एक घिरनी के वजाए एकाधिक घिरनियाँ रहती हैं। इस प्रकार दो घिरनीयुक्त यंत्र मे एक घिरनी चलायमान तथा दूसरी घिरनी स्थिर होती है। रस्सी का एक सिरा स्थिर
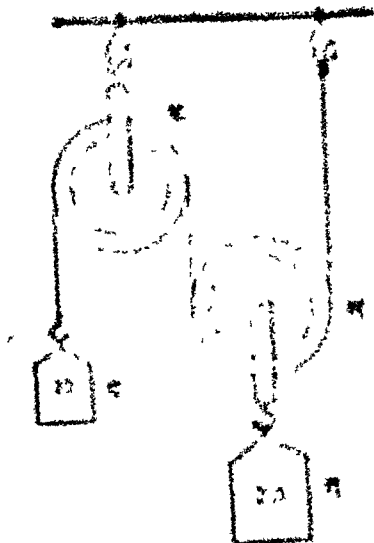
पड़ता है। लेकिन नत समतल के सहारे उसे अपेक्षाकृत कम आयास से ऊपर उठाया जा सकता है। नत समतल के सहारे वस्तुओ को ऊपर उठाते समय तल के ढाल के अनुसार वल मे कमी-बेशी होती है। क्षितिज तल और नत तल के बीच का कोण जितना छोटा होगा यानी नत तल का ढाल जितना कम होगा—वल उतना ही कम लगेगा। इसी कारण से पहाड़ आदि पर चढ़ने के लिए रास्ता नत समतलीय बनाया जाता है। ऐसा करने के लिए उसे सर्पिल बनाया जाता है और घुमा-घुमाकर चोटी तक ले जाया जाता है।

●

अध्याय २

गति तथा न्यूटन की गति के नियम

विराम तथा गति (Rest and motion)

पृथ्वी अपने कक्ष पर लगातार घूम रही है। साथ-साथ वह सूरज के चारों ओर चक्कर भी लगा रही है। इस प्रकार पृथ्वी गतिशील है। सच कहा जाए, तो भू-मडल मे ऐसी कोई वस्तु नही है जो गतिशील न हो।

समय के साथ-साथ, किसी स्थिर निर्देश-विंदु के सापेक्ष वस्तु के स्थान-परिवर्त्तन होने से कहा जाएगा कि वस्तु गतिशील है। अर्थात् समय के साथ-साथ स्थान-परिवर्त्तन की क्रिया को 'गति' कहते हे।

अगर समय के साथ-साथ, किसी स्थिर विंदु के सापेक्ष वस्तु स्थान-परिवर्त्तन न करे, तो उसे विरामावस्था मे समझा जाएगा। लेकिन, विश्व में न तो कोई वस्तु परम विरामावस्था (absolute rest) में ही हो सकती है और न कोई परम स्थिर विंदु 'absolutely fixed point) ही मिल सकता है। परम स्थिर विंदु न होने के कारण परम गति (absolute motion) का होना भी सभव नही है। इसलिए यह स्पष्ट है कि वस्तु की गति या स्थिरता केवल आपेक्षिक (relative) ही हो सकती है। जब एक वस्तु किसी दूसरी वस्तु की अपेक्षा अपना स्थान-परिवर्त्तन करती है, तो पहली दूसरी के सापेक्ष गति (relative motion) मे है। अगर स्थान न बदलती हो, तो वह आपेक्षिक विरामावस्था (relative rest) मे है। साइकिल चलाते समय साइकिल के हैडल या सीट के सापेक्ष चालक कोई-स्थान परिवर्तन नही करता है अर्थात् हैडल या सीट को अगर स्थिर विंदु माना जाए, तो चालक विरामावस्था मे है। साथ ही, अगर सडक पर की किसी वस्तु को स्थिर विंदु मान ले, तो उसकी तुलना में चालक स्थान-परिवर्त्तन करता जा रहा है। अत चालक गति मे है। इस प्रकार साइकिल चलाते समय एक ही समय चालक आपेक्षिक विरामावस्था तथा आपेक्षिक गति की अवस्था मे होता है।

चाल (Speed)

गतिशील वस्तु एक इकाई समय मे जितनी दूरी तय करती है, वह उस इकाई समय मे उसकी चाल कही जाती है। अगर एक मोटरगाडी एक मिनट मे सौ मीटर चलती है तो कहा जाएगा कि उस मोटरगाड़ी की चाल मिनट मे सौ मीटर है। चाल से किसी वस्तु की दूरी तय करने की दर तो मालूम हो जाती है लेकिन इसमे उसके चलने की दिशा नही मालूम होती। चलने की दिशा में परिवर्त्तन होते रहने पर भी अगर उसकी दूरी तय करने की दर अपरिवर्त्तित रहे तो चाल भी अपरिवर्त्तित रहेगी। जब कोई वस्तु एक ही चाल से चलती जाए, तो उस चाल को **समरूप चाल** (uniform speed) कहा जायगा। अगर एक मोटरगाड़ी प्रथम मिनट मे १०० मीटर, दूसरे मिनट मे १२५ मीटर, तीसरे मिनट मे १७५ मीटर और इसी प्रकार बदलती हुई दर से चले, तो कहा जाएगा कि वह परिवर्त्तनशील चाल से चल रही है।

वेग (Velocity)

अगर वस्तु एक निश्चित दिशा मे चल रही हो, तो उस समय उसके स्थान-परिवर्त्तन की दर को वेग (velocity) कहा जाता है अर्थात् **निश्चित दिशा में चाल को वेग कहते** है। दिशा-परिवर्त्तन होने से चाल अपरिवर्त्तित रहने पर भी, माना जाएगा कि वेग मे परिवर्त्तन हुआ है। अगर एक लड़का एक गोलाकार पथ पर मिनट मे ५० गज के हिसाब से दौड़ता रहे तो उसकी चाल तो समरूप रहेगी, पर दिशा बदलते रहने के कारण उसका वेग हमेशा परिवर्त्तित होता रहेगा। अँग्रेजी प्रणाली मे वेग का मात्रक एक फुट प्रति सेकेंड तथा फ्रांसीसी प्रणाली मे एक सेंटीमीटर प्रति सेकेंड माना जाता है।

सापेक्ष वेग (Relative velocity)

वेग दो तरह का होता है—सापेक्ष वेग (relative velocity) और निरपेक्ष वेग (absolute velocity)। दो गतिशील वस्तुओ के वेग की तुलनात्मक दर को **सापेक्ष वेग** कहते हैं।

अगर एक आदमी साइकिल पर १० किलो मीटर प्रति घंटे की रफ्तार से चलते समय एक मोटरगाडी को, जो २० किलो मीटर प्रति घंटे की रफ्तार से उसी दिशा में चल रही है—देखे, तो उसको लगेगा कि वह मोटरगाड़ी घटे

मे केवल १० किलो मीटर की रफ्तार से चल रही है। अगर वह उसी रफ्तार से विपरीत दिशा मे चलनेवाली एक मोटरगाड़ी को जाते देखे, तो उसे लगेगा कि वह गाड़ी घटे मे ३० किलो मीटर की रफ्तार से जा रही है। लेकिन, रास्ते के किनारे खडे आदमी को दोनो गाड़ियाँ २० किलो मीटर प्र० घ० की रफ्तार से चलती हुई माlूम पड़ेगी। साइकिल के वेग के साथ मोटरगाडी के वेग की तुलनात्मक दर एक अवस्था मे १० किलो मीटर प्रति घंटा तथा दूसरी अवस्था मे ३० किलो मीटर की प्रति घटा होती है। अर्थात् साइकिल के वेग की अपेक्षा पहली और दूसरी मोटरगाड़ी के सापेक्ष वेग क्रमश. १० और ३० कि० मी० प्रति घंटा है। भिन्न-भिन्न वेग से एक ही दिशा मे चलनेवाली वस्तुओ का सापेक्ष वेग उनके वेगो का अंतर होगा और विपरीत दिशाओ में चलनेवाली वस्तुओ का सापेक्ष वेग उनके वेगों का योग-फल होगा। अर्थात् एक ही दिशा मे २० कि० मी० प्र० घं० और १० कि० मी० प्र० घ० के वेग से दो गाड़ियो का सापेक्ष वेग २० − १० = १० कि० मी० प्र० घं० होगा। इन्ही वेगो से विपरीत दिशाओ मे चलनेवाली गाड़ियो का सापेक्ष वेग २० + १० = ३० कि० मी० प्र० घं० होगा। रास्ते मे खड़े स्थिर आदमी के लिए २० और १० कि० मी० प्र० घं० के वेग से चलनेवाली दोनों गाड़ियो के निरपेक्ष वेग क्रमश· २० और १० कि० मी० प्र० घं० होगे।

सही माने में विश्व में कोई भी वेग निरपेक्ष नही हो सकता है। पृथ्वी स्वयं गतिशील है। सूरज, चंद्रमा, तारे आदि सभी गतिशील हैं। इसलिए निरपेक्ष वेग का होना संभव नही है। हम जिन वेगों को निरपेक्ष समझते हैं, वास्तव मे वे भी निरपेक्ष नही है। वास्तविक जीवन में कुछ वस्तुओ को स्थिर मानकर हम निरपेक्ष वेग की कल्पना कर लेते हैं।

त्वरण (acceleration)

पृथ्वी मे कोई भी वस्तु हमेशा समरूप चाल से नही चल सकती है। प्रत्येक गतिशील वस्तु के वेग मे ह्रास या वृद्धि होती रहती है। प्रति इकाई समय में किसी वस्तु के वेग के परिवर्त्तन की दर को त्वरण कहते हैं। रेलवे-स्टेशन पर जव रेलगाड़ी रुकी हुई रहती है, उस समय वह विराम की अवस्था मे रहती है। विराम की अवस्था से जव गाडी चलना शुरू कर देती है अर्थात् गतिशील अवस्था में आ जाती है, तव क्रमशः उसके वेग में वृद्धि

होने लगती है। इस प्रकार कुछ देर तक वेग-वृद्धि के वाद वह पूर्ण वेग को प्राप्त कर लेती है और समरूप वेग से चलने लगती है। स्टेशन पास आने पर उसके वेग का मंदन होने लगता है और स्टेशन पर आकर वह फिर विरामावस्था में आ जाती है। अगर गाड़ी का वेग प्रति सेकेंड १० मीटर के हिसाव से वढ़ता जाए, तो कहा जाएगा कि गाड़ी के त्वरण की दर १० मीटर प्रति सेकेंड-प्रति सेकेंड है। जव प्रति इकाई समय मे वेग-वृद्धि की दर समान होती है, तो उस त्वरण को समरूप त्वरण और अगर उस में कमी-वेशी होती रहे तो असमरूप त्वरण कहते हैं।

वेग-मंदन (Retardation)

जव गतिशील वस्तु की चाल धीमी होती जाती है तव वस्तु का वेग घटता जाता है और वेग के घटने की दर को वेग-मंदन कहते है। वेग-मदन की दर को ऋणात्मक त्वरण भी कहते है। इसे दिखाने के लिए त्वरण के सामने ऋणात्मक चिह्न (–) लगाया जाता है।

संवेग (Momentum)

वस्तु के गतिशील हो जाने से उसमे कुछ विशेष गुण उत्पन्न हो जाता है। यह गुण विरामावस्था मे उसमे नही रहता है। एक लाठी को अगर यो ही कंधे पर रख लिया जाय तो कोई चोट नही लगती; परंतु अगर उसी लाठी को कधे पर जोर से मारा जाए तो काफी चोट लगेगी। एक पत्थर के टुकड़े को यो ही हाथ मे रख लेने से चोट नही लगेगी; लेकिन फेंक कर मारा हुआ पत्थर हाथ मे लग जाने से चोट लगेगी। इन वातो से मालूम हो जाता है कि लाठी या पत्थर जव गतिशील हो जाते है, तो उनमे एक ऐसा गुण उत्पन्न हो जाता है, जिससे चोट लगती है। वस्तु की गतिशील अवस्था मे उत्पन्न इस गुण को सवेग कहते हे। सवेग का परिमाण उस वस्तु के द्रव्यमान तथा उसके वेग के गुणनफल के समान होता है। अर्थात् सवेग = द्रव्यमान × वेग (Momentum = mass × velocity)। एक ग्राम मात्रा वाली वस्तु का एक सेंटीमीटर प्रति सेकेंड वेग होने पर उसका सवेग एक मात्रक होगा।

न्यूटन के गति के नियम

गति के सवंध मे सुव्यवस्थित अध्ययन सर्वप्रथम सुविख्यात अँग्रेज वैज्ञानिक सर आइजक न्यूटन ने किया। इन्होंने गति-संवंधी तीन नियमों का

प्रतिपादन किया। वस्तुओं की गतिशील अवस्था तथा नियमों का अध्ययन, कल-कारखाने बनाने तथा चलाने मे सहायता पहुँचाता है।

गति-संबधी न्यूटन के तीन सिद्धात वास्तव मे स्वयं सिद्ध हैं। कहा जा सकता है कि उन्होने निरीक्षण तथा अनुभव के आधार पर इन्हे सूत्राकार में वर्णन किया है, ताकि इन्हें गति और बल के अध्ययन का आधार बनाया जा सके। न्यूटन के गति-संबंधी तीन सिद्धांत ये हैं—

(१) वस्तु तब तक विराम की अवस्था में रहेगी या समरूप वेग से एक सरल रेखा मे चलती रहेगी, जब तक उसपर बल लगाकर उसकी अवस्था या वेग मे परिवर्त्तन न कर दिया जाए।

(२) सवेग में परिवर्त्तन की दर (rate of change of momentum) वस्तु पर लगते हुए बल की अनुक्रमानुपाती (directly proportional) होती है। बल जिस दिशा में क्रिया करता है, सवेग में परिवर्त्तन की दिशा भी वही होती है।

(३) प्रत्येक क्रिया (action) की समान किंतु प्रतिकूल प्रतिक्रिया (reaction) होती है।

न्यूटन के प्रथम नियम को जड़ता का नियम (law of inertia), द्वितीय नियम को बल का नियम (law of force) और तृतीय नियम को प्रतिक्रिया का नियम (law of reaction) कहते हैं।

जड़ता (Inertia)

मेज पर एक किताब रखी हुई है। अपने आप उसमें गति नही आ सकती और न वह उस स्थान से हट ही सकती है। वस्तु को अपनी स्थिति मे छोड देने से वह उसी अवस्था मे पड़ी रहती है। इसी प्रकार गतिशील वस्तु तब तक एकरूप वेग से गतिशील रहती है और एक ही दिशा मे एक सरल रेखा में चलती रहती है, जब तक उसके वेग को बदलने के लिए या गति की दिशा परिवर्त्तित करने के लिए कोई बाह्य बल न लगाया जाए। किसी भी वस्तु के इस गुण को जड़ता कहते हैं।

पदार्थ स्वतः अपनी स्थिति मे परिवर्त्तन नही ला सकता—उसकी स्थिति मे परिवर्त्तन लाने के लिए बाहरी बल (external force) की आवश्यकता

होती हैं। इस प्रकार विराम की अवस्था मे स्थित वस्तु मे विराम की ही अवस्था में रहने की और गतिशील वस्तु मे एकरूप वेग की अवस्था मे रहने की प्रवृत्ति होती है। इन्हे क्रमश. विराम-जड़ता (inertia of rest) तथा गति-जड़ता (inertia of motion) कहते है।

विराम-जड़ता

प्रयोग—एक कांच का ग्लास लेकर उसके ऊपर एक पतली चिकनी दफ्ती रखिए। दफ्ती के बीच मे एक मुद्रा रखिए। एक पेंसिल या कलम के हैंडल से दफ्ती को जोर से ऐसे मारिए ताकि दफ्ती छिटककर दूर जा गिरे। देखिएगा कि मुद्रा दफ्ती के साथ न जाकर ग्लास के अंदर गिर गई है। मुद्रा मे विराम-जड़ता के कारण ऐसा हुआ है।

इसी प्रकार रुकी हुई गाड़ी जव एकाएक चल देती है तव उसमे खड़ा आदमी पीछे की ओर फेंका जाता है। यह भी विराम जड़ता के कारण ही होता है। आदमी जव गाड़ी में खड़ा रहता है तव उसके शरीर का निचला भाग गाड़ी के संपर्क मे रहता है। इसी कारण गाड़ी मे गति आने पर शरीर के निचले भाग में गति आ जाती है, किंतु ऊपरी भाग अपने विराम की अवस्था मे रहना चाहता है और इसी कारण से शरीर का ऊपरी भाग गाड़ी चलने की दिशा की विपरीत दिशा मे फेका जाता है।

गति-जड़ता

चलती गाड़ी से सीधे नीचे उतरने पर आदमी सामने की ओर गिर पड़ता है। यह गति-जड़ता के कारण होता है; क्योंकि गाडी पर सवार आदमी में गाड़ी के साथ-साथ गति आ जाती है और एकाएक उतर जाने पर शरीर का निचला भाग जमीन पर आ जाने से स्थिर हो जाता है, किंतु शरीर का ऊपरी भाग गति-जड़ता के कारण आगे वढना चाहता है और आदमी आगे फेका जाता है। चलती हुई गाड़ी के एकाएक रुक जाने पर उसमें खड़ा आदमी गाड़ी की गति की दिशा की ओर फेंका जाता है। यह भी गति-जड़ता के कारण ही होता है।

वल का सिद्धांत

वल (Force)

न्यूटन के दूसरे सिद्धात के अनुसार किसी वस्तु के सवेग-परिवर्त्तन की दर, उस पर लगनेवाले वल की अनुक्रमानुपाती होती है और यह परिवर्त्तन

वल की दिशा मे होता है। हमे पहले ही मालूम हो गया है कि संवेग वस्तु के द्रव्यमान तथा वेग का गुणनफल है।

किसी वस्तु में, जिसका द्रव्यमान स्थिर है, वेग का परिवर्त्तन होने से इसके संवेग में भी परिवर्त्तन होता है। न्यूटन के गति के दूसरे नियम के अनुसार किसी वस्तु के सवेग मे परिवर्त्तन की दर उस वस्तु पर आरोपित बल का अनुक्रमानुपाती होती है। इस नियम से वल की जो परिभाषा प्राप्त होती है, वह इस प्रकार है—

"बल वह कारण है जो वस्तु के संवेग मे परिवर्त्तन लाता है या लाने की चेष्टा करता है।" जब आरोपित बल विरामावस्था में पड़ी हुई वस्तु में गति उत्पन्न करता है तब उसके संवेग मे भी परिवर्त्तन होता है। अथवा वह बल जब एक रूप वेग से गतिशील वस्तु के वेग मे परिवर्त्तन लाता है तो भी उसके संवेग में परिवर्त्तन लाता है। दोनो अवस्थाओ में संवेग में परिवर्त्तन बाह्य बल के कारण ही होता है।

यदि किसी वस्तु पर दो समान बल विपरीत दिशाओं मे लग रहे हों तो परिणामी बल शून्य होगा और संवेग मे परिवर्त्तन नही होगा। यद्यपि इस अवस्था मे प्रत्येक बल उस वस्तु मे संवेग का परिवर्त्तन उत्पन्न करने की चेष्टा करता है।

मेज पर रखी हुई किताब को हाथ से ठेल देने पर उसमें गति आ जाती है यानी उस पर हाथ से बल लगाया गया और उसमे गति पैदा हो गई। ठेली हुई किताब को अगर दूसरे हाथ से रोक दिया जाए या दूसरी दिशा मे ठेल दिया जाए तो किताब की गति को हाथ से बल लगाकर रोका गया या उसकी गति की दिशा मे परिवर्त्तन कर दिया गया।

किसी वस्तु पर दो विपरीत दिशाओं से समपरिमाण के बल लगाने से वह वस्तु विराम की अवस्था मे ही रहेगी। यदि मेज पर रखी हुई किताब को दो हाथो से दो विपरीत दिशाओं में समपरिमाण बल लगाकर ठेला जाए तो किताब मे गति नही आएगी, वल्कि वह विराम की अवस्था में ही रहेगी। किसी वस्तु में गति आना उस पर लगे हुए बलों के परिमाण तथा दिशा पर निर्भर करता है।

घर्षण वल (Friction)

हाथ से न रोकने पर भी थोड़ी दूर जाकर ठेली हुई किताव रुक जाती है ; क्योकि किताव पर हवा तथा मेज की सतह का घर्षण वल लग रहा था और इसके चलते कुछ दूर जाकर उसे रुक जाना पड़ता है। हवा जितनी तेज होगी या गतिशील वस्तु या जिस तल पर वह चलती है, जितना अधिक खुरदरा होगा, घर्षण वल उतना ही अधिक होगा और चलने वाली वस्तु उतनी ही जल्द रुक जाएगी। हवा का वेग जितना ही कम होगा तथा फिसलने का तल जितना चिकना होगा, घर्षण वल उतना ही कम लगेगा और वस्तु अधिक देर तक गतिशील रहेगी। इसीलिए यंत्र के चलने वाले अंशों मे घर्षण वल कम करने के लिए स्नेहक तेल डाला जाता है।

जव एक वस्तु दूसरी वस्तु को स्पर्श करती हुई गतिशील होने का प्रयत्न करती है तो दूसरी वस्तु इस प्रयत्न मे प्रतिरोध उत्पन्न करती है। दोनो के स्पर्श तल पर उत्पन्न इस प्रतिरोध वल को घर्षण वल कहते है।

घर्षण वल प्रतिरोध उत्पन्न करके हमे केवल नुकसान ही नही पहुँचाता है, वल्कि हमारे जीवन मे वहुत-से लाभ भी पहुँचाता है। इसके कारण ही हम किसी वस्तु पर खड़े हो सकते है तथा चल सकते है। वस्तु की सतह जितनी चिकनी होती है, उसपर घर्षण वल उतना ही कम उत्पन्न होता है और उसपर चलने या खड़ा होने मे उतनी ही दिक्कत होती है। सतह अधिक चिकनी होने से उसपर गाडी के चक्के फिसलते है। अतः घर्षण वल के अभाव से गाडियाँ आदि भी नही चल सकती है। घर्षण वल न रहने पर न तो हम कागज पर लिख ही सकते है और न पेड़ पर चढ सकते हैं—न कील ठोक सकते है और न रस्सी मे गाँठ ही वाँध सकते है। इस प्रकार हमारे नित्य की जीवन-यात्रा मे घर्षण वल काफी सहायक होता है।

अपकेंद्री (Centrifugal) तथा अभिकेंद्री (Centripetal) वल

धागे में एक ढेला वाँधकर एक केंद्र के चारो ओर वृत्तीय पथ पर, घुमाने से मालूम होगा कि ढेला धागे को इस प्रकार खीच रहा है कि मानो वह वृत्तीय पथ को छोडकर वाहर भाग जाना चाहता है। वृत्तीय पथ छोड़कर भाग जाने से रोकने के लिए धागे के सहारे उसे खीचकर रखना पड़ता है। इस प्रकार हम देखते है कि ढेला जव वृत्ताकार गति से घूमता है तव उसपर

दो प्रकार के वल परस्पर विपरीत दिशाओं में काम करते हैं। एक वल उसे वृत्ताकार पथ से हटाकर केंद्र से दूर ले जाने का प्रयत्न करता है तो दूसरा वल उसे केंद्र की ओर खीचता है और वृत्ताकार पथ पर कायम रखता है।

[चित्र ४६—(क) अपकेंद्री वल,
(ख) अभिकेंद्री वल]

जो वल केंद्र से दूर हटाने का प्रयत्न करता है, उसे अपकेंद्री वल और जो वल केंद्र की ओर खीचता है, उसे अभिकेंद्री वल कहते हैं।
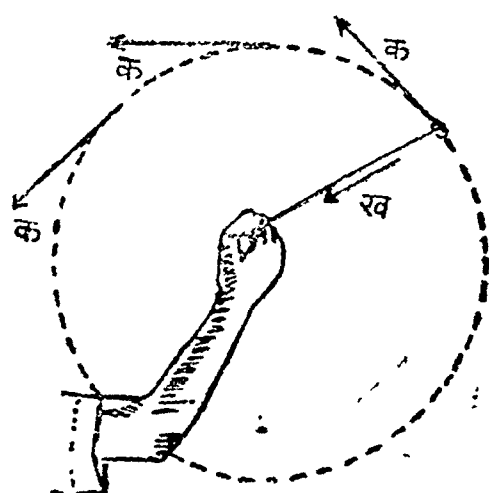
अगर घुमाते समय धागा टूट जाए, तो ढेले पर लगनेवाले दोनो प्रकार के वलो का अंत हो जाता है और गति-जडता के कारण उस समय जिस दिशा मे उसका रुख था, उसी दिशा मे ढेला भाग जाता है। सान पर चाकू तेज करते समय जो आग की चिनगारियाँ निकलती है, वे अपकेंद्री वल के कारण ही वाहर की ओर फेंकी जाती है।

इसी प्रकार चक्कियो मे अनाज पीसते समय वीच मे डाला हुआ अनाज अपकेंद्री वल के कारण ही पिसकर वाहर निकल आता है।

प्रतिक्रिया का सिद्धांत

न्यूटन के गति के तीसरे नियम के अनुसार प्रत्येक क्रिया की, उसके बरावर किन्तु विपरीत दिशा में, प्रतिक्रिया होती है। इस क्रिया को 'प्रतिक्रिया का सिद्धांत' कहा जाता है।

गेंद को जितने जोर (वल) से दीवार पर पटका जाता है, उतने ही जोर (वल) से वह विपरीत दिशा में लौट आता है। अगर हाथ पर एक किलो वजन का एक पदार्थ रखा जाए तो वह वजन हाथ को नीचे की ओर दावेगा। किंतु हाथ भी उस पदार्थ पर समान वल लगाता है, जिसके विपरीत दिशा में

होने के कारण, वह पदार्थ हाथ से नीचे नही गिरने पाता है। नाव खेते समय लग्गी से जमीन पर वल लगाया जाता है और साथ ही जमीन भी विपरीत दिशा में उतना ही वल लगाती है जिसके कारण नाव आगे वढ़ जाती है। इसी प्रकार पैर द्वारा पृथ्वी पर लगाये गये वल की पृथ्वी द्वारा प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हम चलते है। वंदूक दागने पर कुन्दे का धक्का भी सामने फेंकी गई गोली की विपरीत दिशा मे प्रतिक्रिया के फलस्वरूप लगता है।

प्रतिक्रिया का यह नियम सभी अवस्थाओ मे—चाहे दोनों वस्तुएँ स्थिर हों या गतिशील, एक गतिशील हो तथा दूसरी स्थिर या दोनों एक दूसरे से सटी हुई हो या दूर हों, हमेशा लागू होता है।

गुरुत्वाकर्षण (Gravitation)

ऊपर की ओर एक ढेला फेकने पर कुछ दूर तक जाकर वह क्षण भर रुक जाता है और फिर नीचे की ओर गिरने लगता है तथा अत मे जमीन पर आ गिरता है। लेकिन न्यूटन के प्रथम सिद्धांत के अनुसार अगर उस ढेले पर कोई वल नही लगता, तो उसे ऊपर की ओर ही चलते रहना चाहिए था। पर हम जानते है कि ऐसा नही होता अर्थात् ऊपर की ओर फेंकी जाने वाली वस्तुओ पर कोई वल अवश्य ही लगता है और उसकी गति की दिशा को परिर्वात्तित कर देता है।

पृथ्वी प्रत्येक वस्तु को अपने केंद्र की ओर आकर्पित करती है और इसी आकर्षण-वल की क्रिया के कारण ऊपर फेंकी गई वस्तु फिर से जमीन पर आ गिरती है। इस आकर्पण को **गुरुत्वाकर्षण** कहते है।

केवल पृथ्वी ही नही वल्कि प्रत्येक वस्तु अन्य प्रत्येक वस्तु को अपनी ओर आकर्पित करती है। जिस वस्तु का द्रव्यमान जितना ही अधिक होगा, उसकी आकर्षण शक्ति भी उतनी ही अधिक होगी।

सर्वत्रव्यापी गुरुत्वाकर्षण-नियम के अनुसार दो वस्तुओ के वीच लगता हुआ पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण वल उन वस्तुओं के द्रव्यमान के गुणनफल का अनुक्रमानुपाती तथा उन वस्तुओ के वीच की दूरी के वर्ग का व्युतक्रमानुपाती होता है।

पृथ्वी के द्रव्यमान की तुलना मे पृथ्वी पर की वड़ी से वड़ी वस्तु का द्रव्यमान वहुत ही कम है। इसी कारण पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के सामने अन्यान्य वस्तुओ की आकर्षण-शक्ति वहुत ही नगण्य होती है।

प्रत्येक वस्तु पर पृथ्वी का गुरुत्वाकर्पण उस वस्तु के द्रव्यमान का अनुक्रमानुपाती होता है। अर्थात् जिस वस्तु का द्रव्यमान जितना अधिक होगा, उसपर पृथ्वी का गुरुत्वाकर्पण वल उतना ही अधिक होगा। इस कारण सभी वस्तुओं के गिरते समय उनके गिरने की गति में त्वरण समान होता है। समान ऊँचाई से दस मन वजन का लोहा तथा आधा सेर वजन का पत्थर एक साथ गिराने से दोनों एक ही साथ जमीन पर आ गिरेंगे। गिरती हुई वस्तुओं के त्वरण को अँग्रेजी अक्षर g द्वारा प्रकट किया जाता है। द्रव्यमान को अँग्रेजी अक्षर m द्वारा प्रकट किया जाता है। किसी वस्तु पर लगे हुए गुरुत्वाकर्षण वल को m × g द्वारा प्रकट किया जाता है।

सत्रहवी सदी मे सर आइजक न्यूटन ने ही सर्वप्रथम गुरुत्वाकर्पण सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। कहा जाता हे कि अपने वगीचे मे पेड से एक सेव को गिरते देखकर उनके मन मे प्रश्न उठा कि सेव ऊपर न जाकर जमीन पर ही क्यो आ गिरता है। इस क्यों के उत्तर में उन्होने गुरुत्वाकर्पण के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

लेकिन उनसे पाँच सौ साल पहले वारहवी सदी मे भारतीय ज्योतिप-शास्त्री महापंडित भास्कराचार्य ने अपने ग्रन्थ 'सिद्धात शिरोमणि' मे लिखा था—

"आकृष्टि　शक्तिश्च　महीयत।
स्वस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वाशकत्या॥
आकृष्यते　तत्न　पततीवभाती।
समे समन्तात क्व पतत्वियं सखे॥"

'जव कोई वस्तु पृथ्वी पर गिरती है, तो ऐसा इसलिए होता है कि पृथ्वी उसे केंद्र की ओर आकर्पित करती है। आकाशस्थ वस्तुओं में परस्पर आकर्षण के कारण ही वे अपने-अपने स्थान को नही छोडते है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय ज्योतिपियों ने भी न्यूटन से लगभग ५०० साल पहले ही गुरुत्वाकर्षण के सिद्धात का आविष्कार किया था। फिर भी यह सही है कि सर्वप्रथम सुव्यवस्थित तथा व्यापक रूप से इस सिद्धात का प्रतिपादन न्यूटन ने ही किया था।

घनत्व तथा आर्किमिदिस का सिद्धांत

घनत्व (Density)

समान आयतन के एक काठ और एक लोहे के टुकड़े को उठा लेने पर एक कम और दूसरा अधिक वजनदार मालूम पड़ेगा। एक बोरा रूई और उसी आकार के एक बोरा चीनी के वजन मे काफी अतर होता है। इसी प्रकार सामान आकार का एक पात्र पानी और एक पात्र पारा तौलने पर बहुत बड़ा अंतर दिखाई पड़ेगा। ऐसा क्यो ? ऐसा इसलिए होता है कि विभिन्न वस्तुओ का घनत्व भिन्न-भिन्न होता है। **प्रत्येक वस्तु के इकाई-आयतन में पदार्थ के द्रव्यमान (mass) को उस वस्तु का घनत्व कहते है।** इसी प्रकार किसी वस्तु का घनत्व मालूम करने के लिए पहले उसका आयतन और द्रव्यमान निकालना पड़ता है। फिर द्रव्यमान को आयतन से भाग देने पर उसका घनत्व अर्थात् द्रव्यमान प्रति इकाई आयतन निकल आएगा। अर्थात्

$$\text{घनत्व} = \frac{\text{द्रव्यमान}}{\text{आयतन}}$$

से० मी० ग्रा० सेक० (C. G. S.) पद्धति में एक घन सेटीमीटर लोहे का द्रव्यमान ७·७ ग्राम है अर्थात् लोहे का घनत्व ७·७ प्रति घन सेटीमीटर है। एक घन से० मी० जल का द्रव्यमान १ ग्राम होता है और १ घन से० मी० सोने का द्रव्यमान १९ ३ ग्राम होता है। अत इनके घनत्व क्रमश. १ ग्राम प्रति घन से० मी० तथा १६ ३ ग्राम प्रति घन से० मी० है। घनत्व का मान हमेशा द्रव्यमान प्रति इकाई आयतन के मात्रक से लिखना चाहिए—जैसे ग्राम प्रति घन से० मी० या पाउण्ड प्रति घनफुट आदि।

इस प्रकार किसी वस्तु के घनत्व द्रव्यमान तथा आयतन मे कोई दो मालूम होने से आसानो से तीसरे को मालूम किया जा सकता है। जैसे—

$$\text{द्रव्यमान} \div \text{आयतन} = \text{घनत्व}$$
$$\text{द्रव्यमान} \div \text{घनत्व} = \text{आयतन}$$
$$\text{घनत्व} \times \text{आयतन} = \text{द्रव्यमान}$$

आपेक्षिक घनत्व (Relative density)

समान आयतन के काग और लोहे के टुकड़े का वजन करने से काग के टुकड़े का वजन लोहे के टुकड़े के वजन से बहुत कम पाया जाएगा। इसका

अर्थ यह हुआ कि काग का घनत्व लोहे के घनत्व से बहुत कम है। काग तथा लोहे के घनत्व का अनुपात इन दोनों पदार्थों का आपेक्षिक घनत्व है। दो पदार्थों का आपेक्षिक घनत्व उन दोनो पदार्थों के घनत्व का अनुपात है अर्थात् पदार्थों का आपेक्षिक घनत्व उन पदार्थों के सम आयतन के द्रव्यमानो की तुलना से प्राप्त होता है।

जैसे—एक घन से० मी० लोहे का द्रव्यमान ७'७ ग्राम तथा एक घन से० मी० काग का द्रव्यमान ०'२ ग्राम है। इसलिए काग के सापेक्ष लोहे का

$$\text{आपेक्षिक घनत्व} = \frac{\text{लोहे का घनत्व}}{\text{काग का घनत्व}} = \frac{\text{७'७ प्रति घन से० मी०}}{\text{•२ प्रति घन से० मी०}} = \text{३८'५}$$

दो घनत्वो के अनुपात होने के कारण आपेक्षिक घनत्व केवल एक संख्या द्वारा सूचित किया जाता है जो मात्रक की पद्धति पर निर्भर नही करती है। लोहे और काग के घनत्व यदि पौंड प्रति घनफुट में मापे जाएँ तथा एक को दूसरे से भाग दिया जाय तो फिर भी वही संख्या—३८'५ प्राप्त होगी।

एक घन से० मी० शुद्ध जल का द्रव्यमान, ४°C पर एक ग्राम होता है। इस कारण जल के सापेक्ष किसी भी पदार्थ का आपेक्षिक घनत्व उस पदार्थ के घनत्व के बरावर होता है। नीचे कई पदार्थों का एक घन से० मी० आयतन के द्रव्यमान तथा घनत्व की तालिका दी जा रही है।

पदार्थ का नाम			द्रव्यमान	घनत्व		
एक घन से० मी० आयतन						
		पानी	१ ग्राम	१ ग्राम प्रति	घन से०	मी०
"	"	बरफ	०.९२ "	०.९२	"	"
"	"	काग	०.२ "	०.२	"	"
"	"	सोना	१९.३ "	१९.३	"	"
"	"	तांबा	८.९ "	८.९	"	"
"	"	पीतल	८.३ "	८.३	"	"
"	"	अल्युमिनियम	२.६ "	२.६	"	"
"	"	सीसा	११.३ "	११.३	"	"
"	"	पारा	१३.६ "	१३.६	"	"
"	"	लोहा	७.७ "	७.७	"	"

विशिष्ट गुरुत्व (Specific gravity)

किसी वस्तु का विशिष्ट गुरुत्व उस वस्तु का द्रव्यमान तथा सम आयतन के जल के द्रव्यमान का अनुपात है। अर्थात् ४°C पर शुद्ध जल के सापेक्ष उस वस्तु का आपेक्षिक घनत्व हैं।

प्रत्येक वस्तु का एक निश्चित विशिष्ट गुरुत्व होता है। इसके द्वारा प्रत्येक वस्तु के घनत्व के साथ ४°C तापमान पर जल के घनत्व का अनुपात मालूम हो जाता है।

$$\therefore \text{वस्तु का विशिष्ट गुरुत्व} = \frac{\text{वस्तु का घनत्व}}{\text{जल का घनत्व (४°C पर)}}$$

$$\because \text{घनत्व} = \frac{\text{द्रव्यमान}}{\text{आयतन}}$$

$$\therefore \text{वस्तु का वि० गु०} = \frac{\text{वस्तु का द्रव्यमान}}{\text{सामान आयतन के जल का द्रव्यमान (४°C पर)}}$$

मीटरी प्रणाली मे १ घन से० मी० जल का वजन १ ग्राम होने के कारण इस प्रणाली मे वस्तु के घनत्व का सख्यात्मक मान उसके वि० गु० के समान होता है। अँग्रेजी प्रणाली मे एक घन फुट पानी का वजन ७२.५ पौंड होने के कारण इसमे ऐसा नही होता है। लेकिन, मात्रक चाहे जिस प्रणाली का हो, वि० गु० का मान, सख्या मात्र होने के कारण, उसमे कोई अंतर न होगा।

पीतल, ताँवा, लोहा, सीसा, अल्युमिनियम आदि धातुओं के बने हुए छोटे-छोटे घनो (Cubes) को नापकर और तौलकर उन वस्तुओं का घनत्व आसानी से निकाला जा सकता है। उदाहरण के लिए, ताँवे का घनत्व निकालना है तो ताँवे का एक घन लीजिए। अगर घन का एक किनारा मापने पर २ सें० मी० निकले तो उस घन का आयतन २ × २ × २ = ८ घन सें० मी० होगा। तौलने से मालूम पड़ेगा कि इस घन का वजन अर्थात् द्रव्यमान ७१.२ ग्राम है। अब ताँवे का घनत्व निम्नलिखित विधि से निकाला जाएगा :—

$$\because \frac{\text{द्रव्यमान}}{\text{आयतन}} = \text{घनत्व}, \quad \therefore \frac{७१\cdot२}{८} = ८\cdot९ \text{ ग्राम प्रति घन से० मी०}$$

इस विधि से किसी भी वस्तु का, जिसका आकार नियमित हो, घनत्व निकाला जा सकता है।

किसी भी टेढ़ी-मेढ़ी (irregular) ठोस वस्तु का विशिष्ट गुरुत्व निकालने के लिए उसे पहले कमानीदार तुला की सहायता से तौलकर मीटरी मात्रक मे उसका द्रव्यमान निकाल लीजिए। मान लीजिए यह M_1 ग्राम है। मीटरी प्रणाली से चिह्नित एक मापक बेलन मे इतना पानी या अन्य कोई द्रव पदार्थ भर दीजिए कि वस्तु उसमे पूर्णतः डूब जा सके। खयाल रखना पड़ेगा कि वस्तु उसमे डालने से पानी छलककर गिर न जाए और वह द्रव पदार्थ ऐसा नही हो कि उसमे वह ठोस वस्तु घुल जाए। जहाँ तक द्रव भरा गया है, उसे सावधानी से देखकर नोट कर लीजिए। अब वस्तु को द्रव में डुबो दीजिए और काँच की एक पतली छड़ से हिला-हिलाकर उसमे लगे हुए बुलबुलो को तोड दीजिए। अब द्रव जहाँ तक ऊपर चढ आया है, उसे देखकर नोट कर लीजिए। दोनो पठनो का अतर वस्तु का आयतन है। मान लीजिए यह M_2 घ० सें० मी० है। साथ ही मीटरी प्रणाली मे होने के कारण, अगर बेलन का द्रव जल हो तो, इस अतर के संख्यात्मक मान से उस आयतन के जल का द्रव्यमान भी मालूम हो जायगा अर्थात् पानी का द्रव्यमान M_2 ग्राम है।

$$\therefore \text{ वस्तु का घनत्व } = \frac{M_1}{M_2} \text{ प्रति घ० से० मी० है।}$$

अगर वस्तु को जल मे डुबाया गया हो तो वस्तु का वि० गु० = $\frac{M_1}{M_2}$ प्रति घ० से० मी० है।

मिट्टी का तेल या अन्य किसी द्रव पदार्थ का वि० गु० निकालने के लिए एक मापक बेलन लेकर उसे पहले तौल लीजिए। मान लीजिए कि बेलन का द्रव्यमान M_1 है। बेलन मे एक निर्दिष्ट माप तक जल डालिए और फिर उसे तौलिए। मान लीजिए यह M_2 है। अब पानी को फेंक दीजिए और बेलन को अच्छी तरह सुखा लीजिए। अब उसमे जिस द्रव का वि० गु० निकालना हो, उसे उस निर्दिष्ट माप तक भर दीजिए और बेलन को फिर से वजन कीजिए। मान लीजिए यह द्रव्यमान M_3 है—

∴ निर्दिष्ट आयतन के जल का द्रव्यमान $= M_2 - M_1$ और समान आयतन के द्रव का द्रव्यमान $= M_3 - M_1$

∴ द्रव का वि० गु० $= \frac{M_3 - M_1}{M_2 - M_1}$ होगा।

आर्किमिदिस का सिद्धांत

जब किसी वस्तु को, पानी या किसी दूसरे द्रव मे अशत: या पूर्णत डुबाया जाता है, तब उस वस्तु का वजन कम मालूम पड़ने लगता है। वस्तु के वजन मे यह आभासी (apparent) कमी, उस वस्तु द्वारा हटाये गए पानी या द्रव के वजन के समान होता है। इसे **आर्किमिदिस का सिद्धांत** कहते हैं ; क्योंकि इस सिद्धान के आविष्कारक थे विख्यात ग्रीक वैज्ञानिक आर्किमिदिस।

आर्किमिदिस के सिद्धांत को सिद्ध करना

इस सिद्धांत को आसानी से एक प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जा सकता है, जिसे 'डोल' और 'वेलन-प्रयोग' कहते है।

प्रयोग—सम आयतन का एक डोल और वेलन लीजिए। वेलन का आयतन ऐसा होना चाहिए कि वह उस डोल मे ठीक से बैठ जाए। अब डोल को एक तुला के बाएँ पलड़े मे लगे हुए हुक के साथ लटका दीजिए और वेलन को डोल की पेंदी पर लगे हुए हुक से लटका दीजिए। दाएँ पलड़े पर बाट रखकर तुला की डंडी को संतुलित कीजिए। अब एक खाली बीकर इस प्रकार एक तख्ते पर रखिए कि वेलन बीकर के अंदर रहे, लेकिन बीकर की दीवारो का स्पर्श कर न करे। अब सावधानी से उस बीकर मे इतना पानी डालिए कि वेलन डूब जाए। वेलन के पानी मे डूबते ही तुला की डंडी हिलने लगेगी और दाईं ओर झुक जाएगी। अब धीरे-धीरे डोल मे पानी डालिए,
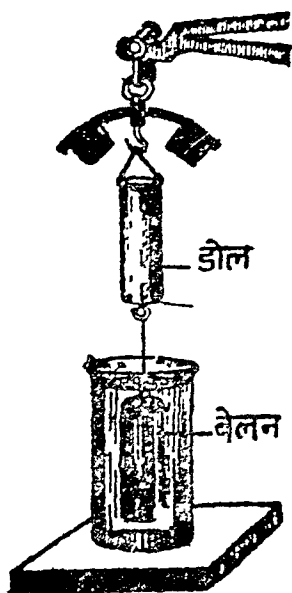
[चित्र ८७—डोल और वेलन-प्रयोग]

ताकि डोल पानी से भर जाए। डोल के पानी से भर जाते ही तुला की डंडी फिर से संतुलित हो जाएगी, क्योंकि डोल का भीतरी आयतन बेलन के आयतन के बराबर है। अत यह सिद्ध हो जाता है कि बेलन को पानी में डुबाने से भार में आभासी कमी, उसके द्वारा हटाये गये पानी के आयतन के भार के बराबर है।

आर्किमिदिस के सिद्धांत से यह भी मालूम हो जाता है कि जब कोई वस्तु पानी पर तैरती है तो उस समय उसका वजन आभासी तौर पर शून्य हो जाता है, क्योंकि उस वस्तु द्वारा हटाये गए पानी का ऊर्ध्व दाव उसके वजन के समान होता है। किसी द्रव्य मे पूर्णत. या अंशत: डूबी हुई वस्तु पर उस द्रव के ऊर्ध्व दाव को उस द्रव का उत्प्लावन (buoyancy) कहते हैं।

आर्किमिदिस के सिद्धांत का व्यावहारिक प्रयोग

ठोस वस्तु का वि० गु० निकालना

आर्किमिदिस के सिद्धांत की सहायता से वस्तुओ का वि० गु० निकाला जा सकता है।

मान लिजिए कि लोहे का वि० गु० निकालना है। लोहे के एक टुकडे को धागे मे बांधकर उसे कमानीदार तराजू मे तौल लीजिए। फिर एक जार मे पानी भरकर तराजू मे लटका कर ही उसे पानी मे डालिए। देखिएगा कि वस्तु का वजन काफी कम हो गया है। लोहे के टुकड़े के वजन मे यह आभासी कमी, उसके आयतन के समान पानी के वजन के समान होगी।

मान लिया जाए कि हवा में तौलते समय लोहे के टुकड़े का द्रव्यमान M_1 था और पानी में M_2; अर्थात् पानी मे इसके वजन की आभासी कमी $M_1 - M_2$ है। यानी उस आयतन के पानी का द्रव्यमान $M_1 - M_2$ है।

आर्किमिदिस के सिद्धांत के अनुसार किसी भी वस्तु के वि० गु० को निम्नलिखित उपाय से जान सकते है :—

$$\because \text{ वस्तु का वि० गु०} = \frac{\text{वस्तु के किसी भी आयतन का द्रव्यमान}}{\text{समान आयतन के जल का द्रव्यमान}}$$

$$\therefore \text{ लोहे के टुकड़े का वि० गु०} = \frac{\text{लोहे के टुकड़े का द्रव्यमान}}{\text{समान आयतन के जल का द्रव्यमान}}$$

$$= \frac{M_1}{M_1 - M_2}$$

पलडेदार तराजू से भी इस विधि द्वारा वि० गु० निकाला जा सकता है। इस प्रयोग के लिए वस्तु को धागे में बाँधकर बाईं ओर की डंडी के पलडे के साथ लटका दिया जाता है और दाहिने पलडे पर बाट रखकर उसे
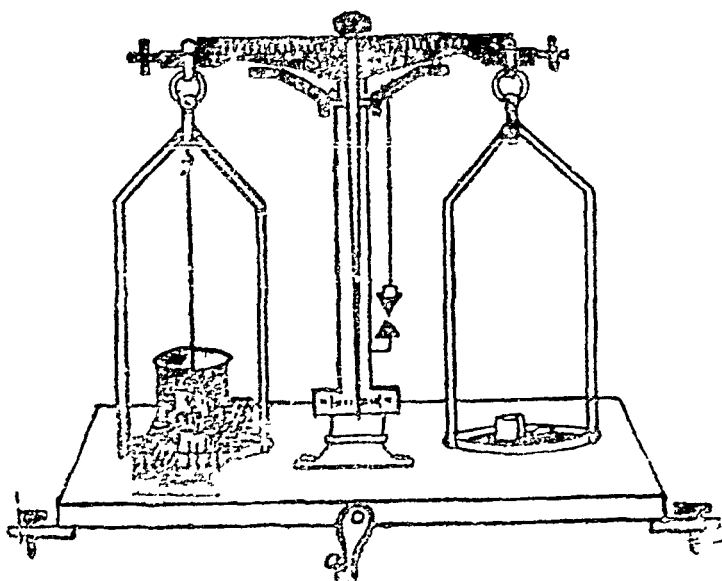
[चित्र ४८—पलडेदार तराजू से पानी मे डूबी वस्तु के वजन मे आभासी कमी का ज्ञान]

तौल लिया जाता है। फिर बाएँ पलड़े के ऊपर से एक तख्ती इस तरह रख दी जाती है कि वह पलड़े को छूए नही। इस तख्ती पर एक बीकर मे पानी रख कर टुकड़े को उसमे डुबाने से वजन मे आभासी कमी मालूम हो जाती है।

द्रव पदार्थ का वि० गु० निकालना

किसी द्रव पदार्थ का वि० गु० निकालने के लिए पहले समान आयतन के उस द्रव पदार्थ तथा जल का द्रव्यमान निकालना पड़ेगा। इसके लिए जल तथा उस द्रव मे डूबने वाले किसी पदार्थ का टुकडा लेकर पहले उसे हवा मे तौला जाता है। मान लिया जाए कि उसका द्रव्यमान हवा मे M_1 है। अब पहले उसे द्रव मे डुबो कर तौला जाता है। मान लिया जाए कि अब उसका आभासी द्रव्यमान M_2 है, अर्थात् उस आयतन के द्रव का द्रव्यमान $(M_1 - M_2)$ है। फिर उस ठोस पदार्थ को अच्छी तरह सुखाकर पानी मे

डालकर तौला जाता है। मान लिया जाए कि इस बार उसका आभासी द्रव्यमान M_3 है अर्थात् सम आयतन के जल का द्रव्यमान $(M_1 - M_3)$ है।

$$\therefore \text{उस द्रव का वि० गु०} = \frac{M_1 - M_2 \text{ (द्रव का द्रव्यमान)}}{M_1 - M_3 \text{ (समान आयतन के जल का द्रव्यमान)}}$$

मिट्टी का तेल, दूध आदि सभी द्रव पदार्थ का वि० गु० इस रीति से निकाला जा सकता है।

पानी में तैरने वाली वस्तु का वि० गु० निकालना

ऐसी वस्तु का वि० गु० निकालने के लिए एक डुबौना (sinker) का इस्तेमाल करना पडता है। पहले वस्तु को हवा में तौल लिया जाता है। मान लिया जाए कि हवा मे उसका द्रव्यमान M_1 है। फिर डुबौना को जल मे लटका कर तौला जाता है। मान लिया जाए कि उसका आभासी द्रव्यमान M_2 होता है। अब डुबौना के साथ वस्तु को जोडकर दोनो को जल मे डुबाया जाता है और दोनो को एक साथ तौला जाता है। मान लिया जाए कि इस बार तौल M_3 है।

हवा मे वस्तु का द्रव्यमान $= M_1$

जल मे डुबौना का आभासी द्रव्यमान $= M_2$

जल में दोनो का सयुक्त आभासी द्रव्यमान $= M_3$

$\therefore$ जल में वस्तु का आभासी द्रव्यमान $= M_3 - M_2$

अर्थात् जल में वस्तु के द्रव्यमान मे आभासी कमी =

$M_1 - (M_3 - M_2) = M_1 - M_3 + M_2 = M_1 + M_2 - M_3$

इस प्रकार वस्तु के आयतन समान आयतन के जल का द्रव्यमान =

$M_1 + M_2 - M_3$

$$\therefore \text{वस्तु का वि० गु०} = \frac{M_1}{M_1 + M_2 - M_3}$$

बहुत बड़ी वस्तु का वजन निकालना

अगर एक साधारण तराजू देकर एक हाथी का वजन निकालने को कहा जाए, तो आर्किमिदिस के इस विख्यात सिद्धांत की सहायता से उसे भी तौला जा सकता है।

पहले हाथी को एक नाव पर चढाया जाय और उसके चढ जाने पर नाव जहाँ तक पानी में डूवा हो वहाँ पर चिह्न लगाया जाय। फिर हाथी को उतारकर नाव का वालू या पत्थरों के टुकड़ो से तव तक भरा जाए, जव तक नाव उस चिह्न तक फिर पानी मे डूव न जाए। अव थोड़ा-थोड़ा करके इस वालू या पत्थर के टुकड़ो को तौला जाए। हाथी और इस वालू या पत्थर के टुकड़ो का वजन समान होगा ; क्योकि दोनो के द्वारा सम परिमाण मे पानी को हटाया गया है।

इस युक्ति से किसी भी वड़ी वस्तु का वजन छोटे-से तराजू की सहायता से मालूम किया जा सकता है।

जहाज, नाव आदि का तैरना

वस्तु पर पानी का ऊर्ध्व दाव या उत्प्लावकता डूवनेवाली वस्तुओ द्वारा हटाये गए पानी के समान होता है। वस्तु पानी के अंदर का जितना स्थान घेरेगी अर्थात् उसका आयतन जितना अधिक होगा, उसपर पानी का उत्प्लावन उतना ही अधिक होगा। क्योकि, आयतन अधिक होने से डूवने पर वह अधिक परिमाण मे पानी को विस्थापित करेगी और उसे पानी के अधिकतर उत्प्लावन का मुकावला करना पड़ेगा। यदि पूर्णत डुवाये जाने पर वस्तु द्वारा विस्थापित पानी का वजन, वस्तु के वजन से अधिक हो तो पानी का उत्प्लावन उस वस्तु को ऊपर फेक देगा और वस्तु पानी की सतह पर आकर तैरती रहेगी और फिर इस साम्यावस्था मे उसके डूवे हुए अश द्वारा विस्थापित पानी का वजन (पानी का उत्प्लावन) उस वस्तु के वजन के वरावर होगा। जिस वस्तु का घनत्व पानी के घनत्व से अधिक होगा वह पानी मे डूव जायगी, क्योकि उसके द्वारा विस्थापित पानी का वजन उस वस्तु के वजन से कम होगा। जिस वस्तु का घनत्व पानी के घनत्व से कम होगा, उस वस्तु को पानी मे डुवाने से विस्थापित पानी का वजन उस वस्तु के वजन से अधिक होगा और वह वस्तु पानी पर तैरती रहेगी।

समान वजन के लोहे के दो चदरे लेकर एक को पानी मे डाल दिया जाय तो वह डूव जायगा, क्योकि इसका घनत्व पानी के घनत्व से वहुत अधिक है। किन्तु यदि दूसरे चदरे को मोड़कर कटोरी या नाव का रूप दे दिया जाय, तो वह पानी में तैरता रहेगा ; क्योकि अपनी विशेप आकृति के

कारण यह चदरा अपने वास्तविक आयतन से बहुत ही अधिक आयतन का पानी विस्थापित करता है और इस विस्थापित पानी का वजन (पानी का उत्प्लावन) उस चदरे के वजन से बहुत अधिक हो जाता है। इस कारण कटोरी या नाव की आकृति का लोहे का वह चदरा पानी की सतह पर ही तैरता रह जाता है। इसी सिद्धांत के आधार पर नाव, जहाज आदि बनते हैं। अतः अगर वस्तु पर पानी का उत्प्लावन उसके वजन से कम हो तो वस्तु पानी मे डूबेगी। अगर उत्प्लावन वस्तु के वजन से अधिक हो तो वस्तु पानी के ऊपर तैरती रहेगी।

पनडुब्बी (Submarine)

यह एक ऐसा जहाज होता है, जो पानी के अंदर तथा पानी के ऊपर—दोनो जगह चल सकता है। साधारण जहाज की तरह, उसी सिद्धांत के अनुसार, यह पानी के ऊपर तैरता है। लेकिन इसके अंदर कई हौज बने हुए होते है, जिहे इच्छानुसार पानी से भर दिया जा सकता है या खाली किया जा सकता है। जहाज को पानी के नीचे ले जाने के लिए इन हौजो को पानी से भर दिया जाता हे, ताकि जहाज का वजन हटाये गए पानी के वजन से अधिक हो जाए और वह पानी के उत्प्लावन का अतिक्रमण कर पानी मे डूब सके।

पानी के ऊपर आने के लिए, फिर से पंप की सहायता से हौजो मे से पानी निकाल दिया जाता है और वजन कम हो जाने के कारण पानी के उत्प्लावन के कारण जहाज ऊपर आ जाता है।

जीवन-बेल्ट (Life belt)

यह रबर के खोखले चक्के जैसा बना हुआ होता है। जहाज, नाव आदि मे ये इसलिए रखे जाते है कि अगर जहाज आदि डूबने लगे, तो इसके सहारे से आदमी पानी में तैर सके। जीवन-बेल्ट में हवा भरकर फुला देने से उसका आयतन उसके वजन की तुलना में बहुत बडा हो जाता है। अतः पानी के उत्प्लावन से वह पानी पर तैरता रहता है और आदमी का बोझ पडने पर भी नही डूबता है बल्कि तैरता ही रहता हे।

गुब्बारा (Baloon)

वायु तथा अन्य गैसो के साथ भी आर्किमिदिस का सिद्धात लागू होता है। हटाई गई वायु के वजन से अर्थात् वस्तु वायु में जितना स्थान घेरती है, उतने आयतन की वायु के वजन से वस्तु का वजन कम होने से वह वायु मे तैरने लगती है। गुब्बारे पतले रबर आदि से बनते हैं। इसमे वायु से कम घनत्व वाला कोई गैस—जैसे हाइड्रोजन गैस—भर दिया जाता है। इस अवस्था मे हटाई गई वायु से गुब्बारे का वजन कम होता है और वह वायु में तैरने लगना है अर्थात् वायु मे प्लवमान हो जाता है।

द्रव-घनत्वमापी (Hydrometer)

द्रव पदार्थ का घनत्व मापने के लिए एक प्रकार का यंत्र व्यवहार किया जाता है। इसे द्रवघनत्वमापी कहते हैं। इससे वस्तुओ का विशिष्ट गुरुत्व मालूम हो जाता है। द्रवघनत्वमापी दो प्रकार के होते हैं :—साधारण द्रवघनत्वमापी तथा निकलसन द्रव-घनत्वमापी।

साधारण द्रव-घनत्वमापी (Common hydrometer)

साधारण द्रव-घनत्वमापी को सीधे लंब रूप में, द्रव मे डुबाया जाता है। जिस द्रव का घनत्व जितना अधिक होगा, द्रवघनत्वमापी उसमे उतना ही कम डूबेगा। द्रव-घनत्वमापी पर वि० गु० का मान चिह्नित रहता है और उसे देखकर द्रव का वि० गु० मालूम किया जाता है।

साधारण द्रव-घनत्वमापी की लंबाई लगभग २५ से० मी० होती है। यह एक कांच की खोखली नली से बनता है। नली का ऊपरी भाग पतला होता है और निचले भाग मे एक छोटी घुंडी बनी हुई होती है। दोनो के बीच में एक बेलनाकार बड़ी घुंडी रहती है। छोटी घुंडी में इतना पारा भर दिया जाता है कि द्रव-घनत्वमापी द्रव मे सीधा तैर सके। बड़ी घुंडी के ऊपर
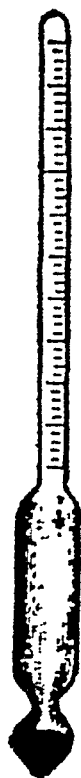
[चित्र ४९—साधारण द्रव-घनत्वमापी]

की पतली नली अंशांकित होती है। इस प्रकार से बने हुए द्रव-घनत्वमापी को ज्ञात वि० गु० वाले द्रव्यों मे डुबाकर अंशों पर उनका मान लिख दिया जाता है।

जब किसी द्रव का वि० गु० जानना हो तो उसे एक जार में भरकर उसमें द्रव-घनत्वमापी को तैरा दिया जाता है। द्रव-घनत्वमापी के स्थिर हो जाने पर उसमे लिखे हुए स्केल मे द्रव की सतह पर के मान को पढ लिया जाता है। यही उस द्रव का वि० गु० है।

एक ही साधारण द्रव-घनत्वमापी से सभी प्रकार के द्रव का वि० गु० मालूम नही किया जा सकता ; क्योंकि प्रत्येक द्रव-घनत्वमापी की एक निश्चित निम्नतम और उच्चतम सीमा होती है। उससे कम या अधिक वि० गु० वाले द्रवो का वि० गु० इसमे नही मापा जा सकता है। इसलिए विभिन्न द्रवों के वि० गु० मापने के लिए विभिन्न परास (Range) वाले द्रव-घनत्वमापी काम मे लाए जाते हैं।

दुग्ध-घनत्वमापी (Lactometer)

दूध की शुद्धता जानने के लिए इस यत्र का व्यवहार किया जाता है। इसकी बनावट साधारण द्रव-घनत्वमापी जैसी होती है। शुद्ध दूध का घनत्व १·०१९ से १०३३ तक होता है। पानी से दूध का घनत्व अधिक होने के कारण दूध मे पानी मिला देने पर उसका घनत्व घट जाता है और उसमें दुग्ध-घनत्वमापी को तैरा देने से उसके घनत्व की कमी मालूम हो जाती है। लेकिन पानी मिले हुए दूध मे उचित मात्रा मे चीनी, मैदा, अरारूट आदि मिला देने से उसका घनत्व ठीक हो जाता है। इसलिए दुग्ध-घनत्वमापी से दूध की शुद्धता की जाँच करते समय उसे चखकर देख लेना चाहिए कि उसमे ऐसी कोई वस्तु मिली हुई है या नही।

दूध से मक्खन निकाल लेने से उसका घनत्व अधिक हो जाता है। ऐसी हालत मे उसमे दुग्ध-घनत्वमापी डालने से उसके घनत्व में इस वढती का पता चल जाता है और मालूम हो जाता है कि दूध से मक्खन निकाल लिया गया है। साधारणत. दुग्ध-घनत्वमापी का परास १.०१५ से १·०४५ होता है।

निकलसन द्रव-घनत्वमापी

इस द्रव-घनत्वमापी की सहायता से द्रव तथा ठोस, दोनो प्रकार की वस्तुओं का वि० गु० निकाला जा सकता है।

निकलसन द्रव-घनत्वमापी मे एक धातु-निर्मित खोखला वेलन-सा होता है। वेलन के दोनो सिरे शंकुनुमा होते है। ऊपर के सिरे मे धातु-निर्मित एक डठल लगा होता है और नीचे के सीरे से एक छोटी धातु-निर्मित शंकुनुमा प्याली लटकती रहती है। ऊपर के डंठल पर एक थाली जैसी चकती लगी रहती है। डंठल मे एक चिह्न लगा रहता है। द्रव-घनत्वमापी को द्रव में सीधा खड़ा रखने के लिए नीचे की शकुनुमा प्याली मे थोडा-सा पारा या सीसे के टुकड़े डाल दिए जाते है।

[चित्र ५०—निकलसन द्रवघनत्वमापी]
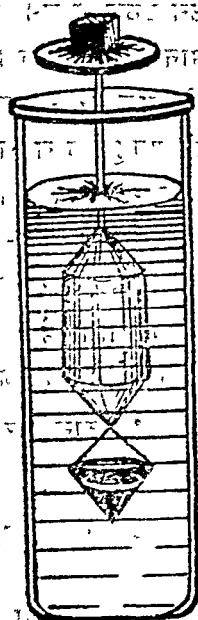
निकलसन द्रव-घनत्वमापी की सहायता से द्रव का वि० गु० निकालना

निकलसन द्रव-घनत्वमापी को पहले हवा में तौलकर उसका वजन मालूम कर लिया जाता है। मान लीजिए, यह वजन M_1 है। अब द्रव-घनत्वमापी को पानी मे डालकर डंठल पर लगे हुए थाल मे बाट रखकर उसे डंठल मे लगे हुए निर्दिष्ट चिह्न तक डुबाया जाता है। मान लिया जाए कि इस बाट का वजन M_2 है अर्थात् इस अवस्था मे द्रव-घनत्वमापी द्वारा हटाये गए पानी का द्रव्यमान $M_1 + M_2$ है। फिर द्रव-घनत्वमापी को ठीक से सुखाकर, जिस द्रव का वि० गु० जानना हो, उसमे डाला जाता है और थाल पर बाट रखकर फिर से उसे उस चिह्न तक डुबाया जाता है। अगर इस बाट का वजन M_3 है तो अब द्रव-घनत्मामी द्वारा हटाये गए द्रव का द्रव्यमान $M_1 + M_3$ होगी।

$$\therefore \text{द्रव का वि० गु०} = \frac{M_1 + M_3}{M_1 + M_2}$$

ठोस का वि० गु० निकालना

निकलसन द्रव-घनत्वमापी द्वारा ठोस का वि० गु० मालूम करने के लिए पहले द्रव-घनत्वमापी को पानी में तैराया जाता है और थाल पर बाट रखकर उसे डंठल मे लगे हुए चिह्न तक डुबाया जाता है। इन बाटो का वजन M_1 माना जाए। अब जिस वस्तु का वि० गु० मालूम करना है, उसके एक टुकड़े को थाल पर रखकर बाटो को घटा कर डंठल मे लगे हुए चिह्न को पानी की सतह तक लाया जाता है। मान लिया जाए कि अब थाल पर के बाटों का वजन M_2 है। इस प्रकार ठोस का वायु में भार $M_1 - M_2$ होता है। फिर ठोस को द्रव-घनत्वमापी के नीचे लगी हुई प्याली में रखकर तैराया जाता है और थाल पर बाट रखकर द्रव-घनत्वमापी को उस चिह्न तक डुबाया जाता है। मान लिया जाए कि बाटों का द्रव्यमान M_3 है। अर्थात पानी मे ठोस का आभासी द्रव्यमान $M_1 - M_3$ होता है।

∴ ठोस द्वारा हटाये गये पानी का द्रव्यमान

$$= (M_1 - M_2) - (M_1 - M_3)$$

$$= M_1 - M_2 - M_1 + M_3 = M_3 - M_2$$

$$\therefore \text{ठोस का वि० गु०} = \frac{M_1 - M_2}{M_3 - M_2}$$

अध्याय ४

वायु का दाब

वायुमंडल

वायु हमारा जीवन है। इसके विना किसी भी जीव का जीवित रहना असभव है। पृथ्वी चारो ओर से वायु से घिरी हुई है। वायु के इस आवरण (घेरे) को **वायुमंडल** (Atmosphere) कहते है।

वायु का न तो कोइ गध ही होता है और न कोई रंग या स्वाद। इसलिए वायु को न तो हम आँखो से ही देख सकते है और न इसका कोई स्वाद या गंध ही अनुभव कर सकते है। लेकिन वायु के स्पर्श से तथा वायु द्वारा पेड-पौधो की पत्तियो आदि को हिलते देखकर ही हम उसका अस्तित्व जान पाते है। आँधी-तूफान के समय इसकी भयंकर शक्ति का परिचय भी हमे मिल जाता है।

हम हमेशा वायु-समुद्र मे डूबे रहते है। अगर विशेष यांत्रिक उपाय से किसी स्थान को वायुशून्य न किया जाए, तो कोई भी स्थान ऐसा नही हो सकता है, जहाँ वायु न हो। खुले स्थान की तरह वंद वक्से के अंदर भी वायु भरी हुई रहती है। निम्नलिखित साधारण प्रयोग से मालूम हो जाएगा कि देखने पर शून्य लगने पर भी सभी स्थानो में वायु भरी रहती है।

प्रयोग—एक खाली ग्लास लीजिए और उसे उलट कर पकडिए। ख्याल रहे, ग्लास विल्कुल सीधा हो। अव एक वरतन मे पानी भरकर उल्टाए हुए ग्लास को सीधा पानी मे डुवाइए। देखिएगा कि ग्लास को पानी में डुवाने की काशिश करने मे काफी ताक़त लगानी पड़ रही है। साथ ही, यह भी दिखाई देगा की पानी ग्लास मे चढ नही रहा है और चढ़ता भी है तो वहुत गहराई तक डुवाने पर—कुछ ही दूर तक।

अव हमारे सामने प्रश्न यह उठता है कि ग्लास को पानी मे जाने से कौन रोकता है और पानी ग्लास के अंदर क्यो नही जा पाता है? इन प्रश्नो का उत्तर यही है कि देखने से खाली मालूम पड़ने पर भी ग्लास के

अंदर वायु है और उसी के कारण ग्लास को पानी मे डुबाने मे कठिनाई हो रही है। साथ ही, ग्लास के अदर के समस्त भाग मे वायु भरी हुई है। अत उसके अंदर पानी नही जा पाता है।

अब ग्लास को थोडा टेढा कर दीजिए। देखिएगा कि उसमे से वायु बुलबुले के रूप मे बाहर निकल रही है और ग्लास डूबता जा रहा है तथा उसमे पानी भी भरता जा रहा है।

इस प्रयोग से खाली स्थानो मे वायु की उपस्थिति के अलावा यह भी प्रमाणित हो जाता है कि वायु दाव भी डालती है।

वायुमडल पृथ्वी के चारो ओर लगभग २०० मील तक फैला हुआ है। हमे यह भी जान लेना चाहिए कि हम जैसे-जैसे ऊपर जाते है वैसे-वैसे वायु का घनत्व कम होता जाता है और नीचे जाने से अपेक्षाकृत अधिक होता जाता है। हिसाब करके देखा गया है कि कुल वायु का दसवाँ अश पृथ्वी के ऊपर केवल तीन मील के घेरे मे मौजूद है।

वायु का वजन

वायु का वजन है—इस बात को सन् १६५४ ई० मे जर्मन वैज्ञानिक **ओटो वान गैरिक** ने निम्नलिखित प्रयोग से दिखाया था।

उन्होंने स्टाप-कॉक लगा हुआ कॉंच का एक गोला लेकर उसे वायु निकालने वाले पंप द्वारा निर्वातित किया और उसका वजन लिया। फिर उन्होंने स्टाप कॉक को खोल दिया और वायु सी-सी शब्द करके अंदर घुस गई। गोले को फिर से वजन किया गया और देखा गया कि उसका वजन बढ़ गया है। अतः स्पष्ट है कि बढा हुआ वजन वायु का वजन है। एक लीटर आयतन की वायु का वजन एक ग्राम से थोड़ा अधिक (१.२१ ग्राम) है अर्थात् पानी का घनत्व वायु के घनत्व से लगभग आठ सौ गुना अधिक है।

निम्नलिखित प्रयोग से हम आयतन की तुलना मे वायु के वजन को नाप सकते है।

प्रयोग—कॉंच का एक फ्लास्क लीजिए। बीच मे छिद्रयुक्त रबर का एक काग लेकर उसके मुँह पर कसकर लगा दीजिए। कॉंच की एक छोटी-सी

नली के एक सिरे पर रवर की एक छोटी-सी पतली नली लगा दीजिए और उसमे एक क्लिप लगाइए। काँच की नली का दूसरा सिरा रवर के काग के छेद मे डालिए। अव फ्लास्क मे थोड़ा-सा पानी डाल दीजिए और रवर की नली से क्लिप खोल दीजिए तथा फ्लास्क को गरम करके पानी को खौलाइए। जब कुल पानी भाप होकर विकल जाय तो क्लिप लगाकर रवर की नली को बंद कर दीजिए। इस प्रकार फ्लास्क निर्वातित हो जाएगा। क्योंकि, पानी उवलकर, भाप बनकर, वायु को हटाकर फ्लास्क मे भर गया है। फिर फ्लास्क को ठढा होने के लिए आग पर से हटाकर रख दीजिए। फ्लास्क मे भरी हुई भाप सघनित होकर दो-चार बूँद पानी बन जायगी और फ्लास्क लगभग संपूर्णतः रिक्त हो जायगा। ठंढा हो जाने के बाद सावधानी से फ्लास्क को भौतिक तुला पर वजन कीजिए और वजन को लिख लीजिए। अव रवर की नली से क्लिप को खोल दीजिए और फ्लास्क में हवा जाने दीजिए। फिर सावधानी से फ्लास्क को तौलिए और वजन को लिख लीजिए। देखिएगा कि अव फ्लास्क का वजन वढ़ गया है। फ्लास्क का वढ़ा हुआ वजन उसके अदर की वायु का वजन है। अव फ्लास्क में काग के नीचे तक पानी भर दीजिए और फिर उस पानी को नाप लीजिए। यह फ्लास्क में भरी हुई वायु के आयतन का समान होगा। वजन करते समय फ्लास्क मे वायु का आयतन वही था। इस प्रकार हम वायु के वजन (या द्रव्यमान) को उसके आयतन से भाग देकर वायु का घनत्व प्राप्त कर सकते हैं। हिसाव करने से मालूम होगा कि एक क्यूविक सेंटीमीटर वायु का वजन ०.००१२९ ग्राम है। इस भार के कारण समुद्र-सतह पर वायु का दाव प्रति सेंटीमीटर पर लगभग १०३३ ग्राम-भार होता है।

वायु का दाव

आपको आश्चर्य होगा कि इतने अधिक दाव के अदर रहते हुए भी हम इसका अनुभव क्यो नही करते हैं? कारण यह है कि वायु चारो ओर से दाव डालती है और इसीसे हम दाव का अनुभव नहीं करते है। अगर एक ओर से दाव हट जाए, तो हम पर अवश्य ही उसका प्रभाव पड़ेगा। साथ ही, जन्मकाल से इस दाव के अंदर रहने के कारण हम इससे अभ्यस्त हो गए है। हमारे शरीर की बनावट भी इस दाव में रहने लायक है। इसलिए

अगर किसी कारण से वायु का दाव घट जाए, तो हमारे लिए उसके अदर जीवित रहना असभव हो जायगा।

वायु के आयतन तथा घनत्व के साथ उसके दाव का भी सबंध है। अगर छोटी-सी जगह मे अधिक वायु दाव कर भर दी जाए तो उसका घनत्व बढ जाता है और साथ ही उसका दाव भी बढ जाता है। अगर थोड़ी-सी वायु को अधिक जगह फैलने दिया जाए, तो उसका घनत्व और साथ-ही-साथ दाव भी घट जाता है। इस प्रकार सपीडित वायु (compressed air) का घनत्व भी विरलित (rarefied) वायु से अधिक होता है।

निम्नलिखित प्रयोगो से वायु का दाव का होना दिखाया जा सकता है :—

प्रयोग (१)—एक साधारण कीप लेकर उसके मुँह पर पतले रबर के एक टुकडे को कसकर बाँध दीजिए। अब कीप की नली के नीचे मुँह लगाकर उसके अंदर की वायु को चूसना शुरू कीजिए। देखिएगा कि कीप के अंदर की वायु ज्यो-ज्यो चूसने से कम होती जाती है, त्यो-त्यो मुँह पर बाँधा हुआ रबर अंदर की ओर धँसता जाता है। इससे सिद्ध होता है कि जब तक कीप के अंदर और बाहर वायु का दाव समान था, तब तक रबर पर उसका कोई प्रभाव नही पड रहा था और ज्यो ही अंदर की वायु घट गई, त्यों ही ऊपर के अधिक दाव मे रबर दबने लगा।

प्रयोग (२)—काँच के एक लंबे ग्लास को ऊपर तक लबालब पानी से भरकर उसपर एक दफ्ती का टुकडा रख दीजिए। यहाँ इस बात का ख्याल रखना है कि ग्लास मे पानी की सतह और दफ्ती के बीच वायु न रहने पाए। अब ग्लास को उलटकर पकड़ने पर पानी या दफ्ती में से कोई भी नीचे नहीं गिरता है।

दफ्ती पर नीचे मे वायु का, ऊपर की ओर दाव या उत्क्षेप (upthurst) ग्लास के अंदर के पानी के दाव का संतुलन कर दफ्ती और पानी को गिरने नही देता है।

मैगडेबर्ग अर्द्धगोलक

इसमें धातु-निर्मित दो ऐसे अर्द्धगोलक होते हैं, जिन्हे जोड़ देने पर एक खोखला गोलक बन जाता है। पकड़कर खीचने के लिए दोनो अर्द्धगोलको मे

छल्ले लगे होते है। एक अर्द्धगोलक मे एक छोटा-सा छेद होता है और इसमे नली लगाकर वायु-निष्कासन-पप द्वारा अदर की सभी वायु खीच ली जा सकती है। अगर इस प्रकार से वायु निकालकर छेद को स्टाप कॉक द्वारा वद कर दिया जाए, तो दोनो अर्द्धगोलको को अलग करने के लिए वहुत अधिक शक्ति की आवश्यकता होगी। अंदर से वायु का दाव न रहने के कारण वाहर से वायु का दाव अर्द्धगोलकों को चारो ओर से दवाकर उन्हे अलग होने से रोकता है। इस हालत में दोनो अर्द्धगोलकों को अलग करने के लिए वहुत अधिक वल लगता है। स्टाप कॉक को खोलकर अंदर वायु भर देने के वाद आसानी से अर्द्धगोलको को खींचकर अलग किया जा सकता है, क्योंकि अव अंदर की वायु का दाव वाहरी वायु के दाब को संतुलित करता है।

इस प्रयोग को सर्वप्रथम **मैगडेवर्ग** नामक स्थान **में ओटोवान गैरिक** नामक जर्मन वैज्ञानिक ने किया था। उन्होने अर्ध-गोलको को अलग करने के लिए घोड़ो की सहायता ली थी। इसलिए इन अर्द्धगोलकों को **मैगडेबर्ग अर्द्ध-गोलक** कहते है।

वायु का दाव नापने वाला यंत्र

एक गैस-जार को पानी से लवालव भर कर उस पर ढक्कन इस प्रकार रखिए कि पानी और ढक्कन के वीच हवा का एक भी बुलवुला न रह जाय। ढक्कन को हाथ से दवाए रखकर जार को पानी से भरे हौज मे उलट दीजिए ताकि जार का मुँह हौज के पानी की सतह के कुछ नीचे रहे। अव गैस-जार का ढक्कन हटा लीजिए। ऐसा करने पर भी जार का संपूर्ण पानी गिरकर हौज मे नही जाता है वल्कि जार के अंदर ही टँगा रह जाता है। पानी की सतह पर वायु का जो दाव पड़ता है, उसी दाव के कारण गैस-जार मे पानी चढा रहता है।

जार के वदले मे कॉंच की एक लंवी और पतली नली ले लेने पर देखा जाएगा कि समुद्र-सतह पर वायुमंडल का दाव, साधारण अवस्था मे, प्रायः ३४ फुट ऊँचा पानी के स्तभ को खडा रख सकता है। इस प्रकार पानी के स्तभ की ऊंचाई नाप कर वायु का दाव नापा जा सकता है।

लेकिन इतनी बडी नली को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने मे तथा हमेशा प्रयोग के लिए व्यवहार करने मे वडी कठिनाई होती है। इसलिए इस काम के लिए पानी के वदले पारा काम में लाया जाता है। साधारण अवस्था मे; समुद्र-सतह पर, वायु का दाव पारे के ७६० मिलीमीटर या ३० इंच स्तभ को खड़ा रख सकता है। पारे के स्तंभ की सहायता से वायमडल का दाब नापने वाले यन्त्र को **वैरोमीटर या वायु-दाबमापी** (barometer) कहते है।

वैरोमीटर का निर्माण

एक मुँहवंद तथा दूसरा मुँहखुला, एक ३५ इच लंवी, पतली कांच की नली लेकर उसे संपूर्ण रूप से पारे से भर दीजिए। नली को हिलाकर उसके अदर की हवा के वुलवुलो को वाहर निकाल दीजिए, ताकि नली पूर्णतया वायुशून्य हो जाए। नली के खुले हुए मुँह को अगुली से वद करके उसे पारे से भरे हुए एक दूसरे पात्र मे उलट कर रखकर अगुली हटा लीजिए। अव दिखाई पड़ेगा कि नली के अंदर का पारा लगभग ५ इच नीचे उतर आया है और लगभग ३० इंच ऊँचा रह गया है। साथ ही, नली के ऊपर का ५ इच अंश रिक्त हो गया है। नली के अंदर के इस वायुशून्य स्थान को, इस प्रयोग के आविष्कारक, **टोरीसेली** के नाम पर 'टोरिसेली का निर्वात' (Toricellian vacum) कहा जाता है। अव इस शून्य स्थान मे कोई ऐसी वस्तु नही है जो पारे को ऊपर खीच सकती है या उसे नीचे की ओर दवा सकती है। इससे हमे यह मालूम हो जाता है कि नली मे पारे के स्तंभ का दाव पात्र के पारे की सतह पर, उस समय उस स्थान मे, वायु के दाव के समान है अर्थात् अगर कांच की नली के छिद्र का अनुप्रस्थ परिच्छेद एक वर्ग से० मी० है तो प्रति वर्ग से० मी० के क्षेत्र पर वायु का दाब ७६ से० मी० ऊँचे और

ग
क
ख
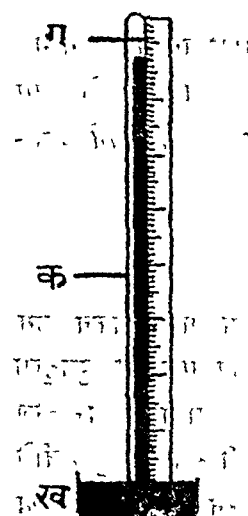
[चित्र ५१—साधारण वैरोमीटर. (क) पारा से भरी कॉच की नली, (ख) पारा से भरा पात्र; (ग) टोरिसेली का निर्वात]

१ वर्ग से०मी० अनुप्रस्थ परिछेद वाले पारे के स्तंभ के वजन के समान है। अतः उस समय उस स्थान पर वायु का दाव प्रति वर्ग से० मी० १०३३ ग्राम भार है। इस प्रकार नली मे पारे की ऊँचाई को नाप कर वायु के दाव का ज्ञान हो सकता है। वायु का दाव घटने या बढ़ने से नली में पारा का स्तभ नीचा या ऊँचा हो जाता है ; क्योंकि दाव घटने या बढ़ने से, उसी अनुपात मे, पात्र के पारे की नली मे, पारे के स्तंभ को खड़ा रखने की शक्ति भी घटेगी या बढ़ेगी और पारे का स्तभ छोटा-बडा होगा। इसके साथ ही स्तंभ में पारे का वजन भी घटेगा या बढेगा।

इस प्रकार से बने हुए बैरोमीटर को एक जगह से दूसरी जगह ले जाना आसान नही है। इसलिए इसे एक खोली में रखकर काठ के साथ जड़ दिया जाता है ताकि आसानी से एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जा सके। **फोर्टिन बैरोमीटर** इसी प्रकार का एक बैरोमीटर है। फिर भी द्रव पदार्थ से बना हुआ बैरोमीटर लेकर चलने-फिरने मे कठिनाई होती है। इसलिए वायु का दाव नापने के लिए निर्द्रव (Aneroid) बैरोमीटर भी बनाये गए है।

[चित्र ५२—फोर्टिन का बैरोमीटर]

एनिरायड बैरोमीटर या निर्द्रव वायु-दावमापी

एनिरायड बैरोमीटर छोटा तथा हलका होता है। इसे एक जगह से दूसरी जगह ले जाने मे आसानी होती है। इसपर हिलने-डुलने का कोई प्रभाव नही पड़ता। इसमे वायु का दाव दिखाने वाले स्केल के साथ-साथ ऊँचाई-सूचक स्केल भी लगा रहता है। आजकल हवाई जहाज आदि मे इसी बैरोमीटर को काम मे लाया जाता है।

धातु की बहुत पतली चादर से बने हुए बक्से को लेकर उसे अंशत निर्वातित करके अच्छी तरह बंद कर दिया जाता है। अब वायु-दाव में प्रत्येक परिवर्त्तन बक्से के ढक्कन पर असर डालने लगता है। अगर वायु-दाव
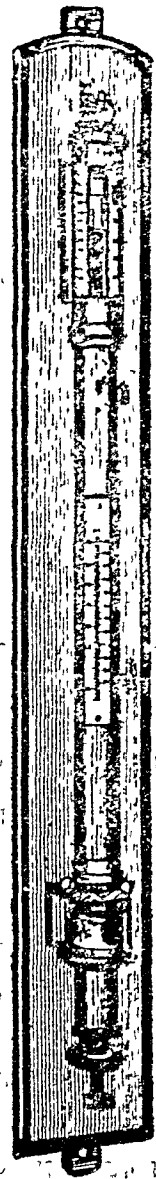
मे वृद्धि हुई तो ढक्कन नीचे की ओर दबेगा और दाव मे कमी होने पर ऊपर चढेगा। इसके साथ एक सूई इस प्रकार से लगा दी जाती है कि वह
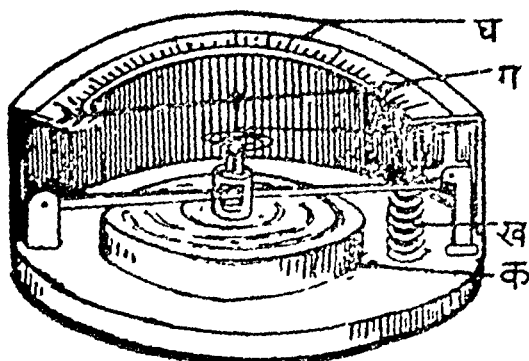
[चित्र ५३—निर्द्रव वैरोमीटर · (क) वक्सा, (ख) स्प्रिग, (ग) सूचक सूई, (घ) स्केल]

ढक्कन की स्थिति मे होनेवाले प्रत्येक परिवर्त्तन को यंत्र मे लगे हुए स्केल पर प्रदर्शित कर सके। स्केल पर सूई द्वारा निर्देशित अको को देखकर वायु का दाव तथा समुद्र-तल से उस स्थान की ऊँचाई का ज्ञान होता है।

वायु-दाव और मौसम

वायु का दाव हमेशा एक-सा नही वना रहता। कई कारणों से इसमे परिवर्त्तन होता रहता है। जलवाष्प वायु से हलका होता है। इसलिए वायु मे जलवाप्प जितना अधिक होगा, वायु उतनी ही अधिक हलकी होगी और उसका दाव उतना ही कम होगा। इसी कारण से वर्षा के दिनो मे जव समुद्र से जलवाष्प से भरी मौसमी वायु आती है, तव वायु हलकी हो जाती है और उसका दाव घट जाता है। वायु का दाव घट जाने के साथ-साथ वैरोमीटर का पारा भी नीचे गिर जाता है। वैरोमीटर मे पारे के अधिक नीचे आ जाने से यह मालूम हो जाता है कि वायु मे जलवाप्प की मात्रा अधिक हो गई है और अव पानी वरसने मे देर नही है।

सूरज की ऊष्मा से गरम हो जाने पर वायु फैल जाती है। फैली हुई वायु का घनत्व कम होने के कारण वायु का दाव कम हो जाता है और

वैरोमीटर का पारा नीचे उतर आता है। हलकी वायु ऊपर उठने लगती है और चारो ओर से ठढी हवा उस स्थान को भरने के लिए उस दिशा मे प्रवाहित होने लगती है। इस प्रकार किसी स्थान पर वायु का दाव जितना ही कम हो जाता है, वहाँ उतनी ही तेजी से ठढी हवा आने लगती है और आँधी-पानी, तूफान आदि आने की संभावना हो जाती है। गरमी के दिनो मे इसी कारण मे जोर की आँधी आती है। अत. एकाएक वैरोमीटर का पारा उतरना आँधी के आगमन का सूचक है।

वायु मे जलवाष्प कम रहने से वायु शुष्क कहलाती है। शुष्क वायु आर्द्र वायु से अधिक भारी होती है और इसलिए उसका दाव अधिक हो जाने से वैरोमीटर का भी पारा ऊपर चढ़ जाता है। शीतकाल मे वैरोमीटर का पारा ऊपर चढा रहता है, क्योकि उन दिनो वायु मे जलवाष्प कम रहता है।

इस प्रकार वैरोमीटर के पारे का उतार-चढ़ाव देखकर मौसम-विशेषज्ञ मौसम का हाल वता देते है।

वैरोमीटर से ऊँचाई का ज्ञान

जैसे-जैसे पृथ्वी-तल से ऊपर जाया जाएगा, वैसे-वैसे वायु का घनत्व घटता जाएगा और साथ ही वायु का दाव भी घटता जाएगा। इस प्रकार पर्वत की ऊँची चोटियो पर वायु का घनत्व समुद्र-सतह पर वायु के घनत्व से कम और गहरी खान के अंदर अधिक होता है। इसलिए समुद्र-सतह से पर्वत की चोटी पर वायु का दाव कम और खान के अंदर अधिक होता है। वैरोमीटर को देखकर वायु के दाव की कमी-वेशी होने की जानकारी हो जाती है और उस स्थान की ऊँचाई या गहराई का पता आसानी से लग जाता है। लगभग ९०० फुट या लगभग २७५ मीटर की ऊँचाई पर पारा २.५४ से० मी० या एक इंच गिर जाता है।

वायु के दाव का व्यावहारिक प्रयोग

वायु चारो ओर दाव डालती है, इस सिद्धात के आधार पर तरह-तरह के पंप वनाए जाते है। रेलगाड़ी का निर्वात ब्रेक (vacum brake),

साइफन (siphon), ड्रॉपर, स्व-पूरक (selft filling) फाउण्टेनपेन आदि भी इसी सिद्धांत के आधार पर बनाये जाते हैं।

पंप (Pump)

पंप मुख्यत दो प्रकार के होते हैं : (१) पानी या अन्य द्रव पदार्थ खींचने या फेंकने वाले पंप और (२) वायु भरने या निकालने वाले पंप।

पिचकारी

पिचकारी एक बहुत साधारण पंप है। धातु या काँच-निर्मित एक खोखली नली, जिसका एक मुँह खुला तथा दूसरा बंद होता है, को लेकर उसके बंद मुँह पर एक छोटा-सा छेद कर दिया जाता है। एक छड के सिरे पर चमडे या रबर की एक गोल चकती लगा दी जाती है। चकती का व्यास ठीक नली के व्यास के समान होता है। उसे पिस्टन (piston) कहा जाता है। पिचकारी के मुँह को द्रव में डालकर छड़ को बाहर की ओर खींचने से पिचकारी में आंशिक निर्वात की सृष्टि हो जाती है और द्रव पर वायु के दाब से द्रव ऊपर चढ जाता है तथा पिचकारी को भर देता है। फिर छड़ को दबाकर उसे बाहर फेंका जाता है।

डाक्टरी सीरींज

डाक्टर सूई देने के लिए जिस सीरींज (syringe) का प्रयोग करते हैं वह भी एक प्रकार की पिचकारी है। इसमें काँच की नली के अंदर छड़ और पिस्टन के बजाए एक काँच की मोटी छड लगा दी जाती है, जिसका व्यास नली के व्यास के समान होता है। इस छड़ को बाहर की ओर खींचने से नली में निर्वात की सृष्टि होती है और द्रव (दवा) उसमें चढ़ जाती है। सीरींज के मुँह पर एक खोखली पतली सूई लगा दी जाती है और उसको शरीर में गडाकर छड को नली के भीतर दबाकर शरीर के अंदर दवा प्रवेश कराई जाती है।

स्वपूरक फाउण्टेनपेन भी इसी सिद्धांत पर बनता है। अंदर लगी हुई रबर की नली पर दबाव डालकर उसे निर्वातित कर दिया जाता है। स्याही के अंदर डालकर दबाव हटा लेने से रिक्त स्थान में स्याही चढ़ जाती है। ड्रॉपर भी इसी तरह काम करता है।

पानी का साधारण पंप

पानी की सतह पर वायुमंडल का दाव पड़ने के कारण पानी ३२ से ४० फीट तक ऊपर चढ़ जाता है। इस नियम के आधार पर साधारण पानी का पंप बनाया जाता है। पिचकारी और इसकी बनावट में कोई विशेष अंतर नही है। केवल इसका पिस्टन कुछ भिन्न प्रकार का होता है। इसमें एक कपाट (valve) लगा रहता है, जिसमे से होकर पानी ऊपर तो जा सकता है, पर नीचे की ओर नही। वेलन या वैरल के नीचे लगे हुए एक पतले नल को जमीन मे गाड़ कर पानी तक पहुँचा दिया जाता है। कुएँ में भी इस प्रकार का पंप बैठाया जाता है। हत्थे को दबाने से पिस्टन ऊपर उठ जाता है और उसके नीचे वैरल मे आशिक निर्वात की सृष्टि हो जाती है। इस प्रकार वेलन के अंदर वायु का दाव घट जाने के कारण बाहरी वायु के दाव से पानी नल के अंदर चढ़ जाता है तथा एक ओर खुलने वाले कपाट मे से होकर वेलन (वैरल) मे भर जाता है। फिर हत्थे को ऊपर उठाकर पिस्टन को नीचे दबाया जाता है। दाव लगते ही वेलन के नीचे लगा हुआ कपाट वद होकर उसके अदर भरे हुए पानी को नीचे जाने से रोक देता है और पिस्टन मे लगे हुए एक ओर खुलने वाले कपाटो से होकर पानी बाहर निकल आता है। इस प्रकार हत्थे को चलाते रहने से लगातार पानी निकलता रहता है।

ग
क
ख

[चित्र ५४—साधारण पानी-पंप. (क) वेलन या वैरल, (ख) कपाट, (ग) पिस्टन]
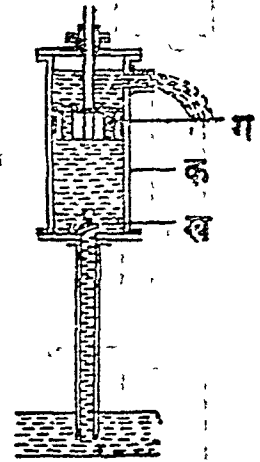
वायु-पंप

वायु-पंप दो तरह के होते हैं :—

(१) किसी पात्र मे हवा भरने के लिए पंप—जैसे फुटबॉल पंप, साइकिल पंप आदि। इसे **संपीडन पंप** (compression pump) कहते हैं।

(२) किसी पात्र से हवा निकालने के लिए पंप। इसे **रेचक या निर्वातक पंप** (exhaust pump) कहा जाता है।

दोनों पंप एक ही सिद्धांत पर काम करते है। लेकिन दोनों के पिस्टन मे तथा अदर लगे हुए कपाटो (valve) के खुलने की दिशा मे भिन्नता होती है।

[चित्र ५५—संपीडन पंप (क) नली, (ख) छड, (ग) वाशर]
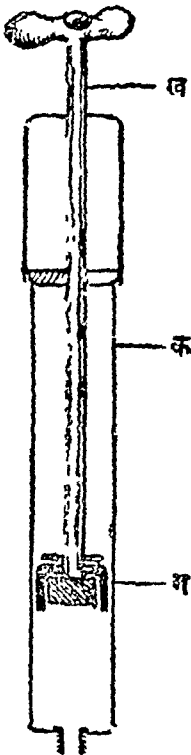
फुटबॉल पंप

एक धातु-निर्मित नली का एक छोर खुला रहता है तथा दूसरे छोर पर एक पतली छोटी टोंटी लगी हुई होती है। पिचकारी जैसी इसमे भी एक छड लगी रहती है। उसके एक छोर पर काठ का हत्था लगा रहता है और दूसरे छोर पर चमड़े का कटोरीनुमा एक वाशर। वाशर का किनारा नीचे की ओर मुड़ा हुआ रहता है और वह पिस्टन तथा कपाट—दोनो का काम करता है। टोटी के अंदर एक लोहे की गोली होती है, जो वहाँ पर कपाट जैसा काम करती है और हवा को ऊपर से नीचे फुटबॉल मे जाने तो देती है, पर नीचे से ऊपर आनें से रोकती है।

[चित्र ५६—फुटबॉल पंप : (क) नली, (ख) टोटी, (ग) वाशर, (घ) कपाट का काम करने वाली गोली]

छड़ को ऊपर खींचते समय वायु, वाशर के किनारों पर, ऊपर से दाव डालकर, उसे भीतर की ओर मोड कर, सरलता से नीचे चली जाती है। किंतु छड़ को दबाने पर वाशर का किनारा, नीचे की वायु का दाव पाकर, फैल जाता है और नली की दीवारों से सटकर वायु को ऊपर नही जाने देता है। इस प्रकार दाव पाकर वायु फुटबॉल के अंदर चली जाती है। फिर छड़ को ऊपर उठाने पर

ऊपर से वायु आकर नली मे भर जाती है। पर, टोटी में लगी हुई गोली रास्ता रोककर फुटवॉल के अंदर की वायु को वाहर नही निकलने देती है।

साइकिल-पंप

साइकिल-पंप भी ठीक इसी प्रकार से वनता है। किंतु इसके दो हिस्से होते हैं। ऊपर की नली, छड और वाशर ठीक फुटवॉल-पंप जैसे होते हैं। टोटी की जगह पर एक रवर की नली से पंप को साइकिल-ट्यूव मे लगे हुए वाल्व (valve) से जोड़ दिया जाता है। यह वाल्व साइकिल-पंप का दूसरा हिस्सा है।

[चित्र ५७—साइकिल पंप : (क) नली, (ख) छड़, (ग) वाशर]

साइकिल-वाल्व

यह धातु-निर्मित पतली-सी छोटी नली से वनता है। नली के ऊपर का आधा हिस्सा कुछ मोटा होता है। नली के ऊपर का मुँह खुला हुआ रहता है तथा नीचे का वद। वंद मुँह के थोड़ा-सा ऊपर नली की दीवार मे एक वारीक छेद रहता है। इस नली के निचले भाग मे एक पतली रवर की नली मजवूती से लगा दी जाती है। रवर की यह नली वारीक छेद को ढँककर पूरे निचले अश पर फैली रहती है। रवर की इस नली को वाल्व-ट्यूव (valve tube) कहते हे। वाल्व-ट्यूव लगे हुए वाल्व को साइकिल-ट्यूव के साथ निश्चित स्थान पर लगाकर कस दिया जाता है। अव पंप की सहायता से वाल्व के खुले हुए मुँह से हवा भरी जाती है। ऊपर से दाव पाकर हवा वाल्व की दीवार के वारीक छेद मे से वाल्व-ट्यूव पर दाव डालती हे। इससे रवर फैल जाता है और हवा साइकिल-ट्यूव में भर जाती है। पंप की छड़ को ऊपर खीचते समय यह

दाव कम हो जाता है और साइकिल-ट्यूब के अंदर की हवा वाल्व-ट्यूब पर अधिक दाब डालने लगती है। इससे वाल्व-ट्यूब वाल्व से सट जाती है और छेद को वंद कर अंदर की हवा को वाहर नही जाने देती।
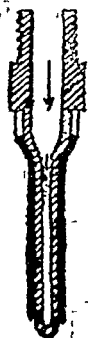
[चित्र ५८—साइकिल-वाल्व]

इस प्रकार साइकिल मे हवा भरते समय पंप और वाल्व, दोनो वारी-वारी से काम करते रहते है।

रेचक (या निर्वातक) पप

वायु निकालने वाला साधारण रेचक पंप भी लगभग साइकिल या फुटवॉल-पप जैसा होता है। अंतर केवल यह है कि इसके कटोरीनुमा वाशर का किनारा ऊपर की ओर अर्थात् नली के खुले हुए मुँह की ओर मुडा हुआ होता है तथा नली के नीचे के छेद पर अदर की ओर खुलने वाला कपाट लगा हुआ होता है, जो नीचे से दाव मिलने पर खुल जाता है और ऊपर की दाव से वंद हो जाता है।

जिस पात्र से हवा निकालनी होती है उसको एक नली द्वारा पंप से जोड दिया जाता है। अव छड़ को ऊपर खीचने पर ऊपर की वायु के दाव से वाशर का किनारा फूल कर नली मे सट जाता है और वायु को नीचे नही जाने देता। इस प्रकार नली मे निर्वात की सृष्टि हो जाती है। इस निर्वात को भरने के लिए नली से जुड़े हुए पात्र से हवा नीचे वाले छेद के कपाट पर दाव डालती है और उसे खोलकर अंदर आ जाती है। फिर छड़ को नीचे दवाने पर ऊपर के दाव से छेद के ऊपर का कपाट वद हो जाता है और नली के अंदर की वायु को उस रास्ते से पात्र मे वापस जाने से रोक देता है। ऐसी हालत मे नली के अदर की हवा वाशर पर दाव डालकर, उसके ऊपर की ओर मुडे हुए किनारे को भीतर की ओर दवाकर, वाहर निकल जाती है। इस प्रक्रिया को दुहरा कर पात्र को धीरे-धीरे निर्वातित कर दिया जाता है।

साइफन (Siphon)

पंप की सहायता के विना एक स्थान से दूसरे स्थान में पानी या अन्य द्रव पदार्थ को ले जाने के लिए साइफन काम मे लाया जाता है। कॉच या धातु-निर्मित नली को इस प्रकार मोड़ी जाती है कि उसकी एक भुजा दूसरी

भुजा से वड़ी रहे। नली की वड़ी भुजा को जिस वरतन या जगह पर द्रव को ले जाना है वहाँ और छोटी भुजा को द्रवपूर्ण पात्र में इस प्रकार डाल दिया जाता है कि वह द्रव मे डूवी रहे। व्यवहार मे लाने के पहले नली को उस द्रव से संपूर्ण रूप से भर देना चाहिए ताकि उसमे वायु न रहे इस प्रकार रख देने पर वड़ी भुजा में से होकर द्रव नीचे गिरने लगेगा। यह काम तव तक चलता रहेगा जव तक पहला वरतन खाली न हो जाए या नली की छोटी भुजा का मुँह द्रव से वाहर न निकल आए या दोनो वरतनो मे द्रव की सतह समान न हो जाए।
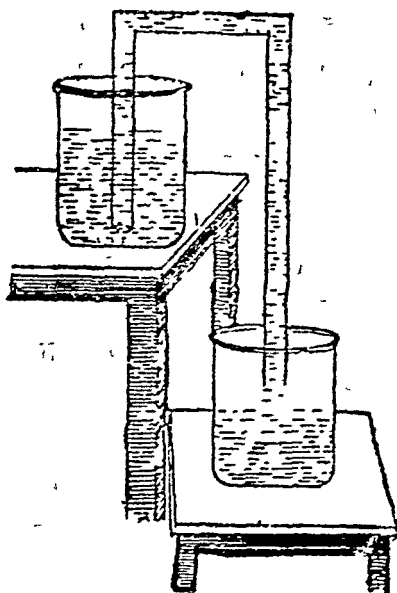
[चित्र ५९—साइफन]

यह क्रिया इसलिए होती है कि नली की वडी भुजा मे भरा हुआ पानी या अन्य द्रव अपने भार के कारण नीचे गिरने लगता है और नली मे निर्वात की सृष्टि होने लगती है, साथ ही छोटी भुजा के अदर के द्रव पर पड़ने वाला वायु का दाव द्रव को वड़ी भुजा के रिक्त स्थान मे ठेल देता है और द्रव लगातार छोटी नली से होकर वड़ी नली और वहाँ से वाहर निकलने लगता है।

साइफन की क्रिया मे सफलता के लिए निम्नलिखित वातों पर ध्यान रखना होगा ;—

(क) जहाँ से द्रव निकालना होगा वहाँ द्रव की सतह, जहाँ ले जाना होगा, वहाँ की सतह से ऊँची हो। नही तो दोनो सतहो मे अंतर नही रहने के कारण द्रव प्रवाहित नही हो सकेगा।

(ख) साइफन की भुजाएँ छोटी-वड़ी होनी चाहिए।

(ग) स्थान वायुशून्य न हो।

(घ) छोटी भुजा का सर्वोच्च भाग ३४ फुट से अधिक ऊँचाई पर न हो।

(ङ) छोटी भुजा का सिरा द्रव के नीचे डूबा हो।

वर्षा-काल में छत पर पानी जम जाने से, साइफन की सहायता से, छत के चारों ओर के ऊँचे घेरे के ऊपर से पानी को बाहर निकाला जा सकता है। सार्वजनिक स्थानों में, पाखाने आदि के स्वचालित प्रक्षालकों (automatic flush system) में, साइफन काम में लाया जाता है। प्रक्षालकों में एक निश्चित परिमाण में पानी भर जाने के बाद यह पानी साइफन की सहायता से वेग से निकल जाता है और पाखाने को धोकर साफ कर देता है।

वासुदेव प्याला, पनचोर प्याला, टैंटेलस प्याला आदि खिलौने साइफन के सिद्धात के आधार पर ही बनते हैं। प्याले कांच या किसी धातु के बने हुए होते हैं। वासुदेव प्याले में वासुदेवजी की मूर्ति और टेंटेलस प्याले में राजा टेंटेलस की मूर्ति रहती है। मूर्ति के अंदर एक साइफन छिपा हुआ रहता है, जिसका मुड़ा हुआ भाग मूर्ति के मुँह के साथ एक ही तल पर होता है। प्याले की तली मे एक छेद होता है। साइफन की छोटी भुजा का मुँह मूर्ति के अंदर रहता है और बड़ी भुजा छेद से बाहर निकाल दी जाती है। प्याले मे पानी डालने पर पहले तो वह भरने लगता है, लेकिन जैसे ही पानी मूर्ति के मुँह तक यानी साइफन की भुजाओ के मोड़ तक पहुँचता है वैसे ही साइफन की सहायता से पानी बाहर निकलने लगता है। इस प्रकार उसमें कितना ही पानी क्यो न डाला जाए, पानी से प्याला न कभी भर ही सकता है और न मूर्ति डूब ही सकती है।

ऊष्मा (Heat)

अगर हम आग के पास खड़े हो जाएँ तो हमे गरमी मालूम होगी और अगर हम वरफ छू ले तो ठंढक। हम अनुभव करके या छू करके मालूम कर सकते हैं कि कोई वस्तु गरम है या ठंढी। ऊर्जा के उस रूप को, जिसके कारण हमें गरमी या ठंढक मालूम होती है, ऊष्मा कहते हैं। चाहे कोई चीज गरम हो या ठंढी, सभी में कम-वेशी परिमाण में ऊष्मा विद्यमान रहती है। हमारे शरीर के तापमान से जिस वस्तु का तापमान अधिक है, वह हमे गरम और जिसका कम है, वह ठढी लगती है।

ऊष्मा उत्पादक

साधारणतः आग जलाकर हम ऊष्मा उत्पन्न करते हैं। आदि काल से सूखी लकडी ऊष्मा उत्पन्न करने का प्रधान साधन रही है। वाद मे चलकर मनुष्य ने कोयला, मिट्टी के तेल, गैस, विजली आदि से भी ऊष्मा उत्पन्न करना आरंभ किया। प्राकृतिक, यांत्रिक, रासायनिक तथा वैद्युतिक साधनों के अलावा अव मनुष्य के पास ऊष्मा उत्पन्नकरने वाला परमाण्वीय साधन भी मौजूद है। लेकिन, इन सवके होते हुए भी दुनिया मे ऊष्मा का सर्वप्रमुख तथा मुख्य स्रोत सूर्य ही है।

सूर्य

दुनिया मे ऊष्मा और साथ-साथ प्रकाश का सर्वप्रधान तथा मूल स्रोत सूर्य है। उचित मात्रा मे सूर्य की ऊष्मा तथा प्रकाश न मिलने से पृथ्वी पर जीवन का होना ही संभव नही होता। वास्तव मे सूर्य जलती हुई गैसो का एक विशाल गोला हे। इसकी ऊष्मा विकीर्ण होकर पृथ्वी पर सचारित होती है। इसी की ऊष्मा तथा प्रकाश से पृथ्वी पर के पेड़-पौधे पुष्ट होते हैं और उससे लकड़ी या लकड़ी से कोयला वनकर फिर ऊष्मा-उत्पादन के साधन वन जाते हैं। जीव-जंतु सूर्य की ऊष्मा और प्रकाश मे पलते हैं और फिर कालांतर तक मिट्टी के नीचे दवे रहने के वाद मिट्टी का तेल वनकर ऊष्मा और

प्रकाश उत्पादन के साधन बन जाते हैं। सही माने में पृथ्वी पर जो भी ऊर्जा ऊष्मा उत्पन्न करने के लिए मिलती है, सबका मूल स्रोत सूर्य ही है। क्योकि सभीमें सूर्य की ऊष्मा संचित रहती हैं, जिसे विभिन्न उपायो से मुक्त करके हम ऊष्मा उत्पन्न करते है।

विद्युत् की ऊर्जा से ऊष्मा तथा प्रकाश उत्पन्न किए जाते हैं। लेकिन विद्युत्-उत्पादन या तो तेल, कोयला आदि जलाकर या जल की धारा की शक्ति से यंत्रों को चलाकर, किया जाता है। हम देखते है कि तेल तथा कोयले में सूर्य की ऊर्जा सचित रहती है। उसी प्रकार पानी की धारा मे जो गतिज ऊर्जा है, वह भी परोक्ष रूप मे सूर्य से ही मिलती है। सूर्य की ऊष्मा से पानी वाष्प बनकर ऊपर उठ जाता है और सूर्य की ही ऊष्मा के कारण उत्पन्न मौसमी पवन के साथ चलकर पहाडो मे टकराकर वर्षा के रूप मे धरती पर आ गिरता है। इस प्रक्रिया मे सूर्य की ऊर्जा जल-कणो मे सचित हो जाती है और ऊपर से नीचे प्रवाहित होते समय वह ऊर्जा गतिज ऊर्जा का रूप ले लेती है। इस प्रकार इस गतिज ऊर्जा से उत्पन्न जल-विद्युत् का भी स्रोत सूर्य ही है।

आग-ईंधन

सूर्य की ऊष्मा को हम अपनी इच्छा के अनुसार नियंत्रित नही कर सकते है। इसलिए आवश्यकतानुसार, उचित स्थान मे, उचित मात्रा में ऊष्मा पाने के लिए हम मुख्यत. आग जलाकर ऊष्मा उत्पन्न करते है। यह ऊष्मा प्राप्त करने का सबसे आदिम उपाय है। आग जलाने के लिए हमे कुछ-न-कुछ साधनो की आवश्यकता होती है। आग जलाने के इन साधनो को ईंधन (fuel) कहते है। सही माने मे इन्ही ईंधनो मे ऊष्मा उत्पन्न करनेवाली ऊर्जा मौजूद रहती है। आग जलने की क्रिया द्वारा उस ऊर्जा को मुक्त कर दिया जाता है। जलते समय ऑक्सीजन से द्रव्य का सयोग होता है। यह एक रासायनिक क्रिया है और इससे ऊष्मा निकलती है। लकड़ी, कोयला, मिट्टी का तेल, पेट्रोल, कोलगैस आदि ईंधन के रूप मे व्यवहृत किए जाते हैं। ईंधनों से ऊष्मा उत्पन्न करके हम रेलगाड़ी, जहाज, हवाई जहाज, कल-कारखाने आदि चलाते हैं, भट्ठियो मे धातु गलाते है, खाना पकाते है तथा और कितने ही कामो को रोज करते हैं। सभी ईंधनों की रासायनिक

बनावट लगभग एक-सी होती है। सभी में हाइड्रोजन तथा कार्वन के यौगिक होते है। अच्छे ईंधन की बनावट में अधिक परिमाण मे दहनशील पदार्थ होते है।

दियासलाई

आग तथा ऊष्मा उत्पन्न करने के लिए जिन वस्तुओ का व्यवहार किया जाता है, उनमें दियासलाई का स्थान सर्वप्रधान है। यह सही है कि दियासलाई ईंधन नही है, और इसके द्वारा दूसरी वस्तुओ मे आग लगाने के सिवा अन्य कोई काम नही लिया जा सकता है। फिर भी दियासलाई हमारे लिए एक प्रधान नित्य प्रयोजनीय वस्तु है।

आदिम काल मे पत्थर से पत्थर ठोककर आग जलाई जाती थी। फिर एक विशेष प्रकार के पत्थर पर लोहे का टुकड़ा रगड़कर आग जलाने का व्यापार प्रारंभ हुआ। वाद मे दियासलाई का आविष्कार हुआ और कई परिवर्त्तनो के वाद उसका वर्त्तमान रूप हमारे सामने आया।

आजकल की दियासलाई की सींको के एक सिरे पर जो मसाला लगा रहता है, वह पोटैशियम क्लोरेट (potassium chlorate) तथा एंटिमनी सल्फाइड (antimony sulphide) मिलाकर बनाया जाता है। वक्सो की वगल मे लाल फॉसफोरस (red Phosphorus), काँच की वुकनी तथा गोंद मिलाकर लेप कर दिया जाता है। इस लेप पर सीक में लगा हुआ मसाला रगड़ने से आग जल उठती है।

लकड़ी

ईंधन मे लकड़ी सवसे पुरानी है। आज भी ऊष्मा उत्पन्न करने के साधनो मे लकड़ी का एक प्रमुख स्थान है। खाना पकाने के लिए लकड़ी का व्यवहार वहुत वड़े पैमाने पर होता है। इस समय भी कही-कही लकड़ी जलाकर रेल का इंजन चलाया जाता है।

कोयला

वर्त्तमान युग मे ऊष्मा-उत्पादक ईंधन के रूप में कोयले का स्थान सर्व-प्रथम है। खाना पकाना, जाड़े में कमरे को गरम रखना आदि साधारण काम से लेकर वड़े-वड़े कल-कारखाने, रेल, जहाज आदि चलाने के लिए आवश्यक

ऊष्मा कोयले को जलाकर ही उत्पन्न की जाती है। किसी भी देश का उद्योग कोयले के उत्पादन पर वहुत हद तक निर्भर करता है।
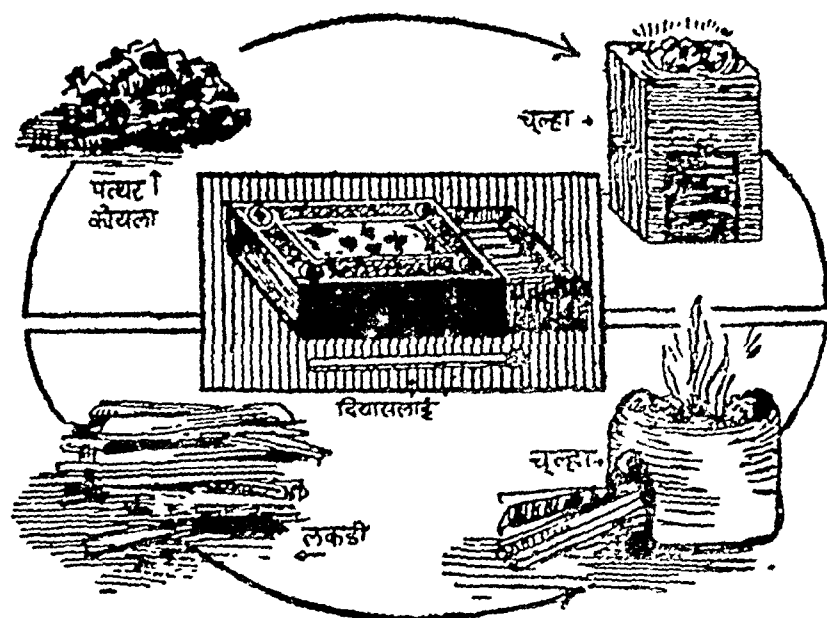
[चित्र ६०—ईंधन]

कोयला खानो से निकाला जाता है। वास्तव मे कोयला लकड़ी से ही वनता है। लकड़ी लाखों साल तक मिट्टी के नीचे दवी हुई रहकर कोयला वन जाती है।

मिट्टी का तेल, पेट्रोल आदि

जमीन के नीचे नल वैठाकर और उसकी सहाता से पंप करके पेट्रोलियम निकाला जाता है। इसे परिष्कृत करके मिट्टी का तेल, पेट्रोल, डीजल तेल आदि वनाए जाते है। ये सब भी ऊष्मा उत्पन्न करने के प्रमुख साधन हैं। पेट्रोल से मोटरगाडी, हवाई जहाज आदि चलते हैं। डीजल तेल से भारी-भारी ट्रक, वसें, मशीने, रेले तथा जहाज आदि चलाए जाते है।

कोल गैस

कोयले से कोल गैस वनाया जाता है। इससे ऊष्मा उत्पन्न करके खाना आदि पकाया जा सकता है। इस ईंधन को नल की सहायता से एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जाता है।

ईंधनो को जलाने के अतिरिक्त और कई विधियो से ऊष्मा उत्पन्न की जा सकती है। एक द्रव्य के साथ दूसरा द्रव्य रगड़ने पर ऊष्मा उत्पन्न होती है। विद्युत् ऊर्जा से भी ऊष्मा उत्पन्न की जाती है। कुछ ऐसे द्रव्य हैं जिन्हे मिला देने से ऊष्मा उत्पन्न होती है।

विद्युत्

विद्युत्-ऊर्जा ऊष्मा-उत्पादन का एक मुख्य साधन है। धीरे-धीरे विद्युत् ऊर्जा ऊष्मा-उत्पादन का सर्वप्रधान साधन वनती जा रही है। किसी सुचालक के अदर विद्युत्-धारा प्रवाहित होने से ऊष्मा उत्पन्न होती है।

विद्युत् की सहायता से घरों मे इस्तेमाल होनेवाली इस्तिरी, चूल्हों, वत्तियो यहाँ तक कि सिगरेट, बीड़ी आदि जलानेवाले लाइटरों आदि से लेकर कारखानों मे धातु गलानेवाली विद्युत्-भट्ठियो आदि मे, ऊष्मा उत्पन्न की जाती है।

परमाणुओं के विखंडन से ऊष्मा-उत्पादन

वर्त्तमान काल मे विज्ञान का सवसे वड़ा आविष्कार परमाणुओं के विखंडन से ऊर्जा उत्पन्न करना है। परमाण्वीय ऊर्जा से जो ऊष्मा उत्पन्न की जा सकती है, उससे अधिक ऊष्मा उत्पन्न करने का और कोई साधन मनुष्य के पास नही है। वैज्ञानिको ने आविष्कार किया है कि सूर्य की ऊष्मा भी उसके अदर परमाणु-विस्फोटों से उत्पन्न होती है। एक ग्राम परमाणु के विखडन से जितनी ऊष्मा उत्पन्न की जा सकती है, उतनी ही ऊष्मा उत्पन्न करने के लिए विद्युत् की करोड़ो इकाई की आवश्यकता होती है।

पहले-पहल परमाण्वीय ऊर्जा का प्रयोग ध्वस के लिए किया गया था। जापान के हिरोशिमा तथा नागाशाकी नगरों पर गत विश्वयुद्ध के समय परमाणु वम गिराया गया था और उससे लाखों व्यक्ति मौत के शिकार हो गए थे।

खुशी की वात है कि इस ऊर्जा को अव ध्वंसात्मक काम मे न लगाकर मानव की सेवा के लिए लगाया जा रहा है। वैज्ञानिकों के नित्य नये आविष्कार इस ऊर्जा को मानव की अधिकाधिक सेवा मे लाने में सफल हो रहे है। अव परमाण्वीय ऊर्जा से विद्युत् का उत्पादन हो रहा है तथा उससे जहाज आदि चलाये जा रहे है।

घरेलू काम के लिए ईंधन का चुनाव

घर मे ईंधन उतनी ही आवश्यक चीज है जितनी खाने-पीने की चीजें। घरो मे मुख्यत खाना पकाने, पानी, दूध आदि गरम करने, किसी चीज को जलाने तथा जाड़े के दिनो में कमरे को गरम करने और आग तापने आदि कामों के लिए ईंधन की आवश्यकता होती है।

आजकल शहरो तथा बहुत-से ग्रामीण क्षेत्रो मे भी कई प्रकार के ईंधन मिलते हैं। इसलिए घरेलू काम के लिए ईंधन को चुनते समय हमे कुछ बातो को ध्यान मे रखना चाहिए। ऐसे तो जहाँ पर चुनने के लिए एकाधिक ईंधन मिलते ही नहीं हैं, वहाँ चुनने का सवाल ही नही उठता। लेकिन जहाँ मिलते है, वहाँ अवश्य ही चुनने की कोशिश करनी चाहिए।

ईंधन को चुनते समय सबसे पहले उसकी कीमत पर ध्यान देना चाहिए। साथ ही उसकी ऊष्मा-उत्पादन-क्षमता तथा उपयुक्तता का भी खयाल रखना चाहिए।

विभिन्न प्रकार के ईंधनो की ऊष्मा-उत्पादन क्षमता एक नही होती। समान परिमाण मे लकड़ी से कोयला लगभग दो गुना और किरासन तेल लगभग तीन गुना अधिक ऊष्मा उत्पन्न कर सकता है (लकडी ५०० बी० टी० यू० प्रति पौंड, कोयला १४,००० बी० टी० यू० प्रति पौंड और किरासन तेल २०,००० बी० टी० यू० प्रति पोंड)।

साथ ही विभिन्न प्रकार के ईंधनों को इस्तेमाल करने में विभिन्न मात्रा मे श्रम की भी आवश्यकता होती है और सफाई की समस्या भी विभिन्न परिमाणों मे उठती है। लकड़ी तथा कोयले के चूल्हे सुलगाने मे किरासन तेल के या गैस के चूल्हे जलाने की अपेक्षा काफी अधिक मेहनत करनी पड़ती है। साथ ही, लकड़ी या कोयले का इस्तेमाल करने पर बरतन तथा कमरे की सफाई में भी काफी मेहनत और समय लगाना पड़ता है।

लड़की तथा कोयले के चूल्हे से काफी परिमाण मे ऊष्मा चारो ओर फैलकर नष्ट होती है। किरासन तेल तथा गैस के चूल्ह की उष्मा काफी हद तक थोड़े से स्थान मे सीमित रहती है और इसलिए कम बरबाद होती है। साथ ही, इन चूल्हों को चाहे जब जलाया तथा बुझाया जा सकता है, जो लकड़ी या कोयले के चूल्हे के साथ सभव नही है।

इसलिए ईंधन के ऊपर खर्च का हिसाब करते समय केवल उसकी कीमत का ही हिसाब नही देखना चाहिए। कीमत मे सस्ता होने पर भी असल मे वह महँगा पड़ सकता है। घर के लिए ईंधन को चुनते समय ऊपर की सभी बातों का खयाल रखना चाहिए।

ऊष्मा-उत्पादक के खयाल से बिजली सबसे अच्छी होती है। इसके चूल्हे को जलाने के लिए न तो किसी प्रकार के ईंधन की आवश्यकता पड़ती है और न आग की ही जरूरत पडती है। साथ ही, इसमें सफाई का सवाल भी लगभग नही के बराबर होता है। बिजली से ऊष्मा उत्पन्न करने के सबंध मे हम आगे चलकर विस्तार से अध्ययन करेगे।

गोबर गैस

ग्रामीण क्षेत्र मे ईंधन तथा ऊष्मा-उत्पादक के रूप मे गोबर गैस का व्यवहार अत्यधिक लाभदायक हो सकता है। इससे लगभग बिना खर्च जलाने के लिए ईंधन मिल जाता है और साथ ही इससे बत्ती भी जलाई जा सकती है। गोबर गैस बना लेने के बाद भी गोबर न केवल खाद के लिए उपयोगी रह जाता है, बल्कि अधिक उपयोगी बन जाता है। इससे गोइंठा के रूप मे जलकर यह अत्यावश्यक खाद बरबाद नही होती है।

गोबर गैस संयंत्र (Plant) बहुत आसानी से स्थापित किया जा सकता है तथा इसमे अधिक खर्च भी नही होता है।

अध्याय ६

तापमान तथा तापमापी यंत्र

(Temperature and Thermometer)

ऊष्मा ऊर्जा का एक रूप है। इसके अवशोषण से वस्तु उत्तप्त होती है और इसके उत्सर्जन से वस्तु ठंढी होती है।

बरफ ठंढी होती है तथा भाप गरम। इसका अर्थ यह है कि बरफ से भाप अधिक उत्तप्त है। किसी वस्तु के उत्ताप को उसका तापमान (temperature) कहा जाता है। एक ग्लास गरम पानी का तापमान, एक ग्लास ठंढे पानी के तापमान से अधिक होता है। दोनो ग्लासो के पानी को मिला दिया जाय तो गरम पानी का तापमान घटेगा और ठंढे पानी का तापमान बढेगा और अंत में मिले हुए पानी का तापमान एक हो जाएगा। दो वस्तुओं का तापमान तभी समान समझा जाता है, जब दोनो को मिला देने से किसी का तापमान न घटता है और न बढता है।

तापमान से ऊष्मा का परिमाण (quantity of heat) पूर्णतया भिन्न है। दो वस्तुओ मे विभिन्न परिमाण मे ऊष्मा रहने पर भी उनका तापमान समान हो सकता है। एक बड़े तथा एक छोटे लोहे के गोले में ऊष्मा के परिमाण समान होने पर भी छोटे गोले का तापमान बडे गोले के तापमान से अधिक होगा। उसी प्रकार लोहे के लहलहाते हुए कण का तापमान दस किलो के लोहे के गोले से (जो कमरे के तापमान पर है) बहुत ही अधिक है। यद्यपि उस लहलहाते हुए कण में ऊष्मा का परिमाण दस किलो के गोले की ऊष्मा के परिमाण की तुलना में तुच्छ होगा।

तापमान वस्तु की तापीय अवस्था बतलाता है और ऊष्मा के परिमाण द्वारा उसमे कुल ऊष्मा का बोध होता है। ऊष्मा का परिमाण वस्तु की प्रकृति, उसके द्रव्यमान तथा तापमान पर निर्भर करता है।

एक वस्तु से दूसरी वस्तु में ऊष्मा का प्रवाह, उनमें ऊष्मा के परिमाणो पर निर्भर नही करता है। जैसे ऊपर के उदाहरण मे लहलहाते हुए कण का स्पर्श

दस किलो के गोले से करा दिया जाए तो ऊष्मा का प्रवाह कण से गोले में होगा। दो वस्तुओं मे ऊष्मा के परिमाणो मे कितना ही अंतर क्यों न हो, अगर उनके तापमान मे अंतर नही है तो एक मे दूसरे मे ऊष्मा का प्रवाह नही होगा। ऊष्मा का प्रवाह तापमान की भिन्नता पर ही निर्भर करता है। इस विषय में ऊष्मा का प्रवाह, पानी के प्रवाह जैसा होता है। पानी का प्रवाह पानी के परिमाण पर नही वल्कि उसकी सतह की ऊँचाइ पर निर्भर करता है। समुद्र मे पानी का परिमाण अपरिमित है, तो भी सभी नदियो का पानी ऊँची सतह से नीची सतह की ओर वहता हुआ अंततः समुद्र मे जा गिरता है। समुद्र का पानी कभी नदी मे प्रवाहित नही होता है। जिस प्रकार सतह की ऊंचाई की भिन्नता से पानी का प्रवाह होता है और सदैव ऊँची सतह से नीची सतह की ओर होता है उसी प्रकार ऊष्मा का प्रवाह केवल तापमान की भिन्नता पर ही होता है और ऊँचे तापमान से नीचे तापमान की ओर होता है।

तापमान एक संख्या द्वारा प्रकट किया जाता है। एक स्थिर विंदु को शून्य मान कर इसकी माप का प्रारंभ होता है। तापमान के सेन्टीग्रेड स्केल में पिघलती हुई वरफ के तापमान को ० (शून्य) डिग्री और खौलते हुए पानी के तापमान को १०० डिग्री माना जाता है। शून्य डिग्री के नीचे के तापमान को ऋण (negative) तापमान और ऊपर के तापमान को धन (positive) तापमान कहा जाता है। तापमान मापने के लिए विशेप प्रकार के यंत्र की आवश्यकता होती है। इसे तापमापी यंत्र या थर्मामीटर यत्न कहते है।

तापमापी या थर्मामीटर (Thermometer)

ऐसे तो हम स्पर्श द्वारा तापमान का अंदाज लगा लेते हैं और कह सकते है कि यह वस्तु ठंढी है, साधारण गरम है, या अति गरम है आदि। किन्तु इसमें प्राय: गलती होने की संभावना रहती है। मान लीजिए तीन वरतनों में पानी रखा है। एक मे वरफ का पानी, एक में साधारण पानी और एक मे गरम पानी। अव अगर वरफ के पानी मे कुछ देर तक हाथ रखकर फिर हाथ को साधारण पानी में रखा जाए, तो मालूम होगा कि वह पानी गरम है। किंतु अगर गरम पानी में कुछ देर तक हाथ रखने के वाद फिर साधारण पानी में हाथ डाला जाए, तो वह पानी ठंढा मालूम होगा। इससे यह स्पष्ट

हो जाता है कि स्पर्श द्वारा ठीक-ठीक तापमान नही मालूम किया जा सकता है। सही-सही तापमान की माप, थर्मामीटर से की जा सकती है।

हम जानते है कि ताप से वस्तु प्रसारित होती है। देखा गया है कि ताप मे किसी वस्तु का विस्तार एक निश्चित दर से होता है। एक वस्तु ४ डिग्री तापमान से जितनी विस्तारित होगी, ४० डिग्री तापमान मे उससे १० गुना अधिक विस्तारित होगी। ऊष्मा से वस्तुओ के इस विस्तार को देखकर तापमान मापा जाता है।

थर्मामीटर का निर्माण

साधारण थर्मामीटर वनाने के लिए, काँच की नली मे कोई एक द्रव पदार्थ डाला जाता है और उसका वढना देखकर तापमान का बढ़ना मापा जाता है। द्रव पदार्थ इसलिए लिया जाता है कि ऊष्मा से ठोस पदार्थ के आयतन मे वृद्धि का परिमाण इतना कम होता है कि उसे देखकर तापमान जानना कठिन हो जाता है। इसीलिए साधारण थर्मामीटर वनाने के लिए द्रव पदार्थ ही लिया जाता है। इस काम के लिए पारा, अन्य द्रव पदार्थों से अधिक उपयोगी होता है। कारण यह है कि तापमान मे वृद्धि के साथ-साथ पारा समरूप से वढता है, यह ऊष्मा का सुचालक है, सफेद और चमकीला होने के कारण आसानी से दिखलाई पड़ता है, यह वाष्पशील नही है, वहुत ऊँचे तापमान पर खौलता है और वहुत नीचे तापमान पर द्रव से ठोस अवस्था प्राप्त करता है।

पारायुक्त थर्मामीटर वनाने के लिए एक सिरे पर पोली घुंडी युक्त सूक्ष्म छिद्र वाली काँच की नली ली जाती है और उसमे पारा भर दिया जाता है। पारा भरने के लिए नली के ऊपर एक कीप मे पारा भरकर रख दिया जाता है और नीचे की घुंडी को गरम किया जाता है। गरम होने पर उसके अंदर की कुछ वायु फैलकर निकल जाती है और जव घुंडी ठंढी होती है, तव पारा उस शून्य स्थान को भरने के लिए अपने आप अंदर चला जाता है। दो-तीन वार ऐसा करने पर घुंडी मे काफी पारा भर जाता है। अव घुंडी को फिर से गरम किया जाता है ताकि पारा वढकर नली के सपूर्ण छिद्र मे भर जाए और उसमे वायु न रह जाए। फिर काँच को पिघला कर नली के खुले हुए मुँह को वंद कर दिया जाता है।

थर्मामीटर को अंशाकित करने के लिए पहले बरफ का हिमांक (freezing point) और फिर पानी का क्वथनांक (boiling point) निकाला जाता है। थर्मामीटर मे हिमांक तथा क्वथनाक के बीच के अंतर को **मूल अंतराल** (fundamental interval) कहते है। इसी अंतराल को अंशो में बाँटकर थर्मामीटर अंशांकित किया जाता है। इस प्रकार अंशाकित थर्मामीटर के प्रत्येक अंश को **डिग्री** (degree) कहते हैं।

हिमांक का निर्धारण

हिमांक निकालने के लिए थर्मामीटर की पारापूर्ण घुंडी को पिघलती हुई बरफ में डूबाकर रखा जाता है। थर्मामीटर को बरफ में रखते ही नली के अंदर पारा नीचे उतरने लगता है और अत मे एक स्थान पर आकर रुक जाता है। थर्मामीटर पिघली हुई बरफ मे कितनी ही देर तक क्यो न रखा जाए, पारा और नीचे नही उतरेगा। थर्मामीटर मे पारे के इस स्थान को चिह्नित कर दिया जाता है। इसे थर्मामीटर का हिमांक या निम्न स्थिर बिंदु (lower fixed point) कहा जाता है।

क्वथनांक का निर्धारण

क्वथनांक का निर्धारण करने के लिए थर्मामीटर को उबलते हुए पानी के ऊपर इस प्रकार रखा जाता है कि उसकी घुंडी और डाट, दोनो खौलते हुए पानी के ठीक ऊपर रहे। उबलते हुए पानी के ऊपर रखने के बाद थर्मामीटर का पारा ऊपर चढने लगता है और कुछ दूर तक चढ़ने के बाद एक स्थान पर आकर रुक जाता है। अब थर्मामीटर को उबलते हुए पानी की भाप मे कितनी ही देर तक क्यो न रखा जाए, पारा और ऊपर नही चढेगा। थर्मामीटर मे इस स्थान को चिह्नित कर दिया जाता है और इसे **क्वथनांक** या उच्च स्थिर बिंदु (upper fixed point) कहा जाता है।

थर्मामीटर का उच्च स्थिर बिंदु निकालने के लिए प्रयोगशालाओ में **हिप्सोमीटर** नाम के यंत्र का व्यवहार किया जाता है। इसकी दीवार दोहरी होती है जो इसे दो कोष्ठो मे बाँट देती है। भीतरवाले कोष्ठ में पानी खौलता है और भाप भीतर वाले कोष्ठ से बाहर वाले कोष्ठ मे जाकर वहाँ से निकल जाती है। इससे यह लाभ होता है कि भीतर वाले कोष्ठ की भाप

बाहर की ठंढी वायु के संपर्क में नहीं आने के कारण पूर्णतः शुष्क रहती है। भीतर वाले कोष्ठ मे थर्मामीटर सीधा खड़ा रहता है और उबलते हुए पानी की सतह के ठीक ऊपर रहता है।

[चित्र ६१—हिप्सोमीटर]

तापमान मापने के मात्रक

तापमान मापने के लिए तीन प्रकार के मात्रक प्रचलित है। इनमे सेंटीग्रेड स्केल सबसे अधिक प्रचलित है। वैज्ञानिक कामों के लिए आम तौर पर इसको काम मे लाया जाता है। लेकिन इगलैंड आदि कुछ देशों मे फारेन हाइट स्केल भी प्रचलित है।

सेंटीग्रेड स्केल में हिमाक ० डिग्री तथा क्वथनाक १०० डिग्री होता है और मूल अंतराल को एक सौ भागो मे बाँट दिया जाता है। प्रत्येक भाग को एक डिग्री सेंटीग्रेड ($१^{0}G$) कहते है।
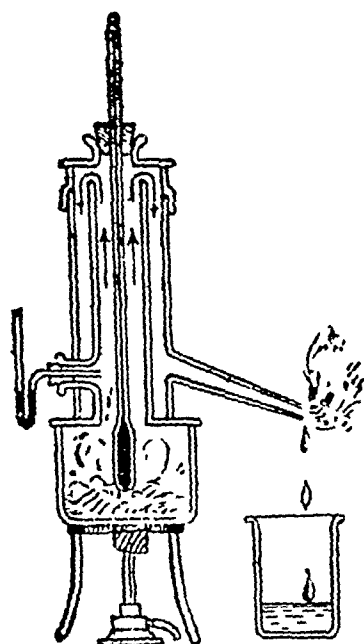
फारेनहाइट स्केल मे हिमाक ३२^{0} तथा क्वथनांक २१२^{0} माना जाता है और मूल अंतराल को १८० भागो मे बाँटा जाता है। इसके प्रत्येक भाग को डिग्री फारेनहाइट (^{0}F) कहते है।

हमारे यहाँ बुखार आदि देखने का जो थर्मामीटर प्रचलित है उसमे फारेनहाइट स्केल होता है।

पूर्वी यूरोप के कुछ देशो मे रीमर (Reaumer) स्केल नाम का एक अन्य तापमान का मात्रक प्रचलित है। लेकिन, इन दिनों इसका व्यवहार बहुत कम होता है।

रीमर स्केल में हिमांक O^{0} तथा क्वथनांक ८०^{0} होता है। मूल अंतराल को ८० डिग्रियों में बाँट दिया जाता है।

तापमान का एक से दूसरे स्केल में परिवर्त्तन

एक स्केल में तापमान मालूम होने से उसे दूसरे स्केल मे आसानी से बदला जा सकता है। हम जानते है कि तीनो स्केलो मे मूल अंतराल क्रमश. १००, १८० तथा ८० है, अर्थात् से० का १०० डिग्री = फा० का १८० डिग्री = री० का ८० डिग्री।

∴ से० का १ डिग्री = फा० का ९/५ डिग्री = री० का ४/५ डिग्री

इसलिए सेंटीग्रेड से फारेनहाइट मे परिवर्त्तित करने के लिए :—

दिया गया तापमान (^{0}C मे) $\cdot \frac{९}{५}$ + ३२ (चूँकि फारेनहाइट का हिमाक ३२^0 पर है) = तापमान ^{0}F मे। सेंटीग्रेड से रीमर में परिवर्त्तित करने के लिए :—

दिया गया तापमान (^{0}C मे) $\times \frac{४}{५}$ = तापमान ^{0}R मे।

फारेनहाइट से सेंटीग्रेड में परिवर्त्तित करने के लिए—(दिया गया तापमान (^{0}F) − ३२) $\times \frac{५}{९}$ = तापमान ^{0}C में।

फा० से रा० मे परिवर्त्तित करने के लिए :—

(दिया गया तापमान ^{0}F − ३२) $\times \frac{४}{९}$ = तापमान ^{0}R मे।

रा० से सें० मे परिवर्त्तित करने के लिए :—

दिया गया तापमान ^{0}R मे $\times \frac{५}{४}$ = तापमान ^{0}C में।

रा० से फा० मे परिवर्त्तित करने के लिए :—

दिया गया तापमान ^{0}R मे $\times \frac{९}{४}$ + ३२ = तापमान ^{0}F मे।

इस प्रकार कोई एक तापमान अगर सेंटीग्रेड मे C, फारेनहाइट में F और राइमर मे R हो तो उनके बीच का संबंध इस प्रकार होगा :—

$$\frac{C}{१००} = \frac{F - ३२}{१८०} = \frac{R}{८०} \text{ अर्थात्}$$

$$\frac{C}{५} = \frac{F - ३२}{९} = \frac{R}{४}$$

इस प्रकार C = ५ हो तो F = ४१ और R = ४ होगे।

डॉक्टरी थर्मामीटर (clinical thermometer)

डॉक्टरी थर्मामीटर मानव-शरीर का तापमान मालूम करने के लिए व्यवहार किया जाता है। इसकी भी वनावट साधारण थर्मामीटर जैसी ही होती है। केवल इसकी घुंडी गोल न होकर लवी होती है और घुंडी के ऊपर पारा निकलने का मार्ग वहुत सँकरा और टेढा वना दिया जाता है। हमारे देश मे डॉक्टरी थर्मामीटर मे फारेनहाइट स्केल रहता है। इसमें ९५° फा० से ११०° फा० तक का तापमान मापा जा सकता है और थर्मामीटर तदनुसार चिह्नित रहता है। घुंडी के ऊपर पारा वाहर निकल आने के वाद अपने आप घुंडी मे लौट नही सकता और हम आसानी से थर्मामीटर मे अधिकतम तापमान को देख सकते है। देख लेने के वाद थर्मामीटर को झाड़ कर पारे को घुंडी मे वापस करवाया जाता है। इस प्रकार डॉक्टरी थर्मामीटर एक अधिकतम थर्मामीटर (maximum tharmometer) है अर्थात् जाँच करने के समय अधिकतम तापमान पर आकर इसका पारा स्थिर हो जाता है और सस्पर्श से हटा लेने पर भी पारा वही टिका रहता है और अधिकतम तापमान को दरसाता रहता है।

[चित्र ६२—डॉक्टरी थर्मामीटर) तथा साधारण थर्मामीटर]
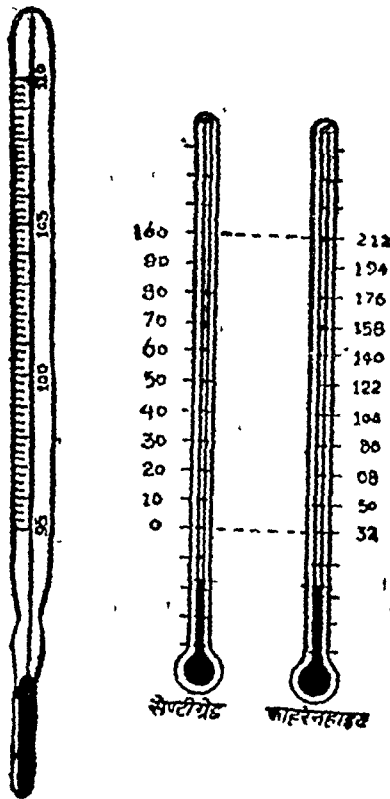
अधिकतम तथा निम्नतम थर्मामीटर

इस प्रकार के थर्मामीटर से एक निर्दिष्ट समय के अंदर का अधिकतम तथा निम्नतम तापमान मालूम हो जाता है। मौसम की सूचना प्रदान करनेवाले कार्यालयों मे दिन तथा रात में अधिकतम तथा निम्नतम तापमान जानने के लिए इस प्रकार के थर्मामीटरो की सहायता

ली जाती है। अधिकतम तथा निम्नतम थर्मामीटर कई प्रकार के होते है, जिनमे सिक्स के थर्मामीटर (Six's thermometer) मे एक साथ दोनों काम होते हैं।

सिक्स का अधिकतम-निम्नतम थर्मामीटर

इसमें अँग्रेजी अक्षर U जैसी एक नली रहती है। नली के एक सिरे पर एक बड़ी वेलनाकार घुंडी रहती है, जो नली की दोनो भुजाओ के बीच मे अंदर की ओर मुड़ी हुई होती है। नली के दूसरे सिरे पर एक छोटी गोल घुंडी रहती है। नली के निचले भाग मे पारा तथा वेलनाकार घुंडी और कुछ दूर तक नली में अलकोहल भरा रहता है। दूसरी घुंडी और उसके नीचे की नली के एक अंश मे कुछ अलकोहल भरा रहता है और बाकी स्थान मे अलकोहल का वाष्प रहता है। इस प्रकार इस घुंडी की ओर अलकोहल के प्रसारण के लिए स्थान बचा रहता है। पारे के ऊपर नली की प्रत्येक बाहु मे डंबल के आकार के लोहे के एक-एक सूचक रहते है। दोनो सूचक हलकी कमानियो से नली की दीवारो से सटे हुए रहते है। नली की वेलनाकार घुंडी से जुड़ी हुई बाहु मे ऊपर से नीचे और गोल घुंडी की बाहु मे नीचे से ऊपर अंशांकित रहता है।

[चित्र ६३—सिक्स का अधिकतम - निम्नतम थर्मामीटर तथा सूचक]

तापमान बढ़ने पर अलकोहल फैलने लगता है—क्योकि उसे गोल घुंडी की ओर ही फैलने के लिए स्थान मिलता है इसलिए वेलनाकार घुडी का अलकोहल फैलते समय नीचे की ओर दाब डालकर पारे को नीचे उतार देता है। इस बाहु

में अलकोहल के दाव से पारा नीचे उतरता है, तो दूसरी वाहु मे वह ऊपर चढने लगता है। इस प्रकार मे दूसरी वाहु मे ऊपर चढ़ते समय पारा सूचक को भी ऊपर ठेलकर ले जाता है। ठंढा पड़ने पर जव अलकोहल सिकुड़ता है और पारा नीचे उतर आता है तो उस समय सूचक अपनी उच्चतम स्थिति पर ही चिपका रह जाता है और उसका तल-भाग अधिकतम तापमान को दरसाता है।

इसी प्रकार ठंढ से जव वेलनाकार घुंडी का अलकोहल सिकुड़ता है तो उस समय उसके नीचे की वाहु मे पारा ऊपर चढ़ने लगता है और दूसरे सूचक को भी ऊपर ले जाता है। गरमी पड़ने पर जव पारा फिर से अल-कोहल के दाव से नीचे चला जाता है तव उस समय भी वह सूचक उस स्थान पर चिपका रह जाता है और उसका तल निम्नतम तापमान को दरसाता है। अधिकतम और निम्नतम तापमान को देख लेने के वाद चुंवक की सहायता से फिर सूचकों को पारे के ऊपर उतार दिया जाता हे।

थर्मामीटर का व्यावहारिक प्रयोग

थर्मामीटर का मुख्य काम है किसी वस्तु या प्राणी का तापमान मापना। कल-कारखानों मे, वैज्ञानिक प्रयोगो मे, जहाँ भी निश्चित तापमान की जानकारी की आवश्यकता होती है, वहाँ थर्मामीटर के विना काम नही चल सकता। यह सही है कि सभी कामों के लिए एक ही प्रकार के थर्मामीटर से काम नही चल सकता है। वहुत अधिक तापमान मापने के लिए पारा का थर्मामीटर उपयुक्त नही होता। इसके लिए विशेप प्रकार का गैस-थर्मामीटर, जिसमे नाइट्रोजन गैस का इस्तेमाल होता है, काम मे लाया जाता हे।

इन कामो के अलावा मौसम का हाल जानने के लिए भी थर्मामीटर का इस्तेमाल होता है। अधिकतम-निम्नतम थर्मामीटर की सहायता से दिन-रात का अधिकतम तथा निम्नतम तापमान मालूम हो जाता हे। इससे अगले दिन का मौसम वताने मे विशेषज्ञों को सहायता मिलती है।

घरों में आए दिन डॉक्टरी थर्मामीटर की आवश्यकता पड़ती है। कहा जा सकता है कि डॉक्टरी थर्मामीटर प्रत्येक घर के लिए एक आवश्यक यंत्र है।

डाक्टरी थर्मामीटर का प्रयोग

मनुष्य के शरीर का तापमान देखने के लिए इस थर्मामीटर का इस्तेमाल होता है। जैसा कि हम पहले ही देख चुके है, हमारे देश मे डाक्टरी थर्मामीटर फारेनहाइट स्केल के अनुसार बनते है और इसमे ९५° से ११०° फा० तक तापमान मापा जा सकता है। प्रत्येक दो डिग्री के बीच चार और छोटे-छोटे चिह्न लगे हुए होते हैं। प्रत्येक चिह्न का मान दो पॉएंट (०·२) होता है।

साधारण स्वस्थ मनुष्य के शरीर का तापमान ९८·४ होता है। किसी-किसी क्षेत्र मे शरीर का स्वाभाविक तापमान इससे थोड़ा-बहुत कम-वेशी हो सकता है। तापमान का इससे बढ़ जाना या घट जाना दोनो ही शारीरिक अस्वस्थता का लक्षण है। शरीर का तापमान स्वाभाविक तापमान से बढ़ जाने को ज्वर या बुखार कहा जाता है। शरीर का तापमान अधिक बढ़ या घट जाने से तुरत डाक्टरी सहायता का प्रबंध करना चाहिए।

शरीर का तापमान देखने के लिए साधारणतः मुँह मे, जीभ के नीचे थर्मामीटर की घुडी को रखा जाता है और आधा मिनट बाद निकाल कर डांट के स्केल पर पारा का स्थान पढ़कर तापमान मालूम किया जाता है। कभी-कभी काँख के नीचे रखकर भी शरीर का तापमान देखा जाता है।

इस्तेमाल के पहले थर्मामीटर को अलकोहल से या पानी से धो लेना चाहिए। फिर देख लेना चाहिए कि पारा डांट मे चढ़ा हुआ है या नही। अगर पारा चढा हुआ है तो थर्मामीटर को झाड़ कर पारे को डाट के निम्नतम अंकन ९४° या ९५° तक ला देना चाहिए। इसके बाद ही थर्मामीटर को तापमान देखने के लिए मुँह मे या काँख के नीचे रखना चाहिए। इस्तेमाल के बाद थर्मामीटर के पारे को फिर से झाड़ कर निम्नतम अंकन पर ला देना चाहिए और उसे धो-पोछ कर मजबूत खोली के अंदर बंद करके रख देना चाहिए।

थर्मामीटर को कभी भी बच्चो के हाथ में नही देना चाहिए, क्योकि यह आसानी से टूट जाता है और इससे बच्चे जखमी हो जा सकते हैं। साथ ही

अध्याय ७

पदार्थ पर ऊष्मा का प्रभाव

हम देख चुके है कि ऊष्मा ऊर्जा का एक रूप है। जाड़े के दिनों मे ऊष्मा की कमी के कारण हमें ठंढ सताती है और गरमी के दिनों मे ऊष्मा की अधिकता से हमे गरमी परेशान करती है। ठंढक और गरमी की यह अनुभूती हमारे शरीर और परिवेश के तापमानों के अंतर पर निर्भर करती है। ऊष्मा द्वारा पदार्थों की अवस्था में परिवर्त्तन होता है। ठोस पदार्थ द्रव या द्रव पदार्थ गैसीय बन जाता है। ऊष्मा से रासायनिक परिवर्त्तन भी होता है। इससे पदार्थों के आयतन में भी परिवर्त्तन होता है तथा इससे शारीरिक गुण—जैसे कठोरता, लचीलेपन आदि में भी परिवर्त्तन हो सकता है।

ऊष्मा के प्रभाव से पदार्थों मे अवस्था-परिवर्त्तन होता है, इस बात को हम पहले ही पढ़ चुके है। अब हम देखेंगे कि ऊष्मा के प्रभाव से पदार्थों के आयतन मे भी परिवर्त्तन होता हे। पदार्थ चाहे ठोस, द्रव या गैसीय, किसी अवस्था मे क्यो न हो, ऊष्मा के प्रभाव से उसके आयतन मे परिवर्त्तन अवश्य ही होता है। ऊष्मा बढने से वस्तुओं के आयतन मे वृद्धि होती है और ऊष्मा घटने से आयतन घटता है। ऊष्मा से पदार्थ के आयतन मे वृद्धि होने के साथ-साथ उसकी लंबाई, चौड़ाई, मोटाई तथा सतहो के क्षेत्रफल में भी वृद्धि होती है।

साथ ही, ऊष्मा के फलस्वरूप पदार्थों के तापमान में भी परिवर्त्तन होता है। दूसरे शब्दों में, ऊष्मा प्राप्त करने से पदार्थ अधिक गरम हो जाता है, यानी उसका तापमान बढ जाता है और ऊष्मा का त्याग करने से ठंढा हो जाता है, यानी उसका तापमान घट जाता है।

ऊष्मा के प्रभाव से ठोस का प्रसार (Expansion of solid)

ठोस पदार्थों को गरम करने पर उनके आयतन तथा आकार में वृद्धि होती है। किसी वस्तु का प्रसार उस वस्तु की प्रकृति और तापमान की वृद्धि पर निर्भर करता है। तापमान के घटने से प्रसार के बदले संकुचन होता है।

निम्नलिखित उदाहरण से ऊष्मा के प्रभाव से लोहे का प्रसार आसानी से देखा जा सकता है :—

गाँवों में लोहार बैलगाड़ी के पहियों पर लोहे का हाल चढ़ाते समय पहले लोहे के हाल को आग में डालकर खूब गरम कर लेते हैं। गरम लोहे का हाल आसानी से पहिये पर चढ़ जाता है। चढ़ाते समय, देखने से मालूम पड़ेगा कि हाल पहिये से व्यास में बड़ा है। लेकिन लगा देने के बाद लोहा जैसे-जैसे ठंडा होता जाएगा, वैसे-वैसे उसका संकुचन होता जाएगा और अंत में ठंडा होकर वह पहिये पर कसकर बैठ जाएगा। इससे प्रमाणित हो जाता है कि गरम होने से लोहे के हाल की परिधि बढ़ गयी थी और ठंडा होने पर वह घट गयी है।

निम्नलिखित प्रयोग में ऊष्मा के प्रभाव से ठोस पदार्थों के आयतन में वृद्धि होना दिखाया जा सकता है :—

प्रयोग—एक धातु-निर्मित छोटा गोला लीजिए और टीन के टुकड़े में इतना बड़ा छेद कीजिए कि गोला छेद के किनारों को छूते हुए उसके
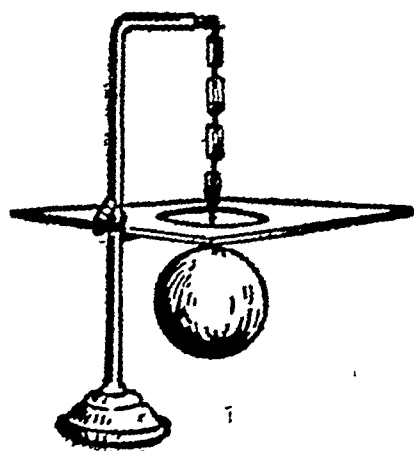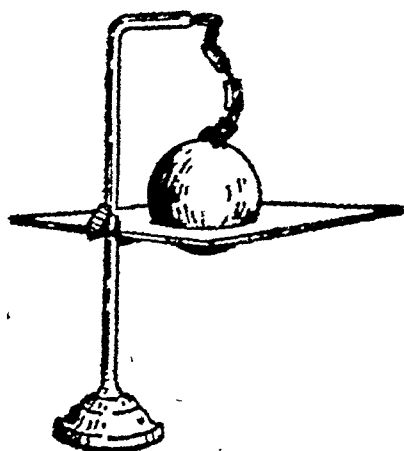
[चित्र ६४—ऊष्मा से ठोस में वृद्धि : (क) ठंडी अवस्था में गोले का छेद से निकल जाना, (ख) गरम होने पर गोले का छेद से नहीं निकलना]

अंदर से निकल जा सके। अब गोले को गरम कीजिए और फिर उसे छेद में डालिए। देखिएगा कि गोला अब छेद से नहीं निकलता है। किंतु

कुछ देर वाद ठंढा होने पर छेद से वाहर निकल जाता है। गरम होने से गोले का आयतन वढ़ जाने के कारण अव गोला छेद मे से पार नही हो सकता है। गोले को ठढा होने के लिए छेद पर छोड़ देने से देखिएगा कि गोला धीरे-धीरे छेद के अंदर जाकर अंत मे उससे पार हो जाएगा। ठंढा होकर धीरे-धीरे सिकुड जाने के कारण ही गोला फिर छेद के पार हो जाता है।

तापमान की वृद्धि या कमी से वस्तुओं के प्रसार तथा संकुचन; दोनो मे काफी वल होता है। निम्नलिखित प्रयोग से इसे देखा जा सकता है :—

प्रयोग—वीच में छेदवाली लोहे की दो मजवूत पटरियो को एक मजवूत लकड़ी के चौखटे पर थोड़ी-थोडी दूर पर रखिए। दोनो सिरो पर छेदवाली लोहे की एक तीसरी पटरी लेकर उसे आग मे खूव गरम कीजिए। गरम हो जाने के वाद इसे चौखटे पर रखी हुई पटरियो पर ऐसे रखिए कि इसके दोनो सिरो के छेद उनके वीच के छेदो पर आ जाएँ। अव पहली दोनों पटरियो को मजवूत पेच से चौखटे मे कस दीजिए। तीसरी पटरी के एक सिरे को भी मजवूत पेंच से एक पटरी मे कस दीजिए। उसके दूसरे सिरे को
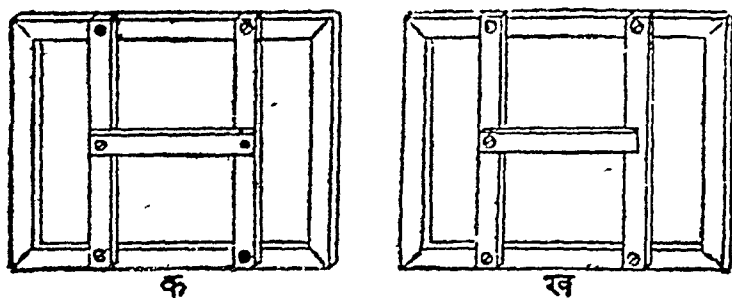
[चित्र ६५—ऊष्मा से प्रसार तथा संकुचन का वल : (क) जड़ी हुई गरम पटरी, (ख) ठढी होकर कील तोड़कर सिकुड़ी हुई पटरी]

एक पतली कील से दूसरी पटरी से जड़ दीजिए। अव ठढा पानी लेकर गरम पटरी पर डाल दीजिए। देखिएगा कि एकाएक पतली कील टूट जाएगी। पटरी के ठंढा होकर सिकुड़ने के वल से ही कील टूटती है। पटरी का एक सिरा मजवूत पेच से कसा हुआ रहने के कारण सिकुड़ नही सकता है। इस-लिए सिकुड़ने का संपूर्ण वल दूसरे सिरे पर लगा और पतली कील को—जो

उसे सिकुड़ने से रोकती थी—तोड़ डाला। कल-पुरजे बनाते समय, रेल की पटरी बैठाते समय या अन्य कामों के समय तापमान के परिवर्त्तन से वस्तुओ के प्रसार और संकुचन का ख्याल रखा जाता है। रेल की दो पटरियो को फिशप्लेट से जोडते समय बीच मे थोड़ी-थोड़ी जगह खाली छोड़ दी जाती है ताकि गरमी से प्रसारित होने पर स्थानाभाव के कारण पटरियाँ टेढी न हो जाएँ। फिशप्लेट के अंदर जिन छेदो से बोल्ट पार होते है वे बोल्ट के व्यास से बडे होते हैं ताकि बोल्ट उनके अंदर आगे-पीछे खिसक सके।
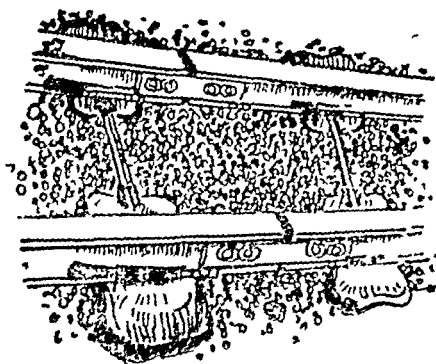
[चित्र ६६—रेल की पटरियो का जोड़]

काँच के ग्लास मे एकाएक गरम पानी डाल देने से वह चटक जाता है। कारण यह है कि एकाएक गरमी पाकर ग्लास के अदर का हिस्सा प्रसारित हो जाता है। लेकिन बाहरी हिस्सा अपेक्षाकृत ठंढा होने के कारण उसे प्रसारित होने से रोकता है और इस कारण ग्लास टूट जाता है। इसी प्रकार लालटेन के गरम शीशे पर ठढे पानी का छींटा पड़ने से उस स्थान का शीशा एकाएक ठंढा होकर संकुचित होता है जबकि बाकी गरम हिस्से का संकुचन नही होता है, इस कारण शीशा चटक जाता है।

प्रतिकारित लोलक

दोलन घड़ी बनाते समय उसके लोलक की लंबाई ऊष्मा के प्रभाव से घट या बढ़ न जाए, इसका प्रबंध किया जाता है। हम देख चुके है कि दोलन घड़ी के लोलक का दोलन-काल दो सेकेंड होता है। साथ ही हम देख चुके है कि लोलक की लंबाई घट-बढ़ जाने से दोलन-काल में भी परिवर्त्तन हो जाता है

अर्थात् लोलक की लंबाई बढ जाने से दोलन-काल भी बढ़ जाएगा और घड़ी सुस्त (slow) हो जाएगी। इसी प्रकार लोलक की लंबाई कम हो जाने से दोलन-काल भी कम हो जाने पर घड़ी तेज (fast) हो जाएगी। इन्ही कारणो से मामूली घड़ी गरमी मे सुस्त और जाड़े मे तेज हो जाती है। इसलिए अच्छी घड़ियो मे लोलक को इस प्रकार बनाया जाता है कि ऊष्मा का उसकी लंबाई पर कोई प्रभाव न हो। इसलिए साधारणतः घड़ी के लोलक मे पाँच निकल मिली हुई लोहे की छड़े और चार पीतल की छड़े रहती हैं। लोहे की छड़ें और पीतल की छड़े इस प्रकार सजी तथा जुड़ी रहती है कि ताप से लोहे की छड़ें केवल नीचे की ओर और पीतल की छड़े ऊपर की ओर बढ सकती है। समान ताप से लोहे की तुलना मे पीतल $\frac{3}{2}$ गुना अधिक बढता है। इसलिए लोलक के लोहे की पाँच छड़ें मिलकर नीचे की ओर जितनी बढती हैं, उसकी चार पीतल की छड़े मिलकर ऊपर की ओर उतनी ही बढकर लोलक की लंबाई को ठीक रखती है। दोलन घड़ी के इस प्रकार के लोलक को प्रतिकारित लोलक (compensated pendulum) कहते है।
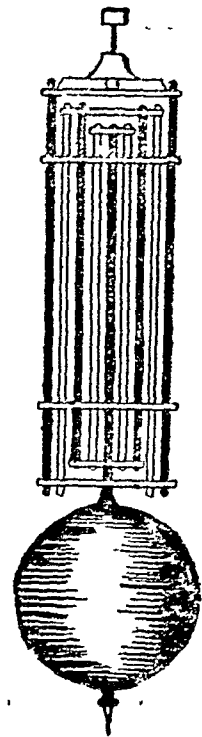
[चित्र ६७—प्रतिकारित लोलक]

ऊष्मा के प्रभाव से द्रव का प्रसार (Expansion of liquid)

ऊष्मा से द्रव पदार्थ का प्रसार ठोस पदार्थ के प्रसार की तुलना मे अत्यधिक होता है। समान तापमान की वृद्धि से समान आयतन के विभिन्न द्रव पदार्थो का प्रसार विभिन्न होता है। अलकोहल (alcohol) का प्रसार पारा के प्रसार से प्रायः १० गुना अधिक होता है। निम्नलिखित प्रयोग से ऊष्मा द्वारा पानी का प्रसार दिखाया जा सकता है :—

प्रयोग—काँच का एक फलास्क लेकर उसे रंगीन पानी से ऊपर तक भर दीजिए। एक काग मे छेद करके उसमे दोनो सिरो पर खुले हुए काँच की

एक पतली नली लगा दीजिए और काग को फ्लास्क के मुँह पर मजबूती से लगा दीजिए। ध्यान रहे कि फ्लास्क मे हवा का एक भी बुलबुला न रह जाए। अब एक बड़े पात्र मे पानी रखकर फ्लास्क को उसमे गले तक डुबो दीजिए और पानी को गरम कीजिए। ऐसा करने पर देखिएगा कि जैसे-जैसे पानी गरम होता जाएगा, काँच की नली मे वैसे-वैसे पानी ऊपर चढता जाएगा। बगल मे एक स्केल रखकर तथा पानी मे एक तापमापी यन्त्र (thermometer) रखकर पानी के इस प्रसार को मापा जा सकता है। पानी के बदले मे किसी भी द्रव पदार्थ को फ्लास्क में रखकर यह प्रयोग किया जा सकता है।

द्रव का अपना कोई आकार न होने के कारण इसका प्रसार इसे किसी पात्र मे रखकर ही देखा जा सकता है। किंतु, ऊष्मा से पात्र के आयतन मे भी वृद्धि होती है। इसलिए द्रव का जो प्रसार इस प्रकार मापा जाता है वह उसका वास्तविक प्रसार न होकर आभासी प्रसार है। इसे द्रव का आपेक्षिक प्रसार कहते है। द्रव का वास्तविक प्रसार जानने के लिए उसके आपेक्षिक प्रसार मे पात्र का प्रसार भी जोड़ देना पड़ेगा।

∴ द्रव का प्रसार = द्रव का आभासी प्रसार + पात्र का प्रसार।

पानी का विचाली प्रसार

ऊष्मा से अन्य पदार्थों जैसे पानी के आयतन मे भी वृद्धि होती है। किंतु पानी का प्रसार विचाली है। ० डिग्री से ४ डिग्री सेंटीग्रेड तापमान तक तापमान की वृद्धि के साथ पानी के आयतन मे वृद्धि होने के बजाए आयतन घटता जाता है यानी प्रसार के बजाए संकुचन होता जाता है। तापमान ४ डिग्री सेंटीग्रेड हो जाने के बाद ही बढते तापमान के साथ पानी का आयतन भी बढ़ने लगता है और घनत्व घटने लगता है। इसके अतिरिक्त जल की एक और विशेपता है; वह यह कि जब पानी $0^{\circ}C$ पर जमकर बर्फ बन जाता है तब उसका आयतन बढ़ जाता है और घनत्व घट जाता है। इसलिए बर्फ पानी पर तैरती रहती है—डूबती नही।

पानी के इन विशेष गुणो के कारण ही शीतप्रधान इलाको मे जलचर प्राणी तथा वनस्पति पानी मे जिंदा रह सकते है। क्योकि, ४ डिग्री तापमान पर पानी का आयतन न्यूनतम हो जाने के कारण उसका घनत्व अधिकतम

हो जाता है और उस तापमान का पानी समुद्र तथा अन्य जलाशयों मे नीचे बैठ जाता है। ठंढक से जब ऊपर का पानी जमकर बरफ हो जाता है, तो उस समय उसका घनत्व ०^{0}C तापमान के पानी से कम होने के कारण बरफ सतह पर ही रह जाती है। ताप का कुचालक होने के कारण बर्फ की यह तह नीचे के पानी को ऊष्मा त्यागने नहीं देती है और जलचर प्राणी तथा वनस्पति नीचे के ०^{0}C से ४^{0}C तापमान तक के पानी मे जीवित रह जाते है। पानी मे अगर यह विशेषताएँ न होती तो शीतप्रधान इलाको में समुद्र, नदी, झील आदि का पानी ऊपर से नीचे तक जमकर बरफ बन जाता और उसमें न तो प्राणी और न वनस्पति ही जिंदा रह सकते।

होप के यंत्र द्वारा पानी के विचाली प्रसार को दिखाया जा सकता है। इस यंत्र में एक लंबा, खोखला कांच का बेलन रहता है जिसका मुँह खुला होता है। बेलन के बीच मे उसे घेरकर एक काँच का पात्र लगा रहता है। काँच के पात्र के नीचे तथा ऊपर बेलन मे दो तापमापी यंत्र लगे रहते है। प्रयोग के लिए बेलन मे पानी भरा जाता है और बीच के पात्र मे बरफ रखकर उसमे नमक मिला दिया जाता है। कुछ ही देर में बेलन के ऊपरी भाग में लगा हुआ तापमापी यंत्र का पारा ०^{0}C पर आ जाता है और सतह पर बरफ के टुकड़े जमने लगते है। लेकिन नीचे लगा हुआ तापमापी यंत्र का पारा ४^{0}C पर आकर रुक जाता है।
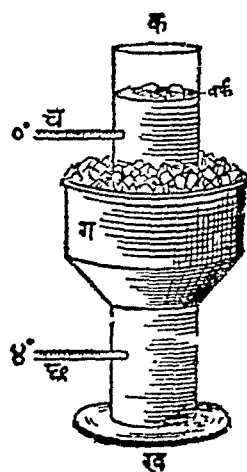
[चित्र ६८—होप का यंत्र : क-ख—बेलन, ग—वेष्टनकारी पात्र, च-छ—तापमापी यंत्र]

ऊष्मा से गैसीय पदार्थ का प्रसार (Expansion of Gases)

ऊष्मा का प्रभाव गैसो पर, ठोस तथा द्रव से कही अधिक होता है और ऊष्मा से गैसो का प्रसार, ठोस तथा द्रव पदार्थो के प्रसार से बहुत ही अधिक होता है। वायु भी अन्य गैसों की तरह ऊष्मा से प्रसारित हो

जाती है। निम्नलिखित प्रयोग द्वारा ऊष्मा से वायु का प्रसार दिखाया जा सकता है :—

प्रयोग—एक छोटा फ्लास्क लेकर उसके मुँह पर छिद्रयुक्त काग लगा दीजिए और छिद्र मे काँच की लंबी नली लगा दीजिए। देखने मे खाली मालूम होने पर भी वास्तव मे फ्लास्क वायु से भरा हुआ रहेगा। फ्लास्क को उलटा कर एक स्टैंड मे इस प्रकार लगा दीजिए कि उसमे लगी हुई नली नीचे रखे हुए पात्र के रंगीन पानी के अंदर डूबी रहे। पहले काँच की नली मे जहाँ तक अपने आप पानी चढा है, उसे नोट कर लीजिए। फिर फ्लास्क को धीरे-धीरे थोडा गरम कीजिए। ऊष्मा पाते ही फ्लास्क के अंदर की वायु प्रसारित होने लगेगी और नली के अदर के रंगीन पानी को नीचे की ओर दबाएगी और फिर पात्र के पानी के अंदर से बुलबुले के रूप मे बाहर निकलने लगेगी। बाद में फ्लास्क को ठंढा करने से वायु फिर से संकुचित हो जाएगी और उस खाली स्थान को भरने के लिए नली के अंदर और फ्लास्क मे कुछ दूर तक पानी ऊपर चढ जाएगा।

इसी कारण से, सूर्य की ऊष्मा के प्रभाव से, वायुमंडल में वायु-प्रवाह की सृष्टि होती है। ऊष्मा से वायु गरम होकर प्रसारित होती है और घनत्व घट जाने के कारण ऊपर चढने लगती है। साथ ही आस-पास की अधिक घनत्व वाली ठढी हवा उस खाली स्थान को भरने के लिए आने लगती है और इस क्रिया से वायु-प्रवाह या पवन की सृष्टि होती है।

कमरे में संवातन (Ventilation)

कमरे के अंदर भी मनुष्य की श्वास-क्रिया तथा अन्य कारणो से वायु दूषित तथा गरम हो जाती है। गरम वायु हलकी होकर ऊपर की ओर चढ़ती है और साथ ही, नीचे से ठंढी हवा आकर उस स्थान को भर देती है। इस प्रकार से कमरे मे संवातन का चालू रहना हमारे स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक है। कमरा संपूर्ण रूप से बंद रहने पर ऐसा नही हो सकता है और उसमे रहनेवाले, दूषित वायु के कारण बीमार पड़ जाते हैं। कमरे मे ठीक से वायु आ-जा सके, इसलिए उसमे ऊपर की ओर संवातन खिड़की (ventilator) लगा देनी चाहिए और नीचे की खिड़कियाँ भी खुली रखनी चाहिए।

ऊष्मा तथा घनत्व

ऊष्मा से पदार्थ प्रसारित होता है। प्रसारित होने से पदार्थों के आयतन मे वृद्धि होती है। हम जानते हैं कि किसी वस्तु का घनत्व उसके द्रव्यमान को आयतन से भाग देने से प्राप्त होता है। इसलिए पदार्थ के आयतन मे वृद्धि हो जाने से उस अनुपात मे घनत्व मे कमी हो जाती है। दूसरे शब्दो मे, कहा जा सकता है कि ऊष्मा के प्रभाव से वस्तु का घनत्व कम हो जाता है। केवल ०°C से लेकर ४°C तक पानी में इस नियम का उल्लघन होता है।

ऊष्मा से पानी का वाष्पन, नमी और मौसम

ऊष्मा के कारण द्रव्य की भौतिक अवस्थाओ मे परिवर्त्तन होता है। ऊष्मा से पानी वाष्प बन जाता है। सूरज की ऊष्मा से पृथ्वी गरम और नदी, तालाब, झील, समुद्र आदि सभी जगहो से पानी जलवाष्प बनकर वायु में जा मिलता है। वायु मे मिले हुए जलवाष्प के परिमाण पर वायु की नमी या आर्द्रता (humidity) निर्भर करती है। दूसरे शब्दो मे, वायु मे जलवाष्प की उपस्थिति को 'वायु की नमी या आर्द्रता' कहते है। वायुमंडल के इकाई-आयतन वायु मे वर्त्तमान जलवाष्प के परिमाण को निरपेक्ष आर्द्रता (absolute humidity) कहते है।

एक निश्चित तापमान पर वायु के इकाई-आयतन को संतृप्त (saturated) करने के लिए आवश्यक जलवाष्प के द्रव्ययान के साथ, उस तापमान पर, वायुमंडल के इकाई आयतन मे वर्त्तमान जलवाष्प के द्रव्यमान के अनुपात को सापेक्ष आर्द्रता (relative humidity) कहते हैं।

$$\text{यानी, सापेक्ष आर्द्रता} = \frac{\text{एक इकाई आयतन वायु को सतृप्त करने के लिए आवयश्यक जलवाष्प का द्रव्यमान}}{\text{एक इकाई आयतन वायु मे वर्त्तमान जलवाष्प के द्रव्यमान (समान तापमान पर)}}$$

सापेक्ष आर्द्रता को प्रतिशत द्वारा प्रगट किया जाता है। हाइग्रोमीटर (hygrometer) नामक यंत्र द्वारा सापेक्ष आर्द्रता मापी जाती है।

वायु के एक सौ भाग मे साधारणत. केवल लगभग १'४० भाग ही जलवाष्प होता है, तथापि जलवाष्प वायु का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जीव-जंतु,

पेड़-पौधे आदि सबो के लिए यह एक आवश्यक पदार्थ है। जलवाष्प से पूर्णतः हीन वायु में प्राणियो तथा वनस्पतियों का बचना कठिन हो जाता है।

मौसम तथा स्थानविशेष की जलवायु के अनुसार वायु मे जलवाष्प की कमी-बेशी होती है। गरमी के दिनों मे वायु में इसकी कमी हो जाती है। इसलिए उन दिनों मे गीले कपड़े सुखाने पर तुरत सूख जाते है। वर्षा के मौसम मे वायु मे जलवाष्प का परिमाण अधिक हो जाता है, क्योकि उन दिनों मौसमी वायु समुद्र की ओर से प्रवाहित होकर जलवाष्प को उड़ा ले आती है। निम्नलिखित प्रयोग से आसानी से सिद्ध किया जा सकता है कि वायु में जलवाष्प है—

प्रयोग—एक छोटी कटोरी में तूतिया (copper sulphate) लेकर आग पर खूब सुखाइए। पूर्ण रूप से सूख जाने पर वह सफेद चूर्ण (anhydrous copper sulphate) का रूप ले लेगी। इस सफेद चूर्ण को तीन भागों में बाँटकर एक भाग को परखनली के अंदर रखकर उसके मुँह को काग से इस प्रकार बद कर दीजिए कि उसमे कतई वायु प्रवेश न कर सके। बाकी दो भागो को दो कटोरियो मे रखिए। एक कटोरी के चूर्ण पर एक बूंद पानी डालिए। देखिएगा कि चूर्ण का रंग बदलकर फिर पहले जैसा नीला हो गया है। दूसरी कटोरी में रखे हुए चूर्ण को खुला ही छोड दीजिए। कुछ समय के बाद देखिएगा कि कटोरी मे रखा हुआ चूर्ण भी फिर से नीला हो गया है, किंतु परखनली मे बंद चूर्ण में कोई परिवर्त्तन नही हुआ है। ऐसा होने का कारण यह है कि वायु के जलवाष्प को सोखकर कटोरी के चूर्ण ने फिर से अपने पूर्व रूप को प्राप्त कर लिया है और परखनली मे वायु प्रवेश न कर सकने के कारण उसमे ऐसा न हो सका है।

ऊष्मा के कारण पानी का वाष्पन मौसम पर काफी असर डालता है। इसीके कारण बादल बनता है, मौसमी वायु प्रवाहित होती है और पानी बरसता है। साथ ही ऊष्मा की कमी-बेशी के कारण वायु मे उपस्थित जलवाष्प ओले, ओस, तुषार, कुहरे, कुहासे आदि का रूप धारण करता है।

बादल, वर्षा और ओला

जलवाष्प से लदी वायु ऊपर चढकर ठंढा होने लगती है और उसका जलवाष्प वायुमंडल मे मिले हुए धूलकणो पर जलकणो के रूप मे संघनित होने

लगता है। इस प्रकार असंख्य अति क्षुद्र जलकणों से बादल बनता है। ये जलकण मिलकर जब अपेक्षाकृत बड़ी-बड़ी बूँदो मे परिणत हो जाते हैं, तब वजन बढ़ जाने के कारण वे वर्षा की बूँदो के रूप मे नीचे गिरते हैं। गिरते समय इन बूँदों को अगर वायु की ऐसी तह से गुजरना पड़े जो बहुत अधिक ठंढी हो, तो बूँदें जमकर बरफ बन जाती है और ओले के रूप में पृथ्वी पर आ गिरती है।

ओस

रात में जब पृथ्वी-तल तथा वायुमंडल शीतल होने लगते है और इतने शीतल हो जाते है कि वायुस्थ-जलवाष्प संघनित होकर घास तथा पेड़-पौधो की पत्तियों पर जलकणो के रूप मे प्रकट होता है। इन जलकणों को ओस कहते है। गरमी के दिनो में ओस नही जमती, क्योकि उन दिनों रात मे वायु इतनी शीतल नही हो पाती कि जलवाष्प जलकण बन सके।

कुहरा (Fog) तथा कुहासा (Mist)

पृथ्वी-तल तथा उससे कुछ ऊपर तक, जब जलवाष्प धूलकणों पर संघनित हो जाता है अर्थात् पृथ्वी-तल पर ही एक प्रकार के बादल की सृष्टि हो जाती है, तब उसे कुहरा कहते है। पतले कुहरे को कुहासा कहा जाता है।

हिम (Snow)

शीतप्रधान देशो में जब वायुमंडल का टेम्परेचर ०°C से नीचे चला जाता है तब वायुमडल का जलवाष्प वर्फ के सूक्ष्म कणो मे संघनित हो जाता है, जिसे हिम कहते है। हिम देखने में धुनी हुई रुई जैसा लगता है। वह वायु में उड़ता रहता है और धीरे-धीरे पृथ्वी पर आ गिरता है।

क्वथन

ऊष्मा के प्रभाव से पानी तथा अन्य सभी द्रव किसी-न-किसी तापमान पर उबलने लगते हैं। ऊष्मा के प्रभाव से द्रव के उबलने को **क्वथन** कहते हैं।

सभी द्रव एक ही तापमान पर नही उबलते। जिस तापमान पर जो द्रव उबलने लगते हैं और भाप बनकर उड़ने लगते है, उसे उस द्रव का **क्वथनांक** (boiling point) कहते हैं। पानी का क्वथनांक १००°C या २१२°F है।

किसी भी द्रव का क्वथनांक दवाव की कमी-बेशी से घटता-बढता रहता है। वायुमडल के साधारण दाव पर अर्थात् जब वायु-दावमापी मे पारा ७६ सें० मी० या ३० इंच ऊँचा हो, पानी १००°C या २१२°F तापमान पर उबलता है। लेकिन दाव बढ़ने पर इसका क्वथनांक बढ जाता है और घटने से घट जाता है। निम्नलिखित प्रयोग से इसे देखा जा सकता है—

प्रयोग—काँच के एक फ्लास्क में थोडा पानी डालकर उसे उबालिए। थोड़ी देर तक उबलते रहने पर वह भाप से भर जाएगा और उसमे से कुल हवा बाहर निकल जाएगी। अब फ्लास्क के मुँह को कसकर डाट मे बंद कर दीजिए और उसे आग पर से हटा लीजिए। आग पर मे हटा लेने के बाद जब पानी का उबलना बंद हो जाए, तब फ्लास्क को उलटा करके एक स्टैंड मे कस दीजिए और उसपर थोड़ा पानी डालिए। देखिएगा कि फ्लास्क के अंदर का पानी फिर से उबलने लगा है। उबलना बंद होने के बाद फिर थोड़ा पानी डालने से फ्लास्क के अंदर का पानी फिर उबलने लगेगा।

ऐसा इसलिए होता है कि ऊपर से पानी डालने मे फ्लास्क थोडा ठंढा हो जाता है और उसके अंदर की भाप भी थोड़ी ठंढी होकर अंशतः संघनित हो जाती है। जिसके कारण फ्लास्क के अंदर पानी के ऊपर का दाव कम हो जाता और पानी फिर से उबलने लगता है। इससे प्रमाणित हो जाता है कि कम दाव पर पानी कम तापमान पर उबलता है।

दाव के अलावा पानी में अशुद्धियाँ मिली हुई होने से उसके क्वथनांक मे हेर-फेर होता है। पानी मे नमक मिला देने से उसका क्वथनांक बढ जाता है। अंडे आदि उबालते समय पानी मे नमक मिला देने से वे जल्दी उबलकर तैयार हो जाते है।

दाव कुकर (Pressure cooker)

ऊष्मा के प्रभाव से पानी का तापमान क्वथनांक तक बढ़ जाने के बाद, ऊष्मा प्राप्त करते रहने पर भी उसके तापमान मे वृद्धि नही होती। लेकिन दाव बढ़ने पर पानी का क्वथनांक बढ जाता है और पानी के तापमान मे भी वृद्धि हो जाती है। अधिक तापमान पर खाना जल्दी पकता है। इसी सिद्धात पर दाव कुकर काम करता है।

दाव कुकर खाना बनाने की एक ऐसी डेगची होती है, जिसके अंदर काफी दाव पैदा करके जल्दी-जल्दी खाना सिझाया जा सकता है। साधारणतः दाव कुकर विशेष प्रकार के मजबूत ऐल्यूमिनियम से बनता है। इसके ढक्कन में एक रबर का गास्केट (gasket) लगा होता है, जिसकी सहायता से ढक्कन इतनी मजबूती से लग जाता है कि अंदर से भाप बाहर नही निकल पाती है। ढक्कन पर एक भाप निकलने की नली और एक सुरक्षा वाल्व (safety valve) लगे हुए होते हैं।

दाव कुकर में खाना पकाने के लिए पहले उसमें उचित मात्रा में पानी और पकाने के लिए चीजें डाल दी जाती है और ढक्कन को बंद कर दिया जाता है। कुछ देर मे ढक्कन के ऊपर लगी हुई भाप-नली से तेजी से भाप निकलने लगती है। इस प्रकार से डेगची वायुशून्य हो जाने पर भाप-नली पर दाब रखकर भाप निकलने के रास्ते को बंद कर दिया जाता है। इस प्रकार डेगची के अंदर भाप का दाव बढ़ जाता है और साथ ही पानी का क्वथनांक भी। साधारणतः दाव कुकर मे ७ मिनट के अंदर भात, दाल, आलू आदि तथा १०-१२ मिनट के अंदर मांस सीझ जाता है। कुछ कुकरो में दाव पहले से लगा रहता है।

खाना पक जाने के बाद दाव कुकर के ठंढा होने पर तथा उसके अंदर का दाव घट जाने के बाद ही उसे खोलना चाहिए। ठंढा करने के लिए उस पर पानी डाला जा सकता है।

दाव कुकर मे सुरक्षा-वाल्व इसलिए लगा रहता है कि कही दाव अत्यधिक बढ़कर दुर्घटना न हो जाए।

हिमकारी मिश्रण (Freezing mixture)

ऊष्मा कम होने से वस्तु का तापमान भी कम हो जाता है। द्रव पदार्थों का तापमान घटने से वे जमकर ठोस बन जाते है। हम देख चुके हैं कि पानी $0^\circ c$ या ३२^0F तापमान पर जमकर बरफ बन जाता है। लेकिन सभी द्रव पदार्थ एक ही तापमान पर जमकर ठोस नही बनते। बहुत-से द्रव $0^\circ c$ या ३२^0F से भी कम तापमान पर जमकर ठोस बनते है। दूध जमाकर

कुलफी; आइसक्रीम आदि बनाने के लिए 0^0c से कम तापमान की आवश्यकता होती है। साधारणतः लगभग – ८^{0}c या १७^{0}F तापमान पर दूध जमता है।

0°c या ३२°F से कम तापमान पाने के लिए हिमकारी मिश्रण बनाया जाता है; अर्थात् जिस मिश्रण के बनाने से मिश्रित पदार्थ का तापमान जल के हिमांक से कम हो जाता है, उसे हिमकारी मिश्रण कहते है।

तीन भाग बरफ मे एक भाग नमक मिलाकर साधारण हिमकारी मिश्रण बनाया जाता है। इससे मिश्रित पदार्थ का तापमान – २२°c या – ७·६°F तक उतर जाता है। तीन भाग बरफ मे एक भाग से अधिक मात्रा मे नमक मिलाने से तापमान उसी अनुपात से जल्दी-जल्दी घट जाता है। लेकिन तापमान लगभग – २२^{0}c या – ७.६^{0}F से नीचे नही जाता है।

अच्छी कुलफी या आइसक्रीम बनाने के लिए ६ भाग बरफ मे एक भाग नमक मिलाना चाहिए। ताकि तापमान धीरे-धीरे घटे और साथ ही आइसक्रीम भी धीरे-धीरे जमे। क्योंकि जल्दी-जल्दी तापमान घटने से दूध भी जल्दी-जल्दी जमेगा और उसके अंदर बरफ के कड़े दाने जम जाएँगे। ऐसे कडे दानो का बनना रोकने के लिए दूध को विलोडित रखा जाता है।

तापस्थापी (Thermostat)

बहुत ऐसे काम है जिनमे तापमान एक निश्चित बिंदु पर स्थिर रखने की आवश्यकता पड़ती है। घरो मे रेफ्रीजरेटर, वैद्युतिक इस्तिरी आदि मे तापमान को नियन्त्रित करने की आवश्यकता पडती है। तापमान को एक निश्चित बिंदु पर स्थिर रखने के साधन को तापस्थापी कहते है।

साधारणत· इसमे एक द्विधातुक पत्तर होता है जो तापमान मे परिवर्त्तन के साथ-साथ मुडता या सीधा होता रहता है और इस क्रिया मे बिजली के सर्किट को चालू या बंद कर देता है। इसके चलते तापमान न बढ़ पाता है और न घट पाता है।

कितने तापमान पर तापस्थापी काम करेगा उसे तापमान निर्देशक को घुमाकर निश्चित कर दिया जाता है। तापमान-निर्देशक, द्विधातुक पत्तर पर दाब को घटा-बढाकर, उसके काम को नियन्त्रित करता है।

कैलोरीमिति

हम देख चुके हैं कि ऊष्मा और तापमान एक नहीं हैं। तापमान मापने के मात्रक को डिग्री कहते है और तापमापी-यंत्र या थर्मामीटर की सहायता से उसे मापा जाता है। ऊष्मा का परिमाण मापने के मात्रक को **कैलोरी** (calorie) और मापने की विधि को **कैलोरीमिति** (Calorimetry) कहते है।

एक ग्राम पानी को एक डिग्री से० ग्रे० गरम करने के लिए जितनी ऊष्मा की आवश्यकता होती है, उसे 'एक कैलोरी ऊष्मा' कहा जाता है। इस प्रकार दो ग्राम पानी को एक डिग्री सें० ग्रे० गरम करने के लिए २ × १ = २ कैलोरी ऊष्मा की आवश्यकता होगी। १० ग्राम पानी को अगर २०^{0} से० ग्रे० गरम करना पड़े तो १० × २० = २०० कैलोरी ऊष्मा लगेगी।

ऊष्मा का बड़ा परिमाण मापने के लिए वृहत् कैलोरी (major calorie) या किलो कैलोरी को मात्रक माना जाता है। एक किलो पानी को एक डिग्री से० ग्रे० गरम करने के लिए आवश्यक ऊष्मा के परिमाण को वृहत् कैलोरी या किलो-कैलोरी कहते हैं; अर्थात् एक वृहत् कैलोरी १००० कैलोरी के बराबर होती है।

कैलोरी के अलावा एक और मात्रक भी ऊष्मा का परिमाण मापने के लिए इस्तेमाल होता है। इसे ब्रिटिश थर्मल यूनिट (B. T. U.) कहते है। एक पौंड पानी के तापमान को एक डिग्री फा० बढ़ाने के लिए आवश्यक ऊष्मा एक ब्रिटिश थर्मल यूनिट है। एक B. T. U. = २५२ कैलोरी है।

यथार्थ मे एक ग्राम पानी के तापमान को १४·५°c से १५·५°c तक बढाने के लिए आवश्यक ऊष्मा के परिमाण को एक कैलोरी ऊष्मा कहते हैं। क्योकि भिन्न तापमानो पर एक ग्राम पानी के तापमान को, एक डिग्री सें० बढ़ाने के लिए आवश्यक ऊष्मा के परिमाण मे सूक्ष्म अंतर होता रहता

है। लेकिन यह अंतर बहुत ही कम है और इसलिए आमतौर से $0°c$ से १००°c तक किसी भी तापमान पर एक ग्राम पानी के तापमान को एक डिग्री बढ़ाने के लिए आवश्यक ऊष्मा को 'एक कैलोरी ऊष्मा' कहा जाता है।

इसी प्रकार ब्रिटिश थर्मल यूनिट एक पौंड पानी के तापमान को ६३°F से ६४°F तक बढ़ाने के लिए आवश्यक ऊष्मा का परिमाण है। इसमें भी व्यवहार मे ३२° फा० से २१०° फा० तक तापमान के अंदर किसी भी तापमान पर एक पौंड पानी का तापमान एक डिग्री फा० बढ़ाने के लिए आवश्यक ऊष्मा को एक बी० टी० यू० मान लिया जाता है।

कैलोरी और बी० टी० यू० में संबंध

एक पौंड ४५४ ग्राम के समान होता है और एक डिग्री फा० ५/९ डिग्री सें० ग्रे० के।

∴ १ बी० टी० यू० = ८५४ × ५/९ कैलोरी
= २५२ कैलोरी (लगभग)

विशिष्ट ऊष्मा (Specific heat)

समान द्रव्यमान की विभिन्न वस्तुओं को समान मात्रा में उष्मा देने से उन सबका तापमान एक समान नहीं होता है; अर्थात् अगर एक-एक ग्राम पानी, लोहा, सोना तथा चाँदी को एक-एक कैलोरी ऊष्मा दी जाए तो सबके तापमान की वृद्धि समान नहीं होगी। जितनी ऊष्मा मे एक ग्राम पारा ३०° सें० ग्रे० गरम होगा, उतनी ही ऊष्मा से एक ग्राम चाँदी २० सें० तथा एक ग्राम ताँबा १०° सें० गरम होगा। इस प्रकार समान द्रव्यमान की विभिन्न वस्तुओं के तापमान की समान वृद्धि के लिए ऊष्मा के विभिन्न परिमाणों की आवश्यकता होगी।

एक ग्राम वस्तु के तापमान को एक डिग्री सें० बढ़ाने के लिए आवश्यक उष्मा के परिमाण को उस वस्तु की विशिष्ट ऊष्मा कहा जाता है। इसी प्रकार एक पौंड वस्तु के तापमान को एक डिग्री फा० बढ़ाने के लिए आवश्यक ऊष्मा को ब्रिटिश थर्मल यूनिट के अनुसार उस वस्तु की विशिष्ट ऊष्मा कहा जाता है। वस्तु की विशिष्ट ऊष्मा एक संख्या द्वारा

प्रकट की जाती है। कुछ नित्य प्रयोजनीय वस्तुओं की विशिष्ट ऊष्माएँ इस प्रकार है :—

द्रव्य	विशिष्ट ऊष्मा (कैलोरी प्रति ग्राम प्रति डिग्री c)
पानी	१.०
ऐल्यूमीनियम	०.२१५
ताँवा	०.०९५
लोहा	०.१२
चाँदी	०.०५६
टंगस्टन	०.०३२
शीशा	०.०३
काँच	०.१९
पारा	०.०३

इसके अनुसार ताँवे की विशिष्ट ऊष्मा ०.०९५ कैलोरी प्र० ग्रा० प्र० ^{0}c है। इसलिए एक ग्राम ताँवे के तापमान को एक डिग्री c बढ़ाने के लिए ०.०९५ कैलोरी ऊष्मा की आवश्यकता होगी।

मौसम पर जल की उच्च विशिष्ट ऊष्मा का प्रभाव

जल की विशिष्ट ऊष्मा मिट्टी, पत्थर, बालू, कंकड़ इत्यादि की विशिष्ट ऊष्मा का पाँच गुना है। जितनी ऊष्मा प्राप्त करके एक किलो पानी का तापमान केवल १^{0}c बढ़ेगा उतनी ही ऊष्मा से एक किलो मिट्टी का तापमान ५^{0}c बढ जायगा। और जितनी ऊष्मा त्यागने से एक किलो जल का तापमान १^{0}c कम हो जायगा उतनी ही ऊष्मा त्यागने से मिट्टी का तापमान ५^{0}c घट जायगा। यही कारण है कि भू-पृष्ठ का स्थल भाग दिन में सूर्य की ऊष्मा से बहुत तप जाता है और जलीय भाग बहुत कम तपता है। रात में स्थल भाग जितना ठंढा हो जाता है, जलीय भाग उतना नही। यही कारण है कि बड़े जलाशयों, झीलों और समुद्रों के निकट दिन और रात के तापमान का अंतर न्यून होता है और वहाँ का मौसम समशीतोष्ण (temperate) होता है तथा समुद्र और जलाशयो से दूर शुष्क प्रांतों का मौसम चरम (extreme) होता है, यानी दिन मे बहुत गर्मी पड़ती है और रात में बहुत ठंढक।

जल की उच्च विशिष्ट ऊष्मा के कारण ही समुद्र, झील और बड़ी-बड़ी नदियों के तट पर थल-समीर (land breeze) और समुद्र-समीर (sea breeze) बहते रहते हैं। दिन मे जलीय भाग की तुलना मे थल-भाग अत्यधिक तप्त हो जाता है। थल के ऊपर की वायु तप्त होकर ऊपर उठती है और इससे उत्पन्न रिक्त स्थान को भरने के लिए जलीय भाग के ऊपर की वायु थल-भाग की ओर प्रवाहित होती रहती है। वायु के इस प्रवाह को समुद्र-समीर (sea breeze) कहते है। रात मे थल की तुलना मे जलीय भाग तप्त रहता है। जल के ऊपर की वायु तप्त होकर ऊपर उठती रहती है और इस क्रिया से उत्पन्न रिक्त स्थान को भरने के लिए थल की ओर से जल की ओर वायु का प्रवाह होता रहता है। वायु के इस प्रवाह को थल-समीर (land breeze) कहते है।

तापमान में परिवर्त्तन के लिए आवश्यक ऊष्मा

किसी वस्तु के एक निर्दिष्ट द्रव्यमान के तापमान मे परिवर्त्तन लाने के लिए आवश्यक ऊष्मा का परिमाण, उस वस्तु के द्रव्यमान, उसकी विशिष्ट ऊष्मा तथा उसके तापमान मे परिवर्त्तन की मात्रा (डिग्री में) पर निर्भर करता है। अगर वस्तु का द्रव्यमान M हो, उसकी विशिष्ट ऊष्मा S हो, उसके तापमान में परिवर्त्तन T डिग्री हो और परिवर्त्तन के लिए आवश्यक ऊष्मा को H माना जाय तो

$H = MST$ होगा।

उदाहरण के लिए १०० ग्राम लोहे के तापमान को ५०°c से ६०°c करने के लिए आवश्यक ऊष्मा का परिमाण—

H = १०० × ०·१२ (लोहे की वि० ऊ०) × (६० − ५०)

= १२ × १०

= १२० कैलोरी

अवस्था-परिवर्त्तन और ऊष्मा

ऊष्मा के अवशोषण या उत्सर्जन से वस्तु के तापमान मे परिवर्त्तन होता है। लेकिन कुछ विशेष अवस्थाओ में ऐसा नही होता। वरफ में 0°c तापमान पर ऊष्मा के अवशोषण से वरफ के तापमान मे वृद्धि नही होती है।

उसका तापमान तो स्थिर रहता है; किंतु ऊष्मा के अवशोषण से बरफ गलने लगती है और जब तक समस्त बरफ गलकर पानी न बन जाती है तब तक ऊष्मा अवशोपित करते रहने पर भी उसका तापमान O^0c पर ही स्थिर रहता है। समस्त बरफ गल जाने के बाद ही ऊष्मा के अवशोपण से पानी का तापमान बढने लगता है और १००^{0}c (या २१२^{0}F) तापमान पर पहुँचने तक बढता रहता है। किंतु तापमान १००^{0}c अर्थात् क्वथनांक पर पहुँच जाने के बाद उसके तापमान का बढना रुक जाता है और अवशोपित ऊष्मा से पानी भाप बनने लगता है। जब तक समस्त पानी भाप नही बन जाता है तब तक ऊष्मा के अवशोषण के बावजूद उसका तापमान स्थिर रहता है। समस्त पानी भाप बन जाने के बाद ही अवशोषित ऊष्मा से भाप का तापमान बढने लगता है।

ऊष्मा त्यागते समय भी ऐसा ही होता है। ऊष्मा का त्याग करते हुए पानी का तापमान घटते-घटते O^0c या ३२^{0}F पर आकर तब तक स्थिर रहता है जब तक समस्त पानी बरफ न बन जाए। समस्त पानी बरफ बन जाने के बाद ही ऊष्मा के त्यागने से बरफ का तापमान घटने लगता है। अवस्था-परिवर्त्तन के समय ऊष्मा से तापमान मे परिवर्त्तन नही होने का कारण यह है कि वह ऊष्मा द्रव्य के अवस्था-परिवर्त्तन मे खर्च हो जाती है।

ठोस से द्रव मे या द्रव से ठोस में अवस्था-परिवर्त्तन के लिए लगी हुई ऊष्मा को **गलन की गुप्त ऊष्मा** (Latent heat of fusion) तथा द्रव से गैस या गैस से द्रव मे अवस्था-परिवर्त्तन के लिए लगी ऊष्मा को **वाष्पन की गुप्त ऊष्मा** (Latent heat of vaporization) कहते है। दूसरे शब्दो मे, एक स्थिर तापमान पर किसी वस्तु के एक इकाई द्रव्यमान को, ठोस से द्रव अवस्था मे लाने के लिए आवश्यक ऊष्मा के परिमाण को गलन की गुप्त ऊष्मा तथा एक स्थिर तापमान पर, किसी वस्तु के एक इकाई द्रव्यमान को, द्रव से गैस मे परिवर्त्तित करने के लिए आवश्यक ऊष्मा के परिमाण को वाष्पन की गुप्त ऊष्मा कहा जाता है। पानी के वाष्पन की गुप्त ऊष्मा ५३९ कैलोरी प्रति ग्राम या ९७० बी० टी० यू० प्रति पौंड है। पानी के गलन की गुप्त ऊष्मा ८० कैलोरी प्रति ग्राम या १४४ बी० टी० यू० प्रति पौंड है। अवस्था-परिवर्त्तन

के लिए आवश्यक कुल ऊष्मा का परिमाण वस्तु के द्रव्यमान और उसकी गुप्त ऊष्मा पर निर्भर करता है। इस प्रकार १०० ग्राम पानी का १००^{0}c पर बाष्पन के लिए कुल १०० × ५३९ = ५३९०० कैलोरी ऊष्मा की आवश्यकता होती है।

मनुष्य-शरीर और ऊष्मा

प्रत्येक जीव, चाहे वह अति क्षुद्र तथा निम्न कोटि का हो अथवा वह बहुत बड़ा तथा उच्च श्रेणी का हो, जब तक जीवित है, प्रतिक्षण कुछ-न-कुछ कार्य करता ही रहता है। निद्रित अवस्था में जब उसके बाहरी अंग-प्रत्यंग अक्रिय पड़े रहते है, उस समय भी उसके शरीर के कुछ अंतरांग, जैसे फेफड़े, हृदय आदि क्रियाशील रहते हैं। अन्य सब जीवो की तरह मनुष्य के लिए भी यह बात सही है। किसी भी प्रकार के जीवन-कार्य के लिए शरीर को ऊर्जा की आवश्यकता होती है। शरीर में यह ऊर्जा ऊष्मा के रूप में होती है।

एक पूर्ण वयस्क आदमी अगर कोई काम न करके केवल लेटा रहे तो भी उसके जिंदा रहने के लिए—अपनी जीवन-क्रियाओ को चलाते रहने के लिए—प्रतिदिन १७०० कैलोरी ऊष्मा की आवश्यकता होगी। साधारण काम करनेवाले प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को प्रतिदिन ३४०० कैलोरी ऊष्मा, कठिन श्रम करनेवाले को ४००० कैलोरी ऊष्मा, १४ से १८ साल तक के बालक को ३००० कैलोरी ऊष्मा, इस उम्र की बालिका को २८०० कैलोरी ऊष्मा, ७ से १५ साल तक आयु के बालक-बालिकाओ को २५०० कैलोरी ऊष्मा और एक साल के बच्चे को ५०० कैलोरी उष्मा की आवश्यकता पड़ती है।

मनुष्य को यह ऊष्मा भोजन से मिलती है। उचित मात्रा में संतुलित भोजन, मनुष्य के शरीर को आवश्यक ऊष्मा पहुँचाता है, जिससे मनुष्य को अपनी जीवन-क्रियाओ के साथ-साथ अन्य कार्यो को करने के लिए ऊर्जा मिलती है। उचित मात्रा मे भोजन न मिलने से शरीर को आवश्यक ऊष्मा भी नही मिल पाती है। ऐसी अवस्था मे शरीर के होनेवाले क्षय की क्षति-पूर्ति नही हो पाती है और मनुष्य न तो मेहनत ही कर सकता है और न अधिक दिन तक जिंदा ही रह सकता है।

ऊष्मा और कार्य

सन् १८४३ मे जूल (Joule) नाम के वैज्ञानिक ने सर्वप्रथम प्रयोग द्वारा यह प्रमाणित किया कि जब भी यांत्रिक ऊर्जा का रूपांतरण ऊष्मा मे होता है तो इस रूपांतरण से उत्पन्न ऊष्मा रूपांतरित यान्त्रिक ऊर्जा का अनुक्रमानुपाती होता है। यानी यान्त्रिक ऊर्जा या यांत्रिक कार्य का एक निश्चित परिमाण W; ऊष्मा के निश्चित परिमाण H कैलोरी के तुल्य होता है। ऊष्मा का यान्त्रिक तुल्याक (Mechanical equivalent of heat), एक स्थिराक है और उसे साधारणतः J अक्षर द्वारा प्रकट किया जाता है। इस प्रकार :

$W = JH$ होता है।

ऊष्मा का एक मात्रक उत्पन्न करने के लिए जितने कार्य की आवश्यकता होती है, उसे 'ऊष्मा का यान्त्रिक तुल्याक' कहा जाता है।

इस हिसाब से हम पाते है कि ७७८ पौंड वजन को एक फुट ऊँचा उठाने के लिए आवश्यक यांत्रिक कार्य एक बी० टी० यू० ऊष्मा के तथा ४२·७०० ग्राम वजन को एक से० मी० ऊँचा उठाने के लिए आवश्यक यान्त्रिक कार्य एक कैलोरी ऊष्मा के समान है। अतः J = ७७८ फुट पौंड प्रति बी० टी० यू० या ४२·७०० ग्राम से० मी० प्रति कैलोरी।

जूल के पहले ही वैज्ञानिको ने यह प्रमाणित किया था कि यान्त्रिक उर्जा या यांत्रिक कार्य का रूपांतरण ऊष्मा मे हो सकता है। अतः ऊष्मा भी ऊर्जा का एक रूप है। दो वस्तुओं के घर्षण से ऊष्मा उत्पन्न होती है। पत्थर की चक्की पर लोहे के औजार को पिजाते समय दोनो के घर्षण मे इतनी ऊष्मा उत्पन्न होती है कि औजार के कण लहलहाती चिनगारियाँ बनकर छिटकने लगती है।

ऊष्मा-धारिता (Thermal Capacity)

वस्तु की ऊष्मा-धारिता उसके द्रव्यमान और उसकी विशिष्ट ऊष्मा पर निर्भर करती है। किसी वस्तु के एक निर्दिष्ट द्रव्यमान की ऊष्मा-धारिता, ऊष्मा का वह परिमाण है, जो उस वस्तु को $1^{\circ}C$ से बढ़ा देता है।

∴ ऊष्मा-धारिता = वस्तु का द्रव्यमान × वि० ऊष्मा

कैलोरीमीटर

ऊष्मा मापने के लिए कैलोरीमीटर एक सरल यंत्र है। साधारण कैलोरीमीटर मे, साधारणतः ताँबा-निर्मित एक बाहरी तथा एक भीतरी पात्र होते है। भीतरी पात्र मे निश्चित परिमाण मे पानी डाल दिया जाता है तथा उसका तापमान देख लिया जाता है। अब इस पानी द्वारा ऊष्मा-ग्रहण
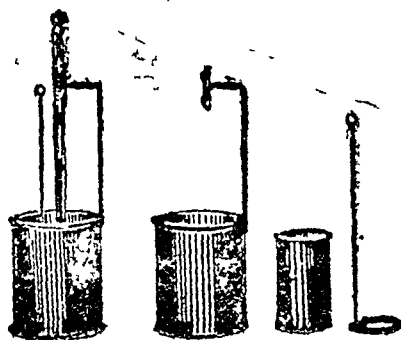
[चित्र ६९—कैलोरीमीटर]

या ऊष्मा-त्याग को, पानी के तापमान मे परिवर्त्तन को देखकर, निश्चित किया जा सकता है। कैलोरीमीटर के साथ एक विलोडक (stirrer) रहता है। इसे हिला-डुलाकर सारे पात्र मे ऊष्मा का वितरण किया जाता है।

कैलोरीमीटर द्वारा उष्मा मापने का सिद्धांत यह है कि यदि कैलोरी-मीटर से कुछ भी ऊष्मा बाहर न निकले और न बाहर की कुछ भी ऊष्मा कैलोरीमीटर मे प्रवेश करे तो जब कैलोरीमीटर के अदर गरम और ठढी वस्तुओं को मिलाया जाता है और जब मिश्रण का तापमान एक समान हो जाता है तब गरम वस्तु द्वारा त्यक्त उष्मा = ठढी वस्तु द्वारा प्राप्त ऊष्मा।

कैलोरीमीटर द्वारा विशिष्ट ऊष्मा की माप

अगर किसी ठोस पदार्थ की विशिष्ट ऊष्मा मापनी है, तो उसके एक टुकडे को लेकर तौल लिया जाता है। फिर उसे उबलते हुए पानी की भाप में डालकर उच्चतम तापमान तक पहुँचाया जाता है। कैलोरीमीटर को भी विलोडक-समेत तौल लिया जाता है तथा उसको लगभग आधे भाग तक पानी से भर दिया जाता है और फिर तौल लिया जाता है। इस प्रकार

कैलोरीमीटर मे डाले गये पानी का द्रव्यमान मालूम हो जाता है। साथ ही थर्मामीटर द्वारा उस पानी का तापमान पढ़ लिया जाता है।

इसके वाद गरम वस्तु को कैलोरीमीटर मे डाल दिया जाता है और विलोडक से पानी को चलाया जाता है। इसके वाद फिर पानी का महत्तम तापमान पढ़ लिया जाता है। फिर निम्नलिखित विधि से परिकलन करके वस्तु की विशिष्ट उष्मा निर्धारित की जाती है :—

मान लिया जाए कि :—

कैलोरीमीटर और विलोडक का द्रव्यमान = W ग्राम

कैलोरीमीटर, विलोडक और पानी का द्रव्यमान = W_1 ग्राम

∴ केवल पानी का द्रव्यमान = $W_1 - W$ ग्राम

वस्तु के टुकड़े का द्रव्यमान = W_2 ग्राम

ठंढे पानी का तापमान = $T\,^0C$

डाली गई वस्तु का तापमान = $T_1\,^0C$

गरम वस्तु डालने के वाद पानी का उच्चतम तापमान = $T_2\,^0C$

कैलोरीमीटर की धातु की विशिष्ट ऊष्मा = S_1

वस्तु की वि० ऊष्मा, जो निकालना है = S

हम जानते है कि गरम वस्तु द्वारा त्यक्त ऊष्मा, ठंढी वस्तु द्वारा ग्रहण की गई ऊष्मा के समान होती है। इसलिए—

वस्तु के टुकड़े द्वारा त्याग की गई ऊष्मा $= W_2 \times S \times (T_1 - T_2)$ कैलोरी। विलोडक समेत कैलोरीमीटर और पानी द्वारा प्राप्त ऊष्मा $=$

$$W \times S_1 \times (T_2 - T) + (W_1 - W) \times (T_2 - T)$$

$$\therefore W_2 \times S(T_1 - T_2) = W \times S_1 \times (T_2 - T) + (W_1 - W) \times (T_2 - T)$$

$$\therefore S = \frac{WS_1(T_2 - T) + (W_1 - W)(T_2 - T)}{W_2(T_1 - T_2)}$$

इस समीकरण में हमें W; S_1, T_2; T_1; W_1, W_2 सभी मालूम है। अतः हम आसानी से वस्तु की विशिष्ट ऊष्मा S का परिकलन कर सकते हैं।

द्रव की विशिष्ट ऊष्मा भी इसी विधि से निकाली जा सकती है। द्रव की विशिष्ट ऊष्मा निकालने के लिए एक ऐसे ठोस पदार्थ का टुकड़ा इस्तेमाल किया जाता है, जो उस द्रव में नहीं घुलता हो तथा जिसकी विशिष्ट ऊष्मा मालूम हो। ऐसे ठोस पदार्थ के टुकड़े को तौल कर पानी की भाप में उच्चतम तापमान तक गरम किया जाता है। कैलोरीमीटर को भी पहले तौल लिया जाता है और फिर उसमें द्रव को डालकर तौला जाता है तथा उसका तापमान देख लिया जाता है। इसके बाद गरम ठोस पदार्थ को द्रव मे डाल दिया जाता है और उसे विलोडक से चलाया जाता है। इसके बाद फिर द्रव का उच्चतम तापमान पढ़ लिया जाता है।

मान लिया जाए कि :—

कैलोरीमीटर और विलोडक का द्रव्यमान	=	W	ग्राम
कैलोरीमीटर, विलोडक तथा द्रव का द्रव्यमान	=	W_1	,,
∴ केवल द्रव का द्रव्यमान	=	$W_1 - W$	;;
ठोस वस्तु के टुकड़े का द्रव्यमान	=	W_2	;;
ठंढे द्रव का तापमान	=	T^0C	
गरम करने के बाद ठोस का तापमान	=	$T_1{}^0C$	
गरम वस्तु मिलाने के बाद द्रव का तापमान	=	$T_2{}^0C$	
कैलोरीमीटर की विशिष्ट ऊष्मा	=	S_1	
ठोस वस्तु की विशिष्ट ऊष्मा	=	S_2	
द्रव की वि० ऊष्मा, जो निकालनी है	=	S	
त्यक्त ऊष्मा	=	प्राप्त ऊष्मा	

-इसलिए-

ठोस पदार्थ के टुकड़े द्वारा त्यक्त ऊष्मा $= W_2 S_2 \times (T_1 - T_2)$ कैलोरी

विलोडक-समेत कैलोरीमीटर और पानी द्वारा प्राप्त ऊष्मा $=$
$W \times S_1 \times (T_2 - T) + (W_1 - W) \times S\,(T_2 - T)$

$$\therefore\ W_2 \times S_2 \times (T_1 - T_2) = W \times S_1 \times (T_2 - T) + (W_1 - W) \times S \times (T_2 - T)$$

$$\therefore\ S = \frac{W_2 S_2\,(T_1 - T_2) - W S_1\,(T_2 - T)}{(W_1 - W)\,(T_2 - T)}$$

इस समीकरण में हमे W_2, S_2, T_1, T_2, W, S_1, T सभी मालूम है। अतः हम आसानी से द्रव की विशिष्ट ऊष्मा S मालूम कर सकते हैं।

अध्याय ९

ऊष्मा-संचरण

(Transmission of heat)

हम देख चुके हैं कि दो वस्तुओं के तापमान में अंतर होने से एक से दूसरे मे ऊष्मा संचारित होती है। इसे ऊष्मा-संचरण कहते हैं। ऊष्मा-संचरण तीन प्रकार से होते है—

१. संवहन या चालन (conduction), २ संनयन (convcction) तथा ३. विकिरण (radiation)।

संवहन (Conduction)

अगर एक धातु-निर्मित छड़ का एक सिरा आग मे डाला जाए और दूसरा सिरा हाथ से पकड़ कर रखा जाए तो देखा जाएगा कि पहले आग के पास वाला सिरा, फिर दूरवाला सिरा धीरे-धीरे गरम हो रहा है और कुछ ही देर मे हाथवाला सिरा इतना गरम हो जाता है कि हाथ जलने लगता है। छड़ का जो अश आग के जितना पास होगा वह उतना ही अधिक गरम होगा। ऊष्मा धीरे-धीरे छड़ के उस अंश से, जो आग के पास है, दूसरे अंश तक जाती रहती है।

ऊष्मा ऊर्जा का एक रूप है। पदार्थ की ऊष्मा उसके अणुओ की गतिज ऊर्जा के रूप मे वर्तमान रहती है। ऊष्मा पाकर पदार्थ के अणुओं (molecules) का कंपन तीव्रतर हो जाता है और एक के स्पर्श से दूसरे का कंपन तीव्रतर होता जाता है। इस प्रकार से ऊष्मा ऊर्जा अणुओं के कपन द्वारा एक सिरे से दूसरे सिरे तक संचारित होती है। पर ये अणु अपने स्थान नही छोड़ते है बल्कि अपने ही स्थान के ईर्द-गिर्द डोलते रहते हैं। इस कंपन को आँखो द्वारा देखा नही जा सकता है। इस प्रकार से ऊष्मा के संचरण को संवहन या चालन कहते है।

जिन पदार्थो मे ऊष्मा सुगमता से चल सकती है उन्हें सुचालक (good conductor) पदार्थ कहते हैं और जिन पदार्थों मे ऊष्मा आसानी से चल नही सकती उन्हें कुचालक (bad conductor) कहते हैं। यदि हम लोहे की

छड़ के वदले लकड़ी की छड़ लेकर उसका एक सिरा आग में डाले तो वह सिरा तप्त होकर जलने लगेगा तव भी हाथ वाला सिरा इतना गर्म नही होगा कि हम उसे पकड़े नही रह सके। इस प्रकार हम देखते है कि धातु सुचालक पदार्थ है; किंतु लकड़ी, रेशम, ऊन, अभ्रक आदि कुचालक पदार्थ है। वायु तथा पानी भी कुचालक पदार्थ है। जव धातु-निर्मित पात्र वहुत गरम हो जाता है तव भी उसके काठ का हत्था उतना अधिक गरम नही होता, क्योकि काठ मे ऊष्मा आसानी से चल नही पाती है। यही कारण है कि ऊनी कपड़ा गरम रहता है और इसी कारण से वरफ को वाहरी ऊष्मा पहुँच कर गलाने से रोकने के लिए उसे ऊनी कंवल से ढक दिया जाता है। कुचालक होने के कारण ऊन शरीर की ऊष्मा को सचालित करके वाहर जाने नही देता है और इससे शरीर गरम रहता है। इसी प्रकार ऊनी कंवल, लकड़ी के वुरादे आदि से ढके रहने से वरफ देर तक नही गलती है, क्योकि ऊन या लकड़ी का वुरादा कुचालक होने के कारण वाहर की ऊष्मा को आसानी से वरफ तक पहुँचने नही देता है और इससे वरफ जल्दी नही गलती है।

जाड़े के दिनो मे सुचालक वस्तु छूने से ठढी मालूम होती है, क्योकि वह हमारे शरीर से ऊष्मा को फौरन दूर तक संचारित कर देती है। पर कुचालक वस्तु को छूने पर ऐसा नही मालूम होता है, क्योकि वह हमारे शरीर की ऊष्मा को जल्दी-जल्दी दूर तक सचारित नही कर पाती है।

तार की जाली (wire gauze) सुचालक वस्तु है। अगर इसे जलते हुए गैस के ऊपर रखा जाए तो जाली के ऊपर गैस नही जलेगा। कारण यह है कि जाली जलते हुए गैस की ऊष्मा को इतनी जल्दी चारो ओर संचारित कर देती है कि जाली के ऊपर आनेवाले गैस को इतनी ऊष्मा नही मिलती कि वह जलने लगे।

इस प्रकार अगर गैस-वर्नर पर जाली रखकर उसके ऊपर आग लगा दी जाए तो गैस केवल जाली के ऊपर ही जलता रहेगा, नीचे नही।

खानो में इस्तेमाल होनेवाला डेवी का निरापद दीप (Davy's safety lamp) इसी सिद्धात के आधार पर वनाया जाता है। इस दीप को चारों ओर तार की जाली द्वारा घेर दिया जाता है। जिस खान मे ऐसे गैस मौजूद हों, जो आग से जल उठ सकते हो, वहाँ साधारण दीप से उन

गैसो मे आग लग जाएगी और भयंकर विस्फोट होगा। पर डेवी के निरापद दीप से यह खतरा नही रहता है, क्योकि जो गैस वत्ती मे घुस जाता है वह वही अंदर जलता रहता है और जाली द्वारा ऊष्मा इतनी शीघ्रता से चारों ओर सचारित हो जाती है कि वाहर के गैस को इतनी ऊष्मा नही मिलती कि वह जलने लगे।

सुचालक पदार्थों की चालकता की तुलना ईनजेनहौज (Ingenhaus) के प्रयोग से प्रदर्शित की जा सकती है।

प्रयोग—एक लंवा पात्र लीजिए जिसकी एक दीवार में कई छिद्र हों। इन छेदों मे छिद्र-युक्त डाँट लगा दीजिए और डाँटों के छेद मे भिन्न-भिन्न वस्तु—जैसे ताँवा, लोहा, पीतल, ऐल्युमीनियम आदि से वनी हुई करीव आठ ईंच लंवी और समान मोटाई की एक-एक छड़ इस तरह घुसा दीजिए कि उनका एक सिरा पात्र के भीतर और एक वाहर रहे। अव प्रत्येक छड़ के वाहरी हिस्से के ऊपर मोम का पलस्तर लगा दीजिए और पात्र को खौलते
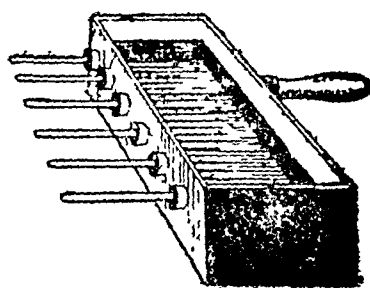
[चित्र ७०—ईनजेनहौज का प्रयोग]

हुए पानी से भर दीजिए। थोड़ी ही देर में देखिएगा कि मोम का पलस्तर गलने लगा है। सबसे पहले ताँवे की छड़ के ऊपर का मोम गलने लगेगा और सिरे तक का सब मोम गल जाएगा। इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि ताँबा इन चीजो मे ऊष्मा का सबसे अधिक सुचालक है। पीतल और लोहे की छड़ पर भी मोम गलने लगेगा, पर उतना जल्द और उतनी दूर तक नही गलेगा। इस प्रकार से जिस वस्तु पर का मोम जितनी कम दूरी तक गलेगा, उसकी चालकता उतनी ही कम होगी।

संनयन (Convection)

ठोस पदार्थ मे ऊष्मा का सचारण एक अणु से दूसरे, दूसरे से तीसरे इत्यादि में होता है और इस संचारण प्रक्रिया मे अणु अपने मध्यमान स्थान से विस्थापित नही होते हैं, केवल उस स्थान के इर्द-गिर्द उनका कम्पन तीव्रतर हो जाता है। किन्तु चालन के अतिरिक्त द्रव पदार्थों में ऊष्मा का संचारण एक भिन्न प्रकार से भी होता है। साधारणतः द्रव पदार्थ और गैस ऊष्मा के कुचालक होते है और इनमे ऊष्मा का सुगम सचारण संनयन (convection) प्रक्रिया से होता है। इस क्रिया में माध्यम (द्रव या गैस) के कण ऊष्मा प्राप्त करके एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते है और माध्यम के कणों की इस गति से माध्यम मे ऊष्मा का संचारण होता है।

जब पानी भरे पात्र को आग पर रखकर पानी को गरम किया जाता है तब सर्वप्रथम आग के पास वाला अंश, यानी पात्र के पेंदे के पास का पानी गरम होकर प्रसारित हो जाता है। फलस्वरूप उसका घनत्व कम हो जाता है और वह बाकी पानी से हलका हो जाता है। पेंदे पर के गरम और हलके पानी के कण अपने साथ ऊष्मा लेकर ऊपर चढ जाते है और उनके स्थान मे, यानी आग के निकट, भारी और ठढे पानी के कण आ जाते है। यह ठढा पानी भी फौरन, गरम होकर प्रसारित और हलका हो जाता है और ऊपर की ओर चढ़ने लगता है। गरम पानी ऊपर जाकर ठंढा हो जाता है और भारी हो जाने के कारण फिर नीचे आता है। इस प्रकार पात्र के पानी के अंदर नीचे से ऊपर की ओर गरम पानी की धाराएँ और ऊपर से नीचे की ओर ठढे पानी की धाराएँ स्थापित हो जाती हैं। इन धाराओ के द्वारा पात्र के जल मे ऊष्मा का द्रुत सचारण होता है।

किसी गैस या द्रव मे ऊष्मा से उत्पन्न इन धाराओ को संनयन धाराएँ (convection currents) कहते है। इन धाराओ द्वारा माध्यम मे ऊष्मा के संचारण की प्रक्रिया को संनयन कहते हैं। अगर पात्र काँच का हो और पात्र के पानी के साथ लकड़ी का बुरादा मिला दिया जाए तो मिले हुए बुरादे भी संनयन धारा के साथ-साथ ऊपर-नीचे परिभ्रमण करते दीख पड़ेंगे।

लेकिन अगर नीचे के बजाए ऊपर से ऊष्मा पहुँचाया जाए तो संनयन, धारा नही स्थापित हो सकती है क्योकि ऊपर का गरम पानी हलका होने के कारण नीचे की ओर नही जा सकता है। पानी ऊष्मा का कुचालक है और साथ-साथ संनयन धारा भी इस हालत मे नही चलती है इसलिए, इस हालत में, नीचे का पानी गरम नही हो पाता है। इसलिए धूप में जलाशय के ऊपर का पानी गर्म हो जाता है, लेकिन नीचे का पानी ठंडा रह जाता है और इसमे मछली आदि जलचर जीव जिन्दा रह जाते है।

द्रव पदार्थ की तरह गैस मे भी ऊष्मा सचरण संनयन द्वारा होता है। हवा गरम होने पर प्रसारित होती है और हलकी होकर ऊपर चढ़ जाती है। ठंढी हवा गरम हवा मे भारी होने के कारण, नीचे की हलकी गरम हवा को हटाकर नीचे उतर आती है। यही कारण है कि गरम हवा आग के पास से धुआँ वगैरह लेकर ऊपर चढ़ती है।

सनयन धाराओं की सहायता से हम अपने रहने के कमरों को ऐसा वना सकते हैं कि उनमे उचित निर्वातन (ventilation) होता रहे। कमरे की दीवारो मे अगर ऊपर की ओर गरम हवा निकलने के लिए तथा नीचे की ओर ठंढी हवा आने के लिए खिड़कियाँ वना दी जाएँ तो कमरे में हमेशा शुद्ध हवा मिलती रहेगी। कमरे की दूपित और गरम हवा ऊपर की खिड़कियों से वाहर चली जाएगी और वाहर की ठंढी और शुद्ध हवा नीचे की खिडकियो से अंदर आएगी। दीवारो मे आमने-सामने खिडकियाँ वनाने पर भी कमरे में सदा वाहर की शुद्ध हवा का प्रवाह होता रहेगा।

विकिरण (Radiation)

हमने देखा है कि ऊष्मा सवहन तथा संनयन प्रक्रियाओ द्वारा सचारित होती है। इनके अतिरिक्त एक और प्रक्रिया से भी ऊष्मा सचारित होती है। इसमें ऊष्मा-सचरण के लिए किसी वस्तु के माध्यम की आवश्यकता नही होती है। इस तीसरी प्रक्रिया से ऊष्मा शून्य स्थान मे से होकर भी संचारित होती है तथा द्रव्यात्मक माध्यम से भी संचारित होती है।

सूर्य से पृथ्वी की दूरी लगभग २ करोड़ ८ लाख कि० मी० है और दोनों के वीच इस दूरी में शून्य ही शून्य है। इस शून्य से सूर्य का प्रकाश और उसके

साथ-साथ उसकी ऊष्मा भी तरंगो के रूप में लगभग ३ लाख कि० मी० प्रति सेकेंड के वेग से चलकर पृथ्वी तक पहुँचती है। जब ऊष्मा तरंगो (अथवा किरणों) के रूप से संचारित होती है तो संचारण की इस प्रक्रिया को ऊष्मा का विकिरण कहते हैं, ऊष्मा की किरणे जब किसी द्रव्य द्वारा अवशोषित होती है तब वह द्रव्य ऊष्म या तप्त हो जाता है। कुछ ऐसे द्रव्यात्मक माध्यम है, जिनमे ऊष्मा की किरणों का नगण्य अवशोषण होता है और वे ऊष्मा की किरणो से तप्त नही होते हैं।

प्रत्येक तप्त वस्तु से ऊष्मा का कुछ न कुछ विकिरण होता रहता है। सूर्य से विकिरण द्वारा उष्मा प्राप्त करके दिन मे पृथ्वी गर्म हो जाती है, रात्रि में वह स्वय विकिरण द्वारा उष्मा का विसर्जन करके ठंढी हो जाती है।

विकिरित ऊष्मा सरल रेखा में गमन करती है और गहरे रंग की वस्तुओ में शीघ्रता से अवशोषित हो जाती है। काले रंग की वस्तु मे विकिरित ऊष्मा लगभग शत-प्रतिशत अवशोषित हो जाती है। सफेद (धवल) तथा हलके रग की वस्तु, विकिरित ऊष्मा को परावर्तित करती है और उनमे विकिरित ऊष्मा अति न्यून परिमाण में अवशोपित होती है।

धूप में जब हम छतरी के नीचे खड़े हो जाते हैं तब सूरज से आती हुई विकिरित ऊष्मा काफी हद तक छतरी के काले कपड़े में अवशोषित हो जाती है और हमे गरमी कम लगती है। अगर हवा का प्रवाह इस ऊष्मा को संचारित करता होता तो ऐसा नही हो सकता था।

ऊष्मा-संवहन तथा ऊष्मा-सनयन से ऊष्मा-विकिरण संपूर्णतः भिन्न है और तीनो मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योकि इस विधि से किसी द्रव्यात्मक माध्यम की सहायता के विना ही ऊष्मा सचारित हो सकती है।

थर्मस फ्लास्क (thermos flask)

थर्मस फ्लास्क इस प्रकार से बनाया जाता है कि उसमे रखी हुई चीजों पर कम-से-कम ऊष्मा-सचरण की क्रिया हो। इस कारण थर्मस मे रखी हुई गरम चीज देर तक गरम और ठढी चीज अधिक समय तक ठंढी रहती है।
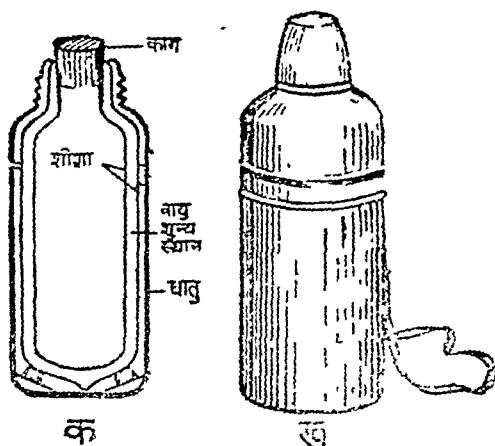
[चित्र ७१—थर्मस फलास्क : क—अंदर की वनावट, ख—संपूर्ण थर्मस फलास्क]

संवहन, संनयन तथा विकिरण तीनो क्रियाओ से ऊष्मा के सचरण को रोकने के लिए इसमें काँच की दोहरी दीवार की एक वोतल होती है, जिसकी दीवारो के वीच का स्थान निर्वात होता है। वोतल की काच की दीवारों की अंदर वाली सतहें आइना-जैसी चमकदार होती है। बोतल की सुरक्षा के लिए उसे एक टीन या प्लास्टिक निर्मित पात्र के अंदर वद कर दिया जाता है, जो उसे वायु के सस्पर्श से भी वचाता है। शीशे की दोहरी दीवार के वीच के स्थान से सवहन तथा सनयन द्वारा ऊष्मा का संचरण नही हो पाता है। वोतल के अंदर की दीवार चमकदार होने के कारण ऊष्मा-विकिरण की मात्रा भी वहुत कम हो जाती है। इन कारणो से इसमे गरम दूध, चाय आदि रख देने से वे घंटो गरम रह जाते है। वरफ रख देने से भी वह घंटो नहीं पिघलती है।

वातानुकूलन (**Air conditioning**)

आदिम युग से ही मनुष्य प्रकृति के प्रकोपों से वचने के लिए नाना प्रकार के उपाय करते आ रहे हैं। प्रकृति और मनुष्यो मे यह संघर्ष ही मनुष्य की अग्रगति का प्रधान कारण है। इस संघर्प का इतिहास मनुष्य के ज्ञान-विज्ञान की प्रगति का इतिहास है। जाड़े से वचने के लिए आग तापना तथा

आग जलाकर कमरे को गरम रखने की प्रथा तो बहुत दिन पहले ही प्रचलित हो गई थी, साथ ही गरमी से राहत पाने के लिए पंखा चलाना या बरफ का व्यवहार करना भी काफी दिनों से प्रचलित हो गया था, गरमी तथा जाड़े के प्रकोप से बचने के लिए विज्ञान का आधुनिकतम दान है।

वातानुकूलन या शीत-ताप-नियंत्रण

वातानुकूलन, एक निश्चित क्षेत्र के अदर वायु को ऐसी अवस्था में लाने को कहते हैं, जिससे उस क्षेत्र के अदर उपस्थित मनुष्यो के लिए वह अधिक से अधिक आराम देनेवाली तथा स्वास्थ्यकर बन सके। दूसरे शब्दो मे, किसी स्थान की वायु का तापमान, आर्द्रता तथा शुद्धता के अनुकूल नियंत्रण को वातानुकूलन कहते है।

वातानुकूलन द्वारा शीत और ऊष्णता को नियन्त्रित करके न केवल मनुष्य को शारीरिक सुख मिलता है, बल्कि इससे उसका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है और उसकी कार्य-क्षमता काफी बढ़ जाती है। सिनेमा-गृह आदि मे जहाँ बहुत-से आदमी काफी देर तक एक बद स्थान मे एकत्रित रहते हैं, और जहाँ वायु दूषित होने की काफी सभावना रहती है, वातानुकूलन द्वारा वायु को शुद्ध रखा जा सकता है और कमरे को आरामदेह बनाये रखा जा सकता है।

वातानुकूलन के लिए आजकल नाना प्रकार के **वातानुकूलन यंत्र** (air conditioning unit) मिलते हैं। ये छोटे-छोटे कमरो के लिए छोटे आकार के तथा बड़े-बड़े हॉल आदि के लिए बड़े आकार के होते है।

मनुष्यो के लिए स्वास्थ्यकर वातावरण उत्पन्न करने के लिए प्रति व्यक्ति ३० घनफुट वायु की आवश्यकता होती है। इसमे सर्वदा ताजी वायु का परिमाण एक तिहाई होना चाहिए। इसलिए वातानुकूलन मे केवल वायु को ठंढा या गरम कर देने से ही काम नही चलता बल्कि उसमे उचित प्रवाह होने की व्यवस्था करना भी जरूरी है। साथ ही, वायु मे उचित मात्रा मे आर्द्रता का होना, उसमे किसी प्रकार की गध तथा अशुद्धियाँ न होना भी आवश्यक है। अत वातानुकूलन मे निम्नलिखित बाते होनी चाहिए :—

(क) **वायु का तापमान नियंत्रण :**—गरमी मे वायु को इतना ठंढा करना तथा जाडे मे इतना गरम करना कि उससे आदमी को अधिक से अधिक आराम मिल सके।

(ख) वायु-प्रवाह का नियंत्रण :—वायु-प्रवाह को इस गति से चालू रखना ताकि वायु मे सर्वदा उचित मात्रा मे ताजा वायु मिश्रित होती रहे और उसमे आक्सीजन की मात्रा सतुलित रहे।

(ग) वायु में आर्द्रता या नमी का नियंत्रण :—गरमी मे जब वायु मे आर्द्रता अधिक हो जाती है तब उसे उचित परिमाण मे घटाना और जाडे मे जब वायु मे आद्रता घट जाती है तब उसे उपयुक्त मात्रा में बढाना।

(घ) वायु की शुद्धता का नियंत्रण :—वायु को इस प्रकार छनकर अदर प्रवेश कराना ताकि उसके साथ धूल, धुआँ तथा हानिकारक जीवाणु आदि प्रवेश न कर सकें।

(ङ) गंध, स्वाद आदि का नियंत्रण :—वायु मे किसी प्रकार का गध या स्वाद न रहने देना।

ग्रीष्म तथा शीत ऋतुओ मे वातानुकूलन के काम में कुछ भिन्नता होती है।

ग्रीष्म का वातानुकूलन (Summer airconditioning)

भारत जैसे गरम देशो मे ग्रीष्म के वातानुकूलन का प्रचलन अधिक है। इसमे मुख्य काम है, वायु को ठंढा करना और साथ ही अगर वायु में आर्द्रता अधिक हो तो उसे कम करना।

ग्रीष्म वातानुकूलन यंत्र में एक प्रशीतक (refrigerator) यंत्र लगा हुआ होता है। चूसक पंप द्वारा वायु खीचकर इस यंत्र मे प्रवेश कराई जाती है। यंत्र में प्रवेश कराने के पहले ही यान्त्रिक छनना से छानकर वायु को शुद्ध कर लिया जाता है। प्रशीतक के अंदर वायु ठंडी हो जाती है और साथ ही उसकी आर्द्रता का एक अंश ठंढा होकर पानी बन जाता है। इस प्रकार से वायु शुद्ध, ठंढी तथा उचित मात्रा मे आर्द्रतायुक्त बन जाती है। फिर इस वायु को नियंत्रित मात्रा में कमरे मे प्रवेश करवाकर उसमे वातानुकूलन किया जाता है। साधारणत: यह नियत्रण स्वय चालित विधियो से होता है।

वातानुकूलन यत्र पर कितना बोझ होगा यह कमरे के निर्माण, वायु की ऊष्णता तथा कमरे मे उपस्थित मनुष्यो की सख्या आदि पर निर्भर करता है। क्योंकि कमरे के अंदर की वायु कितनी गरम होगी, इसका परिमाण इस बात पर निर्भर करता है कि उसमें बाहर से कितनी गरम वायु प्रवेश करती

है ; उसकी दीवारे, छत, खिड़कियाँ आदि ऊष्मा के कैसे चालक हैं तथा उसमें उपस्थित आदमियो के शरीरो से निकलती हुई ऊष्मा कितनी होती है, आदि। इसलिए उत्तम रूप से वनाए गये मकानो मे, जिनकी दीवारे, छत आदि अधिक से अधिक अचालक (non-conductor) है, वातानुकूलन मे कम खर्च होता है।

जाड़े का वातानुकूलन (winter air conditioning)

ठंडे देशों मे इस व्यवस्था का प्रचलन अधिक है। इसमें कई तरीके काम मे लाये जाते है। पिछले दिनो मे साधारणत. गरम पानी या भाप की सहायता से कमरो को गरम किया जाता था। अभी भी वहुत-से स्थानो मे यह तरीका प्रचलित है। एक स्थान पर किसी वन्द पात्र मे पानी गरम करके भाप वनाया जाता है और नलियो की सहायता से कमरो मे पहुँचाया जाता है। कमरो मे लगे हुए विकिरक इस भाप की गरमी का विकिरण करके कमरों को गरम कर देता है। वातानुकूलन की यह युक्ति सरल है, लेकिन इस युक्ति द्वारा वायु की आर्द्रता का नियत्रण नही हो सकता है और न वायु की शुद्धता तथा उसकी गध आदि का ही नियंत्रण हो सकता है। इसलिए इसे सही माने मे वातानुकूलन नही कहा जा सकता। इसके अलावा कमरे मे लकड़ी, कोयला, गैस आदि जलाकर कमरे को गरम रखने की प्रथा भी काफी प्रचलित है। कमरे को केवल गरम करने के लिए वैद्युतिक ऊष्मक सवसे अच्छा होता है। वैद्युतिक ऊष्मक के सवध मे हम वाद मे अध्ययन करेंगे।

वैद्युतिक वातानुकूलन यत्र मे एक ऊष्मक (heater) यत्र लगा हुआ होता है। चूसक पप द्वारा खीची गई वायु यांत्रिक छनने से छनकर शुद्ध होकर इसमे प्रवेश करती है। वहाँ वायु गरम होती है और साथ ही ऊष्मक मे पानी की वूंदे गिराकर उसमे उचित मात्रा मे आर्द्रता मिला दी जाती है। नलियो की सहायता से यह वायु उचित मात्रा मे नियंत्रित रूप से कमरो में छोड़कर उसे आवश्यकतानुसार गरम किया जाता है। मात्रा का नियत्रण साधारणतया स्वचालित यंत्रो से होता है।

प्रकाश (Light)

प्रकाश भी ऊर्जा का एक रूप है। इसकी सहायता से हम वस्तुओ को देख सकते है। प्रकाश के स्रोत से प्रकाश की किरणें निकलती है। किसी वस्तु को हम तभी देख सकते हैं, जब उससे प्रकाश की किरणे निकलकर या परावर्त्तित (reflected) होकर हमारी आँखो के अंदर प्रवेश करें। जिस वस्तु से प्रकाश की किरणे नही निकलती है, उसे हम तब तक नही देख सकते जब तक कही से प्रकाश की किरणें आकर उसपर न गिरती हो और वहाँ से परावर्त्तित होकर हमारी आँखो मे आ नही जाती हो। असल मे हम प्रकाश को नही देखते है बल्कि उसकी किरणों से प्रकाशित वस्तुओ को देखते हैं। अधेरे स्थान पर रखी गई मोमबत्ती को हम नही देख सकते और न उसके आस-पास की चीजो को ही देख सकते हैं। पर, मोमबत्ती को जलाते ही हम उसे देख लेते है, और साथ ही आस-पास की अन्य चीजे भी दृष्टिगोचर हो जाती है। इस प्रकार देखने की क्रिया के लिए आँख तथा प्रकाश दोनो ही की आवश्यकता होती है। अतः, संक्षेप मे कहा जा सकता है कि प्रकाश ऊर्जा का वह रूप है जिसकी सहायता से हमारी आँखें देखने की क्रिया को सपन्न करती है।

हम दो प्रकार की वस्तुओ को देखते है :—

ज्योतिष्मान या दीप्त (luminous) तथा अज्योतिष्मान (nonluminous)।

१. ज्योतिष्मान वस्तु—ज्योतिष्मान पदार्थ वे है, जो अपने ही प्रकाश से दृष्टिगोचर होते है। दूसरे शब्दो मे, जिन वस्तुओ से प्रकाश की किरणें निकलकर हमारी आँखो मे प्रवेश करती हैं, उन्हे ज्योतिष्मान पदार्थ कहते है। सूरज, तारे, लालटेन की जलती हुई बत्ती, मोमबत्ती की जलती हुई लौ, बिजली की बत्ती, जुगनू, जलती हुई दियासलाई की सीक आदि ज्योतिष्मान वस्तुएँ है।

२. **अज्योतिष्मान वस्तु**—अज्योतिष्मान वस्तुओ से प्रकाश की किरणें नही निकलती, ये दूसरो के प्रकाश से प्रकाशित होती है। इसलिए इन्हे देखने के लिए ज्योतिष्मान वस्तु की किरणो की आवश्यकता होती है। जो वस्तु अन्य ज्योतिष्मान वस्तु की किरणों से प्रकाशित होकर दृष्टिगोचर होती है, उसे अज्योतिष्मान वस्तु कहते है। ईट, पत्थर, किताव, कलम, पेड़-पौवे आदि हमारी आस-पास की अधिकतर वस्तुएँ अज्योतिष्मान वस्तुएँ है।

वैसे तो वैज्ञानिको का कहना है कि ब्रह्माड (universe) में हमारे सूर्य से भी वड़े-वड़े ज्योतिष्मान असख्य सूर्य हैं, फिर भी इस पृथ्वी के लिए हमारा सूर्य ही सर्वप्रधान प्रकाश का स्रोत है। क्योकि वाकी सव हमसे इतने दूर है कि उनके प्रकाश को हम केवल टिमटिमाते हुए तारे के रूप में ही देख पाते है। सूर्य की किरणो से दिन में धरातल प्रकाशमान रहता है। शुक्ल पक्ष मे चाँद का जो प्रकाश पृथ्वी पर स्वप्न-लोक की सृष्टि करता है, वह प्रकाश चाँद का नहीं है, वल्कि सूर्य का ही प्रकाश है, जो चाँद के पृष्ठ से परावर्त्तित होकर पृथ्वी-तल को प्रकाशित करता है।

रात को जव हमें सूर्य का यह परावर्त्तित प्रकाश नही मिलता है, उस समय हमे विजली की वत्ती, गैस की वत्ती, लालटेन, मोमवत्ती, दीपक आदि से प्रकाश मिलता है।

प्रकाश संचरण (propagation of light)—प्रकाश के गमन के लिए किसी द्रव्यात्मक माध्यम की आवश्यकता नही होती है। वताया जा चुका है कि सूर्य से प्रकाश की किरणे और साथ ही साथ ऊष्मा की किरणें २ करोड़ ८ लाख कि० मी० तक शून्य अतरिक्ष से चलकर पृथ्वी पर पहुँचती है। प्रकाश और ऊष्मा की किरणे तरंगो के रूप में शून्य अंतरिक्ष तथा अन्य द्रव्यात्मक पारदर्शी के माध्यम से गमन करती है।

प्रकाश का सरल रैखिक संचरण

सूर्य, वत्ती की लौ आदि ज्योतिष्मान वस्तुओ के प्रत्येक विंदु से प्रकाश की किरणे निकलती हैं और सरल रेखाओ पर चलती है। हम उसी वस्तु को देख सकते है, जिससे हमारी आँख तक खीची हुई सरल रेखा पर कोई ऐसी वाधा या आड़ नही हो जिससे प्रकाश पार नही हो सकता है। कारण यह है कि किरणे आड़ से मुडकर हमारी आँखो मे नही समा सकती।

निम्नलिखित सरल प्रयोगों से प्रमाणित किया जा सकता है कि प्रकाश सरल रेखाओं पर गमन करता है :—

प्रयोग (१) सूची-छिद्र कैमरा—दफ्ती का बना हुआ एक चौकोर बक्सा लेकर एक ओर से दफ्ती काट दीजिए और उस जगह पर तेल लगा हुआ एक कागज लगा दीजिए। इस कागज को छोडकर बक्से के अंदर की बाकी दीवारो पर काला कागज साट दीजिए और बक्से को इस प्रकार बंद कर दीजिए कि उसमे किसी प्रकार से प्रकाश न आ सके। अब तेल लगे हुए कागज के सामने की दीवार मे एक बारीक छेद कर दीजिए। छेद के ठीक सामने एक मोमबत्ती रख दीजिए। देखियेगा कि तेल लगे हुए कागज के ऊपर मोमबत्ती का प्रतिबिंब (image) बन रहा है। लेकिन यह प्रतिबिंब उलटा दिखाई पड़ेगा। ऐसा इसलिए होता है कि मोमबत्ती के सबसे ऊपर के बिंदु से जो किरण निकलती है, वह छेद मे से नीचे की ओर जाकर कागज पर गिरती है। चित्र मे मोमबत्ती की लौ के सर्वोच्च बिंदु क से
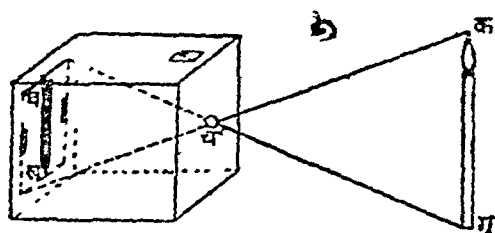
[चित्र ७२—सूची छिद्र कैमरा]

निकलने वाली किरण बक्से के छेद च से होकर कागज पर ख बिंदु पर गिरती है। इसी प्रकार बत्ती के निम्नतम बिंदु ग से आती हुई किरण छिद्र च से होकर कागज पर घ बिंदु पर गिरती है। इस प्रकार से मोमबत्ती क ग, बक्से मे लगे हुए कागज पर उलटी होकर ख घ बिंब बनाती है। छिद्र से लौ के किसी बिंदु तक खीची हुई सरल रेखा पर चलती हुई किरण ही बक्से में प्रवेश कर सकती है और तेल लगे कागज पर पड सकती है। अन्य किरणें बक्से की दीवार को पार नहीं कर सकती हैं और अंदर जाकर कागज पर गिर नहीं पाती हैं। किरणो के सरल रेखा में गमन करने के कारण ऐसा

होता है। इस प्रकार के बक्से को सूची-छिद्र कैमरा (pin hole camera) कहा जाता है।

प्रयोग २—तीन समान आकार के दफ्ती के टुकड़े लेकर तीनों में एक ही स्थान पर सूई द्वारा एक-एक छेद बना दीजिए। तीनों दफ्तिओ को इस प्रकार आमने-सामने खड़ा कर दीजिए कि तीनों के छेद एक सरल रेखा में आ जाएँ। एक मोमबत्ती जलाकर तीसरी दफ्ती के पीछे रखिए। अब अगर पहली दफ्ती के छेद से आँख लगाकर देखियेगा, तो मोमबत्ती की रोशनी दिखाई पडेगी। किसी भी दफ्ती को थोड़ा-सा इधर-उधर कर देने पर छेदो से किरण का आना बन्द हो जाएगा और मोमबत्ती की रोशनी दिखाई नहीं पड़ेगी। किरण तभी आ सकती है जब तीनो छेद बत्ती के साथ एक सरल
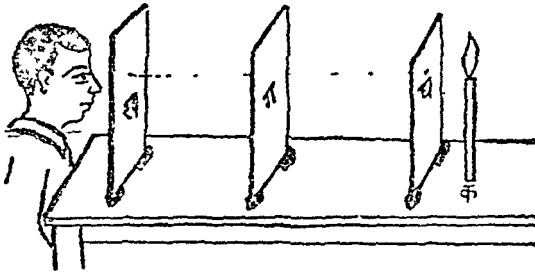
[चित्र ७३—प्रकाश का सरल रेखा मे गमन :
क—मोमबत्ती, ख, ग, घ—छिद्रयुक्त दफ्तियाँ]

रेखा मे हों। इससे प्रमाणित होता है कि किरण सरल रेखा मे गमन करती है। क्योंकि, अगर किरणे इधर-उधर मुड कर चल सकती, तो सभी छेदो के एक सरल रेखा मे न रहने पर भी रोशनी दिखाई पडती।

रोज हम अपने घरों में प्रकाश को सरल रेखाओं मे गमन करते देखते हैं। अँधेरे कमरे मे अगर छत या खिडकियो के छिद्र से सूरज की किरणें प्रवेश करती हों, तो उन किरणों में कमरे की उड़ती हुई धूल से किरणों का पुन्ज दिखाई देता है। साथ ही हम देखते है कि किरणो का गमन-पथ सरल रेखाओ पर है। प्रायः बादलों की ओट से सूरज की किरणे सरल रेखा में गमन करती हुई देखने को मिलती हैं।

दीप्त वस्तु से निकलती हुई प्रकाश की किरणें या प्रकाशित पदार्थ से परावर्त्तित प्रकाश की किरणे १,८६,००० मील प्रति सेकेण्ड या ३,००,००० किलो-मीटर प्रति सेकेण्ड के वेग से गमन करती है। इस कारण से कही बत्ती जलते ही तुरत सब चीजे दिखाई देने लगती है। प्रकाश का वेग इतना अधिक है कि एक सेकेण्ड में प्रकाश सात बार पृथ्वी की परिक्रमा कर सकता है।

किरण-पुंज (beam of rays)

उद्गम स्थान से निकलकर प्रकाश की किरणें सरल रेखाओ पर चलती हुई चारो ओर फैल जाती है। किरण की रेखाएँ बहुत ही पतली होती है और एक से दूसरी को व्यावहारिक रूप से अलग नही किया जा सकता है। इसलिए ज्योतिष्मान पदार्थ से निकलने वाली किरणो के समूह पर ही प्रयोग किया जा सकता है। किरणो के समूह को किरण-पुंज कहते है। अति सकीर्ण किरण पुंज को किरण कूचिका (pencil of rays) कहते है। उद्गम स्थान से निकलने के बाद जब किरण-पुंज की किरणे एक दूसरे से दूर होती जाती है, तब ऐसे किरण पुंज को अपसारी (divergent) किरण-पुंज कहते है।

बत्ती जलाने पर लौ से जो किरणे निकलती है, वे अपसारी किरण- पुंज के रूप मे होती है।

किरण-पुंज का उद्गम स्थान जब सूर्य या अन्य ग्रहो-नक्षत्रो जैसा बहुत दूर होता है, तब वहाँ से आनेवाली किरणो को समातर माना जाता है, यानी उनसे आता हुआ किरण पुंज समातर किरण पुंज कहा जाता है।

जब किसी विशेप अवस्था के कारण बिखरी हुई किरणे परस्पर पास आने लगती है और अत मे एक बिंदु पर मिलने लगती है तब उन्हें अभिसारी (convergent) किरण-पुंज कहते है। आवर्धक लेस (magnifying lens) द्वारा प्रकाश को केन्द्रीभूत करते समय अभिसारी किरण पुंज देखने को मिलता है।

केन्द्रित होने पर समस्त किरणो की ऊष्मा भी उसी एक बिंदु पर केंद्रित हो जाती है और इससे इतनी ऊष्मा उत्पन्न होती है कि उस बिंदु पर कागज या कपड़ा रख देने से वह जलने लगता है। एक कागज के टुकड़े पर

आवर्धक लेंस की सहायता से सूरज की किरणों को केंद्रित करके आसानी से इस वात को देखा जा सकता है।
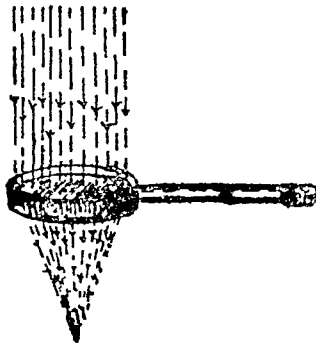
[चित्र ७४—अभिसारी किरण-पुंज]

प्रदीपन तीव्रता (Intensity of illumination) तथा प्रदीपन क्षमता (Illuminating power)

किसी वस्तु की सतह के प्रति इकाई क्षेत्र पर प्रति सेकेंड पड़ती हुई प्रकाश-ऊर्जा को, उस सतह पर की, प्रदीपन तीव्रता कहते है। इस पुस्तक के पृष्ठ को वत्ती के जितना ही निकट ले जाते है, पृष्ठ पर वत्ती के प्रकाश की तीव्रता उतनी ही वढती जाती है। दूरी आधी कर देने मे प्रदीपन तीव्रता चौगुनी नढ जाती है और दूरी तिहाई कर देने से नौगुनी। दूरी वढाने मे प्रदीपन तीव्रता उसी अनुपात से (यानी दूरी के वर्ग के अनुपात से) घटती जाती है।

विभिन्न प्रकाश-स्रोतो से विभिन्न परिमाणो में प्रकाश का उत्सर्जन होता है। साठ वाट की विजली की वत्ती, एक मोमबत्ती से अधिक प्रकाश देती है। दूसरे शब्दो मे, विजली की वत्ती की प्रदीपन क्षमता मोमवत्ती की प्रदीपन क्षमता से वहुत अधिक है। किसी दीप से एक मीटर की दूरी पर किसी सतह को, किरणो पर, लव रूप से रखा जाय तो उस सतह के इकाई क्षेत्र पर प्रति सेकेंड पड़ते हुए प्रकाश को उस दीप की प्रदीपन क्षमता कहते हैं। दीप की प्रदीपन क्षमता (illuminating power) मापने की इकाई को कैंडल शक्ति कहते है।

$\frac{1}{6}$ पौंड वजन के $\frac{7}{8}$ ईंच व्यासयुक्त स्परमासेटी (spermaceti) नामक विशेष प्रकार के मोम से निर्मित ऐसी एक वत्ती की, जिसमें प्रति मिनट

२ ग्रेन मोम जलता हो, प्रदीपन क्षमता को एक कैंडल पावर कहा जाता है। दूसरे शब्दो मे, ऐसी १०० मोमबत्तियाँ जलाने से जितनी रोशनी होगी उतनी रोशनी अगर दूसरी कोई ज्योतिष्मान वस्तु देती हो तो उसे सौ कैंडल शक्ति की बत्ती कहा जायगा। आजकल कैंडल पावर मापने के लिए इस मानक मोमबत्ती के स्थान पर वारनन हारकोर्ट पेनटेन बत्ती (Venon Harcourt Pentane lamp) काम मे लाई जाती है।

प्रदीपन क्षमता मापने के लिए फोटो मीटर नामक यंत्र इस्तेमाल किया जाता है।

द्रव्यात्मक माध्यम से प्रकाश का गमन

(क) पारदर्शक माध्यम (**Transparent medium**)

सूर्य, चंद्रमा और तारो का प्रकाश, वायुमडल को पार करके, हमारी आँखों तक पहुँचता है, तथापि हम प्रकाश के स्रोतो को साफ-साफ देख पाते हैं। आँख के सामने काँच का प्लेट या अबरख की पत्ती रखकर किसी बत्ती की ओर देखने से बत्ती साफ-साफ दिखाई देगी, मानो आँखो के सामने कोई चीज नही है। ऐसी वस्तु को, जिससे होकर प्रकाश पार हो जाता है और जिससे आर-पार की वस्तु साफ दिखाई देती है, पारदर्शी (transparent) वस्तु कहते हैं।

(ख) पारभासक (**Translucent**) माध्यम

यदि किसी काँच के प्लेट को बालू पर खूब घिस दिया जाए और उस घिसे हुए काँच को आँख के सामने रखकर बत्ती की ओर देखें तो आँख पर प्रकाश तो पड़ेगा और शायद बत्ती का धुंधला और अस्पष्ट रूप भी दीख पड़ेगा, किन्तु साफ नही। घिसे काँच, तेल लगे कागज आदि को सामने रख कर हम उस पार की चीजो को साफ नही देख सकते है। यद्यपि प्रकाश इनसे पार हो जाता है। ऐसी वस्तुओं को पारभासक वस्तु कहते हैं।

(ग) अपारदर्शक (**Opaque**).

जिन वस्तुओं से होकर प्रकाश बिलकुल नहीं पार हो सकता है, उन्हें अपारदर्शक पदार्थ कहते हैं। अपारदर्शक पदार्थों के एक ओर से दूसरी ओर की चीजें कतई नही दिखाई पड़ती हैं। ईंट, पत्थर, लकड़ी, लोहा आदि ऐसे पदार्थ हैं।

छाया (Shadow)

किसी दीप और दीवार के वीच जव कोई अपारदर्शक वस्तु रख दी जाती है, तव उस दीवार पर एक ऐसा अदीप्त या अध क्षेत्र वन जाता है जिस पर दीप का प्रकाश नही पड़ता है। इस अदीप्त क्षेत्र को उस वस्तु की छाया कहते है। छाया की रूपरेखा विल्कुल वस्तु जैसी होती है। छाया का आकार कभी वड़ा, कभी छोटा हो सकता है। वस्तु से उसकी छाया की दूरी तथा वस्तु से दीप की दूरी पर छाया का आकार निर्भर करता है। दीप को स्थिर रखते हुए वस्तु को ज्यो-ज्यो दीवार के निकट लाते हैं त्यो-त्यो छाया छोटी होती जाती है। वस्तु और दीवार (या पर्दे) को स्थिर रखते हुए ज्यो-ज्यों दीप को वस्तु के निकट लाते है त्यो-त्यो छाया वड़ी होती जाती है। छाया का वनना भी इस वात का प्रमाण है कि प्रकाश सरल रेखाओ पर गमन करता है। क्योकि प्रकाश की किरणे अगर वक्र रेखाओ में भ्रमण कर सकती, तो वे मुड़कर अपारदर्शक वस्तु को पार कर आगे चली जाती और छाया नही वनती।

अगर एक वारीक छेद में से आते हुए प्रकाश-पुंज के गमन-पथ पर कोई अपारदर्शक वस्तु रखी जाए तो जो छाया वनेगी उसका समस्त अंश एक-सा काला होता है। इस प्रकार की छाया को समरूप छाया कहते है।

समरूप छाया वनाना

एक दपती मे एक छोटा छेद कर दे और एक मोमवत्ती जलाकर उसे
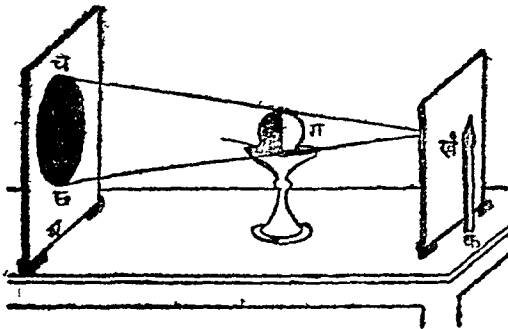
[चित्र ७५—समरूप छाया : क—मोमवती, ख—छिद्रयुक्त दपती, ग—गेंद, घ—पर्दा, च, छ—छाया].

मेज पर रख दे। अव दपती को मोमवत्ती के सामने इस प्रकार से रखें कि इसके छेद से होकर प्रकाश-पुंज एक पर्दे पर गिरे। फिर एक गेंद लेकर

प्रकाश-पुंज के पथ में रख दें। अब गेंद की छाया पर्दे पर बनेगी। छाया गोलाकार होगी और चूंकि प्रकाश-पुंज की किरणें एक बिंदु से होकर आती हैं इसलिए छाया समरूप होगी। चित्र मे मोमबत्ती क से प्रकाश की किरणें दफ्ती के छेद ख बिंदु से होकर निकलती हैं और गोल गेंद ग की छाया पर्दा च-छ पर बनती है। पूरी छाया में एक-सा अंधकार है और इसलिए छाया स्पष्ट है। दूसरे शब्दो में यह छाया समरूप छाया है।

प्रच्छाया (Umbra) तथा उपच्छाया Penumbra)

समरूप छाया के अतिरिक्त और दो प्रकार की छायाएँ बनती हैं, इन्हें प्रच्छाया तथा उपच्छाया कहते है। यदि प्रकाश-पुंज एक बिंदु से आता हो, तो समरूप छाया बनेगी। लेकिन यदि प्रकाश-पुंज एक बिंदु से न आता हो तो प्रच्छाया तथा उपच्छाया बनेगी। अगर मोमबत्ती के सामने एक ऐसे गेंद को रखा जाए जो मोमबत्ती की लौ से आकार मे बड़ा हो, तो हम देखेंगे कि छाया का मध्य भाग पूरी तरह काला है और उसके चारो ओर छाया क्रमशः कम काली होती जाती है, अर्थात् छाया के मध्य भाग में प्रकाश एकदम नही पहुँचता है और उसके चारो ओर थोड़ा-थोड़ा प्रकाश पहुँचता है।
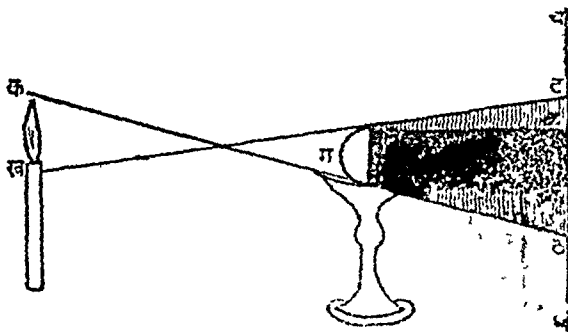
[चित्र ७६—प्रच्छाया तथा उपच्छाया]

चित्र में प्रकाश का उद्गम (स्रोत) क-ख है। उसके सामने उससे बड़ा गेंद ग को रखा गया है। गेंद पीछे परदे पर अपनी छाया बनाती है। छाया मे एक अंश ऐसा है जहाँ कुछ भी प्रकाश नही पहुँचता है और यह अंश संपूर्ण रूप से काला है। छाया के चारों ओर के अंश अपेक्षाकृत कम काला है, क्योंकि यहाँ लौ के किसी-न-किसी भाग से प्रकाश की कुछ किरणें पहुँच जाती हैं। इस

प्रकार से बनी हुई छाया के बीच के पूर्णतः काले अंश को प्रच्छाया और कम काले अंश को उपच्छाया कहते हैं। उपच्छाया के अंदर से लौ को देखने से लौ का कोई-न-कोई अंश अवश्य ही दिखाई देगा।

जब प्रकाश का स्रोत छाया बनानेवाली वस्तु से बड़ा होता है तब वस्तु के पीछे शंकु के आकार का एक प्रच्छाया क्षेत्र होता है जिसमें प्रकाश की किसी किरण का प्रवेश नही होता और जब पर्दा इस क्षेत्र के अंदर रखा जाता है तो उसपर प्रच्छाया प्राप्त होती है और साथ-साथ उपच्छाया भी।
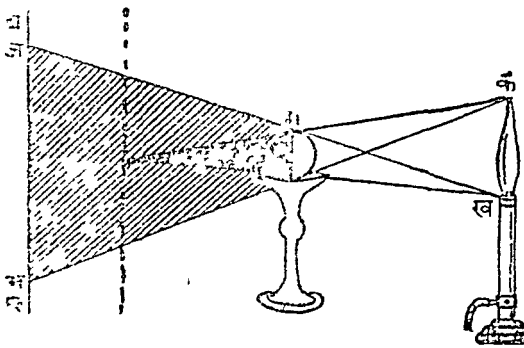
[चित्र ७७—केवल उपच्छाया बनना]

परन्तु जब पर्दा इस प्रच्छाया शंकु के शीर्ष के आगे कही पर रखा जाता है तब उस पर केवल उपच्छाया ही बनती है। चित्र मे प्रकाश का स्रोत क-ख, अपारदर्शक वस्तु ग से बडा है और पर्दा च-छ प्रच्छाया शकु के बाहर हैं इसलिए पर्दे पर केवल उपच्छाया ही बनती है।

ग्रहण (Eclipse)

प्रकाश की किरणो का सरल रेखाओ मे गमन तथा उनके पथ पर अपारदर्शक वस्तु के आ जाने मे छाया का बनना—इन्ही कारणो से ग्रहण होता है।

सूर्यग्रहण

सूर्य प्रकाश का स्रोत है। चद्रमा सूर्य के प्रकाश से प्रदीप्त होता है, वह स्वय प्रदीप्त नही है। अपारदर्शक होने के कारण सूर्य की किरणे उसके

अंदर से पार नही हो सकती, इसलिए उसके पीछे एक छाया-शंकु बनती है। जब सूर्य, चंद्रमा तथा पृथ्वी एक ही सरल रेखा मे आ जाते है और चन्द्रमा, सूर्य तथा पृथ्वी के बीच आ जाता है तब चद्रमा के पीछे जो छाया
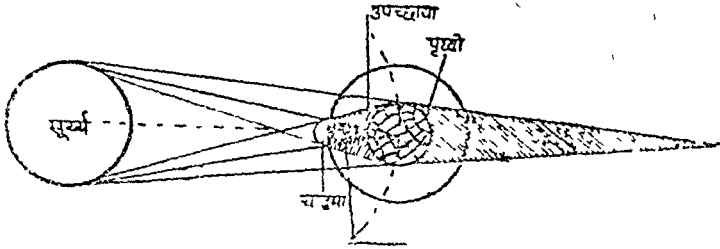
[चित्र ७८—सूर्यग्रहण]

बनती है, वह पृथ्वी पर गिरती है और तब सूर्य-ग्रहण होता है। पृथ्वी का जो अंश प्रच्छाया मे पड़ेगा, वहाँ से सूर्य कतई दिखाई नही देगा। अतः वहाँ पूर्ण सूर्यग्रहण और जिस अश पर उपच्छाया गिरेगी, वहाँ खंड ग्रहण होगा।

चंद्रग्रहण

पृथ्वी भी एक अपारदर्शक वस्तु है और इसका अपना प्रकाश नही है। इसलिए; उसके पीछे भी छाया बनती है। घूमते-घूमते सूर्य, चंद्रमा और
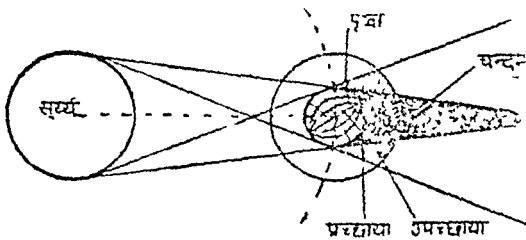
[चित्र ७९—चंद्रग्रहण]

पृथ्वी जब कभी ऐसी स्थिति मे आ जाते है कि पृथ्वी की छाया चंद्रमा पर गिरे तब उस समय चंद्रग्रहण होता है। चद्रमा जब संपूर्ण रूप

से पृथ्वी की प्रच्छाया में आ जाता है, तब पूर्ण चद्रग्रहण होता है। जब चंद्रमा का केवल एक ही अश प्रच्छाया में पड़ता है तब आंशिक चंद्रग्रहण होता है।

चन्द्रग्रहण पूर्णिमा के दिन ही होता है। क्योकि पूर्णिमा के दिन ही सूर्य और चन्द्रमा एक दूसरे के पूर्णतः सम्मुख होते है और पृथ्वी दोनों के बीच में होती है। जिस पूर्णिमा को तीनो एक सरल रेखा पर आ जाते है उस पूर्णिमा को पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है और चन्द्रग्रहण होता है।

अध्याय ११

प्रकाश का परावर्तन

(Reflection of light)

रबर के गेंद को अगर समतल चबूतरे पर लंबरूप से जोर से पटका जाए तो वह चबूतरे से टकरा कर जिस रास्ते से आया था उसी पर ऊपर की ओर लौट जाएगा। लेकिन अगर गेंद को तिरछा करके पटका जाए तो वह जिस रास्ते से आया उसकी विपरीत दिशा मे उतना ही तिरछा होकर लौट जाएगा। ठीक इसी प्रकार प्रकाश की किरण जब दर्पण जैसी चिकनी सतह पर गिरती है तब उससे टकरा कर वापस लौटती है। चिकनी सतहो से टकराकर प्रकाश के इस प्रकार लौटने की क्रिया को प्रकाश का परावर्तन (reflection) कहते है। जो वस्तु जितनी चिकनी और पालिश की हुई होगी, उस पर गिरने वाला किरण-पुंज उतनी ही अच्छी तरह परावर्त्तित होगा। कांच के टुकड़े मे हम अपना चेहरा नही देख सकते है, लेकिन उसके पीछे पारा लेपकर उसे अपारदर्शक बना देने से वह दर्पण बन जाता है और कांच की उस अपारदर्शक सतह से, जो काफी चिकनी होती है, किरणे टकराकर वापस लौट आती है। इस प्रकार हम प्रतिबिंब देख पाते है।

किसी सतह के जिस बिंदु पर किरण गिरती है उसे किरण का आपतन बिंदु (point of incidence) कहते है। जो किरण वहाँ गिरती है उसे आपतित किरण, गिरने की क्रिया को आपतन, टकरा कर लौटने वाली किरण को परावर्त्तित किरण, आपतन बिंदु पर वस्तु की सतह पर खींचे गये लंब के साथ आपतित किरण जो कोण बनाती है उसे आपतन कोण (angle of incidence), उस सतह के साथ, उस बिंदु पर खींचे गये लंब को अभिलंब (normal) और टकरा कर लौटने वाली किरण द्वारा इस अभिलंब के साथ बनाये गये कोण को परावर्त्तन कोण (angle of reflection) कहते हैं।

चित्र मे च-छ सतह पर क-ख किरण आकर ख विंदु पर आपतित होती है। आपतन विंदु ख से टकरा कर किरण ख-ग रेखा पर लौट जाती है। क-ख को आपतित किरण और ख-ग को परावर्त्तित किरण कहा जाता है। च-छ के साथ ख विंदु पर ख-घ लंव है। इसे अभिलंव कहते है। क ख घ कोण को आपतन कोण तथा ग ख घ कोण को परावर्तन कोण कहते हैं। ∠क ख घ तथा ∠ग घ ख समान होते है और क-ख, ख-ग और ख-घ एक ही तल म होते है। इस प्रकार वस्तु के चिकने समतल द्वारा परावर्तन को नियमित परावर्तन कहते है। परावर्तन दो नियमो के द्वारा नियंत्रित होता है। वे ह—
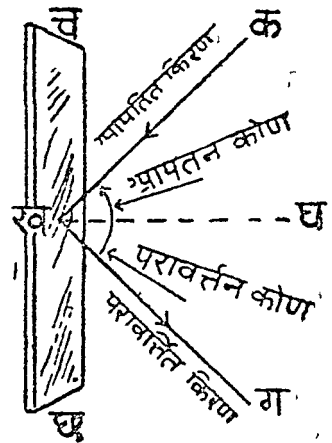
[चित्र ८०—परावर्तन]

(१) आपतित किरण, परावर्त्तित किरण और अभिलंव एक ही तल में रहते हैं और दोनो किरणे विपरीत दिशा मे अभिलंव के दोनो तरफ होती हैं।

(२) परावर्तन कोण हमेशा आपतन कोण के वरावर होता है अर्थात आपतित किरण तथा परावर्त्तित किरण आपतन विंदु पर अभिलंव के साथ समान कोण वनाती है।
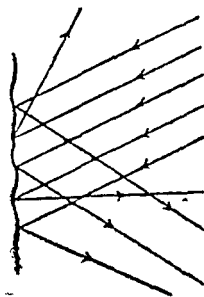
[चित्र ८१—अनियमित परावर्तन]

अगर वस्तु की सतह समतल न होकर ऊँची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी हो तो उस पर गिरने वाली किरणे छितरा जाती है। इस प्रकार के परावर्तन को **अनियमित परावर्तन** कहते हैं। अनियमित परावर्तन से प्रतिविव नही वन पाता है। लेकिन किरणो के छितरा जाने के कारण उसके चारों ओर रोशनी वढ़ जाती है।

प्रतिबिंब

जब एक बिन्दु से चलने वाली किरणों की दिशा परावर्तन द्वारा बदल जाती है जिसके कारण वे किसी दूसरे बिंदु से आती हुई प्रतीत होती हैं, तब उस दूसरे बिंदु को पहले बिंदु का **प्रतिबिंब** (image) कहते हैं।

दर्पण

जिस वस्तु का चिकना तल प्रकाश का नियमित परावर्तन करता है वह दर्पण कहलाता है। इस परिभाषा के अनुसार धातु का चिकना तल या एक प्याले मे रखे हुए स्वच्छ पारे का तल भी दर्पण का काम करता है। इन सभी तलो के पीछे वस्तुओ का प्रतिबिंब बनता है। लेकिन व्यवहार के लिए चिकने समतल शीशे के पीछे पारा का लेप लगा कर दर्पण बनाया जाता है।

वास्तविक (real) तथा आभासी (virtual) प्रतिबिंब

प्रतिबिंब दो प्रकार के होते है। एक तो वह है, जिसे हम सिनेमा आदि के पर्दे पर देखते हैं। इसे वास्तविक (real) प्रतिबिंब कहते हैं। दूसरा वह है जिसे हम आईने में देखते हैं—इसे आभासी (virtual) प्रतिबिंब कहते है।

जब प्रतिबिंबित वस्तु के किसी बिंदु से प्रकाश की किरणे निकल कर, किसी क्रिया से, अन्य किसी स्थान पर वास्तव में एकत्रित हो जाती है, तब उस स्थान पर उस बिंदु का जो प्रतिबिंब बनता है उसे वास्तविक प्रतिबिंब कहते हैं। सिनेमा के फिल्म से निकलकर किरणे जब यंत्र की क्रिया से पर्दे पर एकत्रित होती हैं—उस समय पर्दे पर हम वास्तविक प्रतिबिंब देखते है। वास्तविक प्रतिबिंब साधारणतः उलटा होता है। सिनेना में वस्तु (फिल्म के चित्र) को ही उल्टा रखा जाता है, इसलिए उसका प्रतिबिंब सीधा हो जाता है। इस प्रकार का प्रतिबिंब वस्तु से बड़ा, छोटा या बराबर हो सकता है और पर्दे पर उतारा जा सकता है।

जब प्रतिबिंबित वस्तु के किसी बिंदु से प्रकाश की किरणें निकलकर, किसी क्रिया के फलस्वरूप, ऐसी मालूम होने लगती है कि किरणें प्रतिबिंबित वस्तु के बजाए प्रतिबिंब से ही आ रही हैं, तो ऐसे बने प्रतिबिंब को आभासी

प्रतिबिंब कहते हैं। आभासी प्रतिबिंब पर्दे पर उतारा नही जा सकता और साधारणतः सीधा होता है। वह वस्तु से छोटा या उसके समान होता है। समतल दर्पण से हमेशा आभासी प्रतिबिंब बनता है।

[चित्र ८२—समतल दर्पण मे वस्तु से समान दूरी पर प्रतिबिंब का बनना]

समतल दर्पण द्वारा परावर्तन

किसी वस्तु से चलती हुई किरणें जब समतल दर्पण पर आपतित होकर परावर्त्तित होती है और परावर्त्तन के बाद हमारी आँखों में प्रवेश करती है, उस समय हम उस वस्तु के प्रतिबिंब (image) को देख पाते है। प्रतिबिंब दर्पण के पीछे, उतनी ही दूरी पर जितनी दूरी पर प्रतिबिंबित वस्तु रखी है, सीधा दिखाई देगा। आँखों को ऐसा आभास होता है कि दर्पण से परावर्त्तित किरणें, दर्पण से नही वरन दर्पण के पीछे रखी हुई वस्तु से आ रही हैं।

चित्र में क बिंदु पर एक वस्तु है जिसका प्रतिबिंब हम एक समतल दर्पण मे देखते है। क बिंदु से आपतित किरणे क-ख तथा क-ग, परावर्तन के नियमानुसार, आपतन बिंदु ख और ग पर परावर्त्तित होकर ख-च तथा ग-छ पथो पर लौट आती है। अगर इन परावर्त्तित किरणों को दर्पण के पीछे बढ़ाया जाए तो दोनों परावर्त्तित किरणे दर्पण के पीछे स्थित $क_1$ बिंदु पर जा मिलती है। [यही बिंदु $क_1$ बिंदु का आभासी प्रतिबिंब होता है।] अब, त्रिकोण क ख ग एव त्रिकोण $क_1$ ख ग सब तरह से एक दूसरे के बराबर है। क बिंदु का प्रतिबिंब आईने के पीछे $क_1$ बिंदु पर मालूम पड़ता है। यदि क को उसके प्रतिबिंब $क_1$ से एक सरल रेखा द्वारा मिलाया जाए तो हम पाएगे कि इस रेखा क $क_1$ का मध्य बिंदु ट, ख तथा ग के साथ एक ही सरल रेखा पर है। नापने से मालूम होता है कि क ट तथा $क_1$ ट बराबर है। इससे यह प्रमाणित होता है कि किसी समतल दर्पण में बनने वाला प्रतिबिंब दर्पण की

उतनी ही दूर पीछे दिखलाई पड़ता है, जितनी दूर पर वस्तु दर्पण के सामने रखी होती है। यह प्रतिविव आभासी होता है क्योंकि यहाँ परावर्त्तित किरणें ख-च ग-छ वास्तव मे $क_1$ से नही आ रही है।

निम्नलिलित प्रयोग से भी प्रतिविव के स्थान का निर्धारण और परावर्तन के नियमो का सत्यापन किया जा सकता है.—

प्रयोग—लकड़ी की एक समतल पाटी पर एक ताव कागज को चारो कोने मे पीन लगाकर वैठा दीजिए। कागज के बीच से एक लंबी सरल रेखा क ख खीचिए। एक समतल दर्पण लेकर उसे कागज के ऊपर लंव रूप मे वैठा दीजिए ताकि उसकी कलई की हुई परावर्त्तक सतह क-ख रेखा पर रहे। एक आलपीन ग लेकर दर्पण के सामने गाड़ दीजिए। दर्पण में आलपीन का प्रतिविव दिखाई पडेगा जो दर्पण के पीछे मालूम पड़ेगा। अव घ और च दो आलपीन लेकर उन्हे इस प्रकार गाड़िए कि च के पीछे आँख लगाकर देखने से तीनो आलपीनों के प्रतिविव एक सीध में दिखाई दे। दो और आलपीन ज और झ लेकर ऐसे वैठाइए कि उनके पीछे से देखने पर भी ग और उनके प्रतिविव सीध में दिखाई पड़ें। अव दर्पण को हटा लीजिए और प्रत्येक पीन के स्थानो को चिह्नित कर दीजिए। फिर घ-च ज, और झ से ऐसी सरल रेखाएँ खीचिए कि वे क ख रेखा को क्रमशः त, थ और द विंदुओ मे काटकर आगे वढ़ जाएँ और ठ विंदु पर परस्पर मिल जाएँ। ग को त, थ और द से रेखा द्वारा मिला दीजिए और क-ख पर त-प, थ-फ और द-व लंव खीचिए। ग-ठ को सरल रेखा खींच कर मिला दीजिए जो क-ख रेखा को भ विंदु पर काटेगी।

अव ग-त, ग-थ और ग-द रेखाएँ आपतित किरणों को और च-त, ज-थ और झ-द परावर्त्तित किरणो को दरसाती हैं। त, थ और द आपतन विंदु त-प, थ-फ और द-व अभिलव हैं।

फिर मापकर देखिए तो मालूम पड़ेगा कि :—

आपतन ∠ग त प=परावर्तन ∠प त च

आपतन ∠ग थ फ=परावर्तन ∠फ थ ज

आपतन ∠ग द व=परावर्तन ∠व द झ

माप कर देखने से यह भी मालूम पड़ेगा कि ग-म=ठ-म। परावर्त्तित किरणों को दरसानेवाली रेखाएँ जाकर ठ बिंदु पर मिलती हैं। अत ठ बिंदु आलपीन ग के प्रतिबिंब का स्थान दरसाती है। साथ ही, ये समस्त रेखाएँ
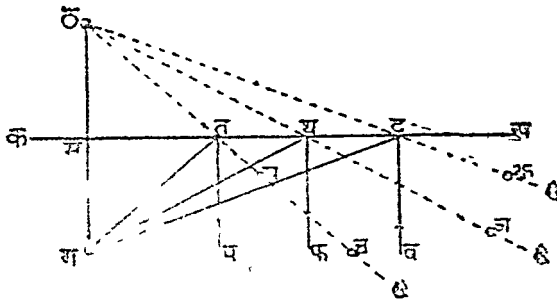
[चित्र ८३—परावर्तन संबंधी प्रयोग]

कागज के एक ही धरातल पर है। इससे प्रकाश के परावर्तन के तीनों नियम प्रमाणित हो जाते हैं —

१. आपतन कोण = परावर्तन कोण।

२. समतल दर्पण से बननेवाला प्रतिबिंब दर्पण के पीछे उतनी ही दूरी पर बनता है जितनी दूरी पर प्रतिबिंबित वस्तु हो।

३ आपतित किरण, परावर्त्तित किरण तथा अभिलंब एक ही तल पर होते हैं।

प्रतिबिंब का पार्श्व-परिवर्त्तन (lateral inversion)

समतल दर्पण से बननेवाले प्रतिबिंब का पार्श्व बदला हुआ होता है। इसमे देखने से हमारा दाहिना हाथ बायाँ तथा बायाँ हाथ दाहिना लगता है। किताब को खोल कर दर्पण के सामने पकड़ने से मालूम पडता है कि उसमें लिखे हुए अक्षर बाएँ के बजाए दाहिने से आरंभ हुए है और उलटे हैं। यह उलटा प्रतिबिंब आपतित किरणों के दिशा-परिवर्त्तन से होता है। इसे **पार्श्व-परिवर्त्तन** (lateral inversion) कहा जाता है। इसलिए छापेखाने के टाइपों पर बने हुए उलट अक्षरों को या टाइप-राइटर के उलटे अक्षरों को समतल आईने के सामने रखकर आसानी से पहचाना जा सकता है। हमारे

शरीर का दाहिना और बायाँ भाग एक समान होने के कारण आईने में यकायक देखने से प्रतिबिम्ब अगल-बगल उलटे हुए प्रतीत नहीं होने पर भी असल में ऐसे ही होते हैं। दाहिना हाथ हिलाने से प्रतिबिम्ब में हमारी बाईं ओर का हाथ हिलने लगेगा, तब ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि प्रतिबिम्ब का पार्श्व-परिवर्तन हुआ है।

दो समान्तर दर्पणों में प्रतिबिम्ब

यदि दो दर्पण आमने-सामने एक-दूसरे के समान्तर रखे जाएँ तो उनके बीच में रखी गई वस्तु के, सिद्धान्ततः अनन्त प्रतिबिम्ब बनते हैं। लेकिन उत्तरोत्तर प्रतिबिम्बों की प्रकाश-तीव्रता क्रमशः घटती जाती है और इसलिए कुछ प्रतिबिम्बों की सीमित संख्या ही देख पाते हैं। वस्तु की प्रकाश-तीव्रता जितनी ही प्रबल होगी, दिख पड़नेवाले प्रतिबिम्बों की संख्या उतनी ही अधिक होगी।

[चित्र ८४—दो समान्तर दर्पणों में प्रतिबिम्ब का बनना]

क-ख और ग-घ दो दर्पणों के बीच में रखा च का प्रतिबिम्ब क-ख दर्पण के पीछे छ पर और ग-घ दर्पण के पीछे ज पर बनते हैं। फिर छ का प्रतिबिम्ब झ सामने के ग घ दर्पण के पीछे ज का प्रतिबिम्ब ट सामने के दर्पण क-ख के पीछे बनते हैं। इस प्रकार से दोनों दर्पणों में उत्तरोत्तर असंख्य प्रतिबिम्ब बनते जाते हैं।

∴ च से दर्पण क-ख की दूरी = छ से दर्पण क-ख की दूरी

छ से दर्पण ग-घ की दूरी = झ से दर्पण ग-घ की दूरी

इसी प्रकार च से दर्पण ग-घ की दूरी = ज से दर्पण ग-घ की दूरी

ज से दर्पण क-ख की दूरी = ट से दर्पण क-ख की दूरी

परस्पर के साथ कोण वनाते हुए दर्पणों पर प्रतिविंव

यदि दो समतल दर्पण परस्पर कोई कोण वनाते हुए रखे हों तो उनके वीच मे रखी हुई वस्तु का, उन दर्पणो में वनते हुए प्रतिविंवो की संख्या दोनों दर्पणों के वीच के कोण पर निर्भर करती है।

क-ख और ग-ख दो दर्पण ख विंदु पर मिलकर क ख ग कोण वनाते हैं। दोनों के वीच मे घ वस्तु रखी हुई है। घ का एक प्रतिविंव च, क-ख दर्पण के पीछे वनता है। च का प्रतिविंव छ सामने दर्पण ग क के पीछे और छ का प्रतिविंव ज सामने के दर्पण क-ख के पीछे वनेगा। इसी प्रकार घ का प्रतिविंव ट, ग-ख दर्पण पर और फिर ट का प्रतिविंव ठ सामने के दर्पण क-ख पर वनेगा। प्रत्येक प्रतिविंव एक ही वृत्त की परिधि पर वनेगा। अंतिम प्रतिविंव दोनो दर्पणो के पीछे वनते है और इसलिए फिर उसका परावर्तन नही हो सकता है। प्रतिविंव की संख्या ३६० ÷ (दोनो दर्पणो के वीच के कोण की माप)—१ होता है। अर्थात् प्रतिविंव की संख्या =

[चित्र ८५—कोण वनाते हुए दर्पणो में प्रतिविंव का वनना]

$$\frac{३६०}{\text{दर्पणो के वीच का कोण}} - १ ।$$
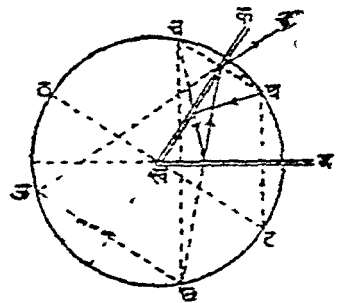
इस प्रकार अगर दोनों दर्पणों के वीच का कोण ३०° हो तो

$$\text{प्रतिविंवों की संख्या} = \frac{३६०}{३०} - १$$

$$= १२ - १$$

$$= ११$$

कोण ६०° होने से प्रतिविंवों की संख्या ५ हो जाएगी। अतः देखते हैं कि कोण जितना छोटा होगा, प्रतिविंवो की संख्या उतनी ही अधिक और जितना वड़ा होगा, प्रतिविंबों की संख्या उतनी ही कम होगी।

दर्पण में मनुष्य का अपना संपूर्ण शरीर देखना

दर्पण की अल्पतम लंबाई में मनुष्य को अपने संपूर्ण शरीर का प्रतिबिंब देखने के लिए यह आवश्यक है कि शरीर के प्रत्येक बिंदु से आती हुई किरण रेखाएँ दर्पण के किसी-न-किसी बिंदु से परावर्तित होकर उसकी आँखों में आ जाए।

[चित्र ८६—मनुष्य का अपना संपूर्ण शरीर देखना]
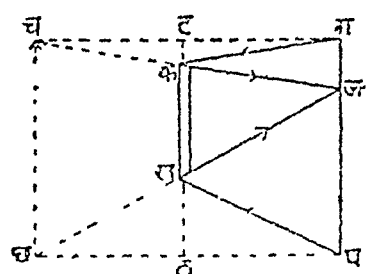
क-ख दर्पण के पीछे ग-घ मनुष्य का संपूर्ण प्रतिबिंब च-छ उसकी आँख ज से दिखाई दे रहा है। अर्थात् ज के हिसाब से ग बिंदु का प्रतिबिंब प्रत्यक्षत. दर्पण के पीछे च बिंदु पर और घ का प्रतिबिंब छ बिंदु पर बनते है। अर्थात् ग बिंदु और घ बिंदु से आती हुई किरणे दर्पण के क और ख बिंदुओं से परावर्त्तित होकर च और छ बिंदुओं से आती हुई मालूम पड़ती है। अत दर्पण की लंबाई कम-से-कम क-ख होनी चाहिए।

दर्पण क-ख के तल के साथ ग-ट और घ-ठ लंब खीचिए और इन्हे क्रमश. च और छ तक बढा दीजिए।

△ ग च ज मे च ट - ग ट, च क = ज क अर्थात् क, च ज का मध्य बिंदु है।

△ ज च छ मे ज ख = छ ख, अर्थात् ख, ज छ रेखा का मध्य बिंदु है।

क-ख = ½ च-छ, अर्थात् क-ख, च-छ का आधा है।

लेकिन च-छ　ग-घ

∴ क ख, ग-घ का आधा है।

इस प्रकार हम देखते है कि मनुष्य के लिए अपने संपूर्ण शरीर का प्रतिबिंब देखने के लिए कम-से-कम उसकी आकृति की आधी लंबाई के समतल दर्पण की आवश्यकता होती है। मनुष्य दर्पण के पास रहे या दूर, इससे छोटे समतल दर्पण मे अपने संपूर्ण शरीर को स्वयं नही देख सकता है।

परिदर्शी (Periscope)

परिदर्शी की सहायता से आड़ मे छिपकर ऊँची दीवार आदि के नीचे रहकर दीवार के उस पार के दृश्य को देखा जा सकता है। दो समतल दर्पणों द्वारा परावर्तन की क्रिया मे यह संभव होता है।
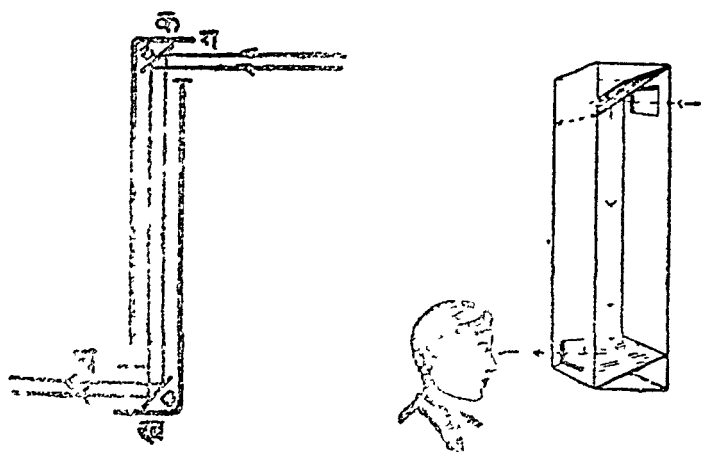
[चित्र ८७—परिदर्शी]

लकडी या धातु-निर्मित लंबी नली के प्रत्येक सिरे पर एक-एक दर्पण उसकी दीवार के साथ ४५° के कोण पर इस प्रकार लगाये जाते है कि वे परस्पर समातर हो। आवश्यकतानुसार दर्पणो के बीच की दूरी घटाई-बढाई जा सकती है। नली के ऊपर तथा नीचे, दोनो सिरो पर विपरीत दिशाओ मे दर्पणो के सम्मुख दो खिड़कियाँ होती ह।

क-ख नली है, जिसमे ग और घ खिडकियाँ बनी हुई है। दोनो खिड़कियों के पीछे च और छ दो दर्पण नली की दीवार के साथ ४५° कोण बनाते हुए और परस्पर समातर मे इस प्रकार से लगे हुए हैं कि प्रत्येक की परावर्त्तक सतह नली की खिडकी की ओर है। प्रतिबिंबित वस्तु मे आती हुई किरणे ऊपर के च दर्पण पर गिरती हैं। दर्पण ४५° कोण पर रखे होने के कारण किरणो का आपतन कोण ४५° और परावर्तन कोण भी ४५° होता है। इस प्रकार किरणे कुल ९०° से मुड़कर सीधे नीचे की ओर चली जाती है और फिर वहाँ ४५° कोण से लगा हुआ दर्पण छ पर ४५° आपतन कोण और ४५° परावर्तन कोण बनाकर तथा ९०° मे मुडकर नीचे की खिड़की से

सीधे वाहर निकल आती है। अत. नीचे की खिडकी से देखने पर छ दर्पण पर घ दर्पण द्वारा प्रतिविंवित वस्तु दिखाई देती है।

इस यन्त्र की सहायता से पनडुब्बी जहाज पानी के नीचे रहकर भी ऊपर की चीजें देख लेता है। घेरे के अदर होनेवाले खेल आदि देखने के लिए साधारण परिदर्शी का व्यवहार किया जाता है।

वहुरूपदर्शी (Kaleidoscope)

वहुरूपदर्शी वच्चो का एक खिलौना होने पर भी चित्रकार नाना प्रकार की डिजाइन वनाने के लिए इसे काम मे लाते है।

नत दर्पणो से उत्तरोत्तर परावर्तन के सिद्धात के आधार पर इसे वनाया जाता है। तीन लवे तथा कम चौडे दर्पणो को परस्पर ६०° के कोण पर झुकाकर जोड़ दिया जाता है और इस प्रकार से वने हुए त्रिभुजाकार खोल के एक सिरे को घिरे हुए कांच मे वद कर दिया जाता है। फिर खोल के अंदर कुछ रग-विरगे कांच के छोटे-छोटे टुकड़े डालकर उसे दफ्ती की एक नली के अदर रख दिया जाता है और इस नली के दूसरे मुँह पर बीच में पतला गोल कांच लगा हुआ ढक्कन लगा दिया जाता है। कांच की इस खिड़की के पास आँख लगाकर देखने पर, अंदर एकत्रित रगीन टुकड़ो का उत्तरोत्तर वना हुआ पाँच प्रतिविंव एक साथ देखने को मिलता है। वहुरूपदर्शी को घुमाने मे एकत्रित टुकडों की सजावट मे परिवर्त्तन होकर नाना प्रकार की डिजाइने वनती रहती है।

वक्रतल दर्पण

वक्रतल दर्पण कई तरह के होते है लेकिन जिसका साधारणतया व्यवहार होता है। वह गोलीय दर्पण है। यह धातु या कांच का वना हुआ होता है और दो प्रकार का होता है—अवतल दर्पण (Concave mirror) और उत्तल दर्पण (convex mirror)। अवतल दर्पण मे प्रकाश का परावर्तन दर्पण की गोलीय सतह के पचके हुए तल या अवतल से होता है। उत्तल दर्पण मे प्रकाश का परावर्तन इसके उभरे हुए तल या उत्तल से होता है।

वक्रतल दर्पण, चाहे वह अवतल हो या उत्तल, उसकी सतह किसी एक गोलीय-पृष्ठ का खंड होता है, जिसके केंद्र को गोलीय दर्पण का वक्रता केंद्र (centre of curvature) कहते है। दर्पण के गोलीय पृष्ठ (जो वृत्ताकर होता है) के मध्य विंदु या केन्द्र को दर्पण का ध्रुव (pole of mirror) और इस विंदु को वक्रता केंद्र से मिलाने वाली रेखा को मुख्य अक्ष (Principal axis) कहते हैं। मुख्य अक्ष के समातर चलनेवाली किरणे, उस दर्पण द्वारा परावर्त्तित होकर मुख्य अक्ष के जिस विंदु पर केन्द्रित होकर गुजरती है उसे दर्पण का मुख्य-फोकस (principal focus) तथा मुख्य-फोकस से ध्रुव की दूरी को फोकस दूरी (focal length) कहते हे।

मान लिया जाए कि क ख ग एक अवतल दर्पण है जो एक बड़े गोलीय पृष्ठ का एक खंड है। गोले का केंद्र च है। इसलिए च वक्रतल दर्पण का वक्रता केंद्र (centre of curvature) है। दर्पण की वक्र सतह का मध्य विंदु ख दर्पण का ध्रुव है तथा च ख वक्रता-व्यासार्द्ध (radius of curvature) और साथ ही मुख्य-अक्ष है तथा अन्य सीधी रेखा, जो केवल वक्रता केंद्र च से गुजरे, किंतु ध्रुव ख से नही, उन्हे अप्रधान अक्ष (secondary axis) कहते हैं। मुख्य अक्ष के समातर चलने वाली किरणे अवतल दर्पण द्वारा परावर्त्तित होकर मुख्य अक्ष के ज विंदु पर केंद्रित होती है। यह दर्पण का मुख्य-फोकस (principal focus) है। तथा मुख्य-फोकस से ध्रुव की दूरी ज ख फोकस-दूरी (focal length) है।
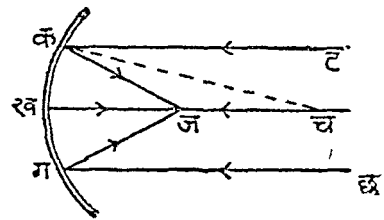
[चित्र ८८—अवतल दर्पण द्वारा परावर्तन]

जव ट विंदु की किरण दर्पण के मुख्य-अक्ष के समांतर रूप से आकर दर्पण के क विंदु पर पड़ती है तव परावर्तन के नियमानुसार परावर्त्तित होकर मुख्य-फोकस ज विंदु पर मुख्य अक्ष से मिलती है। रेखा च-क अभिलव है, आपतन कोण ट क च है जो परावर्तन कोण च क ज के वरावर होगा। वक्रता-केंद्र च से किरण ख विंदु से परावर्त्तित होकर अपने पूर्व पथ से ही लौट आती है और ज विंदु पर परावर्त्तित किरणों से मिलती है। इस विंदु पर परावर्त्तित

किरणें वास्तव मे मिलती है इसलिए वह वास्तविक प्रतिबिंब बनता है। इस प्रकार ट बिंदु का प्रतिबिंब ज पर ही होगा।

अवतल दर्पण मे किसी वस्तु के प्रतिबिंब उस वस्तु की स्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के बनते हैं।

उदाहरण के लिए—

(१) जब वस्तु अनंत दूरी पर होती है—अनंत दूरी से आनेवाली किरणें मुख्य अक्ष के समातर होती है। अवतल दर्पण पर ये सब परावर्तित होकर मुख्य फोकस पर केंद्रित होती है। इस कारण प्रतिबिंब आकार मे बहुत छोटा, उलटा तथा वास्तविक होता है।
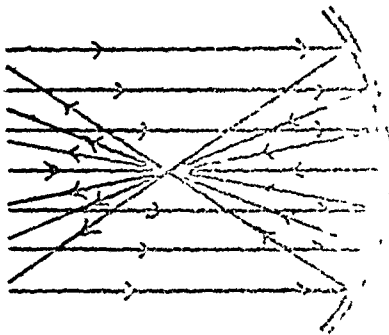
[चित्र ८९—अवतल दर्पण पर अनंत दूरी से आनेवाली किरणो का परावर्तन]

(२) जब वस्तु वक्रता-केंद्र के बाहर होती है—वक्रता केंद्र के बाहर से आनेवाली किरणों का प्रतिबिंब मुख्य फोकस और वक्रता केंद्र के मध्य मे बनेगा तथा छोटे आकार का और वास्तविक होगा।

चित्र मे ट-ठ एक वस्तु है जो अवतल दर्पण क ख ग के वक्रता-केंद्र च के बाहर है। ट क किरण मुख्य अक्ष के समातर आकर क बिंदु पर दर्पण से मिलती है। फिर परावर्तित किरण क द के रूप मे मुख्य फोकस ज बिंदु को छू कर लौटती है। एक दूसरी किरण ट ग वक्रता-केंद्र से होकर दर्पण के ग बिंदु पर समकोण बनाकर आपतित होती है और अपने पूर्व पथ पर लौट जाती है। ये दोनो परावर्तित किरणें क द तथा
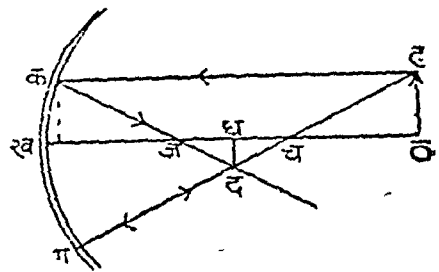
[चित्र ९०—वक्रता-केंद्र के बाहर से आती हुई किरणो का परावर्तन]

ग ट, द बिंदु पर ट का प्रतिबिंब बनाती है। वस्तु का अन्य बिंदु ठ मुख्य अक्ष पर होने के कारण, उसका प्रतिबिंब घ बिंदु पर बनेगा। अब द घ को रेखा खींचकर मिला दिया जाए तो यह द-घ, ट ठ का प्रतिबिंब होगा तथा यह वास्तविक, उलटा और छोटा होगा।

(३) जब वस्तु वक्रता केंद्र पर होती ही है—वस्तु अगर दर्पण के वक्रता केंद्र पर ही हो तो प्रतिबिंब भी वक्रता केंद्र पर ही बनेगा। प्रतिबिंब आकार में समान, उलटा तथा वास्तविक होगा।

[चित्र ९१ – वक्रता- केंद्र पर स्थित वस्तु का प्रतिबिंब]

चित्र में ट क किरण मुख्य अक्ष के समांतर रूप में आकर क बिंदु पर परावर्तित होकर क द रेखा से लौटती है। एक दूसरी किरण ट ग मुख्य फोकस ज से होकर दर्पण के ग बिंदु पर आपतित होती है तथा ग द के रास्ते से लौटती है। ये दोनो परावर्तित किरणें द बिंदु पर एक दूसरे को काटती है। इसलिए द बिंदु पर ट बिंदु का प्रतिबिंब बनेगा। ठ बिंदु का प्रतिबिंब ऊपर दिए नियमानुसार घ बिंदु पर बनेगा। इस प्रकार प्रतिबिंब वक्रता-केंद्र पर ही बनेगा तथा समान आकार का तथा उलटा होगा।

(४) वस्तु अगर वक्रता-केंद्र तथा मुख्य फोकस के बीच में होती है—तो प्रतिबिंब वक्रता-केंद्र से बाहर बनेगा। प्रतिबिंब आकार में आवर्धित, वास्तविक और उलटा होगा।

इस अवस्था में ट क किरण मुख्य अक्ष के समांतर आकर क विन्दु पर परावर्तित होकर क ज रेखा से लौटती है। एक दूसरी किरण रेखा ट घ, घ बिंदु पर लम्ब रूप से गिरकर परावर्तित होकर अपने पूर्व पथ से ही लौट जाती है। ये दोनो परावर्तित किरणे द विन्दु पर एक दूसरे को काटती हैं।

अतः ट विंदु का प्रतिबिंब द विंदु पर होगा तथा ठ मुख्य अक्ष पर होने के
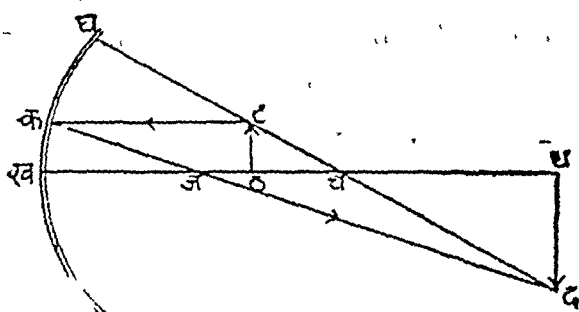
[चित्र ९२—वक्रता-केन्द्र तथा मुख्य फोकस के बीच स्थित वस्तु का प्रतिबिंब]

कारण उस विंदु का प्रतिबिंब थ विंदु पर होगा। इसलिए प्रतिबिंब आकार मे बड़ा, वास्तविक और उलटा होगा।

(५) जब वस्तु मुख्य फोकस पर होती है—वस्तु अगर मुख्य फोकस पर हो तो प्रतिबिंब अनंत दूरी पर बनेगा। इस अवस्था में जैसे चित्र में दिखाया गया है, आपतित किरणें दर्पण के क और घ विंदु पर परावर्त्तित
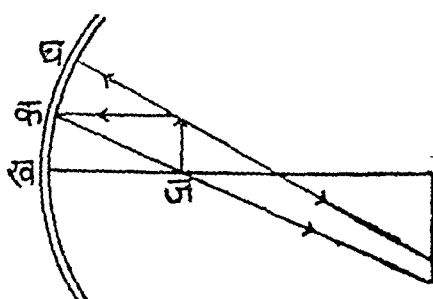
[चित्र ९३—मुख्य फोकस पर स्थित वस्तु का प्रतिबिंब]

होकर जब लौटती हैं तब परस्पर लगभग समांतर हो जाती हैं। इस कारण प्रतिबिंब अनन्त दूरी पर बनता है। प्रतिबिंब बहुत ही बड़ा होता है।

(६) वस्तु अगर मुख्य फोकस तथा ध्रुव के बीच में रहे—तो प्रतिबिंब आभासी, सीधा और आवर्धित होता है।
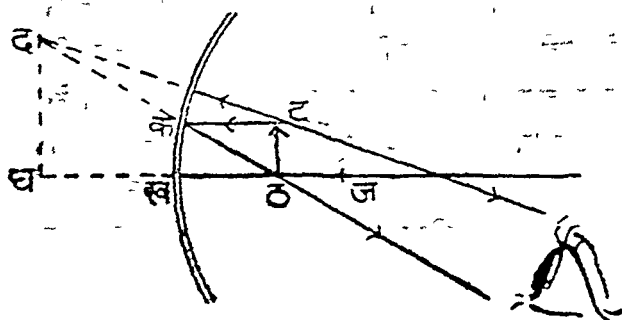
[चित्र ९४—मुख्य फोकस तथा ध्रुव के वीच स्थित वस्तु का प्रतिविंव]

उत्तल दर्पण द्वारा परावर्तन

इस दर्पण में परावर्तन तल उभरा हुआ होता है। इसमें प्रतिविंव हमेशा वस्तु से छोटा होता है। वस्तु जितनी दूर होगी प्रतिविंव उतना ही छोटा होगा। जव वस्तु दर्पण से सटी हो तव उसका प्रतिबिंब उसी के वरावर होगा। उत्तल दर्पण मे प्रतिविंव हमेशा आभासी और सीधा होता है। उत्तल दर्पण मे विस्तृत कोण में स्थित और वहुत दूर की वस्तुओं के भी
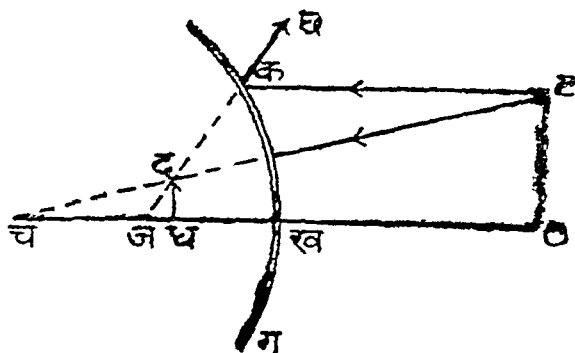
[चित्र ९५—उत्तल दर्पण द्वारा परावर्तन]

प्रतिविंव साफ दीख पड़ते हैं। इसलिए मोटर-चालक की वगल में इस प्रकार का एक दर्पण लगा रहता है जिसमें चालक पीछे की चीजें देख पाते हैं।

चित्र में किरण ट क मुख्य अक्ष के समांतर दर्पण के क बिंदु पर आपतित होती है और परावर्त्तन के बाद क छ पथ पर लौट जाती है। ट बिंदु से निकलने वाली दूसरी किरण दर्पण पर लंब रूप से गिरती है और परार्वात्तत होकर अपने पूर्व पथ से लौटती है। इन दोनों परावत्तित किरणों को दर्पण के पीछे रेखा खींचकर मिलाया जाए तो द विंदु पर दोनों रेखाएँ एक दूसरे को काटती हैं, इसलिए किरणें द विंदु से आती हुई प्रतीत होती हैं। अतः द विंदु पर ट विंदु का आभासी प्रतिबिंब बनता है। ठ मुख्य अक्ष पर होने के कारण द घ, ट ठ का प्रतिबिंब होगा। यह आभासी, सीधा तथा आकार में वस्तु से छोटा होगा।

प्रकाश का वर्तन या अपवर्तन

(Refraction of light)

प्रकाश की किरण जव एक पारदर्शक माध्यम से दूसरे पारदर्शक माध्यम में प्रवेश करती है, तव दोनो के संस्पर्श तल पर वह अपने पथ से विचलित हो जाती है। एक माध्यम से दूसरे माध्यम मे जाते समय प्रकाश की किरण के पथ-परिवर्त्तन को वर्तन या अपवर्तन (refraction) कहते हैं। दूसरे माध्यम मे पथच्युत किरण को **वर्तित किरण** कहा जाता है। किरण के वर्तन की दिशा दोनो माध्यमो के घनत्वों की भिन्नता पर निर्भर करती है , लेकिन लंव रूप से गिरने वाली किरण एक माध्यम से दूसरे माध्यम मे प्रवेश करने पर पथच्युत अर्थात् वर्तित नही होती है।

किरण जव विरल माध्यम से घने माध्यम मे प्रवेश करती है, तव वह आपतन विंदु से वर्त्तक सतह पर खींचे गये अभिलंव की ओर मुड़ जाती है। इसी प्रकार जव घने माध्यम से किरण विरल माध्यम में प्रवेश करती है, तव वह अभिलंव से दूर हट जाती है। वर्तित किरण अभिलंव के साथ जो कोण वनाती है उसे **वर्तन कोण** कहते हैं।

काँच का घनत्व वायु से अधिक है। इसलिए जव प्रकाश की किरण वायु से समांतर पार्श्वों वाली काँच की पट्टी के अंदर प्रवेश करती है तव वह वर्तित होकर अभिलंव की ओर मुड जाती है। फिर यह किरण जव काँच के दूसरे पार्श्व से निकल कर वायु में आती है, तव वह फिर से वर्तित होकर अभिलव से दूर हट जाती है और अपने प्रथम पथ के समातर पथ ग्रहण करती है। प्रकाश का वेग भिन्न-भिन्न माध्यमों में भिन्न-भिन्न होने के कारण ही एक माध्यम से दूसरे माध्यम में जाते समय प्रकाश की किरणें मुड़ जाती है।

चित्र मे किरण क-ख वायु मे चलकर काँच के माध्यम ट-ठ के अंदर प्रवेश करती है। आपतन विंदु ख से काँच की सतह पर ग-ख अभिलंव खींचा

गया है और उसे घ तक बढ़ा दिया गया है। किरण क-ख का एक न्यून अंश काँच की सतह से परावर्त्तित होकर ख-च दिशा मे चली जाती है। शेष अंश काँच के अदर वर्त्तित होकर अभिलंब ग-ख की ओर झुककर ख-छ दिशा में जाता है। अर्थात् इस अवस्था मे आपतन कोण क-ख-ग, वर्तन कोण घ-ख-छ से बड़ा होता है।

[चित्र ९६—प्रकाश का वर्त्तन]
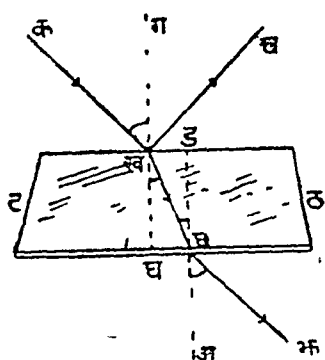
काँच के माध्यम से अल्प घन वायु के माध्यम मे फिर से प्रवेश करते समय किरण ख-छ, छ विंदु से वर्त्तित होकर उस विंदु पर खींची गई अभिलंब रेखा छ-ज से दूर छ-झ दिशा मे झुक जाती है। यदि काँच की सिल की यह सतह पहली सतह के समांतर हो तो किरण की यह नई दिशा उसकी प्रारंभिक दिशा क-ख के समातर होती है। इस समय आपतन कोण ख-छ-ड, वर्तन कोण ज-छ-झ से छोटा होता है।

वर्तन के नियम

प्रकाश की किरणो का वर्तन भी परावर्तन जैसे कुछ नियमो के अनुसार होता है। निम्नलिखित नियमों के अनुसार प्रकाश का वर्त्तन होता है—

(१) आपतित किरण, वर्त्तित किरण तथा आपतन विंदु से सामान्य सतह पर खीचा हुआ अभिलंब एक ही तल पर रहते हैं।

(२) आपतन कोण की ज्या (sin) तथा वर्तन कोण की ज्या का अनुपात एक स्थिरांक (constant) होता है। इस अंक को आवर्त्तनांक (refractive index) कहते हैं।

प्रयोग—एक लकड़ी की तख्ती के ऊपर एक ताव कागज को पीन से बैठा दीजिए। एक मोटा, आयताकार समांतर और समतल पार्श्वों वाली काँच की सिल लेकर उसे इस कागज पर रखिए और पेंसिल से उसके चारो ओर कागज पर उसकी सीमा रेखा खीच दीजिए। इस प्रकार से क-ख-ग-घ एक आयताकार चतुर्भुज बनेगा। काँच के एक ओर दो आलपीनो को दो ऐसे

विंदुओं च और छ पर बैठा दीजिए कि उनको मिलाती हुए तिरछी सरल रेखा कांच को ज विंदु पर स्पर्श करे। अब कांच की दूसरी ओर आंख रख कर च और छ के प्रतिविंबो को देखते हुए उनकी सीध में दो और आलपीन ट और ठ विंदुओ पर ऐसी जगह बैठा दीजिए कि चारो आलपीनें च, छ, ट और ठ एक ही सरल रेखा में दिखाई पड़ें। यह सरल रेखा कांच के एक ओर ज तथा दूसरी ओर ड विंदु पर स्पर्श करती है।

कांच को उठाकर च-छ-ज, ट-ठ-ड और ज-ड विंदुओं को सरल रेखा खींच कर मिला दीजिए। क-ख रेखा पर ज विंदु से ज झ लंव खींचिए और उसे नीचे की ओर ढ तक वढ़ा दीजिए। इस प्रकार से हम पाते हैं कि च-छ किरण ज विंदु पर कांच पर आपतित होकर कांच के अंदर ज-ड दिशा में वर्त्तित होती है और फिर कांच के वाहर निकलते समय ड-ट दिशा में वर्त्तित हो जाती है। अर्थात् च-छ आपतित किरण, ज आपतन विंदु, ज-ड कांच के अंदर वर्त्तित किरण और ड-ट कांच से फिर से वायु में जाते समय वर्त्तित किरण है। ज-झ अभिलंव च-ज-झ आपतन कोण, ड-ज-ढ वर्तन कोण हैं।

वायु और कांच दो विभिन्न घनत्वो के माध्यम है। इसलिए हम नाप कर पाते हैं कि आपतन कोण च-ज-झ तथा वर्तन कोण ड-ज-ढ समान नही है।

कांच का घनत्व वायु से अधिक है, इसलिए यहाँ वर्त्तित किरण ज-ड अभिलंव की ओर झुक गई है। ड विंदु पर अभिलंव खीचने से भी हम देखेंगे कि आपतन कोण और वर्तन कोण समान नही है और सघन माध्यम से विरल माध्यम मे चले जाने के कारण कांच मे निकलते ही किरण अभिलंव से दूर हट गई है।

साथ ही, इस प्रयोग से यह प्रमाणित हो जाता है कि आपतित किरण च-ज आवर्त्तित किरण ज-ड तथा अभिलंब ज-झ सभी एक ही तल पर है।

इस प्रकार कई भिन्न-भिन्न आपतित किरणो के आपतन कोण की ज्या तथा उनके वर्तन कोण की ज्या के अनुपातो को देखने से हमें मालूम हो जाएगा कि वह एक निश्चित स्थिरांक है जो आपतन तथा वर्तन कोण पर निर्भर नही करता है वल्कि माध्यमों पर निर्भर करता है। अर्थात्

$$\frac{\text{आपतन कोण की ज्या}}{\text{आवर्तन कोण की ज्या}} = \text{आवर्तनाक}$$

और यह आवर्तनांक दो निश्चित माध्यमों के लिए एक स्थिराक होता है। लेकिन, विभिन्न दो माध्यमों के लिए वर्तनांक विभिन्न होंगे।
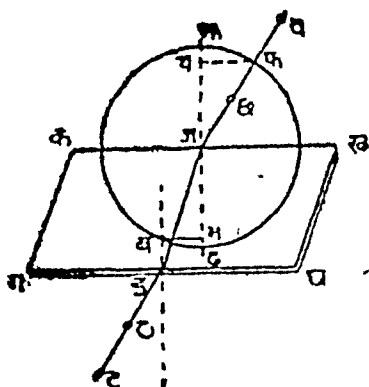
[चित्र ९७—वर्तन के नियम को सिद्ध करना]

चित्र के अनुसार वायु के सापेक्ष काँच का आवर्तनांक निकालने के लिए—

$$\frac{\text{ज्या } \angle \text{झ ज च}}{\text{ज्या } \angle \text{ड ज ढ}} \quad \text{अर्थात्} \quad \frac{\text{ज्या } \angle \text{प ज फ}}{\text{ज्या } \angle \text{ब ज भ}}$$

प-ज-फ और ब-ज-भ दो समकोण त्रिभुज हैं। इसमे क्रमशः प-फ और ब-भ लंब और ज फ तथा ज ब कर्ण है।

$$\therefore \text{ज्या प ज फ} = \frac{\text{प फ}}{\text{ज फ}} \text{ और}$$

$$\text{ज्या ब ज भ} = \frac{\text{ब भ}}{\text{ज ब}}$$

$$\therefore \frac{\text{ज्या प ज फ}}{\text{ज्या ब ज भ}} = \frac{\text{प फ}}{\text{ज फ}} \div \frac{\text{ब भ}}{\text{ज ब}}$$

$$= \frac{\text{प फ}}{\text{ज फ}} \times \frac{\text{ज ब}}{\text{ब भ}}$$

$$\because \text{चित्रानुसार ज फ} = \text{ज ब}$$

$$\therefore \text{काँच का आवर्तनांक} = \frac{\text{प फ}}{\text{ब भ}}$$

से विरल माध्यम वायु में आती हैं ; वैसे ही अपने पथ से मुड़ जाती हैं और आँखों को प्रतीत होने लगता है कि वस्तु इन मुड़ी हुई किरणों की सीध में है। लेकिन, छड़ को सीधा लंब रूप से डुवाने पर छड़ मुड़ी हुई तो नहीं दीख पड़ेगी, लेकिन पानी में डूबे हुए अंश की लंबाई वास्तविक लंबाई से कम मालूम पड़ेगी।

प्रयोग—एक कटोरी में एक रुपया रखकर उसे आँखों के सामने इस प्रकार पकड़िए कि रुपया कटोरी के किनारो द्वारा आँखों से वस ओझल भर रहे। अब धीरे-धीरे कटोरी में पानी डालकर उसे भर देने से वह रुपया दिखाई देने लगता है। क्योंकि रुपये से आनेवाली किरणें पानी से निकलते समय मुड़ जाती हैं और रुपया ऊपर उठा हुआ दिखाई पड़ता है। इस प्रकार पानी के अंदर की चीजें हमें असली गहराई पर न दिखाई देकर कुछ कम गहराई पर स्थित दिखाई देती हैं।

शून्य अंतरिक्ष से वायुमंडल में प्रवेश करते समय किरणों का आवर्तन होता है और इस कारण आकाशीय पिंडों को हम उनके वास्तविक स्थान पर नहीं देखते हैं। तारे आदि अपने वास्तविक स्थान से कुछ ऊपर दीख पड़ते हैं और क्षितिज के ऊपर आने के कुछ पहले और क्षितिज से नीचे जाने के कुछ बाद तक हम सूर्य को देख पाते हैं।

संपूर्ण परावर्तन (**Total reflection**)

जब सघन माध्यम से प्रकाश की किरणें विरल माध्यम में प्रवेश करती हैं, उस समय आपतन कोण की अपेक्षा आवर्तन कोण अधिक बड़ा होता है। आपतन कोण जितना बड़ा होगा आवर्तन कोण भी उस अनुपात में बड़ा होगा। इस प्रकार आपतन कोण को बढ़ाते रहने पर ऐसी एक स्थिति पैदा होगी जब आवर्तन कोण इतना बड़ा होगा (यानी ९०° और इससे अधिक) कि किरणें आवर्त्तित होकर विरल माध्यम में न जाकर उस सघन माध्यम में ही लौट आएँगी। ऐसी अवस्था को संपूर्ण परावर्तन कहते हैं। जब बढ़ते-बढ़ते आवर्तन कोण ९०° हो जाता है उस समय सघन माध्यम में उसके आपतन कोण को **क्रांतिक कोण** (Critical angle) कहते हैं। संपूर्ण परावर्तन के समय जो प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है वह काफी द्युतिमान होता है।

एक परखनली का आधा पानी से भर कर उसे जल से भरे बीकर में रख देने से परखनली का वह अंश जिसमें केवल वायु है, काफी चमकीला मालूम देता है। ऐसा होने का कारण यह है कि पानी से परखनली मे प्रवेश करती हुई किरणों का परखनली के अंदर की वायु की सतह पर संपूर्ण परावर्तन हो जाता है और पानी तथा वायु को पृथक् करनेवाली सतह एक बहुत अच्छे दर्पण का काम करने लगती है। हीरा का आवर्त्तनांक २·२ है और इसका क्रांतिक कोण बहुत छोटा है। इसलिए हीरे के अंदर प्रकाश का बार-बार संपूर्ण परावर्तन होता है जिसके कारण हीरा द्युतिमान दिखाई पडता है।
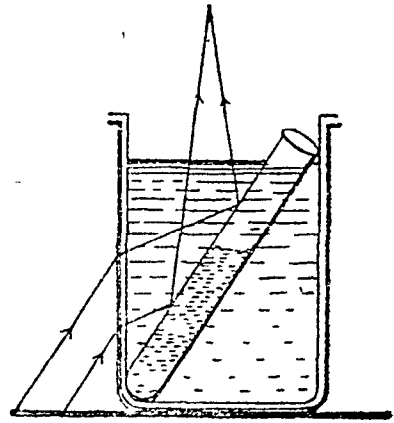
प्रकाश के संपूर्ण परावर्तन के कारण भी कई प्रकार के दृष्टि-भ्रम होते है।

[चित्र ९९—संपूर्ण परावर्तन]

मरीचिका (**mirage**)

मरुस्थलो मे मृग-तृष्णा या मरीचिका (mirage) किरणों के संपूर्ण परावर्तन के कारण ही दिखाई पड़ती है। गरमी के कारण मरुस्थलो की बलुआही जमीन अत्यधिक तप्त हो जाती है और जमीन के निकट की वायु भी तप्त होकर फैल कर हलकी होकर प्रसारित हो जाती है और उसका घनत्व कम हो जाता है। जैसे-जैसे ऊपर जाया जाता
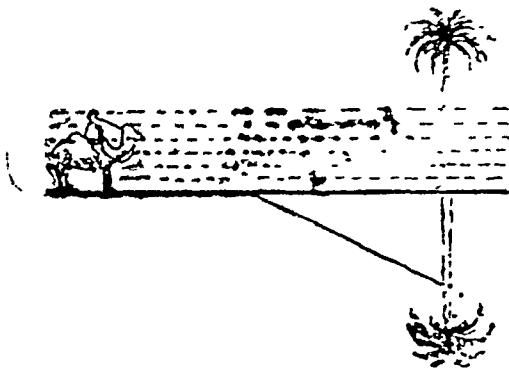
[चित्र १००—मरीचिका]

है वैसे-वैसे वायु का तापमान कम होता जाता है और घनत्व बढ़ता जाता है। इस प्रकार भूमि के पास ही वायु मे विभिन्न घनत्व के कई स्तर बन जाते हैं। दूर स्थित पेड़-पौधों से आनेवाली तिरछी किरणें वायु के क्रमश: घटते हुए घनत्व वाले स्तरो से आवर्तित होती हुई अंत में किन्ही दो स्तरो की सामान्य सतह पर क्रांतिक कोण पर आपतित होती हैं, जहाँ उनका संपूर्ण परावर्तन हो जाता है। पेड़-पौधों का उलटा प्रतिविंव देख कर यात्रियों को ऐसा भ्रम होता है कि ये पेड़-पौधे किसी तालाव या जलाशय के किनारे पर हैं।

ठंढे इलाको मे पानी की सतह के ऊपर की वायु सबसे अधिक ठंढी और सघन होती है और ज्यो-ज्यो ऊपर जाते हैं त्यो-त्यो ठंढक और घनत्व घटता जाता है। इसलिए ऊपर के स्तरो से किरणो का संपूर्ण परावर्त्तन होता है
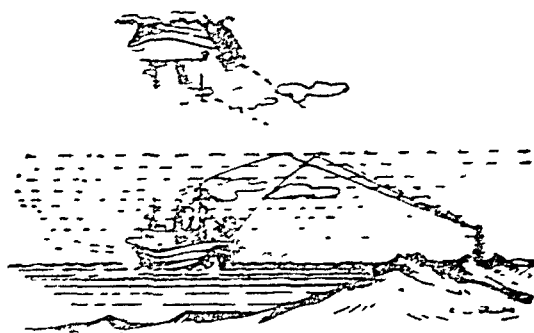
[चित्र १०१—आकाश में जहाज आदि का उलटा प्रतिबिंब]

और समुद्र-स्थित नाव, जहाज आदि का उलटा प्रतिविंव आकाश मे लटकता दिखाई पड़ता है।

प्रिज्म (Prism)

त्रिभुजाकार आधार पर तीन आयताकार तलो से मिलकर बने हुए किसी पारदर्शक ठोस को प्रिज्म कहते है। प्रिज्म के जिस कोर पर कोई भी दो आयताकार तल मिलते हैं उन्हे प्रिज्म का कोर (edge of the prism) कहते हैं। किन्हीं दो आयताकार तलो के बीच के कोण को प्रिज्म का

कोण (angle of the prism) कहते हैं। प्रिज्म का आधार (base) तथा उसके समांतर ऊपर का तल त्रिभुजाकार होते है।

प्रिज्म से गुजरती हुई किरणो का दो वार आवर्तन होता है। चित्र मे ख क ग एक प्रिज्म का अनुप्रस्थ परिच्छेद है। क प्रिज्म का कोर और ∠ख क ग प्रिज्म का कोण है। च त किरण प्रिज्म के क ख तल के त विंदु पर आपतित होती है तथा आवर्तित होकर प्रिज्म के अंदर त र के पथ पर चलती है। र पर प्रिज्म के क ग तल पर फिर से आवर्तित होकर र छ पथ पर वाहर निकल आती है। इस तरह प्रिज्म में से गुजरती हुई किरण का दो वार आवर्तन होता है। प्रिज्म के वे दो तल, क ख और क ग, जहाँ से किरण भीतर जाती है और वाहर निकलती है, आवर्तक पार्श्व कहलाते हैं। अगर आपतित किरण च त को ल तक रेखा खीच कर प्रिज्म के भीतर वढ़ा दिया
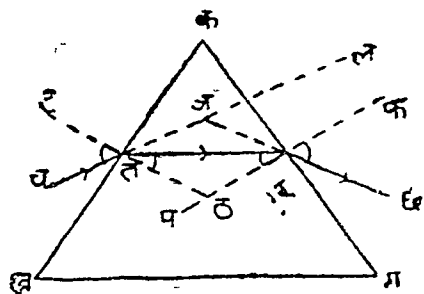
[चित्र १०२—प्रिज्म में वर्तन]

जाए तथा निर्गत किरण को भी प्रिज्म के अंदर रेखा खीच कर वढ़ा दिया जाए तो ये दोनो रेखाएँ ज विंदु पर मिलती है। आपतित किरण और निर्गत किरण के वीच के इस कोण छ ज ल को आपतित किरण का विचलन कोण (angle of deviation) कहते है। त और र विंदु पर ट ठ तथा प फ दो अभिलंव खीचने पर ठ विंदु पर दो अभिलंव मिलते हैं। अव यह मालूम हो जाएगा कि किरण च त प्रिज्म के अंदर घुसने पर अभिलंव ट ठ के तरफ थोड़ी झुक गई है तथा वाहर निकलते समय किरण र छ, अभिलंव प फ से थोडी दूर हट गई है। इसका कारण यह है कि प्रिज्म काँच के होने के कारण उसका घनत्व उसके चारो ओर वाले माध्यम वायु के घनत्व से अधिक होता है। इसलिए अंदर जाने वाली किरणे आवर्तित होने पर अभिलंव की ओर झुक जाती हैं। फिर जव किरणे प्रिज्म से वाहर वायु में अर्थात् अधिक सघन माध्यम से कम सघन माध्यम में निकल आती हैं तव आवर्तित होकर अभिलंव से दूर हट जाती है। इस कारण दो वार आवर्तित होकर

प्रिज्म से निकलने पर वर्त्तित किरणें उसके आधार (base) की ओर मुड़ जाती है।

प्रकाश विक्षेपण (Dispersion of light)

प्रिज्म द्वारा आवर्त्तित श्वेत किरणो को एक पर्दे पर गिराने से हमे उसमें सात रग स्पष्ट दिखाई पडेगे। ये सात रंग इस प्रकार है :—(१) बैंगनी (violet), (२) नीला (indigo), (३) आसमानी (blue), (४) हरा (green), (५) पीला (yellow), (६) नारगी (orange) और (७) लाल (red) इन रगो के हिन्दी और अँग्रेजी नामो के प्रथम अक्षरो के मिलाने से क्रमश बैनीआहपीनाला और VIBGYOR शब्द बनते है। इनमें से किसी को याद रखकर श्वेत प्रकाश मे वर्त्तमान सात रंगो के नाम
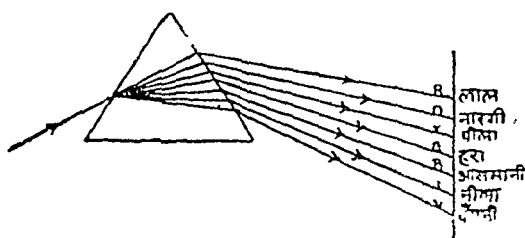
[चित्र १०३—प्रिज्म द्वारा प्रकाश-विक्षेपण]

आसानी से याद रखे जा सकते है। प्रिज्म द्वारा आवर्त्तित श्वेत प्रकाश इस प्रकार विक्षेपित हो जाता है कि उसके अदर के ये रग जो अन्य अवस्था मे दृष्टिगोचर नही होते हैं—दिखाई देने लगते है। ऐसा इसलिए होता है कि प्रिज्म मे आवर्त्तन के समय विभिन्न रगो की किरणे विभिन्न परिमाणों से विचलित होती हैं। इस प्रकार विभिन्न रंगो की किरणो के, वर्तन के फलस्वरूप, विभिन्न परिमाणो मे मुड़ने के कारण, प्रकाश विक्षेपित हो जाता है और हमे सात रंगों का स्पेक्ट्रम (sprectrum) देखने को मिलता है। स्पेक्ट्रम के इन सात रंगो के प्रकाश को फिर से मिला देने से श्वेत प्रकाश प्राप्त होता है।

इन्द्रधनुष (Rainbow)

सूर्य की किरणो मे सात रग हैं। प्रिज्म द्वारा इन्हे अलग किया जा सकता है। बरसात के दिनो मे आसमान मे जो इन्द्रधनुष प्रकट होता है

उसके सात रंग, सूर्य की श्वेत किरणो के वर्ण-विक्षेपण के फल हैं। इन्द्रधनुष उसी समय देखा जा सकता है जब सामने बादल और पीछे सूर्य हों। इसलिए इन्द्रधनुष दोपहर को नहीं दिखाई देता—केवल, सुबह या सूर्यास्त के पहले इसे देखा जाता है। मेघस्थ जल-कणों से आवर्तित होकर निकलने पर सूर्य की किरणें स्पेक्ट्रम के सात रंगों में विक्षेपित हो जाती हैं। इसलिए इन्द्रधनुष मे भी वे ही सात रंग दीख पड़ते हैं जो प्रिज्म के द्वारा स्पेक्ट्रम मे।

लेंस (Lens)

दो गोलीय (या एक गोलीय और दूसरा समतल) तलों से परिबद्ध किसी पारदर्शक माध्यम को लेंस कहते हैं। लेंस साधारणतः कांच का बना होता है। चश्मे का शीशा समतल कांच का टुकड़ा नहीं है, पर एक प्रकार का लेंस है।

लेंस प्रधानतः दो प्रकार के होते है। एक श्रेणी के लेंस को उत्तल (convex) या अभिसारी (convergent lens) लेंस कहते हैं। ऐसा लेंस किनारों की अपेक्षा बीच में अधिक मोटा होता है तथा समांतर किरणें इस पर आपतित होकर मुख्य अक्ष (principal axis) के एक बिंदु पर केन्द्रित हो जाती है। इस बिंदु को लेंस का मुख्य फोकस (principal focus) कहते हैं। दूसरी श्रेणी के लेंस को अवतल (concave) या अपसारी (divergent) लेंस कहते हैं। ऐसा लेंस किनारों की अपेक्षा बीच में पतला होता है और समांतर किरणें इससे आवर्त्तित होकर प्रधान अक्ष से दूर हट जाती हैं यानी समांतर किरण-पुंज आवर्त्तित होकर अपसारी किरण-पुंज बन जाता है।

लेंस मे दोनों तल गोलीय या एक गोलीय तथा दूसरा समतल हो सकते हैं। इस प्रकार से छह तरह के लेंस हो सकते हैं। चित्र मे क ख ग तीन तरह के उत्तल लेंस हैं। इन्हें क्रमशः द्विउत्तल (convexo-convex), समतलोत्तल (plano-convex) तथा उत्तलावतल (convexo-concave) लेंस कहते हैं। इस प्रकार च छ ज को क्रमशः द्विअवतल (concavo-concave), समतलोवतल (plano-concave) तथा अवतलोत्तल (concavo-convex) लेंस कहते हैं।
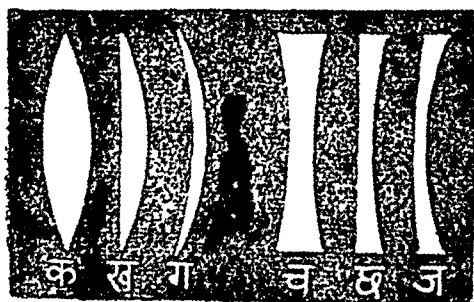
[चित्र १०४—विभिन्न प्रकार के उत्तल तथा अवतल लेंस]

लेंस के दोनो तल गोलीय होने से चित्र में दिखाये गए क, ग तथा च, ज जैसे लेंस बनते हैं। परंतु इसका एक तल समतल और दूसरा गोलीय होने से ख तथा छ जैसे लेंस बनते है।

इस प्रकार उत्तलोत्तल लेंस के दोनो तल उत्तल, समतलोत्तल लेंस के एक तल उत्तल तथा एक तल समतल और उत्तलावतल लेंस के एक तल उत्तल तथा दूसरा तल अवतल होते हैं। किंतु प्रत्येक की मोटाई बीच मे महत्तम होती है। उसी प्रकार उभयावतल लेंस के दोनो तल अवतल, समतलावतल लेंस के एक तल अवतल तथा दूसरा तल समतल और अवतलोत्तल लेंस के एक तल अवतल और एक तल उत्तल होते हैं। किंतु प्रत्येक की मोटाई बीच मे न्यूनतम होती है।

लेंस का मुख्य अक्ष

अगर लेंस के दो तल गोलीय है तो इसकी दो वक्रता-केंद्रों को मिलाने वाली रेखा को लेंस का मुख्य-अक्ष कहते है।

अगर लेंस का एक तल गोलीय है तथा दूसरा समतल है तो उसका मुख्य अक्ष वह रेखा होगी जो गोलीय तल के वक्रता-केंद्र से गुजरती है तथा समतल पर लंबरूप (perpendicular) होती हैं।

लेंस का प्रकाशीय केंद्र (**Optical centre of lens**)

जब लेंस से वर्तन के बाद निर्गत (emergent) किरण आपतित किरण के समांतर हो तब यह किरण लेंस के अंदर, लेंस के मुख्य अक्ष को
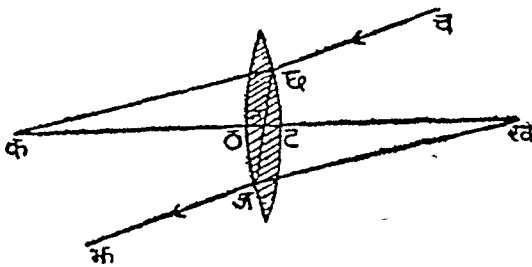
[चित्र स० १०५—लेंस का प्रकाशीय केंद्र]

जिस बिंदु पर काटती है, वह उस लेंस का प्रकाशीय केंद्र है। चित्र में किरण च छ लेंस की पहली सतह से वर्तित होकर लेंस के अंदर छ ज पथ

पर चलती है और दूसरी सतह से वर्तित होने के बाद इसका पथ ज झ होता है, जो च छ के समांतर है। किरण छ ज मुख्य अक्ष क ख को जिस न विंदु पर काटती है, वह लेंस का प्रकाशीय केंद्र है।

जब लेंस पतला होता है तब निर्गत किरण का पार्श्विक विस्थापन नगण्य होता है और तब हम कह सकते हैं कि जो किरण लेंस के प्रकाशीय केंद्र से होकर जाती है उसका विचलन नहीं होता है। वह उसी सीध में लेंस से बाहर निकलती है।

लेंस द्वारा प्रतिबिंब बनाना

लेंस द्वारा प्रतिबिंब निम्नलिखित नियमानुसार बनते हैं :—

(१) किसी वस्तु से जो किरण, लेंस के मुख्य-अक्ष के समांतर आती है, वह लेंस पर आपतित होकर लेंस की दूसरी ओर उसके द्वितीय मुख्य फोकस से होकर गुजरती है।

(२) वस्तु से जो किरण लेंस के मुख्य फोकस से होकर लेंस पर आपतित होती है वह वर्तन के बाद लेंस के मुख्य अक्ष के समांतर निकलती है।

(३) जो किरण लेंस के प्रकाशीय-केन्द्र से होकर जाती है वह बिना विचलित हुए उसी दिशा मे लेंस से बाहर निकलती है।

वस्तु के किसी विंदु से दो या दो से अधिक किरणें ऊपर के तीन नियमों के आधार पर लेंस मे वर्त्तन के बाद जिस विंदु पर मिलती हैं या जिस विंदु से आती हुई प्रतीत होती हैं, उस विंदु पर ही वस्तु के उस विंदु का प्रतिबिंब बनता है। इसी प्रकार से वस्तु के अन्य विंदुओं से प्रतिबिंब बन
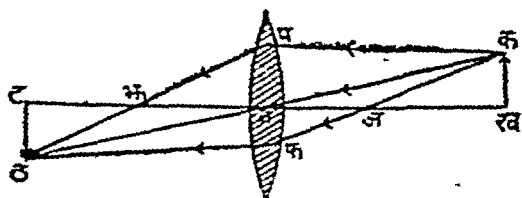
[चित्र १०६—उत्तल लेंस से प्रतिबिंब बनना]

कर संपूर्ण वस्तु का प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है। अगर ये किरणें वास्तव में उस विंदु पर एक दूसरे से मिलती हैं तो प्रतिबिंब वास्तविक तथा उलटा होता है। अगर ये किरणें पीछे बढ़ाने पर एक विंदु पर मिलती हैं यानी

उस विंदु से आती हुई प्रतीत होती है तो प्रतिविंव आभासी (virtual) तथा सीधा होता है।

चित्र १०६ मे क ख एक वस्तु है जो लेंस के मुख्य फोकस ज से अधिक दूरी पर है। क विंदु से निकली किरणे क प तथा क फ लेंस की दूसरी ओर ठ विंदु पर मिलती है तथा क विंदु का प्रतिविंव ठ विंदु पर वनता है। इस प्रकार ख विंदु का प्रतिविंब ट विंदु पर वनता है। न लेंस का प्रकाशीय केन्द्र है। इस स्थिति मे वस्तु का प्रतिविंव वास्तविक तथा उलटा होता है।

जब वस्तु उत्तल लेंस के मुख्य फोकस तथा लेंस के बीच मे कही हो तो प्रतिविंव आभासी, सीधा तथा वस्तु की अपेक्षा वड़ा होगा।
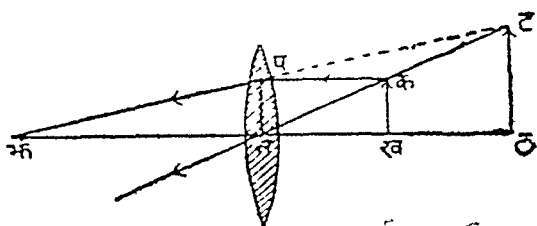
[चित्र १०७—उत्तल लेंस से वना आभासी प्रतिविंव]

चित्र मे क ख वस्तु का प्रतिविंव ट ठ आभासी तथा आवर्धित है। जव उत्तल लेंस का व्यवहार इस प्रकार किया जाता है तव उसे आवर्धक लेंस (magnifying glass) कहते है

आवर्धक लेंस

यह उत्तल लेंस का वना होता है और छोटी वस्तुओं को देखने के लिए इसका व्यवहार होता है। सूक्ष्म वैज्ञानिक कामो के लिए अच्छे-अच्छे संयुक्त सूक्ष्मदर्शी यंत्र (compound microscope) वनाने मे या दूरदर्शक (telescope) वनाने मे भी यह काम आता है। छोटे-छोटे अक्षरो को पढ़ने के लिए चश्मो में इस प्रकार के लेंस का व्यवहार होता है। अगर वस्तु लेंस के फोकस पर हो तो उसका प्रतिविंव दिखाई नही पड़ेगा; क्योकि उसका प्रतिविंव अनंत दूरी पर होगा। इस कारण आवर्धक लेंस से अक्षरों

को पढ़ने के लिए उसको ऊपर-नीचे हटाकर अक्षर को लेंस से उचित दूरी पर ले आने से वड़ा तथा साफ अक्षर दिखाई देता है ।

आवर्धक लेंस द्वारा आग जलाना

हम पहले ही देख चुके है कि आवर्धक लेंस द्वारा सूरज की किरणों को केंद्रित कर देने से उन किरणो की ऊष्मा भी केंद्रित हो जाती है और इससे इतनी गरमी पैदा होती है कि उसकी सहायता से आग जलायी जा सकती है।

प्रयोग—इस प्रकार एक उत्तल लेंस द्वारा सूर्य की किरणों को कागज के टुकड़े पर केंद्रित कीजिए। कागज के जिस विंदु पर किरणें केंद्रित होती हैं वह तप्त होकर जलने लगता है और उसकी लौ से सारा कागज जल उठता है। किरणें लेंस के फोकस पर केंद्रित होती है।

अवतल लेंस द्वारा प्रतिविंव वनाना

अवतल लेंस द्वारा वस्तु का प्रतिविंव सदा आभासी तथा सीधा और ह्रासित होता है।
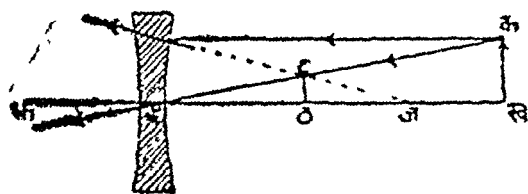
[चित्र १०८—अवतल लेंस से प्रतिविंव वनवा]

नेत्र (Eye)

नेत्र या आँख प्राणियो की वह इंद्रिय है जिसकी सहायता से वे देखते है। नेत्र के बिना प्रकाश के साथ हमारा परिचय नही हो सकता है। नेत्र की सहायता से ही हमे वस्तुओ के रूप, रंग, आकार आदि से परिचय होता है। नेत्र की यह शक्ति, जिसके चलते हम देख सकते है, दृष्टि शक्ति कहलाती है।

नेत्र को अपने खोल, जिसे नेत्र-कोटर (eye-socket) कहते है, से निकालकर देखने से मालूम होगा कि वह गोल और खोखला है। अपने खोल के अंदर, ऊपर-नीचे लगी हुई पेशियो तथा तंतुओ की सहायता से, आँख इधर-उधर हिल सकती है। आँख में निम्नलिखित मुख्य भाग होते है :—

श्वेत पटल तथा रंजित पटल (Sclera and choroid)

नेत्र गोलक (eye ball) की ऊपरी सतह की मोटी, सफेद, कठोर तथा अपारदर्शक तह को **श्वेत पटल** कहते है। श्वेत पटल अपारदर्शक होने के साथ-साथ नेत्र गोलक को आघातो से भी बचाता है। श्वेत पटल की निचली सतह पर की काली रंग की पतली झिल्ली को **रंजित पटल** कहते हैं।

कॉर्निआ या स्वच्छ मंडल (Cornea)

नेत्र के सामने उभरे हुए पारदर्शक अंग को **कॉर्निआ या स्वच्छ मंडल** कहते है।

आइरिस तथा तारा (Iris and pupil)

कॉर्निआ के ठीक पीछे एक अपारदर्शक झिल्ली का परदा रहता है। इसे आइरिस कहते है। विभिन्न देशो के तथा विभिन्न जाति के लोगो के आइरिस का रंग भिन्न-भिन्न होता है। भारत मे अधिकांश लोगों के आइरिस का रंग काला होता है। आइरिस के मध्य भाग मे एक गोल छिद्र होता है। इसे तारा (pupil) कहते है। पेशियों तथा तंतुओ की सहायता से तारा के आकार को छोटा-बड़ा किया जा सकता है। तारा मे से होकर प्रकाश नेत्र में

प्रवेश करता है। प्रकाश की तीव्रता के अनुसार वह अपने आप छोटा-बडा हो जाता है। कम प्रकाश मे तारा बड़ा होता है और अधिक प्रकाश मे छोटा।

लेंस (Lens)

तारा के पीछे की ओर नेत्र का लेंस होता है। नेत्र का लेस द्विउत्तल लेंस जैसा होता है। यह दो किनारों से लिगामेंट द्वारा रंजित पटल के साथ बँधा हुआ होता है।

रेटीना या दृष्टिपटल (Retina)

नेत्र गोलक की दीवार के सबसे भीतरी परत को, जो एक परदा-सा होता है, दृष्टिपटल कहते है। दृष्टिपटल पर बाहरी वस्तु के प्रतिबिंब बनते हैं। दृष्टिपटल के तल पर दृष्टि तंत्रिकाएँ (optic nerves) फैली हुई होती है जो दृष्टिपटल पर बननेवाले प्रतिबिंब की संवेदना मस्तिष्क तक पहुँचा देती है और हम उन्हे देखने लगते है।

दृष्टिपटल के मध्य भाग के वृत्ताकार अंश को पीत-बिंदु (yellow spot) कहते है। इसके बाहर अंध-बिंदु (blind spot) होता है। केवल
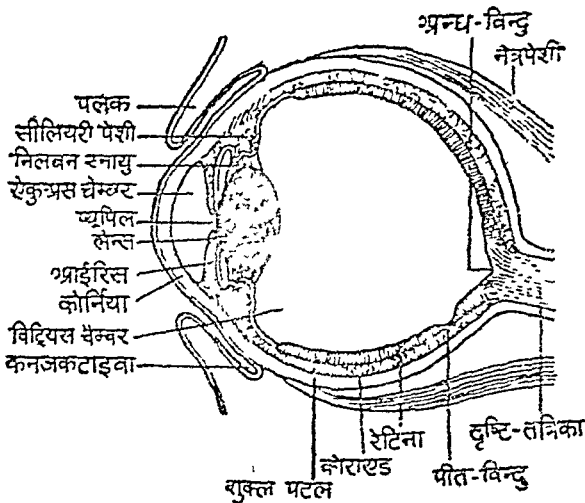
[चित्र १०९—नेत्र]

पीत-बिंदु पर बननेवाले प्रतिबिंब ही दिखाई पड़ते है; अंध-बिंदु पर बनने वाले प्रतिबिंब दिखाई नही पडते।

लेंस और कॉर्निया के बीच में एक प्रकार का तरल पदार्थ भरा हुआ होता है। इसे नेत्रोद या ऐक्विअस ह्यूमर (aqueous humour) कहते हैं। लेंस और दृष्टिपटल के बीच भरे हुए तरल पदार्थ को काचाभ द्रव या विट्रिअस ह्यूमर कहते हैं।

दृष्टि-विकार (**Defective vision**)

स्वस्थ आँख की दृष्टि-सीमा (range of vision) का दूर-विंदु (far point) अनंत पर तथा निकट-विंदु (near point) आँख से २५ सें० मी० पर होता है। बच्चों मे निकट-विंदु और भी पास होता है। वृद्धावस्था मे निकट-विंदु और थोडा दूर हो जाता है। निर्दोष आँखो से, दृष्टि-सीमा के अंदर की, सभी वस्तुओ को साफ-साफ दिखाई देना चाहिए। अगर दृष्टि-सीमा के अंदर की वस्तु स्पष्ट न दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि आँख में दृष्टि-विकार हो गया है। आँखो में विभिन्न प्रकार के दृष्टि-विकार उत्पन्न हो सकते है।

निकट-दृष्टि (**Short sight or myopia**)

आँखों मे यह विकार उत्पन्न होने से पास की चीजे तो साफ दिखाई पड़ती हैं, लेकिन दूर की चीजे दिखाई नही पड़ती, अर्थात् अब आँख की दूर-विंदु अनत पर न होकर पास आ जाता है। इसके फलस्वरूप दूर से आनेवाली किरणे दृष्टिपटल पर केंद्रित होने के वजाए उससे आगे ही केंद्रित हो जाती है और वस्तु साफ नही दिखाई पडती है।
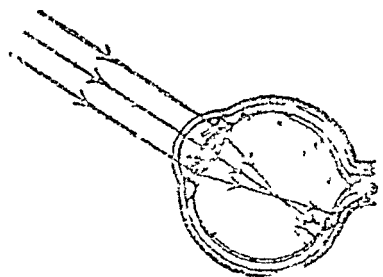
[चित्र ११०—निकट-दृष्टि विकार]

निकट-दृष्टि विकार दो कारणो से हो सकता है। (१) अगर किसी कारण से नेत्र-गोलक फैल जाता है तथा दृष्टिपटल आखो के लेंस से दूर हट जाता है, या (२) किसी कारण से लेंस अधिक उत्तल हो जाता है और उसकी फोकल दूरी (focal length) घट जाती है। इसमें एक भी हो जाने से दूर से आनेवाली किरणें लेंस द्वारा दृष्टिपटल के आगे ही केंद्रित हो जाती है और वस्तु स्पष्ट नही दिखाई देती है।

इस प्रकार के दृष्टि-विकार को दूर करने के लिए अवतल लेंस वाला चश्मा इस्तेमाल किया जाता है। चश्मा का अवतल लेंस किरणों को अपसृत (diverge) करके आंखो के लेंस पर गिराता है ताकि वहां से फिर से अभिसृत (converge) होकर किरणें दृष्टिपटल पर केंद्रित हो सके। चश्मे के अवतल लेंस को ऋण शक्ति (minus power) का लेंस कहते है।
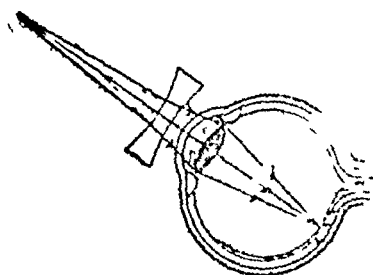
[चित्र १११—अवतल लेंस द्वारा निकट-दृष्टि विकार का सुधार]

दूर दृष्टि (Long sight)

आंखो मे दूर-दृष्टि-विकार हो जाने से दूर की चीजें तो दिखाई पड़ती हैं लेकिन पास की चीजे साफ नही दिखाई पडती। ऐसा होने से पढ़ने-लिखने मे काफी कठिनाई होती है। इस विकार मे या तो (१) नेत्र गोलक किसी कारण से छोटा हो जाता है या (२) किसी कारण से लेंस पतले हो जाते है और उनकी फोकल दूरी बढ़ जाती हे। फलस्वरूप पास से आनेवाली किरणें दृष्टिपटल के पीछे जाकर केंद्रित होती है और वस्तु स्पष्ट दिखाई नही देती है।
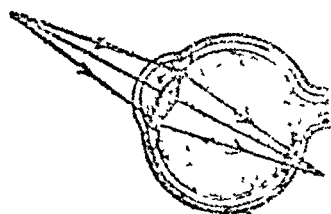
[चित्र ११२—दूर-दृष्टि-विकार]

इस प्रकार के दृष्टि-विकार को दूर करने के लिए चश्मे मे उत्तल लेंस, जिन्हे धनशक्ति (plus power) का लेंस कहते है, व्यवहार में लाया जाता है। चश्मे का उत्तल लेंस किरणो को आंखों के लेंस पर अभिसृत कर के गिराता है तथा वहां से फिर अभिसृत होकर किरणें दृष्टि-पटल पर जाकर केंद्रित हो जाती है।
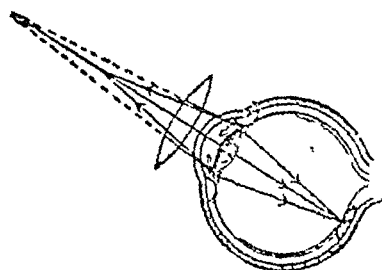
[चित्र ११३—उत्तल लेंस द्वारा दूर-दृष्टि-विकार का सुधार]

दृष्टि में इन विकारो के अतिरिक्त आँखो के स्वच्छ मंडल या दृष्टिपटल की गोलाई में विषमता आ जाने के कारण आँखो में दृष्टिवैषम्य (astigmatism) का विकार उत्पन्न हो जाता है। ऐसा हो जाने पर एक ही तल पर ऊपर-नीचे और दाहिने-वाएँ खीची गई रेखाओ को एक समान स्पष्ट नही देख पाते है । इसे दूर करने के लिए चश्मे मे वेलनाकार (cylindrical) लेंस का व्यवहार किया जाता है।

मनुष्य की उम्र अधिक हो जाने पर उनकी आँखो की मासपेशियाँ ढीली हो जाती है और आँखो मे निकट-दृष्टि तथा दूर-दृष्टि दोनों प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते है। इस अवस्था मे चश्मे मे उत्तल तथा अवतल—दोनो प्रकार के लेसो की आवश्यकता होती है। ऐसे चश्मे मे दूर की वस्तु देखने के लिए ऊपर अवतल और पास की वस्तु देखने तथा पढने-लिखने के लिए नीचे उत्तल लेस होते है। दो प्रकार के लेस युक्त इस प्रकार से चश्मे के लेस को द्विफोकस लेंस (bifocal lense) कहते हैं।

किसी वस्तु के त्रिमितीय (three diamentional) विस्तार का ज्ञान, अथवा कौन वस्तु निकट और कौन दूर है, इसका ज्ञान हमें दो आँखो की सहायता से होता है। दोनों आँखो के दृष्टिपटलो पर वस्तु का अलग-अलग प्रतिविंव वनता है। दोनो प्रतिविंव विल्कुल एक-जैसे नही होते है। एक आँख मे वस्तु के एक पार्श्व के अधिकाश का तथा दूसरी आँख मे उसके दूसरे पार्श्व के अधिकाश का प्रतिविंव वनता है। मस्तिष्क मे दोनो प्रतिविंवो के मिश्रित सवेदन से हमे वस्तु के ठोसपन या त्रिमितीय विस्तार का ज्ञान होता है।

आँखो मे वस्तु का प्रतिविंव उलटा वनता है, लेकिन मस्तिष्क की क्रिया द्वारा हम उसे सीधा ही देखते है।

फोटो कैमरा (Photographic camera)

फोटो खीचने का कैमरा एक ऐसा यंत्र है, जिसकी सहायता से इच्छानुसार वतुस्ओ का फोटो फिल्म या प्लेट पर उतारा जा सकता है। इस प्रकार से उतारे गए फोटो की कापी जव चाहे और जितनी सख्या में चाहे, फोटो-कागज पर छाप लिये जा सकते है।

आँख और फोटो-कैमरा

आँख और फोटो-कैमरा की बनावट मे काफी समानता है । दोनो लगभग एक ही प्रकार से काम करते है ।

नेत्रगोलक और कैमरा के बक्से में काफी समानता होती है। नेत्र-गोलक एक प्रकाशबद्ध गोलक है, जिसकी तुलना कैमरा के प्रकाशबद्ध बक्से के साथ की जा सकती है। आँख मे एक उत्तल लेस होता है। उसी प्रकार कैमरा मे भी एक या एकाधिक उत्तल लेस होते है। फोटो-कैमरा के लेस द्वारा वस्तु का एक छोटा, उलटा तथा वास्तविक प्रतिबिब फिल्म या प्लेट पर बनता है। कैमरा मे एक शटर लगा होता है, जिसकी सहायता से उसके अदर प्रकाश जाने का समय, आवश्यकतानुसार नियत्रित किया जाता है। आँख मे यह काम आँख की पलके करती है। कैमरा के अंदर आनेवाले प्रकाश की तीव्रता को नियन्त्रित करने के लिए आइरिस डायफ्राम नाम का पुर्जा लेस के आगे लगा हुआ होता है । आँख मे यह काम आँख का तारा करता है ।

कैमरा के मुख्य दो भाग होते है—(१) लेस तथा (२) बक्सा ।

लेस (Camera lens)

लेस कैमरा का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसीकी क्षमता पर कैमरे की अच्छाई निर्भर करती है । अच्छे कैमरे का लेस कई लेंसो को मिलाकर बनता है। सही माने मे फोटो-कैमरे का लेस उत्तल लेस है। इसकी सहायता से फोटो फिल्म या फोटो प्लेट पर प्रतिमूर्ति बनती है। फोटो खीचते समय फोटो खीची जानेवाली वस्तु की दूरी, लेंस की फोकस दूरी से अधिक होनी चाहिए। इससे वस्तु का उलटा लेकिन वास्तविक प्रतिबिंब लेंस के पीछे रखे प्लेट या फिल्म पर बनता है।

लेस मे एक शटर (shutter) होता है। इसके साथ एक बटन लगा हुआ होता है जिसे दबाकर शटर को इच्छानुसार खोला या बंद किया जा सकता है।

लेस में एक आइरिस डायफ्राम (iris diaphram) लगा होता है। इसकी सहायता से लेस को छोटा-बड़ा करके उसमे से पार होनेवाले प्रकाश की तीव्रता नियत्रित की जा सकती है।

कैमरे का बक्सा (Camera box)

कैमरे के बक्से के एक पार्श्व मे लेंस तथा उसके विपरीत पार्श्व मे फोटो फिल्म या प्लेट लगाने का स्थान होता है। फिल्म या प्लेट लगाकर बंद कर देने से कैमरे का बक्सा प्रकाश-बद्ध (light tight) बन जाता है। कैमरे की दीवारे अंदर से काली होती है ताकि अगर कही से प्रकाश आ जाए तो वे उसका शोषण कर सके। बक्स कैमरा (box camera) नाम के सस्ते कैमरो मे बक्सा साधारण बक्सा जैसा ही होता है और उसकी लंबाई को छोटा-बडा करने का प्रबंध नही रहता है। अच्छे कैमरे के बक्से की दीवारे विशेष प्रकार के कड़े कागज से बनती है। ये भाथी जैसी लहरदार होती है और आवश्यकतानुसार इन्हे छोटा-बड़ा किया जा सकता है। ऐसे कैमरो को फोल्डिग कैमरा कहते है। आजकल अधिक कीमती कैमरो की दीवारे तो स्थिर होती है लेकिन उनके बक्से मे लगे हुए लेंस होल्डर (lense holder) को आगे-पीछे करने का प्रबध रहता है।

प्लेट वाले कैमरे मे पहले प्लेट के स्थान पर एक घिसे काँच (ground glass) का परदा लगाया जाता है। फिर लेंस का शटर खोलकर उस पर वस्तु के प्रतिबिंब को देखा जाता है। बक्से की दीवारो को छोटा-बडा करके, लेंस को आगे-पीछे ले जाकर प्रतिबिब को साफ तथा स्पष्ट बनाया जाता है। घिसे काँच के परदे पर प्रतिबिंब साफ देखने के लिए ऊपर से एक काला कपड़ा डाल देना आवश्यक है। परदे पर साफ तथा स्पष्ट प्रतिबिब आ जाने पर लेंस का शटर बंद कर दिया जाता है और घिसे काँच को हटा कर उसके स्थान पर फोटो प्लेट लगा दिया जाता है तथा बटन दबा कर आवश्यक समय के लिए लेंस का शटर खाल दिया जाता है। इसे उद्भासन (exposure) कहते है। फोटो प्लेट, फिल्म आदि पर एक प्रकार का आलोकग्राही (light sensitive) मसाला लगा हुआ होता है। इसके जिन स्थानो मे जिस अनुपात से प्रकाश गिरता है—उन स्थानो मे उसी अनुपात मे रासायनिक क्रिया होती है और प्लेट को विकसित करने पर वे स्थान उसी अनुपात मे काले हो जाते हैं।

उद्भासन के बाद प्रकाशबद्ध खोल मे बंद करके प्लेट या फिल्म को अँधेरी कोठरी (dark room) मे ले जाकर रासायनिक घोलो से चित्र को

विकसित (develop) करके स्थायी (fix) किया जाता है, ताकि उस पर अब और प्रकाश से रासायनिक क्रिया न हो पाएँ। इस प्रकार से प्रस्तुत किये गए फिल्म या प्लेट को निगेटिव (negative) कहते हैं। आलोकग्राही मसाला लगे हुए फोटो छापने के कागज (photo printing paper) के ऊपर निगेटिव को रखकर ऊपर से प्रकाश डाला जाता है। इस काम को भी अँधेरी कोठरी मे करना पड़ता है। निगेटिव के अंदर से प्रकाश आकर उस पर वने हुए चित्र का सीधा प्रतिरूप फोटो-कागज पर वनता है। उचित समय तक प्रकाश डालने के वाद फोटो कागज को अँधेरे कमरे मे ही विकसित तथा स्थायी करके पोजिटिव (positive) अर्थात् सीधा चित्र वनाया जाता है।

निगेटिव से आकार मे वडा चित्र वनाने के लिए निगेटिव को विवर्धक (enlarger) नामक यन्त्र मे लगाया जाता है तथा इसमे से प्रकाश डालकर दूर रखे हुए फोटो कागज पर वड़े आकार का चित्र उतारा जाता है। आज-कल प्लेट वाला कैमरा कम व्यवहार होता है। उनके स्थान पर फिल्म वाले कैमरे का व्यवहार वढ गया है। इसमें एक साथ कई चित्र लिये जा सकते है और इसका व्यवहार करना भी आसान है।

फिल्म वाले कैमरे मे वस्तु का प्रतिविंव देखने के लिए अलग से दृश्य-दर्शी (view finder) लगा हुआ होता है। इसकी सहायता से प्रतिविंव को देखकर फोटो खींचा जाता है।

चलचित्र-कैमरा (Motion picture camera)

इस कैमरे द्वारा चलचित्र या सिनेमा दिखाने के लिए चित्र लिया जाता है। इस कैमरे की सहायता से चलायमान वस्तु तथा दृश्यो का लगातार चित्र उतारा जाता है। इस कैमरे मे दो प्रकाशवद्ध वक्से लगे हुए होते है, इन्हे रील-वक्सा कहते है। इनमे से एक मे एक लिपटा हुआ लंवा फिल्म, जिसे रील कहते है—लगा दिया जाता है और उसका एक सिरा कैमरे के फिल्म लगाने के स्थान से ले जाकर दूसरे रील-वक्से मे अटका दिया जाता है। चलचित्र लेते समय कैमरे को यान्त्रिक उपायो से इस प्रकार चलाया जाता है कि एक ही गति से प्रथम रील-वक्से में रील खुलता जाता है और द्वितीय रील-वक्से में लिपटता जाता है। कैमरे के अन्दर से जाते समय रील एक-एक चित्र के लिए साधारणतः .०५ सेकेंड तक

रुक जाता है और साथ ही कैमरे का शटर भी खुल जाता है। .०५ सेकेंड के उद्भासन काल (time of exposure) के अन्त मे कैमरे का शटर बंद हो जाता है और रील चलने लगता है। ·०१ सेकेंड के वाद फिर रील रुक जाता है और शटर खुल जाता है। इस प्रकार ऐसे कैमरे द्वारा प्रति मिनट मे १५-१६ चित्र लिये जाते है। वाद में रील को विकसित तथा स्थायी करके उससे सिनेमा दिखलाने वाला फिलम का रील छापकर तैयार किया जाता है।

चलचित्र

सिनेमा-गृह के रजत पट (**silver screen**) पर चलते-फिरते, हँसते-खेलते चित्रो को न देखा हो, ऐसा कोई आदमी आजकल शायद ही मिल सकता है। देश मे कोई भी शहर ऐसा न होगा जहाँ सिनेमा-गृह नहीं है। केवल मनोरंजन के क्षेत्र मे ही नही वल्कि शिक्षा के क्षेत्र मे भी सिनेमा एक आवश्यक साधन बन गया है।

सिनेमा का संपूर्ण सिद्धात दृष्टि-निर्वन्ध (persistence of vision) के सिद्धात पर आधारित है। हम जव किसी भी वस्तु को देखते है तव हमारे मस्तिष्क पर उसका प्रभाव ०·१ सेकेंड तक रहता है। यानी ०·१ सेकेंड तक उसे देखते रह जाते हैं और उसके वाद ही किसी दूसरी चीज को देख सकते है। देखी गई वस्तु के आँखो के सामने से हट जाने के वाद भी कुछ समय तक मस्तिष्क मे उसका चित्र वने रहने को दृष्टि निर्वंध कहते हैं। अगर पतली लकड़ी के एक सिरे पर आग लगाकर दूसरा सिरा पकड़कर उसे तेजी से घुमाने लगे तो हमें आग का एक चक्र-सा दिखाई देने लगता है। कारण यह है कि लकड़ी का आग वाला सिरा किसी भी स्थान पर ०·१ सेकेंड से अधिक नही रहता है और इसलिए प्रत्येक स्थान पर आग आगे के स्थान की आग के साथ जुड़ी हुई दिखाई पड़ती है तथा सव मिलकर हमें आभासी तौर पर एक अग्नि-चक्र दिखाई देता है।

सिनेमा फिलम (**cinema film**)

चलचित्र कैमरे की सहायता से चलते-फिरते तथा विभिन्न क्रियाएँ करते हुए मनुष्यो, जीव-जंतुओ आदि तथा प्राकृतिक दृश्यो के, प्रति मिनट मे १५-१६ चित्र, वहुत लंबे-लवे फिलमो पर खीच कर सिनेमा फिलम वनाए जाते है। फिलम

सेलुलाइड या प्लैस्टिक जातीय पारदर्शक पदार्थ से वनते है। इन्हे गोल चक्की मे लपेटकर रखा जाता है ताकि चक्की को घुमाकर उन्हे खोला या लपेटा जा सके। इस तरह से लपेटे हुए फिल्म को रील कहते हैं।

सिनेमा प्रोजेक्टर (Cinema projector)

जिस यत्र की सहायता से चलचित्र के फिल्मो को परदे पर प्रक्षेपित किया जाता है, उसे सिनेमा प्रोजेक्टर कहते है। सिनेमा प्रोजेक्टर को उलटा कैमरा कहा जा सकता है। कैमरे मे वाहरी वस्तु का प्रतिविंव आकर कैमरे के अंदर के फिल्म या प्लेट पर चित्र वनाता है। यहाँ प्रतिविंवित वस्तु तथा प्रकाश का स्रोत दोनो कैमरे से वाहर होते है। प्रोजेक्टर मे इसके विपरीत प्रकाश का स्रोत तथा प्रतिविंत्रित वस्तु (फिल्म पर वने हुए चित्र) दोनो प्रोजेक्टर के अदर होते है और चित्र उसके वाहर परदे पर वनते हैं।

सिनेमा प्रोजेक्टर के ऊपर तथा नीचे दो रील-वक्से लगे हुए होते है। ऊपर के रील-बक्से मे फिल्म का रील लगाकर फिल्म का एक सिरा, जहाँ से चलचित्र आरभ होता है—प्रोजेक्टर के अदर से ले जाकर दूसरे रील-वक्से मे अटका दिया जाता है। यत्र के चलते समय ऊपर के रील-वक्से से खुलकर रील नीचे के रील-वक्से मे लिपटता जाता है।

प्रोजेक्टर के अदर एक तीव प्रकाश का स्रोत होता है। इसके पीछे एक अवतल दर्पण और सामने एक लेंस लगा हुआ होता है। पीछे का अवतल दर्पण प्रकाश को एक लेंस पर अभिसृत करता है। लेंस प्रकाश की किरणों को प्रोजेक्टर के अदर से जानेवाले फिल्म पर अभिसृत करके फिल्म के चित्र की दीप्ति वहुत वढा देता है। फिल्म के सामने एक प्रक्षपक लेंस लगा हुआ होता है जो इस प्रकाश को सामने के चमकीले परदे पर प्रक्षेपित करके उस पर वहुत आवर्धित तथा वास्तविक प्रतिविंव वनाता है।

सिनेमा दिखाते समय प्रोजेक्टर मे फिल्म लगातार एक ही गति से नही चलता है, वल्कि फिल्म पर का प्रत्येक चित्र प्रक्षेपक लेंस के सामने आकर ·०५ सेकेंड रुक जाता है और ठीक इसी समय तक लेंस के सामने का शटर खुला रह जाता है तथा परदे पर उस चित्र का वास्तविक तथा वड़ा प्रतिविंव दिखाई देता है। फिर ·०१ सेकेंड के लिए शटर वंद हो जाता है और परदे पर अंधकार छा जाता है तो भी दृष्टि निर्वन्ध के चलते हम परदे पर उस

चित्र को, जो शटर बंद होने के पहले पर्दे पर बना था, देखते रहते है साथ ही फिल्म भी चलने लगता है और उसी ·०१ सेकेंड में फिल्म पर का एक दूसरा चित्र लेंस के सामने आकर ०५ सेकेंड के लिए रुक जाता है तथा
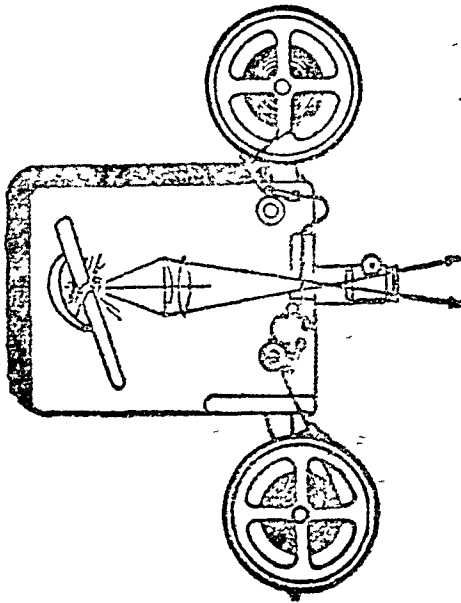
[चित्र ११४—प्रोजेक्टर]

लेस के शटर का खुलना और परदे पर ठीक उसी जगह चित्र बनने का चक्र चालू हो जाता है। इस प्रकार से प्रति सेकेंड १५-१६ चित्र हमारी आँखो के सामने से चलते जाते है और आँखो के दृष्टि निर्बंध गुण के कारण हम उन चित्रो को एक ही चित्र के रूप मे देखते है। इससे प्रत्यक्षतः हमे परदे पर के चित्र चलते-फिरते तथा विभिन्न क्रियाएँ करते हुए दिखाई देते हैं।

अध्याय १५

घरों में प्रकाश-व्यवस्था

वहुत-से प्राणी अँधेरे में भी देख सकते हैं और इसलिए उनकी दिनचर्या के लिए दिन या रात में कोई विशेष अंतर नही होता है। ऐसे भी कुछ प्राणी है जो दिन के उज्ज्वल प्रकाश से रात के अँधेरे को ही अधिक पसंद करते हैं।

लेकिन मनुष्य के लिए ऐसी वात नही है। मनुष्य न तो अँधेरे में देख ही सकता है और न कोई काम ही ठीक से कर पाता है। इसलिए अँधेरे में देखने और काम-काज करने के लिए उसे प्रकाश की व्यवस्था करनी पडती है। आदिम काल से ही मनुष्य, सूर्यास्त के वाद प्रकाश की व्यवस्था करता आ रहा है। वर्तमान युग मे तो मनुष्य के हाथ में प्रकाश की व्यवस्था करने के इतने साधन मौजूद है कि वे रात को दिन जैसा वना दे सकते है। अव हजारो कल-कारखानो मे दिन-रात काम होते रहते हैं और उनके अंदर, जहाँ तक प्रकाश का सवाल है, दिन तथा रात मे कोई अ तर नहीं मालूम पडता है।

शिक्षा आदि के प्रसार के साथ, अव गाँव में भी शायद ही कोई ऐसा घर हो जहाँ शाम होते ही लोग सो जाते हों और जहाँ प्रकाश की व्यवस्था करने की आवश्यता नही पड़ती हो।

आदिम काल से ही हमारे देश मे रात के लिए दीये का व्यवहार प्रचलित है। आज भी पूजा आदि शुभ कामो मे दीया ही जलाया जाता है।

विजली, गैस आदि के काफी प्रचलन के वावजूद इस समय हमारे देश मे किरासन तेल से जलनेवाली वत्ती ही, प्रकाश के लिए सवसे अधिक इस्तेमाल होती है। फिर भी प्रकाश के लिए विजली की वत्तियों का इस्तेमाल वहुत तेजी से वढता जा रहा है और वह दिन दूर नही है जव, हमारे देश मे भी, विजली की वत्ती ही रात मे प्रकाश देने का मुख्य साधन वन जाएगी।

घर में प्रकाश-व्यवस्था करते समय—विशेषकर बिजली की बत्तियो की सहायता से प्रकाश-व्यवस्था करते समय—नीचे दी गई बातो पर ध्यान देना चाहिए :—

१ प्रकाश पूरे कमरे मे समान हो,

२ प्रकाश आंख को कष्ट न दे,

३. देखने में सुंदर लगे,

४. उस स्थान पर, साधारणतया जहाँ काम होता हो, प्रकाश पर्याप्त हो।

प्रदीप्ति (Illumination) की माप

प्रदीप्ति मापने की इकाई को लूमेन (lumen) कहते है। हम पहले देख चुके हैं कि ज्योतिष्मान वस्तु की प्रदीपन-क्षमता मापने की इकाई को कैंडल शक्ति कहते है। यूरोप के देशो मे सदियो से प्रकाश के लिए मोमबत्ती का इस्तेमाल होता रहा है। इसलिए जब ज्योतिष्मान वस्तु की प्रदीपन क्षमता मापने की इकाई का सवाल सामने आया तब यह स्वाभाविक ही था कि उसे कैंडल शक्ति का नाम दिया गया। एक मानक कैंडल शक्ति लूमेन ÷ १२·५७ के समान होती है।

लूमेन

अगर एक मानक मोमबत्ती को एक ऐसे गोलक के केंद्र मे रखा जाए जिसकी भीतरी सतह पूरी रोशनी को पूर्ण रूप से अवशोषण कर सके, तो मोमबत्ती का सपूर्ण प्रकाश गोलक की भीतरी सतह पर गिरेगा और परावर्तित होकर बिखर नही जाएगा। अगर इस गोलक के एक हिस्से मे खिड़की जैसी काट दी जाए तो रोशनी का एक अंश इससे बाहर निकल आएगा। अगर गोलक का व्यासार्ध एक फुट हो और काटी गई खिड़की का क्षेत्रफल एक वर्गफुट हो तो इस खिड़की से निकलने वाली प्रकाश को एक लूमेन कहा जाएगा।

गोलक का क्षेत्रफल $4\pi r^2$ होता है। इसलिए इस गोलक का क्षेत्रफल = $4\pi r^2$ अर्थात् १२·५७ वर्गफुट है। अतः एक मानक मोमबत्ती द्वारा दी गई कुल प्रदीप्ति १२ ५७ लूमेन है।

केवल आँख की सहायता से प्रदीप्ति मापने से काफी गलती होने की सभावना रहती है। इसलिए प्रदीप्ति के परिमाण को मापने के लिए फुट कैंडल मीटर नाम के यन्त्र का इस्तेमाल होता है, क्योकि दूर के तेज प्रकाश से नजदीक के अपेक्षाकृत कम प्रकाश की प्रदीप्ति आभासी तौर पर अधिक मालूम देती है। फुट कैंडल के हिसाब से प्रदीप्ति की तीव्रता को मापने से यह गलती नही हो पाती। एक कैंडल शक्ति प्रकाश के उद्गम स्थान से एक फुट दूरी पर प्रदीप्ति की तीव्रता को एक फुट-कैंडल कहते है।

समक्ष (प्रत्यक्ष) तथा असमक्ष (अप्रत्यक्ष) प्रदीप्ति

(Direct and indirect illumination)

दीये, मोमवत्ती लालटेन, विजली के खुले हुए वल्व आदि से प्रकाश की किरणे निकलकर सीधे कमरे मे फैल जाती है और कमरे को प्रकाशित करती है। यह प्रकाश-व्यवस्था का सवसे सरल उपाय है। इसमे परावर्तन आदि मे प्रकाश की हानि नही होती और पूरे का पूरा प्रकाश प्रदीप्ति करने मे काम आता है। लेकिन इस प्रकार का प्रकाश न तो देखने मे ही अच्छा लगता है और न यह आँख के लिए ही अच्छा होता है। प्रकाश का उद्गम स्थान आँख के सामने होने के कारण, उसकी किरण सीधे आँख मे चली आती है, जिससे आँख को नुकसान पहुँचने की सभावना रहती है। साथ ही, इस प्रकार के प्रकाश से गहरी छाया वनती है और उस छाया के अदर की चीजे साफ नजर नही आती है। प्रकाश के समक्ष स्रोत को काफी ऊँचाई पर कर देने से, वहुत हद तक, इन दिक्कतो से वचा जा सकता है। शेड, परावर्तक (reflector) आदि की सहायता से भी समक्ष प्रदीप्ति को मनोहर तथा आँख के लिए उपयुक्त वनाया जा सकता है।

प्रदीप्ति के असमक्ष स्रोत को देखा नही जा सकता है। यहाँ प्रकाश हमेशा किसी न किसी अन्य वस्तु से परावर्तित होकर कमरे में फैलता है। अत इस प्रकार का प्रकाश आँखो पर सीधा नही पड़ता और आँखो को कष्ट नही पहुँचाता।

विभिन्न कार्यों के लिए आवश्यक प्रदीप्ति

सब तरह के कामों के लिए एक समान तीव्रता की प्रदीप्ति की आवश्यकता नही होती। कुछ दैनदिन कामो के लिए आवश्यक प्रदीप्ति की तीव्रता का परिमाण नीचे दिया जा रहा है :—

पढ़ने के लिए

(i) अधिक समय तक छोटे अक्षरो मे लिखी हुई ४० फुट कैंडल

(ii) अल्प समय तक बड़े अक्षरो मे लिखी हुई २० ,,

लिखने के लिए ४० ,,

सिलाई करने के लिए

(i) गहरे रग के कपड़ो पर महीन सिलाई १५० ,,

(ii) देर तक साधारण सिलाई ४०-८० ,,

(iii) अल्प समय तक साधारण सिलाई २०-४० ,,

इस्तिरी करने के लिए ४० ,,

खाना पकाने के लिए ४० ,,

मोटी दस्तकारी के लिए ४० ,,

कमरो मे साधारण प्रदीप्ति ५ ,,

खाने के कमरे मे प्रदीप्ति १० ,,

प्रकाश का परावर्तन और प्रदीप्ति

विभिन्न प्रकार की वस्तुओ की सतह तथा रग विभिन्न परिमाण में प्रकाश का अवशोपण कर लेते है। साथ ही, वे विभिन्न परिमाण में प्रकाश को परावर्तित करते है। अगर समान आयतन के दो कमरो मे दो समान कैंडल शक्ति की बत्ती जला दी जाए, और प्रथम कमरे की दीवालों द्वारा दूसरे कमरे की दीवालों की तुलना में अधिक परिमाण मे प्रकाश का अवशोषण होता हो और अल्प परिमाण मे परावर्तन होता हो, तो प्रथम कमरे मे प्रदीप्ति की तीव्रता कम मालूम पड़ेगी। क्योंकि अवशोषण द्वारा प्रकाश की

हानि होती है और परावर्तन द्वारा वृद्धि। कुछ वस्तुओं की सतह तथा रंग द्वारा परावर्तन के परिमाण नीचे दिये जा रहे हैं :—

खुरदुरा सफेद कागज	लगभग	८४	प्रतिशत
चिकना सफेद कागज	,,	७५	,,
अखबार का कागज	,,	६०	,,
हलका पीला कागज	,,	६४	,,
हलका नारंगी कागज	,,	५०	,,
हलका नीला कागज	,,	३०	,,
हलका लाल कागज	,,	३५	,,
हलका आसमानी कागज	,,	३६	,,
काला कपड़ा	,,	२	,,
काला वेलवेट कपड़ा	,,	१	,,

घरो मे प्रकाश-व्यवस्था करते समय इन बातो पर ध्यान देने से घर की प्रदीप्ति सुन्दर, सस्ती, आरामदेह तथा काम-काज के लिए सुविधाजनक होती है।

●

ध्वनि (Sound)

ताप, प्रकाश आदि की नाई ध्वनि भी ऊर्जा का एक रूप है। इस ऊर्जा को हम श्रवणेन्द्रिय द्वारा अनुभव करते है। जो कुछ हमे कान से सुनाई पडता है, वह ध्वनि है। इस ऊर्जा से हर समय हम परिचित होते रहते है। अपने चारो ओर नाना प्रकार की ध्वनियाँ सुनाई पड़ती रहती है—चिडियो के कूजन से लेकर कुत्तो के भूँकने और बरतनो के खनखनाने तथा गिरने की आवाज हमारे कानो मे आती रहती है। इन आवाजो का कोई अर्थ नही होता है। अत ये सब ध्वनियाँ निरर्थक ध्वनियाँ हैं। बचपन से ही हम ऐसी सार्थक ध्वनियाँ भी सुनते आते है, जिन्हे हम शब्द कहते है। इन शब्दो के अर्थ होते है और इन ध्वनियो की सहायता से हम एक दूसरे से विचारो और भावो का आदान-प्रदान करते है।

ध्वनियाँ दो प्रकार की होती है—सुरीली तथा कोलाहल।

(१) सुरीली ध्वनि या सुस्वर ध्वनि (musical sound)—वह ध्वनि है जो सुनने मे मधुर और कर्णप्रिय मालूम होती है। इस प्रकार की ध्वनि मे कपन-तरग नियमित होती है, जिसके बारे हम आगे चलकर पूरी तरह से अध्ययन करेगे। ऐसी सुरीली ध्वनि हमे मनुष्य के सगीत, चिडियो के कूजन, वाद्य-यत्र—जैसे सितार, तानपूरे, वायलिन, हारमोनियम आदि से सुनाई पडती है।

(२) कोलाहल (noise)—जिस ध्वनि में कोई भी छद या नियमित कंपन न हो, वह कर्णकटु होती है और उसे कोलाहल कहते है ; जैसे-बरतनों की झनझनाहट, सूखे पत्तियो की खडखड़ाहट, या तडित् की कडक आदि से जो ध्वनि निकलती है, वह हमे अप्रिय मालूम होती है। वह कोलाहल है।

ध्वनि की उत्पत्ति

किसी भी ध्वनि की उत्पत्ति के लिए उत्पादक या स्रोत (source) की आवश्यकता होती है। अब हमे देखना है कि उन उत्पादको या पदार्थों में क्या होता है जिस कारण ध्वनि उत्पन्न होती है।

हथौड़े से चोट मारने पर घंटी से आवाज निकलती है। तानपूरे के तने हुए तार को एक ओर खींच कर छोड़ देने से भी आवाज निकलती है। इस अवस्था मे ध्वनि-उत्पादक की जाँच करने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि उसमें कंपन हो रहा है। उत्पादकों मे कंपन के कारण ही ध्वनि उत्पन्न होती है। अगर उत्पादकों मे कंपन बंद कर दिया जाए तो ध्वनि भी बंद हो जाएगी।

प्रयोग १—पीतल या काँसे की बनी घंटी को मजबूत डोरी से बाँधकर एक स्तंभ से लटका दीजिए। एक हथौड़े से घंटी पर चोट कीजिए। चोट करते ही घंटी की आवाज सुनाई पड़ेगी। आवाज निकलते समय घंटी को आहिस्ता से छूइए। घंटी मे कंपन मालूम पड़ेगा। घंटी को कसकर पकड़िए ताकि कंपन बंद हो जाय। तब देखिएगा कि आवाज बंद हो जाएगी।

प्रयोग २—एक स्तंभ से सरकंडे की एक छोटी-सी गोली तागे में बाँधकर लटका दीजिए। लटकी हुई गोली के पास पानी भरा हुआ धातु का एक ग्लास ऐसे रखिए कि गोली ग्लास के एक किनारे को स्पर्श करे। अब ग्लास को लोहे या अन्य किसी धातु की छड़ से आहिस्ता से मारिए। ग्लास से ध्वनि निकलेगी और ग्लास मे कंपन पैदा होगा। इसके फलस्वरूप ग्लास के किनारे को स्पर्श करती हुई गोली टकरा कर उछलने लगेगी। साथ ही ग्लास के पानी मे भी कंपन दिखाई पड़ेगा। ध्वनि के शांत हो जाने पर अर्थात् जब ग्लास मे किसी प्रकार की आवाज नहीं सुनाई पड़ेगी तब गोली का उछलना भी बंद हो जाएगा और पानी का कंपन भी रुक जाएगा। इससे यह सिद्ध होता है कि पदार्थों मे कंपन पैदा होने से ही ध्वनि की उत्पत्ति होती है।

निम्नलिखित प्रयोगो मे ध्वनि-उत्पादक के कंपन की रेखा भी खीची जा सकती है—

इस प्रयोग मे ध्वनि-उत्पादन के लिए एक खास यंत्र लिया जाता है, जिसका नाम ट्यूनिंग फार्क (tuning fork) या स्वरित्र द्विभुज है। यह यंत्र अंग्रेजी अक्षर 'U' जैसी मुड़ी हुई लोहे या अन्य धातु की छड़ है; इस मुड़ी हुई छड़ के बीच मे एक मजबूत धातु का हत्था लगा होता है। U के दोनों सीधे भागो को भुजा (prongs) कहते है। ट्यूनिंग फार्क के हत्थे को पकड़कर अगर किसी लकड़ी के हथौड़े या चमड़ा चढ़ी हुई धातु के हथौड़े द्वारा भुजाओ के सिरो पर चोट करें तो ध्वनि सुनाई पड़ेगी।

साथ ही साथ भुजाओ के सिरे कंपन के कारण धुंधले दिखाई देगे। उँगली से छूकर भुजाओ का कंपन बंद कर देने से ध्वनि भी बद हो जाती है।

प्रयोग—एक ट्यूनिंग फार्क लेकर उसकी एक भुजा के एक सिरे पर एक पतला नुकीला तार मजबूती से कस दीजिए। फिर कालिख पुते हुए कागज का एक टुकडा लीजिए और इसे एक बेलन पर लपेटिए जिसको एक चकती के सहारे घुमाया जा सकता है। ट्यूनिंग फार्क को एक स्तभ से इस प्रकार कस दीजिए कि उसमे लगा हुआ नुकीला तार कागज को हलका-सा स्पर्श करे। चकती को घुमाइए, देखिएगा कि कागज पर एक सीधी लकीर खिच गई है। कागज को बदलकर कालिख पुता एक दूसरा कागज लगाकर फिर से इस
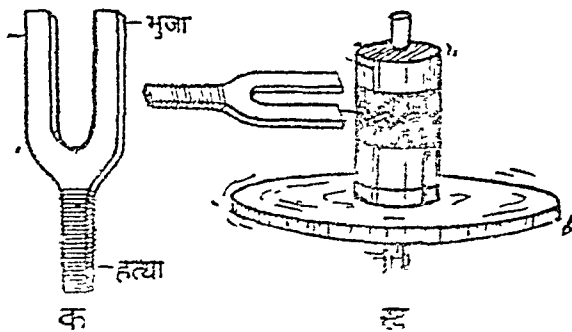
[चित्र ११५—(क) ट्यूनिंग फार्क, (ख) फार्क के कंपन की रेखा।]

प्रयोग को कीजिए। इस बार फार्क पर हथौड़े से हलकी चोट मारिए जिसमे ध्वनि उत्पन्न हो। फिर चकती को घुमाइए। देखिएगा कि कागज पर एक लहरदार रेखा खिच गई है। इससे प्रमाणित होता है कि वस्तुओं के कपन से ही ध्वनि उत्पन्न होती है।

अगर इस रेखा के एक हिस्से का चित्र ११६ जैसा बड़ा चित्र खीचा जाए तो उस चित्र मे क से ख तक की रेखा एक पूरे कंपन (vibration) की रेखा है। इस कंपन को पूरा करने के लिए फार्क को जो समय लगा है उसे उसका कंपनकाल (period of vibration) तथा एक सेकेंड समय के अंदर जितनी बार पूरा कपन होता है, उस सख्या को आवृत्ति (frequency) कहा

जाता है। अगर कहा जाय कि फार्क की आवृत्ति २०० प्रति सेकेंड है तो इसका अर्थ यह होता है कि उस फार्क की भुजा प्रति सेकेंड २०० कंपन कर रही है।
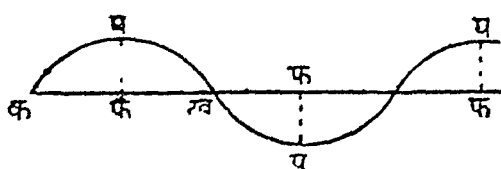
[चित्र ११६—कपन आयाम]

कपन के समय फार्क की भुजा के महत्तम विस्थापन को कंपन आयाम (amplitude of vibratior) कहा जाता है। इसे चित्र में प-फ रेखाओ से दिखाया गया है।

ध्वनि का गमन तथा माध्यम

ध्वनि उत्पादक से उत्पन्न होने के वाद, ध्वनि किसी द्रव्यात्मक माध्यम से होकर ही गमन कर सकती है। ऊष्मा या प्रकाश की तरह ध्वनि शून्य मे होकर गमन नही कर सकती है। निम्नलिखित प्रयोग से इसकी जाँच की जा सकती है।

प्रयोग—एक विद्युत् घटी को एक काँच के वेल-जार (bell jar) के अन्दर लटका दीजिए। वेल-जार को ऐसे एक आधार पर रखिए जिसमें पप द्वारा वेल-जार से हवा निकालने का प्रवंध हो। विद्युत् घंटी के तारों को काग से होकर निकाल लीजिए तथा काग से वेल-जार को इस प्रकार वंद कर दीजिए कि वह वायुरुद्ध (air tight) हो जाए।

अव विद्युत घटी मे विद्युत् प्रवाहित करने से घंटी जोरो से वजने लगेगी और उसकी आवाज हमें सुनाई पड़ेगी। घंटी को जार के अंदर वजते हुए छोड़ दीजिए। फिर एक निर्वातक पप की सहायता से जार की हवा को निकालते जाइये। जैसे-जैसे जार के अंदर हवा कम होती जाएगी वैसे-वैसे घंटी की आवाज भी धीमी होती जाएगी। जव वह जार पूर्ण रूप से निर्वातित हो जाएगा तव घंटी की ध्वनि विलकुल नही सुनाई पड़ेगी; लेकिन घटी का हथौड़ा घटी पर चोट मारते हुए नजर आएगा। अव वेल-

जार के अंदर थोड़ा-थोड़ा हवा जाने दीजिए, हवा के अन्दर आने के साथ-साथ फिर से घटी की आवाज सुनाई पड़ेगी।

इस प्रकार यह प्रमाणित हो जाता है कि ध्वनि शून्य मे होकर नहीं जा सकती है।

साधारणत' वायु ध्वनि का माध्यम होती है। किंतु कोई ठोस या द्रव पदार्थ जो लचीला (elastic) और अविच्छिन्न (continuous) है, उसमें से ध्वनि सचारित हो सकती है। ध्वनि ठोस माध्यम मे सवसे अधिक वेग से मचारित होती है। उसके वाद द्रव माध्यम से और सवसे कम वेग से गैसीय माध्यम से।

ध्वनि का प्रसारण

ध्वनि जव उद्गम-स्थान से प्रसारित होकर किसी भी माध्यम से सुनने वाले के कान तक पहुँचती है तव वह सुनाई पड़ती है। ध्वनि का प्रसारण अनुदैर्ध्य तरग-गति (longitudinal wave motion) से होता है।

जव किसी भी माध्यम का एक कण कपित होता है तव उसके संपर्क मे आनेवाला दूसरा कण भी कम्पायमान हो जाता है। इस प्रकार से कंपन एक कण से दूसरे कण मे, दूसरे कण से तीसरे कण में और इस क्रम से आगे वढता जाता है। इस क्रिया को तरंग-गति (wave motion) कहते है। तरग-गति मे यह विशेषता है कि माध्यम के कण अपने स्थान से स्थायी रूप से नही हटते हैं, केवल अपने-अपने स्थान के इधर-उधर डोलते रहते हैं। तरग-गति को निम्नलिखित प्रयोग से आसानी से समझा जा सकता है।

प्रयोग—एक वड़े वरतन मे पानी भर लीजिए। फिर एक छोटा-सा पत्थर उस पात्र के वीच फेककर उसमे तरग पैदा कीजिए। देखने से ऐसा मालूम होगा कि पानी मे लहरे वनकर वीच के उद्गम-स्थान से किनारे की ओर चली जा रही है। अव एक कागज का छोटा टुकड़ा किसी भी लहर के ऊपर डाल दीजिए। देखिएगा कि कागज का छोटा टुकड़ा उसी स्थान पर केवल ऊपर-नीचे डोल रहा है, किंतु किनारे की ओर आगे नही वढ रहा है। इससे मालूम होता है कि माध्यम का कण, अर्थात् पानी का कण अपना स्थान नही छोड रहा है। केवल ऊपर-नीचे हो रहा है और इस

प्रकार से पानी मे तरगे उत्पन्न हो रही है। पानी मे उत्पन्न तरगों को अनुप्रस्थ तरंग (transverse wave) कहते है।

अनुप्रस्थ तरंगो मे माध्यम के कणो का दोलन या कपन, तरंगो की गति की दिशा पर लम्ब दिशा मे होती है। अगर माध्यम के कणो के कपन (या दोलन) तरगो की गति की दिशा मे होते है तो उस प्रकार की तरगो को अनुदैर्घ्य-तरग कहा जाता है। ध्वनि-तरग जब किसी माध्यम से होकर गमन करती है तब माध्यम के कणो मे तरगो की दिशा मे दोलन या कपन होती है। अर्थात् ध्वनि का प्रसारण अनुदैर्घ्य तरंग से होता है।

इसी प्रकार जब ध्वनि के उत्पादक और हमारे कान के बीच मे वायु का माध्यम हो तब ध्वनि की तरगो की दिशा मे ही वायु के कणो मे दोलन होता है। जिस कारण कुछ स्थानो मे इन कणो का संकुचन (compression) हो जाता है और कुछ स्थानो मे विरलन (rarefaction होता रहता है। ध्वनि की तरगे इस प्रकार से प्रसारित होकर हमारे कानो तक पहुँचती है तो हमे ध्वनि सुनाई पडती है।

ध्वनि का परावर्तन

प्रकाश की नाई ध्वनि भी परावर्तित होती है और प्रकाश-परावर्तन के नियम और ध्वनि के परावर्तन के नियम एक ही है। लेकिन ध्वनि-तरंगों की लबाई अधिक होने के कारण असमतल सतहो से भी ध्वनि का परावर्तन ठीक से हो सकता है। साथ ही, यह भी सही है कि परावर्तन की सतह जितनी अधिक समतल होगी, ध्वनि का परावर्तन उतना ही अच्छा होगा। निम्नलिखित प्रयोग से देखा जा सकता है कि प्रकाश के परावर्तनो के नियमो के अनुसार ही ध्वनि का परावर्तन होता है।

प्रयोग—काठ की एक सीधी खड़ी तख्ती के सामने दो पतली लबी नलियाँ इस प्रकार रखिए कि तख्ती पर लब खीचने से उसके साथ दोनो नलियो द्वारा बनाये गए कोण समान हो तथा दोनो नलियाँ एक ही तल मे हो। अब एक नली के सामने एक छोटी घडी रखिए और दूसरी नली पर कान लगाकर सुनिए तो घडी की ध्वनि साफ सुनाई देगी। घड़ी की ध्वनि ऐसे ही सुनाई न दे इसलिए दोनो नलियो के बीच मे एक काठ का परदा भी रख देना

पडता है या लंबी नलियाँ लेनी पड़ती है। पहली नली को अपने स्थान पर छोडकर दूसरी नली को इधर-उधर हटाकर देखने से पता चलेगा कि घडी की ध्वनि पहली अवस्था मे सबसे स्पष्ट और तेज सुनाई पडती है। इससे मालूम हो जाता है कि घडी की ध्वनि तख्ती पर अभिलंब के साथ जो कोण बनाती हुई आपतित होती है, परावर्त्तित ध्वनि भी अभिलंब के साथ ठीक वही कोण बनाती है और उसी तल पर होती है।

नतोदर दर्पण द्वारा भी ध्वनि का परावर्तन प्रकाश जैसा ही होता है। दो नतोदर दर्पण को आमने-सामने रखकर एक के फोकस पर एक घडी लटका दीजिए। घड़ी की ध्वनि दर्पण से परावर्तित होकर समातर रेखाओ पर चलने लगती है और सामने रखे हुए दूसरे नतोदर दर्पण पर आ गिरती है और उससे परावर्तित होकर उसके फोकस पर केन्द्रित हो जाती है। इसी कारण रबर की नली के एक सिरे पर एक कीप लगाकर, दूसरे दर्पण के फोकस पर रख कर, नली के दूसरे सिरे पर कान लगाने से घड़ी की आवाज स्पष्ट सुनाई पड़ती है।

प्रतिध्वनि

ध्वनि के परावर्तन के कारण ही **प्रतिध्वनि** (echo) उत्पन्न होती है। ध्वनि जब पहाड, दीवार या अन्य किसी बाधा से टकराकर और परावर्तित होकर लौट आती है उस समय एक ही ध्वनि दो या अधिक बार सुनाई देती है; इसे प्रतिध्वनि कहते है। अगर ध्वनि कई बार परावर्त्तित होकर लौट आती है तो कई बार प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। बंद कमरे मे आवाज इसलिए गूँजती हुई मालूम पड़ती है कि ध्वनि चारो ओर की दीवारों से बार-बार परावर्तित होती है।

शब्दो की प्रतिध्वनि साफ सुनाई देने के लिए आवश्यक है कि परावर्तन सतह से कान की दूरी कम से कम ५६ फुट हो, क्योकि मनुष्य के कान मे प्रत्येक ध्वनि का प्रभाव लगभग ०·१ सेकेंड तक बना रहता है। इस समय के अंदर अन्य शब्द कान पर प्रभाव नही डाल सकते है। अर्थात् एक शब्द और दूसरे शब्द के बीच ०·१ सेकेंड का अंतर होने से ही उस दूसरे शब्द को हम स्पष्ट सुन सकते है। इस प्रकार किसी शब्द की ध्वनि की उत्पत्ति के बाद उसके परावर्त्तक बाधा तक जाने तथा वहाँ से परावर्तित

होकर लौट आने मे कम से कम ०·१ सेकेंड का समय लगने से ही हम प्रति-ध्वनि को स्पष्ट सुन सकते है। साधारण अवस्था मे, वायु के माध्यम में, ध्वनि का वेग प्रति सेकेंड ११२० फुट है। इसलिए ध्वनि को ५६ फुट जाने तथा परावर्तित होकर लौट आने मे ०·१ सेकेंड लगता है।

प्रतिध्वनि के गुंजन से बचने के लिए सिनेमा हाल आदि की दिवारों को इस प्रकार बनाया जाता है कि उनमे ध्वनि का अवशोषण हो सके और उनसे टकराकर ध्वनि का न्यूनतम परावर्तन हो।

किसी नली के अंदर से गमन करते समय ध्वनि उसकी दीवार से बार-बार परावर्त्तित होकर दूसरे सिरे तक चली जाती है और बिखर कर नष्ट न हो जाने के कारण साफ सुनाई देती है। इसी सिद्धात के आधार पर बात करने की नली (speaking tube) तथा डाक्टरो का स्टेथस्कोप आदि बनते है। स्टेथस्कोप के मुँह पर पहुँचने वाली ध्वनि नलियो की सहायता से दोनो कानो मे पहुँचाती है और साफ सुनाई पडती है।

सुरीली ध्वनि

वस्तु के कपन से ध्वनि उत्पन्न होती है। वस्तुओ मे नियमित कपन उत्पन्न होने से सुरीली ध्वनि निकलती है। सुरीली ध्वनि उत्पन्न करने के लिए जिन यंत्रो का व्यवहार होता है, उन्हें वाद्य-यन्त्र कहते है।

ध्वनियाँ नाना प्रकार की होती है। कोई स्वर मोटा तो कोई पतला, किसी मे मधुरता अधिक तो किसी मे कम, कोई प्रबल और, कोई क्षीण आदि। सुरीली ध्वनि की तीन प्रधान विशेषताएँ होती है—

(१) तारत्व, (pitch), (२) तीव्रता (intensity) तथा (३) गुण (quality)।

एक ही बाजे से विभिन्न प्रकार के स्वर निकलते है। स्वर की मोटाई या महीनपन को उसके तारत्व की निम्नता या उच्चता कहते है। मोटा स्वर निम्न तारत्व का और महीन स्वर उच्च तारत्व का स्वर है। तारत्व ध्वनि की आवृत्ति पर निर्भर करता है। आवृत्ति जितनी अधिक होगी तारत्व उतना ही अधिक होगा और स्वर उतना ही महीन होगा। आवृत्ति कम होने से तारत्व कम और स्वर मोटा होगा।

एक ही तारत्व के स्वरो की तीव्रता मे अन्तर हो सकता है।

एक ही तारत्व और तीव्रता के दो स्वरो मे भी अन्तर हो सकता है। इस अन्तर को स्वर का गुण कहते हैं। ध्वनि का गुण उसके तरंग के रूप पर निर्भर करता है।

वाद्ययंत्र

वाद्ययंत्र प्रधानतः तीन प्रकार के होते है :—(१) तार वाले वाद्ययंत्र, (२) वायु-वाद्ययन्त्र, (३) डायाफ्राम (diaphragm) वाले वाद्ययंत्र।

तार वाले वाद्ययंत्र

इन यंत्रो में तार, डोरी या तांत लगी हुई होती है, जिसके कंपन से ध्वनि उत्पन्न होती है। इनमें लकडी का बक्सा या लौकी की तुमड़ी लगी रहती है जो ध्वनि बक्सा (sound box) का काम करती है। तार कंपित होने से ध्वनि बक्सा भी कंपित होकर ध्वनि की तीव्रता और गुणता मे वृद्धि करता है।

तानपूरा, सितार, सारंगी, इकतारा, वीणा, बेला, इसराज, पियानो आदि तारवाले वाद्ययंत्र हैं। तार वाले वाद्ययंत्रो मे से कुछ को अँगुली से खींचकर और कुछ को एक प्रकार के धनुष द्वारा कंपित किया जाता है। सितार, तानपूरा, वीणा, इकतारा आदि के तार को अँगुली से बजाया जाता है। बेला, सारंगी, इसराज आदि बजाने के लिए धनुष काम मे लाया जाता है। पियानो जैसे तार वाले यंत्रो को बजाने के लिए चाभी दबाकर उससे लगे हुए छोटे-से हथौड़े जैसे यन्त्र से तार को कंपित किया जाता है।

तार वाले वाद्ययन्त्रो मे साधारणत तारो का सिरा खूँटी या हूक से बँधा रहता है और दूसरा सिरा ऐसी खूँटियो से लगा रहता है जिसे आवश्यकतानुसार ऐंठकर तार का तनाव बढाया-घटाया जा सकता है। तार का तनाव बढ़ाने-घटाने से उसकी आवृत्ति मे भी वृद्धि या कमी हो जाती है और साथ ही ध्वनि का तारत्व भी बढ-घट जाता है। तनाव मे वृद्धि होने से आवृत्ति बढ जाती है और ध्वनि का तारत्व भी बढ जाता है। तार की लबाई और मोटाई पर भी ध्वनि का तारत्व निर्भर करता है। लबाई अधिक होने से ध्वनि मोटी होती है। इसलिए एक ही तार के तनाव या लंबाई को घटा-बढ़ाकर, एक सीमा के अंदर के तारत्व के स्वर, एक ही तार से उत्पन्न किये जा सकते हैं। इस सीमा के बाहर के मोटे स्वरो के लिए मोटे तार और

पतले (उच्च तारत्व के) स्वरो के लिए पतले तार का व्यवहार किया जाता है।

वायु-वाद्ययन्त्र

वायु-वाद्ययन्त्रो मे मुँह से या धौंकनी द्वारा फूँककर, या अन्य किसी यान्त्रिक उपाय से, वायु प्रवेश कराई जाती है और वायु-स्तम्भ मे कंपन उत्पन्न करके स्वर निकाला जाता है। वायु-वाद्ययंत्र साधारणत: दो प्रकार के होते है —रीड वाले वाद्ययन्त्र तथा वाद्य-नली।

रीड वाले वाद्ययन्त्रो मे एक वायु-कोष्ठ होता है जिसमें धौंकनी की सहायता से वायु प्रवेश कराई जाती है। वायु-कोष्ठ के भीतर सुराख बने होते है, जिनकी बगल मे धातु की पत्तियाँ या रीड (reed) लगी होती है। भाथी से वायु भर देने से पत्ती मे कंपन पैदा होता है और ध्वनि निकलती है। हारमोनियम रीड वाले वाद्ययन्त्रो म प्रधान है।

हारमोनियम

हारमोनियम एक बक्सानुमा यन्त्र है। इसकी एक बगल मे हवा भरने की धौंकनी लगी हुई होती है। इसमे विभिन्न आवृत्ति के सैंतीस रीड लगे रहते है। ये रीडे एक बोर्ड पर एक पंक्ति मे लगे रहते है। प्रत्येक रीड हारमोनियम
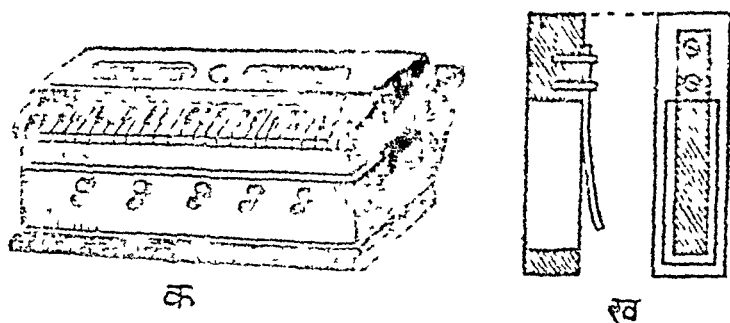
[चित्र ११७ : क—हारमोनियम, ख—रीड]

के ऊपर लगी हुई छोटी-छोटी उजले और काले रंग की पटरीनुमा एक-एक चाभी से संबंधित रहता है। धौंकनी से वेग से वायु-कोष्ठ में वायु प्रवेश करवा कर किसी चाभी को दबाने से उससे संबंधित रीड वायु के धक्के से कंपित

होने लगता है और इस प्रकार इच्छानुसार चाभी दवाकर हारमोनियम से इच्छित स्वर उत्पन्न किया जा सकता है।

हारमोनियम के रीडो की आवृत्तियाँ एक विशेष क्रम से निश्चित की जाती है। एक ओर से एक के वाद एक दूसरी चाभी दवाने से मालूम होगा कि स्वर का तारत्व वढता जा रहा है। स्वर तारत्व मे निश्चित क्रम से वृद्धि होने के कारण श्रुति-मधुर होते है।

वायु-वाद्यनली का एक मुँह या उसके दोनो मुँह खुले हो सकते है। आरगन नाम के वाद्ययन्त्र मे इस प्रकार की विभिन्न लंबाइयो और मोटाइयो की बहुत-सी नलियाँ होती है। जैसे किसी शीशी मे फूँक मारने से उससे सीटी जैसी आवाज निकलती है और शीशी की मोटाई और लंबाई के अनुसार आवाज मे भिन्नता होती है—इसी प्रकार चाभी दवाकर इन नलियो मे वायु प्रवेश करा कर विभिन्न तारत्व की ध्वनियाँ उत्पन्न की जाती है।

वाँसुरी

वाँसुरी दोनो मुँह खुला हुआ वायु वाद्य-नली है। इसमे मुँह से फूँक कर हवा प्रवेश कराई जाती है। इसमे नीचे की ओर कई छेद वने हुए होते है जिन्हे अँगुलियों से दवाकर या खोलकर, इच्छानुसार स्वर उत्पन्न किया जाता है।

तनुपट या डायफ्राम (Diaphragm) वाले वाद्ययंत्र

डायफ्राम वाले वाद्य-यन्त्र को आघात वाद्ययंत्र भी कहा जाता है। खोखले खोल के उपर चमडे का डायफ्राम लगाकर इस प्रकार के वाद्ययंत्र वनते है। तवला, ढोल, मृदग, नगाड़ा, खंजरी आदि इस प्रकार के वाद्ययन्त्र है। ढोल आदि के दोनो सिरो पर चमडे के तनुपट या डायफ्राम लगे हुए होते है। तवला आदि के खोल का सिर्फ एक ही मुँह होता है और उस पर चमडे का डायफ्राम लगा हुआ होता है। डायफ्राम का तनाव घटाने-वढाने के लिए नीचे से छेद करके डोरियाँ लगा दी जाती है। इन डायफ्रमो पर हाथ या लकड़ी से चोट करके ध्वनि उत्पन्न की जाती है। डायफ्राम के कपन को नियन्त्रित करने के लिए तवला, मृदग आदि के डायफ्रामो के मध्य स्थान पर विशेष प्रकार का लेप लगा दिया जाता है।

मनुष्य की वागिन्द्रिय

हमारे लिए, हजारो प्रकार की ध्वनियों मे, मनुष्य के कंठ से निकलने वाली ध्वनि सबसे महत्त्वपूर्ण है। इस ध्वनि को जिह्वा, ओठ और तालु की सहायता से विभिन्न प्रकार के शब्दो (words) का रूप देकर तथा उन शब्दों को सनियमित तथा सुव्यवस्थित रूप से जोडकर मनुष्य आपस मे भावों और विचारो का आदान-प्रदान करते हैं।

मनुष्य की **वागिन्द्रिय** (vocal organ) की तुलना दोहरी रीड पाइप (double reed pipe) जैसी बाँसुरी से की जा सकती है। **श्वास नली** (trachea) के ऊपर तने हुए दो वाक्-तंतु (vocal cords) होते हैं। वाक-तंतु रीड जैसा और श्वास नली पाइप जैसा काम करते हैं। श्वास नली के ऊपर, दोनो वाक्-तंतु के बीच मे एक सँकरी झिरी जैसी होती है। इसे **स्वर झिरी** कहते है। वाक-तंतु मांसपेशिओ से जुड़े हुए होते है, जिनकी सहायता से इनके तनाव तथा कपन नियन्त्रित होते हैं। श्वास नली के ऊपरी भाग को कंठ (larynx) कहते हैं।

श्वास-नली नीचे की ओर फेफडे तक चली जाती है। फेफड़े की हवा की सहायता से वाक्-ततुओ मे रीड जैसा कपन पैदा करके मनुष्य के कठ से ध्वनि निकलती है। मासपेशियो की सहायता से वाक्ततु के तनाव को वदल कर ध्वनि का तारत्व वदला जा सकता है।

पुरुप के वाक्तंतु, स्त्री तथा वच्चो के वाक्तंतुओ से लवे होते है। इसलिए पुरुप के कठ से निकलनेवाली ध्वनि का तारत्व निम्न और स्त्री तथा वच्चो की ध्वनि का तारत्व उच्च होता है और उनकी आवाज पतली तथा तीखी होती है।

ध्वनि, जिसे हम सुन नही सकते

देखा गया है कि ध्वनि की आवृत्ति (frequency) १६ साइकिल प्रति सेकेंड (cycle per second) से कम होने से या १६००० साइकिल प्रति सेकेंड (16 kilocycle per second) से अधिक होने से मनुष्य उस ध्वनि को सुन नही सकता है। मनुष्य की श्रवण-शक्ति के परे उच्च आवृत्ति की ध्वनि को **पराश्रव्य-ध्वनि** (ultrasonic sound) कहते है।

यद्यपि मनुष्य पराश्रव्य-ध्वनि नही सुन सकता है, फिर भी बहुत-से ऐसे प्राणी हैं जो इस प्रकार की ध्वनि उत्पन्न कर सकते हैं तथा उसे सुन सकते है।

उच्च आवृत्ति की पराश्रव्य-ध्वनि का उपयोग उद्योग, चिकित्सा-विज्ञान आदि वहुत-से कामो में होता है। इसकी सहायता से विना तोडे ही धातु-निर्मित वस्तुओ में तथा रवर-निर्मित टायरो मे मौजूद खामियो का पता लगाया जा सकता है। लड़ाई के समय पानी के नीचे छिपे हुए पनडुब्बी जहाज का पता इसी की सहायता से लगाया जाता है। कैंसर नामक रोग का पता लगाने के लिए तथा उसकी चिकित्सा के लिए भी इसका इस्तेमाल होता है। इसकी सहायता से भू-गर्भ मे स्थित कोयले तथा अन्य धातुओं का पता लग सकता है। रेडार, टेलिविजन, माइक्रोस्कोप तथा टेलिस्कोप आदि में भी इसके इस्तेमाल होते है। साथ ही, वैक्टीरिया मारने, यंत्रों के वारीक पार्ट-पुर्जो पर से तेल का मैल आदि साफ करने, कपड़े रँगने तथा इस्तिरी करने आदि कितने ही कामो मे पराश्रव्य-ध्वनि का उपयोग होता है।

मनुष्य का कान

कान मनुष्य का वह अंग है जिसके द्वारा ध्वनि-तरंग गृहीत होकर, श्रवण-तन्त्रिकाओ की सहायता से उद्दीपन के रूप मे मस्तिष्क मे पहुँचती है और मनुष्य ध्वनि सुनता है, अर्थात् कान मनुष्य तथा सभी प्राणियों के लिए सुनने की इन्द्रिय है।

मनुष्य के कान को, वनावट के अनुसार, तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है :—(१) वाहरी कान, (२) मध्य कान तथा (३) आतरिक कान।

वाहरी कान

हम साधारणत जिसे कान कहते है, वह असल मे वाहरी कान का एक भाग है। इस भाग को कर्ण-पल्लव (pinna) कहा जाता है। कर्ण-पल्लव ध्वनि-तरंगों को परावर्त्तित करके उन्हे कर्ण-कुहर के अन्दर फोकस करता है। इसके वीच से प्राय एक इंच लंवी एक पतली नली भीतर की ओर जाती है। इस नली को कर्ण कुहर (auditory meatus) कहते है। इनका अतिम भाग कर्ण-पटह (tympanum) से ढका रहता है। कर्ण-नली के भीतर की त्वचा

में कुछ छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं, जिनसे मोम जैसा पदार्थ निकलता है। इसे कान का गूँद या मैल (ear wax) कहते हैं। यह साधारण कम मात्रा में निकलता है जो बाहरी कान के मार्ग को [illegible] रखता है। किन्तु अधिक मात्रा में निकलने से और धूल-कणों के साथ मिल जाने से कर्ण-नली के अन्दर जमा होकर शब्द-तरंगों के प्रवेश में बाधा उत्पन्न करता है। उस समय कान में खुजली और सुनाई कम होती है। इसलिए कर्ण-नली को साफ रखना चाहिए। [illegible] बाल भी होते हैं जो धूल-कणों को अन्दर जाने से रोकते हैं।

मध्य कान

मध्य कान, कर्ण-नली के अन्त में स्थित एक पतली झिल्ली या कर्ण-पटह से आरम्भ होता है और यह खोपड़ी की हड्डियों से घिरी हुई एक छोटी-सी कोठरी की तरह, जिसे कर्ण-पटह-गुहा (tympanic cavity) कहते हैं, होता है। इस कोठरी के अन्दर कर्ण-पटह से लेकर भीतरी दीवार तक तीन छोटी-छोटी हड्डियाँ क्रम से लगी होती हैं, जिन्हें श्रवण-अस्थियाँ (auditory ossicles) कहते हैं। सबसे आगे की अस्थि को, जिसका एक सिरा कर्ण-पटह को अंदर से छूता हुआ रहता है—मुद्गरास्थि या मैलियस (malleus) कहते हैं, क्योंकि यह आकार में हथौड़ा जैसा होता है। मुद्गरास्थि का दूसरा सिरा एक निहाई के आकार की अस्थि से लगा हुआ होता है जिसे इनकस (incus) या निहाई-अस्थि कहते हैं। निहाई-अस्थि का अन्तिम सिरा एक रकाब-जैसी अस्थि से लगा होता है। इस आखिरी अस्थि को रकाबास्थि (stapes) कहा जाता है। रकाबास्थि का दूसरा चौड़ा सिरा मध्य-कर्ण गुहा (tympanic cavity) के अन्त में अवस्थित एक छोटे-से अंडाकार छिद्र को ढकता है। इस छिद्र को फीनेस्ट्रा ओवेलिस (fenestra ovalis) कहते हैं। इससे मध्य-कर्ण का संयोग आंतरिक कर्ण से होता है। आतरिक कान या कलामय गहन (membranous labyrinth) घोंघे की आकृति की हड्डी का एक खोल है जो अस्थिमय गहन (bony labyrinth) के अन्दर और उसी आकार का होता है। फीनेस्ट्रा ओवेलिस असल में इसी अस्थिमय गहण का छेद है।

मध्य-कर्ण के कोष्ठ के नीचे से एक पतली नली कंठ की ओर चली जाती है और मध्य कर्ण-गुहा को कंठ से मिलाती है। इस नली को यूस्टेकियो-नली

(eustachian tube) कहते है। इस प्रकार से मध्य-कर्ण का सम्बन्ध बाहरी वायु से रहने पर कर्ण-पटह के दोनो तरफ वायु का दाव समान रहता है तथा ध्वनि-तरंगो से कर्ण-पटह ठीक से कंपित हो सकता है और अचानक अधिक तेज आवाज के कारण कर्ण-पटह फटने से बच जाता है।

आंतरिक कान

झिल्ली के बने हुए घोघे जैसे आकार के कलामय गहन (membranous labyrinth) को आंतरिक कान कहते हैं। यह श्रवणेन्द्रिय का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है। यह कलामय गहन एक उसी आकार की हड्डी के या अस्थिमय गहन (bony labyrinth) के अन्दर बन्द रहता है। कलामय गहन के अन्दर एक तरल पदार्थ होता है जिसे अन्तर्लसिका (endolymph) कहते है। अस्थिमय गहन के अन्दर, किन्तु कलामय गहन के बाहर, एक अन्य तरल पदार्थ होता है, उसे **परिलसिका** (perilymph) कहते हैं।

आंतरिक कान के तीन भाग होते हैं :—सैक्यूलस (sacculus), कौक्लिया (cochlea) तथा अर्द्ध-वृत्ताकार नलिकाएँ (semi circular canals)। सैक्यूलस आंतरिक कान का मध्य भाग है और सामने की ओर से घोघे के रूप के, कौक्लिया से और पीछे की ओर से तीन अर्द्ध-वृत्ताकार नलिकाओ से जुड़ा हुआ होता है। कौक्लिया के अंदर ही श्रवण-तंत्रिकाओ के आखिरी सिरे (endings) होते हैं, जिनमें से ध्वनि-कंपन उद्दीपन के रूप मे मस्तिष्क मे पहुँच जाता है। इससे हम ध्वनि को सुनते हैं। कौक्लिया के अन्दर इस स्थान को **कर्टीका अंग** (organ of corti) कहते है।
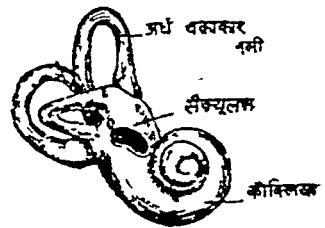
[चित्र ११८—मनुष्य का आतरिक कान]

अर्द्ध-वृत्ताकार नलिकाओ द्वारा हमें शरीर की विभिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न दिशाओं का ज्ञान हो जाता है और इस प्रकार से हमें अपने शरीर की साम्य स्थिति (equilibrium of the body) बनाये रखने मे सहायता मिलती है।

श्रवण-विधि (Mechanism of hearing)

पदार्थों के कंपन से ध्वनि-तरंग उत्पन्न होकर उसके चारो ओर की वायु को भी कंपित करती है। ये तरंगे कर्ण-पल्लवो द्वारा एकत्रित होकर कर्ण-नली से गुजरकर कर्ण-पटह से टकराती हैं। इस प्रकार से कर्ण-पटह कंपित होता है। यह कंपन मुद्गरास्थि से होकर निहाई मे फिर रकावास्थि से होकर आतरिक कान मे पहुँच जाता है। इससे कलामय गहन के वाहर और अन्दर के द्रव पदार्थों मे तरंगें उत्पन्न होती हैं और फिर श्रवण-तंत्रिका इस अनुभूति को मस्तिष्क तक पहुँचा देती है। इस प्रकार हम शब्द को सुनते हैं।

बधिरता

कान के इन अंग-प्रत्यंगो मे से एक के भी खराव हो जाने से या किसी में भी खामी आ जाने से, मनुष्य सुन नही सकता है। इसे बधिरता कहते है। कभी-कभी मनुष्य पूर्ण बधिर होने के बजाय कम सुनने लगता है। यह भी उन्ही कारणों से होता है। श्रवण-सहायक यंत्रों की सहायता से कंपन को शक्तिशाली करके कम सुनने वाले मनुष्य सुन सकते है।

ध्वनि का वेग

हमें यह मालूम है कि जब आकाश मे बिजली चमकती है तब उसका तेज प्रकाश दिखाई देने के कुछ समय के वाद कडाके की आवाज सुनाइ देती है। अत. यह प्रतीत होता है कि ध्वनि का वेग, प्रकाश के वेग से कम है। ध्वनि एक सेकेंड मे जितनी दूरी तय करती है वह ध्वनि का वेग है। यह वेग माध्यम पर निर्भर करता है। जो माध्यम जितना ही घना होता है उसमे से ध्वनि उतनी ही तेजी से जाती है—जैसे वायु की अपेक्षा पानी मे ध्वनि अधिक तेजी से चलती है। पानी मे ध्वनि का वेग हवा मे इसके वेग से प्राय. चौगुना है। इस प्रकार पानी की अपेक्षा ठोस मे ध्वनि का वेग अधिक होता है। वायु मे ध्वनि का वेग, वायु के तापमान पर भी निर्भर करता है। तापमान अधिक होने से ध्वनि का वेग भी अधिक हो जाता है। हवा मे ०°C तापमान पर ध्वनि का वेग लगभग ११२० फुट प्रति सेकेंड या ३२२ मीटर प्रति सेकेंड है। हवा मे नमी रहने पर ध्वनि के वेग पर उसका असर पड़ता है।

विभिन्न माध्यमों में, साधारण अवस्था में, ध्वनि के वेग ये हैं :—

माध्यम	वेग
हवा	१,१०० फुट प्रति सेकेंड (लगभग)
मीठा पानी	४,६०० ,, ,, ,, ,,
समुद्र का पानी	५,६०० ,, ,, ,, ,,
लोहा	१६,००० ,, ,, ,, ,,
ताँबा	१२,९०० ,, ,, ,, ,,
ऐलुमिनियम	१६,६०० ,, ,, ,, ,,
काँच	१६,२५० ,, ,, ,, ,,
लकड़ी	१२,००० ,, ,, ,, ,,

अध्याय १७

ध्वनि-यंत्र

ग्रामोफोन यत्र मे रेकार्ड वजाकर हम घर बैठे, जव चाहें, अच्छे गायकों के गाने, महापुरुषो की वाणी, समुद्र की गंभीर ध्वनि, हिंस्र पशुओं का गर्जन, पक्षियो का मधुर कूजन आदि सुन सकते है। ध्वनि का स्थायी रूप से ध्वनि-अभिलेखन (recording of sound) तथा उसके पुनरुत्पादन (reproduction) द्वारा ऐसा होना संभव होता है।

वस्तु के कपन से ध्वनि की उत्पत्ति होती है। इस कंपन से वायु मे ध्वनि-तरग की उत्पत्ति होती है। ये तरगे जव हमारे कर्ण-पटह से आकर टकराती है और उसमे उसी प्रकार कंपन उत्पन्न करती है तव हम ध्वनि को सुनते हैं। अगर किसी ध्वनि-तरग की प्रतिलिपि वना ली जाए और आवश्यकतानुसार उसकी सहायता से फिर से वायु में उसी प्रकार की तरगो की उत्पत्ति की जाए तो हम उस ध्वनि को फिर से सुन सकते है। फोनोग्राफ आदि इसी सिद्धात के आधार पर वने है। ध्वनि-तरंग की प्रतिलिपि वनाने को ध्वनि-अभिलेखन और उसकी सहायता से फिर से उसी प्रकार ध्वनि-तरंग की उत्पत्ति को पुनरुत्पादन कहते है।

सन् १८७७ मे टामस अल्वा एडीसन नामक वैज्ञानिक ने ध्वनि-अभिलेखन तथा उसके पुनरुत्पादन के लिए फोनोग्राफ यंत्र वनाया। इस यंत्र से ये दोनों काम हो सकते थे। इसे वर्त्तमान ग्रामोफोन यंत्र का आदिम रूप कहा जा सकता है। इसमे रेकार्ड वेलनाकार होता था जिसके ऊपर लगे हुए मोम या टीन की मुलायम परत पर ध्वनि-अभिलेखन होता था। वाद में वार्लिनर नाम के वैज्ञानिक ने इस यंत्र मे सुधार करके ग्रामोफोन यंत्र वनाया। उन्होंने वेलनाकार रेकार्ड के स्थान पर रेकार्ड का वर्त्तमान रूप, थालीनुमा गोल रेकार्ड वनाया।

ध्वनि-अभिलेखन (sound recording)—ग्रामोफोन के रेकार्ड पर ध्वनि का अभिलेखन इस प्रकार होता है—शंकु के आकार की नली के पतले मुँह के सामने एक झिल्ली या डायफ्राम कसकर लगा हुआ होता है। डाय-

फ्राम के मध्य विंदु पर एक लीवर का एक सिरा लगा हुआ होता है। नीचे की ओर एक आलंब की सहायता से लीवर लटकता रहता है और इधर-उधर हिल सकता है। लीवर के दूसरे सिरे पर पेंच द्वारा एक वहुत ही नुकीली सूई लगी हुई होती है। नली के मुँह का दूसरा सिरा धीरे-धीरे मोटा होकर हॉर्न जैसा वना हुआ होता है। हॉर्न के चौडे मुँह के पास ध्वनि उत्पन्न करने से तरंग जैसे-जैसे अंदर घुसती जाती है वैसे-वैसे वे सघन होती जाती है और अंत मे नली के पतले मुँह पर लगी हुई डायफ्राम से टकरा कर उसे कंपित करने लगती है। डायफ्राम के कंपित होने से उसके साथ लगा हुआ लीवर और फिर लीवर से लगी हुई सूई कंपित होने लगती है। सूई के नीचे मोम के मिश्रण से वना हुआ एक समतल गोल तवा रखा होता है। ध्वनि-अभिलेखन के समय यांत्रिक युक्ति से इस तवे को घूर्णित रखा जाता है और सूई उसपर एक पतली रेखा खुदती जाती है। यंत्र इस प्रकार से वनाया हुआ होता है कि सूई घूमती हुई तवा के किनारे से केंद्र की ओर लगातार खाँचे (grooves) काटती हुई वढ़ती जाती है।
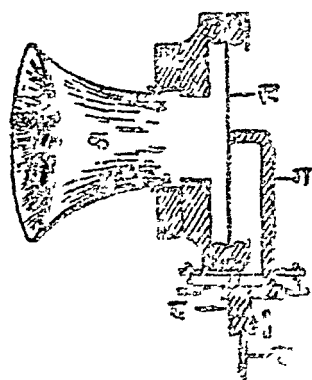
[चित्र ११९—ध्वनि-अभिलेखन यंत्र · क—कोनाकार नली, ख—डायफ्राम, ग—लीवर, घ—आलंव, च—सूई]

असल में ये खाँचे सीधे-सपाट न होकर डायफ्राम के साथ सूई के कंपित होने के कारण तरंगित सर्पिल (wavy spiral) होते है। इस प्रकार से वने हुए रेकार्ड को मूल रेकार्ड (original record) कहते हैं। मूल रेकार्ड से वैद्युतिक प्रणाली द्वारा एक धातु-निर्मित रेकार्ड वनाया जाता है, जिसे निगेटिव (negative) कहते हैं। इस निगेटिव से छापकर वाजार में विकने वाले कचकडे के रेकार्ड वनाये जाते हैं।

ध्वनि-अभिलेखन की एक आधुनिकतम विधि को टेप-रेकॉर्डिंग (tape-recording) कहते है। इसमें विशेष प्रकार के फीते पर ध्वनि की चुम्वकीय आकृतियाँ वनती हैं, जिसे विशेष प्रकार के यंत्र द्वारा पुनरुत्पादित किया जाता है।

ध्वनि का पुनरुत्पादन (Reproduction of sound)

रेकर्ड पर अभिलिखित ध्वनि का पुनरुत्पादन फोनोग्राफ या ग्रामोफोन यंत्र द्वारा किया जाता है। ध्वनि-अभिलेखन की क्रिया को उलटा कर देने से अर्थात् रेकार्ड के तरगित सर्पिल खाँचो पर सूई को चलाकर कंपित करने पर उसके साथ लगे हुए लीवर मे कपन उत्पन्न होगा और उससे नली के सामने लगा हुआ डायफ्राम कपित होकर ठीक उसी प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करेगा। डायफ्राम के साथ लगी हुई नली हॉर्ननुमा होने के कारण (या उसके साथ हॉर्न लगा देने से) ध्वनि की तीव्रता वढ़ जाती है। ग्रामोफोन यन्त्र मे इसी प्रकार के डायफ्राम से युक्त एक नली लगी हुई होती है; डायफ्राम साधारणतः अभ्रक (mica) का वना होता है। इसे साउण्ड-वक्स (sound box) कहते है। शकु के आकार की एक मुड़ी हुई नली के साथ साउंड वक्स जुड़ा हुआ होता हैं।

ग्रामोफोन मे रेकार्ड लगाकर स्प्रिग या विजली-मोटर की सहायता से उसे घूर्णित किया जाता है और उसपर साउड-वक्स के साथ लगी हुई सूई वैठा दी जाती है। सूई तरगित खाँचो पर नाचती हुई रेकार्ड के केन्द्र की ओर जाती है और उससे डायफ्राम मे कपन उत्पन्न होकर ध्वनि का पुनरुत्पादन होता है। पुनरुत्पादित ध्वनि हॉर्न से तीव्र होकर वाहर निकल जाती है। आजकल अधिकाश ग्रामोफोन या रेकर्ड प्लेयर के हार्न वाहर न होकर उसके वक्स के अदर ही लगे होते है।

टेलीफोन (Telephone)

टेलीफोन एक ऐसा यंत्र है, जिसकी सहायता से हम हजारो मील दूर रहनेवाले व्यक्ति से उसी प्रकार वार्तालाप कर सकते है जैसा कि पास वैठे व्यक्ति के साथ। अर्थात इस यन्त्र की सहायता से हम ध्वनि-तरंगो को जितनी भी दूर चाहें, भेज दे सकते हैं।

इस यंत्र का आविष्कार वैज्ञानिक ग्राहाम वेल (Graham Bell) ने सन १८७६ मे किया था। टेलीफोन तंत्र मे एक प्रेषक (transmitter) और एक ग्राहक (receiver) यंत्र तथा दोनों को जोड़नेवाली लाइन होती है। आजकल अधिकांश टेलीफोनों में प्रेषक तथा ग्राहक यन्त्र एक ही साथ जुड़े हुए होते हैं। टेलीफोन का प्रेषक यंत्र ध्वनि-तरंगों को विद्युत-धारा में

परिवर्तित करके लाइन के दूसरे सिरे पर लगे हुए ग्राहक यंत्र मे भेज देता है। ग्राहक यंत्र उस विद्युत्-धारा को फिर से ध्वनि-तरगो मे परिवर्तित कर देता है और हम उसे सुन पाते है।

प्रेषक यंत्र

इस यंत्र के सामने के अंश को ध्वनि-तरंगो का सग्रह करने के लिए शंकु के आकार का बनाया जाता है। इसे **मुखिका** (mouth piece) कहते है। मुखिका के अत मे एक नरम लोहे की झिल्ली या डायफ्राम लगा हुआ होता है। उसके पीछे कार्वन के दो पतले प्लेट इस प्रकार से लगे हुए होते है कि वे एक छोटे-से बक्से की दो दीवारो का काम करते हैं। डायफ्राम का केंद्र पास के प्लेट के साथ मजबूती से जुडा हुआ होता है। दोनो प्लेटो के बीच मे कार्वन-चूर्ण भर दिया जाता है। लाइन का एक तार डायफ्राम के साथ तथा दूसरा तार पीछे के कार्वन-प्लेट में लगा दिया जाता है। यत्र की मुखिका के सामने ध्वनि उत्पन्न होने से ध्वनि-तरगो से डायफ्राम कपित होने लगता है। डायफ्राम सामने के कार्वन-प्लेट से जुड़ा होने के कारण, डायफ्राम के साथ-साथ प्लेट भी कपित होने लगता है और दोनो प्लेटो के बीच में भरे हुए कार्वन-चूर्ण पर दाव की कमी-वेशी होने लगती है। इससे कार्वन और प्लेटो के बीच का वैद्युतिक प्रतिरोध भी घटने-बढने लगता है, जिसके फलस्वरूप सर्किट मे वहती हुई विजली की धारा भी उसी अनुपात मे वढने और घटने लगती है। यह घटती-वढती धारा लाइन से होकर ग्राहक-यंत्र मे पहुँचकर उसके डायफ्राम मे ठीक उसी प्रकार का कपन उत्पन्न करके ध्वनि का पुनरुत्पादन करती हैं।

[चित्र १२०—टेलीफोन का कार्वन माइक्रोफोन : क—मुखिका, ख—डायफ्राम, ग-घ—पतले कार्वन प्लेट, च—कार्वन-चूर्ण]

इस प्रकार के प्रेषक यंत्र को **कार्वन माइक्रोफोन** कहते है। आजकल कार्वन माइक्रोफोन के स्थान पर, उससे अच्छा **वैद्युतिक गतिज माइक्रोफोन** इस्तेमाल किया जाता है।
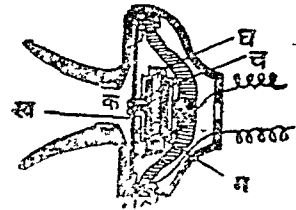
ग्राहक यन्त्र (Receiver)

इसके अंदर U के आकार का एक अस्थायी चुम्बक होता है। इसके दोनो सिरो पर पतले तार की एक-एक कुंडली लगी हुई होती है। प्रत्येक कुंडली लाइन के एक-एक तार से जुड़ी हुई होती है। कुंडलियो मे लाइन द्वारा सवाद प्रेषक के टेलीफोन से आती हुई विद्युत-धारा प्रवाहित होने से चुम्बक के सम्मुख स्थित डायफ्राम को चुम्बक आकर्षित करने लगता है। साथ ही, धारा की कमी-वेशी से आकर्षण मे भी कमी-वेशी होती रहती है और डायफ्राम कपित होता रहता है। सवाद-प्रेषक के माइक्रोफोन मे जिस प्रकार विद्युत-धारा मे कमी-वेशी होती है, ग्राहक-यत्र मे भी धारा की उतनी ही
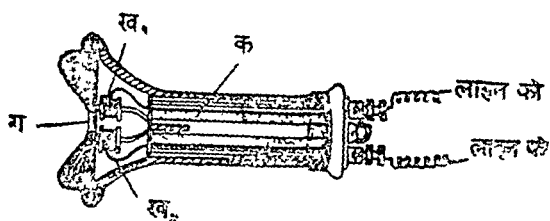
[चित्र १२१—टेलीफोन का ग्राहक यत्र : क—चुबक, ख, तथा ख₂—कुडली, ग—डायफ्राम]

कमी-वेशी होने लगती है और उसका डायफ्राम ठीक उसी प्रकार का कंपन करता है जिस प्रकार प्रेषक के माइक्रोफोन का डायफ्राम। इसलिए ग्राहक के डायफ्राम के कपन से ठीक वही ध्वनि-तरगें उत्पन्न होती है।

टेलीफोन एक्सचेज

साधारण टेलीफोन-सर्किट से केवल दो निर्दिष्ट स्थानो के वीच ही वातचीत हो सकती है, अन्य स्थानों से नही। इस कमी को दूर करने के लिए स्थान-स्थान पर टेलीफोन एक्सचेज बनाए जाते है। टेलीफोन एक्सचेज मे एक्सचेंज बोर्ड (exchange board) होते है। उस इलाके की तमाम लाइनें इस बोर्ड से जुडी हुई होती है। इलाके के प्रत्येक टेलीफोन-यंत्र को एक निश्चित सख्या द्वारा चिह्नित कर दिया जाता है। जब कोई आदमी किसी से वातचीत करना चाहता है तब एक्सचेज के संचालक (operator) से

कहने से वह इन दोनो संख्याओ वाले टेलीफोनो को मिलाकर एक सर्किट बना देते है। इसी प्रकार से एक एक्सचेंज से दूसरे एक्सचेंज को मिलाकर दूर-दूर के स्थानो से बातचीत की जा सकती है। एक ही मुख्य एक्सचेंज के अंदर बातचीत को **स्थानीय टेलीफोन कॉल** तथा दूर के स्थानो मे बातचीत को **ट्रंक टेलीफोन कॉल** कहते है।

आधुनिक स्वचालित एक्सचेज मे सचालक की आवश्यकता नही होती है। प्रेपक-यंत्र के साथ लगी हुई सख्या-युक्त चकती को घुमाकर आवश्यक सख्या को निर्देशित कर देने पर एक्सचेज मे यान्त्रिक युक्ति से अपने-आप सर्किट जुड जाता है। पटना नगर का टेलीफोन एक्सचेज इस प्रकार का स्वचालित एक्सचेज है।

लाउड स्पीकर

इस यंत्र की सहायता से ध्वनि को जोरदार बनाकर दूर तक फैलाया जा सकता है ताकि उसे बहुत-से लोग सुन सके। सभा आदि मे, थिएटर-सिनेमा मे, जहाँ भी काफी लोग जमा होते है, ध्वनि की तीव्रता बढाने के लिए इस यन्त्र का प्रयोग होता है। साथ ही रेडियो, ग्रामोफोन आदि लगभग सभी वैद्युतिक ध्वनि-यन्त्र मे, आवश्यकतानुसार छोटे-बड़े लाउडस्पीकर लगाये जाते है।

लाउडस्पीकर मे भी टेलीफोन जैसा एक वैद्युतिक माइक्रोफोन लगा हुआ होता है। इसमे से ध्वनि-तरंग विद्युत्-धारा मे परिवर्तित होकर एक **प्रवर्द्धक** (amplifier) यंत्र मे जाती है। इसमे प्रवर्धित होकर वह फिर ग्राहक यंत्रों मे जाकर तीव्र ध्वनि के रूप मे निकल आती है।

अध्याय १८

चुम्बक और चुम्बकत्व

(Magnet and Magnetism)

मैगनेटाइट या दिक्सूचक पत्थर

हमारे देश मे मैसूर राज्य मे एक प्रकार का खनिज पत्थर मिलता है, जिसमे लोहे के टुकडे को आकर्षित करने का गुण होता है। ऐसे पत्थर का चुम्बक कहते है और उसके विशेष गुणो को चुम्बकत्व कहते हैं। यह पत्थर एशिया माइनर के मैगनेशिया नामक स्थान मे सर्वप्रथम पाया गया था। इसलिए इसका नाम मैगनेटाइट (Magnetite) पडा। सयुक्त-राज्य अमेरिका, नार्वे, स्वीडन, कनाडा, फिनलैंड, साइवेरिया आदि देशो मे भी यह पत्थर मिलता है।

मैगनेटाइट पत्थर लोहा तथा आक्सीजन का एक विशेष यौगिक है और देखने मे गहरे भूरे रंग का होता है। लोहा आदि को आर्कपित करने की शक्ति के साथ-साथ इसमे एक और गुण होता है। अगर इसके एक टुकड़े को धागे मे बाँधकर लटका दिया जाए तो उसका एक सिरा हमेशा उत्तर की ओर और अन्य सिरा दक्षिण की ओर रहेगा। प्राचीन काल में नाविक इसके इस गुण को जानते थे और इससे समुद्र में दिशा का पता लगाते थे। इस कारण इसका नाम दिक्सूचक पत्थर (lodes stone) भी पडा।

इस पत्थर के एक टुकडे को लेकर अगर लौहचूर्ण मे डाल दिया जाए तो देखा जाएगा कि लौह-चूर्ण उसमे चिपक गए है। पत्थर उठा लेने पर दिखाई देगा कि चूर्ण दोनो सिरे पर गुच्छे जैसे लगे हुए है और बीचवाला स्थान सपूर्ण रूप से खाली है।

चुम्बक दो तरह के होते है—**प्राकृतिक चुम्बक तथा कृत्रिम चुम्बक।** मैगनेटाइट या दिक्सूचक पत्थर ही एक मात्र प्राकृतिक चुम्बक है।

कृत्रिम चुम्बक

लोहा तथा इस्पात में साधारणत. चुम्बकत्व का गुण नही रहता। कृत्रिम उपायो से जब इनमे इस गुण की सृष्टि की जाती है, तब वे कृत्रिम चुम्बक कहलाते है। प्राकृतिक चुम्बक की शक्ति कम होती है और इनके आकार भी अनियमित होते हैं। इस कारण इससे विभिन्न प्रकार के काम लेना संभव नही होता। कृत्रिम चुम्बक, शक्तिशाली तथा उपयुक्त आकार के वनाये जा सकते है। आजकल प्राकृतिक चुम्बक के वदले सभी कामो में कृत्रिम चुम्बक का उपयोग किया जाता है। कृत्रिम चुम्बक कई आकार के होते हैं—

(१) छड़-चुम्बक (bar magnet)—लोहा या इस्पात की आयताकार लंवी, चपटी और समतल छड़ से बने हुए चुम्वक को छड़-चुम्बक कहते हैं।

(२) नाल-चुम्वक (horse-shoe-magnet)—इसका आकार घोड़े के नाल या अँग्रेजी अक्षर U जैसा होता है। लोहे या इस्पात की चपटी छड़ को U जैसा मोडकर और उसके दोनो सिरो को दवाकर परस्पर निकटतर कर दिया जाता है। इस प्रकार से बने हुए चुम्वक को नाल-चुम्वक या U चुम्बक कहते है।

(३) चुम्वकीय सूई (magnetic needle)—यह इस्पात से वनी हुई सूई होती है जिसके दोनो सिरे नुकीले होते है। इसके वीच मे गड्ढा करके इसे चूल पर इस प्रकार वैठाया जाता है कि सूई क्षितिज-तल मे रहे।

(४) गोलांत चुम्वक (ball-ended magnet)—इस्पात की वेलनाकार छड़ के दोनो सिरो पर इस्पात की दो गोलियो को पेच से कसकर यह चुम्वक बनाया जाता है इसको रॉबिनसस गोलांत चुम्वक (Robinson's ball ended magnet) या केवल गोलांत चुम्वक कहते है।

चुम्वक ध्रुव (Poles of the magnet) तथा चुम्वकीय अक्ष (Magnetic axis)

एक छड-चुम्वक को अगर मध्य भाग मे धागा वाँधकर लटका दिया जाए या सूई-चुम्वक को वीच मे चूल पर ऐसे वैठाया जाय कि वह स्वतंत्रता से क्षितिज-तल मे घूम सके तो देखा जाएगा कि चुम्वक घूम-फिरकर ऐसी

स्थिति मे आकर रुक जाएगा कि उसका एक सिरा उत्तर और दूसरा सिरा दक्षिण की ओर होगा। चुम्बक को कितना ही क्यों न हिलाया जाय, घूम-
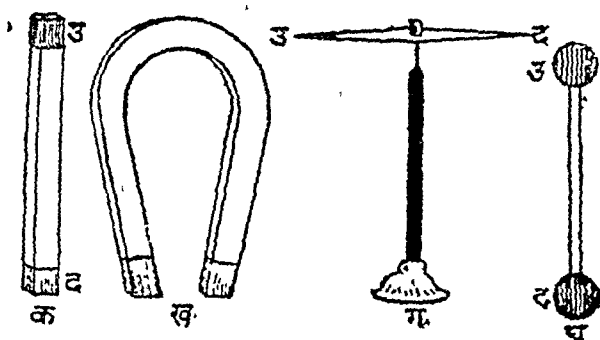
[चित्र १२२—विभिन्न प्रकार के कृत्रिम चुम्बक · क—छड-चुम्बक, ख—नाल-चुम्बक, ग—चुम्बकीय सूई, घ—गोलात चुम्बक]

फिर करके उसके दोनो सिरे इसी स्थिति मे अवश्य ही आ जाएँगे। जो सिरा उत्तर की ओर है, वह हमेशा उत्तर की ओर और जो दक्षिण की ओर है, वह दक्षिण की ओर ही रहेगा। चुम्बक के दोनों सिरो को चुम्बक का ध्रुव (poles of the magnet) कहते है। जो सिरा हमेशा उत्तर की ओर रहता है, उसे उत्तर ध्रुव (north pole) और जो दक्षिण की ओर रहता है उसे दक्षिण ध्रुव (south pole) कहते हैं। चुम्बक के दोनों ध्रुवों को मिलानेवाली कल्पित रेखा को चुम्बक का चुम्बकीय अक्ष कहते हैं।

ध्रुव की आकर्षण-शक्ति

हम पहले ही देख चुके है कि चुम्बक-पत्थर को लौह-चूर्ण मे डालकर उठा लेने से केवल उसके दोनो छोर पर लौह-चूर्ण चिपकता है, लेकिन बीच में लौह-चूर्ण एकदम नही चिपकता। सभी प्रकार के चुम्बक के साथ ऐसा ही होता है। इससे यह मालूम हो जाता है कि चुम्बक के दोनों ध्रुव लोहे को आकर्षित करते हैं किंतु चुम्बक के बीच का अंश नहीं। दूसरे शब्दों में, उस स्थान पर चुम्बकत्व नही है, इसलिए चुम्बक के मध्य भाग को उदासीन क्षेत्र (neutral zone) कहते है।

इस प्रकार, चुम्बक के दो ध्रुव होते है और उसका मध्य भाग उदासीन क्षेत्र होता है। लेकिन, चुम्बक को दो टुकड़ो मे तोड़ने के बाद, उन टुकड़ों को लौहचूर्ण मे रखकर उठा लेने पर टुकड़ो के दोनो सिरो पर फिर लौह-चूर्ण चिपक जाते है और दोनो का मध्य भाग खाली रहता है। चुम्बक को कितने ही टुकड़ो मे क्यो न बाँटा जाए, प्रत्येक टुकड़े के दोनो सिरे लोहे को आकर्षित करेगे। इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि **चुम्बक में हमेशा दो ध्रुव होते है और प्रत्येक का मध्य भाग उदासीन क्षेत्र होता है।**

ध्रुवों का आकर्षण तथा विकर्षण

एक चुम्बक की सूई को चूल पर रखकर उसे स्थिर होने दिया जाय। स्थिर होने पर इसका उत्तर-ध्रुव उत्तर की ओर तथा दक्षिण-ध्रुव दक्षिण की ओर होगा। सूई के उत्तर-ध्रुव को उ अक्षर द्वारा तथा दक्षिण-ध्रुव को द अक्षर द्वारा चिह्नित कर दीजिए। एक छड़-चुम्बक लीजिए, जिसके उत्तर तथा दक्षिण ध्रुव उ तथा द अक्षरो से चिह्नित हों। अब छड़-चुम्बक के उ चिह्नित सिरे को धीरे-धीरे सूई के उ चिह्नित सिरे के पास ले जाने पर पाएँगे कि सूई का उ चिह्नित सिरा छड़ के उ सिरे से दूर हटता जा रहा है। इसी प्रकार छड़ के द चिह्नित सिरे को सूई के द चिह्नित सिरे के पास ले जाने पर सूई का द चिह्नित सिरा दूर हटता जाएगा। इससे प्रमाणित हो जाता है कि **चुम्बक के सदृश ध्रुव एक-दूसरे को विकर्षित करते है।**

इसी प्रकार अगर सूई के उ चिह्नित सिरे के पास छड़ के द चिह्नित सिरा तथा सूई के द चिह्नित सिरे के पास छड़ के उ चिह्नित सिरे को ले जाया जाय तो देखेंगे कि वे एक-दूसरे को अपनी ओर खीचते हैं। इससे मालूम हो जाता है कि **चुम्बक के असदृश ध्रुव एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं।**

चुम्बक के दोनों ध्रुवों के सामर्थ्य समान होते हैं—एक सरल प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जा सकता है कि चुम्बक के दोनो ध्रुवों के सामर्थ्य समान होते हैं।

लोहे के एक पतले पत्तर का छड़-चुम्बक लेकर उसके दोनों ध्रुवों को बारी-बारी से लोहे के एक पिन अथवा एक चुम्बक सूई के ध्रुवो के पास ले जाकर उसके चुम्बकत्व की जांच कर लें। अब चुम्बक को मोडकर उसके दोनो ध्रुवो को सटा दें। इस प्रकार सटे हुए ध्रुवो को लोहे के पिन के पास लाएँ तो पिन पर उनका कोई असर नही पडता है। मानो उनका चुम्बकत्व ही लोप हो गया है। कंपास सूई के किसी भी ध्रुव के पास ले जाने से पत्तर सूई की ओर खिंच आती है। मानो पत्तर स्वयं चुम्बक नहीं है।

कारण यह है कि पत्तर के उत्तर ध्रुव का प्रभाव उसके दक्षिण ध्रुव के प्रभाव से रद्द हो जाता है। इसलिए, चूँकि एक ध्रुव दूसरे ध्रुव के प्रभाव को संपूर्ण रूप से नष्ट कर देता है, अतः एक का सामर्थ्य अवश्य ही दूसरे के सामर्थ्य के बराबर है।

चुम्बकीय पदार्थ

लोहा, निकल और कोबाल्ट—ये तीन ऐसी धातुएँ हैं, जो न केवल चुम्बक द्वारा आकर्षित होती है, बल्कि ये स्वय कृत्रिम उपायो से स्थायी या अस्थायी चुम्बक मे परिणत हो सकती है। इन्हे चुम्बकीय पदार्थ (magnetic substance) कहते है। इन तीन धातुओ के सिवा कुछ ऐसी मिश्र धातुएँ भी है, जो चुम्बक द्वारा आकर्षित होती हैं तथा कृत्रिम चुम्बक मे परिणत हो सकती है। हेसलर्स मिश्र धातु (Heuslers alloy) इनमें से एक है। इस चुम्बकीय पदार्थ मे लोहा नही होता। यह मैंगनेशियम और ताँबा मिलाकर बनाया जाता है।

चुम्बक और चुम्बकीय पदार्थ में अतर

चुम्बकीय पदार्थो को कृत्रिम उपायो से चुम्बक मे परिणत किया जा सकता है। लेकिन, जब तक उन्हे चुम्बक नही बनाया जाता है, तब तक चुम्बकीय पदार्थ और चुम्बक मे अतर होता है।

(१) चुम्बक में आकर्षण-शक्ति होती है और वह लोहा आदि को आकर्षित करता है। चुम्बकीय पदार्थ में इस प्रकार की आकर्षण शक्ति नही होती है।

(२) चुम्बक के दो असदृश ध्रुव होते है और दो चुम्बक के सदृश ध्रुव एक दूसरे को विकर्पित तथा असदृश ध्रुव एक दूसरे को आकर्षित करते है।

चुम्बकीय पदार्थों मे इस प्रकार के ध्रुव नही होते है और न उनमें आकर्षण-विकर्षण-शक्ति ही होती है।

चुम्बक और चुम्बकीय पदार्थो मे इन अंतरो के रहने के कारण किसी यंत्र की सहायता के विना ही एक वहुत सरल उपाय से इन्हे पहचाना जा सकता है। अगर एक जैसी दो लोहे की छडों में केवल एक चुम्बक हो तो उसको पहचानने के लिए दोनों को एक-एक धागे मे वाँधकर लटका दें। जो छड़ चुम्बक है वह हमेशा उत्तर-दक्षिण मे आकर स्थिर हो रहेगा। लेकिन जो छड़ चुम्बक नही है वह किसी भी दिशा मे आकर स्थिर रहेगा। इस प्रकार से चुम्बक को पहचाना जा सकता है।

कृत्रिम चुम्बक वनाना

दो प्रक्रियाओ से कृत्रिम चुम्बक वनाया जा सकता है—

(१) चुम्बक को चुम्बकीय पदार्थ पर घर्पण द्वारा—अर्थात् घर्षण-प्रक्रिया से।

(२) विद्युत् की सहायता से—अर्थात् वैद्युतिक-प्रक्रिया से।

घर्षण-प्रक्रिया से वननेवाले चुम्बक अधिक वड़े या शक्तिशाली नही होते है। शक्तिशाली चुम्बक वनाने के लिए वैद्युतिक-प्रक्रिया काम मे लायी जाती है।

घर्षण-प्रक्रिया से चुम्बक वनाने की तीन विधियाँ है—

(१) एक-स्पर्शी विधि (single touch method)—इस्पात की जिस छड को चुम्बक वनाना है, उसे मेज पर रखकर नरम मोम से अटका दिया जाता है। सुविधा हो तो एक हाथ से उसे पकड़ा भी जा सकता है। एक शक्तिशाली छड़ चुम्बक लेकर उसके उत्तर ध्रुव को लोहे की छड़ के एक सिरे पर रखकर धीरे-धीरे रगड़ते हुए दूसरे सिरे तक ले जाया जाता है। फिर चुम्बक को सीधा, कुछ ऊँचा उठाकर पहले सिरे पर ले आया जाता है और पहले की भाँति रगड़ते हुए दूसरे सिरे तक ले जाया जाता है। इस क्रिया को कई वार करने पर इस्पात की छड़-चुम्बक वन जाती है।

इसका पहला सिरा उत्तर ध्रुव तथा दूसरा सिरा दक्षिण ध्रुव बनता है। कृत्रिम चुम्बक बनाने की इस विधि को एक-स्पर्शी विधि कहते हैं। अगर उत्तर ध्रुव की जगह पर दक्षिण ध्रुव से रगड़ा जाता तो पहला सिरा दक्षिण और दूसरा उत्तर ध्रुव बनता।

(२) पृथक-स्पर्शी विधि (method of seperate or divided touch)—इस्पात की एक छड़ को मेज पर रखकर मोम से अटका दिया जाता है। दो सम सामर्थ्य वाले छड़-चुम्बक को दो हाथो मे लेकर, एक का उत्तर तथा दूसरे के दक्षिण ध्रुव को लोहे की छड़ के मध्य भाग पर बिलकुल पास-पास रखा जाता है। अब दोनो चुम्बको को रगड़ते हुए छड़ के दोनो सिरे तक ले जाया जाता है, अर्थात् दाहिने हाथ के चुम्बक को रगड़ते हुए दाहिने सिरे तक और बाएँ हाथ के चुम्बक को बाएँ सिरे तक ले जाया जाता है। फिर दोनो चुम्बकों को ऊपर उठाकर पहले की तरह रखा जाता है और रगड़ा जाता है। इस क्रिया को कई बार करने के बाद छड़ की उलटी पीठ पर भी ऐसा किया जाता है। इस विधि द्वारा एक-स्पर्शी विधि से अधिक शक्तिशाली चुम्बक बनता है। रगड़ते समय चुम्बक
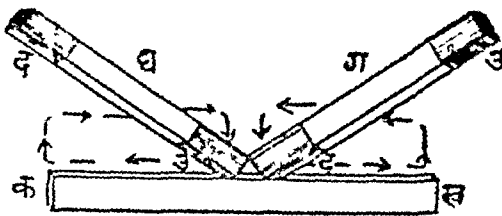
[चित्र १२३—चुम्बक बनाने की पृथक-स्पर्शी विधि]

का जो ध्रुव छड़ के जिस सिरे तक जाता है, उसपर उसके असदृश ध्रुव उत्पन्न हो जाता है। चित्र मे क-ख इस्पात की छड़ को चुम्बक बनाया जा रहा है। ग और घ दो सम सामर्थ्य वाले छड़-चुम्बक है। ग का द ध्रुव छड़ को रगड़ते हुए ख सिरे तक और घ का उ ध्रुव क सिरे तक जाता है। चुम्बक बन जाने पर क-ख छड का क सिरा दक्षिण ध्रुव तथा ख सिरा उत्तर ध्रुव बन जाता है।

(३) द्वि-स्पर्शी विधि (method of double touch)—इस्पात की छड़ को मेज पर मोम से अटका कर उसके मध्य में दो सम सामर्थ्यवाले चुम्बक के दो असदृश ध्रुव रखे जाते हैं। दोनो चुम्बकों को सटाकर रखने के स्थान पर, उनके बीच मे एक कॉर्क का टुकड़ा रखा जाता है। अब चुम्बकों के दोनो सिरो को कॉर्क-समेत एक साथ रगड़ते हुए छड़ के एक सिरे तक ले जाया जाता है। सिरे पर पहुँचने के बाद चुम्बको को न उठाकर रगड़ने की दिशा बदलकर उसी प्रकार दोनो चुम्बको को कॉर्क-समेत रगड़ते हुए छड़ के दूसरे सिरे तक ले जाते है। दूसरे सिरे पर पहुँचने
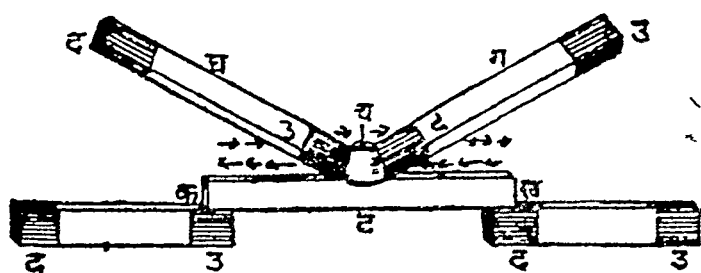
[चित्र १२४—द्वि-स्पर्शी विधि से चुम्बक बनाना]

के बाद फिर दिशा बदल दी जाती है और चुम्बको को पहले सिरे तक वापस लाया जाता है। रगड़ने की पूरी क्रिया चुम्बको को बिना ऊपर उठाए ही की जाती है। छड़ के दोनो पीठ पर यह क्रिया कई बार करने के बाद छड़-चुम्बक बनती है। रगड़ना समाप्त करते समय दोनो चुम्बकों को छड़ के मध्य मे, जहाँ से क्रिया प्रारभ हुई थी, लाकर ही उठाना चाहिए। छड़ के सिरो पर, रगड़े जानेवाले चुम्बको के ध्रुवो के असदृश ध्रुव उत्पन्न होगे।

चित्र में क-ख छड़ को चुम्बक बनाया जा रहा है। ट इसका मध्य भाग है। ग और घ दो चुम्बक है। दोनों के बीच मे च कॉर्क का टुकड़ा है। ग का द ध्रुव और घ का उ ध्रुव छड़ पर है। पहले ग और घ दोनो चुम्बकों को रगड़ते हुए क तक ले जाया जाता है। बिना उठाए ही फिर उन्हे रगड़ते हुए ख तक लाया जाता है और फिर वापस क तक। कई बार यह क्रिया करने के बाद ट बिंदु पर लाकर चुम्बको को ऊपर उठा लिया जाता है। छड़ के क सिरे पर दक्षिण ध्रुव और ख सिरे पर उत्तर ध्रुव उत्पन्न होते हैं।

अधिकतर शक्तिशाली चुम्वक वनाने के लिए छड़ के नीचे चित्र जैसा और दो चुम्वक रखे जाते है।

विद्युत् द्वारा चुम्वक वनाना

शक्तिशाली चुम्वक वनाने के लिए विद्युत्-धारा द्वारा चुम्वकन किया जाता है। इस विधि से सभी प्रकार के चुम्वक वनाए जा सकते है और वे अधिक टिकाऊ भी होते है।

इस्पात की एक छड़ या नाल लेकर उसपर सूत, रेशम, प्लास्टिक आदि अचालक पदार्थ द्वारा आवृत ताँवे का तार लपेट दिया जाता है। नाल होने पर तार ऐसे लपेटा जाएगा कि एक वाहु पर लपेटने की दिशा वामवर्ती तथा दूसरे पर दक्षिणवर्ती होगी।
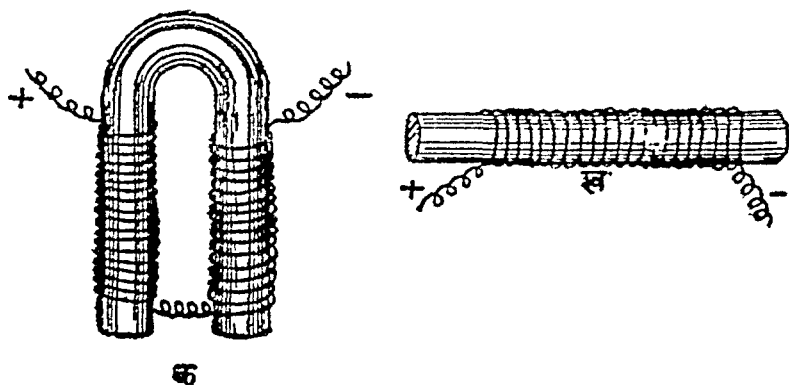
[चित्र १२५—विद्युत् द्वारा चुम्वकन : क—नाल-चुम्वक, ख—छड़-चुम्वक]

अव तार के एक सिरे को विजली की वैटरी के धन ध्रुव तथा अन्य सिरे को ऋण ध्रुव के साथ जोड़कर तार में विद्युत्-धारा प्रवाहित की जाती है। थोड़ी देर तक विद्युत्-धारा प्रवाहित होने के वाद उसे वंद कर दिया जाता है और तार खोलकर छड़ या नाल को निकाल लिया जाता है। इस क्रिया से छड़ या नाल चुम्वकित हो जाता है।

छड के जिस सिरे की ओर देखने से तार के लपेटने की दिशा वामवर्ती मालूम पड़ेगी, चुम्वकन के वाद वह सिरा उत्तर ध्रुव तथा दूसरा सिरा, जिसपर लपेटन दक्षिणवर्ती मालूम हो, दक्षिण ध्रुव होगा। नाल मे भी लपेटने की दिशा देखकर इस हिसाव से ध्रुव निश्चित किया जा सकता है।

सुविधा के लिए काँच की नली के ऊपर तांबे का तार लपेट दिया जाता है और उस नली के अंदर छड़ को रखकर, तार में विद्युत्-धारा प्रवाहित कर देने से भी छड़ चुम्वकत्व प्राप्त कर लेती है।

इस क्रिया में इस्पात के वदले कच्चा लोहा लेने पर वहुत शक्तिशाली चुम्वक वन जाता है। लेकिन, उसमे तब तक ही चुम्वकत्व वना रहता है, जव तक तार के अदर से विद्युत्-धारा प्रवाहित होती रहती है। विद्युत्-धारा वंद हो जाने के साथ-साथ उसके चुम्वकत्व का लोप हो जाता है। इस क्रिया से वनाये गए चुम्वक को विद्युत् चुम्वक (electro-magnet) कहते है । एक के वजाए कई तहों में तार लपेटने से अधिक शक्तिशाली चुम्वक वनते हैं।

प्रेरण द्वारा चुम्वकन (Magnetisation by induction)

चुम्वक द्वारा रगड़कर या विद्युत् द्वारा चुम्वक बनाने के अलावा शक्तिशाली चुम्वक के पास रखे रहने पर भी लोहे में चुम्वकत्व आ जाता है। शक्तिशाली चुम्वक के स्पर्श के विना ही लोहा चुम्वकत्व प्राप्त कर लेता है ; लेकिन चुम्वक को हटा देने पर उसका चुम्वकत्व नष्ट हो जाता है। चुम्वक के प्रभाव से उत्पन्न चुम्वकत्व को प्रेरण द्वारा चुम्वकन तथा इस क्रिया को **चुम्वकीय प्रेरण** (magnetic induction) कहते हैं।

एक कच्चे लोहे की छड़ के एक सिरे को लौह-चूर्ण मे डालकर उठा लेने से उसमे लौह-चूर्ण नही चिपकते है। लेकिन उसको लौह-चूर्ण मे डालकर उसके दूसरे सिरे के पास एक चुम्वक का कोई एक ध्रुव ले आने के वाद उसे ऊपर उठाने से उसमें लौह-चूर्ण चिपका हुआ मिलेगा और चुम्वक को हटा लेते ही तमाम लौह-चूर्ण झर जाएगा। इससे प्रमाणित होता है कि छड़ प्रेरण द्वारा अस्थायी चुम्वकत्व प्राप्त कर लेती है।

चुम्वक के एक ध्रुव के पास एक आलपीन ले आने पर वह चुम्वक से लटक जाएगी। उस आलपीन के नीचे एक अन्य आलपीन ले आने पर वह भी उससे सट जाएगी। इस प्रकार से आलपीन के नीचे आलपीन सटाकर चुम्वक के नीचे एक जंजीर-सी वनाई जा सकती है। प्रत्येक आलपीन प्रेरण द्वारा चुम्वकत्व प्राप्त करके दूसरे को आकर्षित करने लगती है और इस प्रकार से आलपीनों की जंजीर तैयार हो जाती है।

प्रेरित ध्रुव (Induced pole)

प्रेरित चुम्बक का जो सिरा प्रेरक चुम्बक के जिस ध्रुव के पास होगा उसमे उसके असदृश ध्रुव उत्पन्न होगा। निम्नलिखित प्रयोग मे यह देखा जा सकता है।

प्रयोग—चूल पर लगी हुई एक चुम्बकीय सूई लेकर मेज पर रखिए। उससे कुछ दूर समान ऊँचाई पर, एक छड़-चुम्बक रखिए। दोनों मे दूरी इतनी हो कि सूई पर चुम्बक का कोई प्रभाव न पड़ सके और सूई तथा छड़-चुम्बक के उत्तर ध्रुव आमने-सामने रहें। अब दोनों के बीच में एक कच्चे लोहे की छड़, उसी ऊँचाई पर रखिए। इसे रखते ही चुम्बकीय सूई अपनी स्थिति से विचलित हो जाएगी।

इससे यह मालूम हो जाता है कि छड़ मे चुम्बकत्व उत्पन्न हो गया है और उसका जो सिरा सूई के पास है, वह उत्तर ध्रुव तथा छड़-चुम्बक के पास वाला सिरा दक्षिण ध्रुव बन गया है। चुम्बक के सदृश ध्रुव एक-दूसरे को विकर्षित करते हैं। इस कारण से सूई अपनी स्थिति से घूम जाती है। चुम्बक को उलटकर पकड़िए। देखिएगा कि सूई अपनी जगह पर स्थिर रहेगी। क्योंकि इस अवस्था मे चुम्बक का दक्षिण ध्रुव सूई के उत्तर ध्रुव की ओर रहता है। अत. सूई के उत्तर ध्रुव के पास छड़ मे प्रेरण से दक्षिण ध्रुव बनता है, जो सूई के उत्तर ध्रुव को आकर्षित करता है।

चुम्बकत्व की परीक्षा

देखने मे एक-सी लोहे की दो छड़ों मे एक अगर चुम्बक हो, तो बिना किसी साधन से उसे कैसे पहचाना जा सकता है ? दोनो मे से एक को धागे मे बाँधकर लटका दिया जाता है और दूसरे के एक सिरे को लटकी हुई छड के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक, सब जगहों पर स्पर्श किया जाता है। अगर सभी स्थानों मे आकर्षण हो, तो लटकी हुई छड़-चुम्बक नही है और दूसरी छड़-चुम्बक है। क्योंकि यह आकर्षण जहाँ भी चुम्बक का ध्रुव पहुँचेगा, वही उत्पन्न हो जाएगा। अगर लटकी हुई छड चुम्बक होती तो, उसका मध्य भाग उदासीन होता और उसमे वहाँ कोई आकर्षण शक्ति नही होती और दूसरी छड़ को वहाँ लाने पर कोई आकर्षण नही होता।

विकर्षण द्वारा ध्रुवों की परीक्षा

चुम्वक के ध्रुवो की जाँच विकर्पण द्वारा ही ठीक से की जा सकती है। जिस चुम्वक के ध्रुव की जाँच करनी हो, उसको धागा से बाँध कर लटका दिया जाता है। अव एक ध्रुव-चिह्नित चुम्बक लेकर उसका कोई एक ध्रुव लटके हुए चुम्वक के दोनो सिरो के पास बारी-बारी से लाया जाता है। जिस सिरे मे विकर्पण होगा, उस सिरे पर वही ध्रुव होगा जो ध्रुव उसके पास ले जाया गया है। दो सदृश चुम्वकीय ध्रुवों में ही परस्पर विकर्षण होता है, इसलिए विकर्पण द्वारा ध्रुव की सही परीक्षा होती है।

चुम्बकत्व का आणविक सिद्धान्त

हम पहले ही देख चुके है कि चुम्वक को कितने ही टुकड़ो में क्यों न बाँटा जाए, प्रत्येक टुकड़े मे उत्तर और दक्षिण ध्रुव रहते है, अर्थात् चुम्वक का प्रत्येक टुकडा चाहे वह कितना भी छोटा क्यो न हो—एक पूर्ण चुम्वक होता है। इससे यह मालूम पड़ता है कि चुम्वकीय वस्तु का प्रत्येक अणु एक पूर्ण चुम्वक है। जव ये ठीक से सजे नही रहते, तव ये अणु एक दूसरे के चुम्बकत्व को रद्द कर देते है, जिसके कारण उस वस्तु का परिणामी चुम्वकत्व शून्य होता है। उन अणुओ को किसी चुम्बक की सहायता से नियमित रूप से सजा देने पर उस वस्तु मे चुम्वकत्व उत्पन्न हो जाता है।

निम्नलिखित प्रयोग से इसे प्रमाणित किया जा सकता है :—

प्रयोग—एक परखनली मे लौहाचूर्ण लेकर कॉर्क लगा दीजिए। नली को चुम्वकीय सूई के पास ले जाकर देखे कि सूई पर उसका कोई असर तो नही पडता है। अव एक चुम्बक लेकर उसके एक ध्रुव को नली पर रगड़कर लौह-चूर्ण को चुम्वकित कीजिए। इस बार परखनली को चुम्वकीय सूई के पास ले जाने पर वह विचलित होगी; अर्थात् अव लौह-चूर्ण चुम्वकित हो गए है और उनका प्रभाव सूई पर पड़ता है। फिर परखनली को खूव हिलाकर लौह-चूर्ण को उलट-पलट दीजिए और उसे चुम्बकीय सूई के पास ले जाइए। देखिएगा कि अव इसका कोई प्रभाव सूई पर नही पड़ता है, अर्थात् लौह-चूर्ण के अणुओं को अव्यवस्थित कर देने के कारण उसके चुम्वकत्व का लोप हो जाता है।
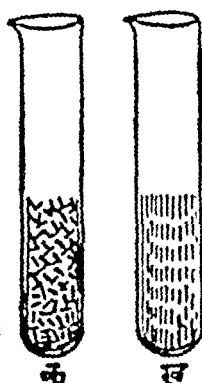
[चित्र १२६—चुम्बकत्व का आणविक सिद्धांत-संबंधी प्रयोग : क—चुम्बक के पहले लोह-कणों की स्थिति, ख—चुम्बकन के बाद लोह-कणो की स्थिति]

इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि चुम्बकन के समय चुम्बक के बल द्वारा किसी चुम्बकीय पदार्थ के अणुओं को ऐसे व्यवस्थित रूप से सजा दिया जाता है कि उसमें चुम्बकत्व उत्पन्न हो जाता है।

इस्पात और कच्चे लोहे का चुम्बकन

इस्पात, कच्चा लोहा, निकल तथा कोबाल्ट चुम्बकीय पदार्थ है और इन्हें चुम्बकित किया जा सकता है। लेकिन, साधारणत. चुम्बक बनाने के लिए इस्पात और कच्चे लोहे का व्यवहार किया जाता है।

कच्चे लोहे को अपेक्षाकृत सुगमता से चुम्बकित किया जा सकता है और इससे बननेवाला चुम्बक अधिक शक्तिशाली होता है। लेकिन चुम्बकीय बल को हटाते ही इसका चुम्बकत्व लुप्त हो जाता है। इसलिए क्षणिक और शक्तिशाली चुम्बक की आवश्यकता पूरी करने के लिए इसका व्यवहार किया जाता है।

इस्पात में चुम्बकत्व का गुण लाने में कुछ अधिक कठिनाई होती है, लेकिन इसका चुम्बकत्व स्थायी होता है। इसलिए स्थायी कृत्रिम चुम्बक इस्पात से बनता है।

चुम्बकीय क्षेत्र (Magnetic field)

चुम्बक का प्रभाव केवल एक ही दिशा मे नही पड़ता बल्कि उसका प्रभाव उसके चारों ओर पड़ता है। चारो ओर के जिस क्षेत्र मे चुम्बक का प्रभाव पड़ता है, उसे उसका चुम्बकीय क्षेत्र कहते है।

चुम्बकीय बल-रेखा (Lines of forces)

एक चुम्बक को एक कांच के पतले टुकड़े से ढककर अगर उसपर थोड़ा-सा लोह-चूर्ण छिड़क कर कांच को अंगुली से धीरे-धीरे ठोंका जाए तो दिखाई

पड़ेगा कि लौह-चूर्ण कुछ निश्चित वक्र रेखाओ मे सज गए हैं। चुम्बक के ध्रुवो के पास चूर्ण की रेखाएँ अधिक घनी होती है और वे उत्तर ध्रुव से निकल कर दक्षिण ध्रुव पर समाप्त होती है। इन रेखाओं को चुम्बकीय बल-रेखा कहते हैं।
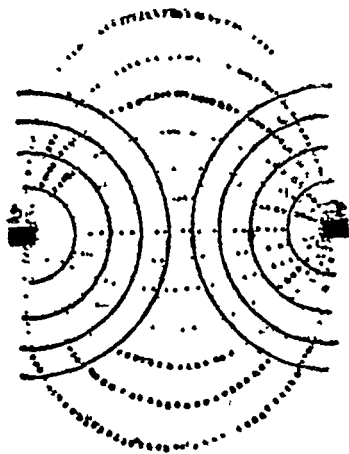
[चित्र १२७—चुम्बकीय बल-रेखाएँ]

चुम्बकीय परदा
(Magnetic screen)

घड़ी को चुम्बक के पास ले जाने से लोहे के पुर्जे चुम्बकित हो जाते है जिसके कारण घड़ी खराब हो जाती है। लेकिन घड़ी को एक कच्चे लोहे के खोल मे रख लेने से ऐसा नही होता। कारण यह है कि चुम्बकीय बल-रेखाएँ वायु की अपेक्षा लोहे मे से अधिक सुगमता से गुजर सकती है, इस कारण से लोहे के खोल मे होकर बल-रेखाएँ गुजरकर निकल जाती है और उस खोल के अन्दर चुम्बकीय बल-रेखाएँ नही जाती है। अत. चुम्बक घड़ी पर कोई प्रभाव नही डाल पाता है। किसी विशेष स्थान को चुम्बकीय क्षेत्र के बाहर रखने के लिए जिस चुम्बकीय आवरण का प्रयोग किया जाता है, उसे चुम्बकीय परदा कहते है।

विचुम्बकन (Demagnetisation)

चुम्बक का चुम्बकत्व कई प्रकार से नष्ट हो जाता है। आग मे खूब गरम करने से, हथौड़े से पीटने से, जोर से पटकने आदि से लोहे का चुम्बकत्व लुप्त हो जाता है। चुम्बक के अपने एक ध्रुव की दूसरे ध्रुव पर प्रेरण-क्रिया से उसका चुम्बकत्व घटने लगता है। दो चुम्बको के सदृश ध्रुवो को एक साथ रख देने से भी कुछ दिनो मे दोनों का चुम्बकत्व नष्ट हो जाता है।

चुम्बक की सुरक्षा

चुम्बक को सुरक्षित रखने के लिए उसको आग, तेजाब आदि से बचाना चाहिए। इस प्रकार सावधानी से रखना चाहिए कि जोर

से पटका न जाए और न किसी चीज से उसपर कोई आघात ही लगने पावे।

मुक्त ध्रुवों की प्रेरण-क्रिया द्वारा चुम्बक को विचुम्बकन से बचाने के लिए छड़चुम्बकों को पास-पास इस प्रकार रखते हैं कि उनके असदृश ध्रुव एक ओर रहें। फिर कच्चे लोहे के टुकड़ों को लेकर इस चुम्बक के जोड़े के दोनो सिरों पर रख दिया जाता है। इस अवस्था में चुम्बक के
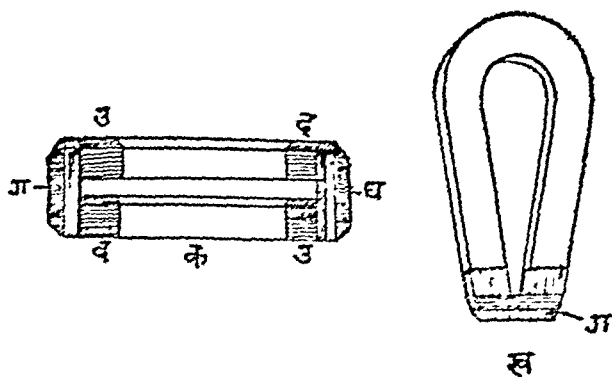
[चित्र १२८—चुम्बक की सुरक्षा : क—छड़चुम्बक, ख—नाल-चुम्बक, ग और घ—रक्षक]

सिरे पर मुक्त ध्रुव न रहने के कारण चुम्बक स्व-प्रेरण द्वारा विचुम्बकित नहीं होता। नाल-चुम्बक को इसी रीति से सुरक्षित रखा जा सकता है। इसके दोनों सिरे पास-पास होने के कारण दोनों पर एक ही कच्चे लोहे के टुकड़े को लगा देने से काम चल जाता है। सिरे पर लगने वाले लोहे के टुकड़े को रक्षक (keeper) कहा जाता है।

भू-चुम्बकत्व

(Terrestrial magnetism)

हमने देखा है कि छड़-चुम्बक को लटका देने पर या चूल पर स्थापित चुम्बकीय सूई हमेशा उत्तर-दक्षिण दिशा मे ही आकर स्थिर रहती है। इससे ऐसा लगता है कि कोई अदृश्य वल इनपर प्रभाव डालकर इन्हे इस अवस्था में लाता है। सन् १६०० ई० के पहले यह समझा जाता था कि शायद ऐसा ध्रुवतारा के आकर्पण के कारण होता है ; लेकिन सन १६०० ई० मे डॉ० गिलवर्ट ने यह सिद्ध कर दिखाया कि पृथ्वी स्वय ही एक विशाल चुम्बक है और उसी के चुम्बकीय वल के प्रभाव से लटकाई हुई छड़ या चूल पर वैठाई हुई चुम्बकीय सूई हमेशा एक निश्चित दिशा में ही स्थिर रहती है।

लेकिन, प्रयोग करके देखा गया है कि लटका हुआ छड़-चुम्बक या चुम्बकीय सूई सव जगह ठीक भौगोलिक उत्तर-दक्षिण दिशा में ही स्थिर नही रहती बल्कि एक ओर थोड़ी-सी हटी हुई रहती है। कुछ स्थानो में यह भौगोलिक उत्तर से थोड़ा पश्चिम की ओर और कुछ स्थानो मे भौगोलिक उत्तर से थोड़ा पूरव की ओर हटी रहती है। दक्षिण अमेरिका के मध्य भाग, वेस्ट-इण्डीज आदि के कुछ इलाकों मे सूई ठीक-ठीक भौगोलिक उत्तर-दक्षिण दिशा मे रहती है।

पृथ्वी के चुम्बकीय वल का प्रभाव साधारण चुम्बक जैसा ही है। अगर एक विशाल छड़-चुम्बक पृथ्वी के केन्द्र से होकर, पृथ्वी के घूर्णन अक्ष के साथ सूक्ष्म कोण वनाता हुआ उत्तर से दक्षिण ध्रुव तक फैला हुआ रहे तो उसके कारण पृथ्वी पर स्थित चुम्बको पर जो प्रभाव होना चाहिए, वैसा ही प्रभाव भू-चुम्बकत्व के कारण होता है। भू-चुम्बक के दोनों ध्रुवो मे साधारण चुम्बक जैसी आकर्षण और विकर्षण-शक्ति होती है। पृथ्वी को उत्तर ध्रुव के पास उत्तरी चुम्बकीय ध्रुव तथा दक्षिण ध्रुव के पास दक्षिणी चुम्बकीय ध्रुव होते

हैं। दोनों ध्रुवों को मिलानेवाली काल्पनिक रेखा को भू-चुम्बकीय अक्ष कहते है। उत्तरी चुम्बकीय ध्रुव कनाडा के बथर्स्ट द्वीप (Bathurst) में है और दक्षिणी चुम्बकीय ध्रुव दक्षिणी विक्टोरिया द्वीप मे है।
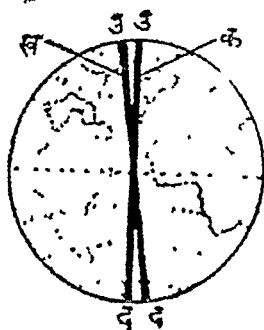
[चित्र १२९—पृथ्वी का परिभ्रमण अक्ष तथा चुम्बकीय अक्ष : क—पृथ्वी का अक्ष, ख—चुम्बकीय अक्ष]

भू-चुम्बक से भी चुम्बकन होता है। नरम लोहे की एक ३० सें० मी० लंबी और २ सें० मी० चौड़ी छड को उत्तर-दक्षिण दिशा में रखकर, थोडी देर धीरे-धीरे ठोकने पर वह चुम्बकित हो जाती है। चुम्बक सूई के पास लाकर इसकी परीक्षा की जा सकती है।

हम देख चुके है कि चुम्बक के सदृश ध्रुवों में परस्पर विकर्षण और असदृश ध्रुवो मे आकर्षण होता है। इसलिए साधारण चुम्बक का वह सिरा, जो भू-चुम्बक के उत्तर ध्रुव से आकर्षित होकर उत्तर की ओर जा ठहरता है और जिसे हम उत्तर ध्रुव कहते है वह वास्तव में भू-चुम्बक के उत्तर ध्रुव के असदृश है और इसलिए दक्षिण ध्रुव है। उसके इस ध्रुव का उचित नाम उत्तरान्वेषी ध्रुव होना चाहिए ; किंतु सक्षेप मे हम उसे उत्तर ध्रुव कहते है। उसी प्रकार किसी साधारण चुम्बक का दक्षिण ध्रुव वास्तव मे दक्षिणान्वेषी ध्रुव है।

चुम्बकीय नमन (Magnetic dip)

यदि एक चुम्बक सूई को उसके गुरुत्व-केंद्र से रेशम के धागे द्वारा इस प्रकार लटका दिया जाए कि वह चारों ओर स्वतंत्रतापूर्वक घूम सके तो हम देखेंगे कि स्थिर हो जाने पर वह उत्तर-दक्षिण दिशा में तो आ जाती है पर क्षितिज तल मे नही रहती है। इस अवस्था मे सूई क्षितिज तल के साथ जो कोण वनाती है, उसे उस स्थान का **चुम्बकीय नमन** (magnetic dip) कहते है।

चुम्बकीय भू-मध्यरेखा

भौगोलिक भू-मध्यरेखा के पास की उस कल्पित रेखा को चुम्बकीय भू-मध्यरेखा कहते हैं, जिस रेखा पर कही भी गुरुत्वकेंद्र से लटकती हुई चुम्बक सूई संपूर्ण रूप से क्षितिज तल मे स्थिर रहती है, अर्थात् चुम्बकीय भूमध्यरेखा पर चुम्बकीय नमन ०^{0} होता है। चुम्बकीय भूमध्यरेखा भौगोलिक भूमध्य-रेखा के पास ही है। दक्षिण भारत का टिनेवेली इलाका चुम्बकीय भूमध्यरेखा पर है और इसलिए वहाँ चुम्बकीय नमन ०^{0} है। अगर ऐसी एक चुम्बक-सूई लेकर चुम्बकीय भूमध्यरेखा से उत्तरी चुम्बकीय ध्रुव की ओर बढ़ा जाए तो ज्यो-ज्यो हम उस ओर बढ़ते जाएँगे, त्यों-त्यो सूई के उत्तर ध्रुव का नमन बढ़ता जाएगा और ध्रुव पर पहुँच कर सूई उर्ध्व दिशा मे हो जायगी यानी ध्रुव पर नमन ९०^{0} हो जायगा। भूमध्यरेखा से दक्षिण ध्रुव की ओर जाने से सूई का दक्षिण ध्रुव नीचे की ओर झुकता जाएगा और दक्षिणी ध्रुव पर पहुँच कर सूई क्षितिज के साथ ९०^{0} का कोण बनायगी, अर्थात् चुम्बकीय नमन ९०^{0} हो जायगा।

नमन-मापी (Dip-circle)

किसी स्थान का चुम्बकीय नमन मालूम करने के लिए जिस यंत्र का व्यवहार होता है, उसे नमन-मापी (dip-circle) कहते है। इस यंत्र मे लगी हुई चुम्बकीय सूई क्षितिज तल के साथ जो कोण बनाती है, यंत्र के साथ लगे हुए अंशाकित स्केल पर उसे पढ़कर उस स्थान का नमन मालूम हो जाता है। यहाँ चित्र मे एक साधारण नमन-मापी दिखाया गया है।
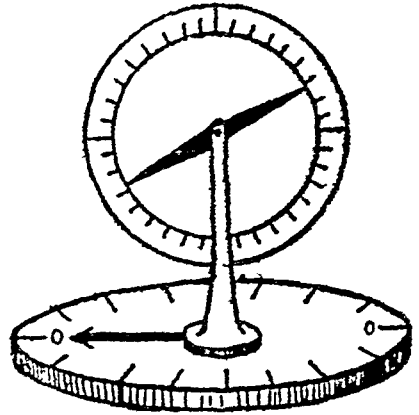
[चित्र १३०—साधारण नमन-मापी]

चुम्बकीय याम्योत्तर या ध्रुववृत्त (Magnetic meridian)

हम देख चुके है कि गुरुत्व-केंद्र से चुम्बक को रेशम की डोरी से स्वतन्त्रता-पूर्वक लटका देने से वह सब जगह ठीक क्षितिज तल मे नही रहता है। इस

चुम्बक के चुम्बकीय अक्ष से होकर जो ऊर्ध्व तल (vertical plane) गुजरता है, उसे उस स्थान का चुम्बकीय याम्योत्तर कहते हैं। अर्थात् स्वतंत्रता से लटके हुए चुम्बक का अक्ष जिस ऊर्ध्व तल में हो, वह उस स्थान का चुम्बकीय याम्योत्तर होता है। अथवा किसी स्थान पर खीचा हुआ वह ऊर्ध्व तल, जो पृथ्वी के चुम्बकीय उत्तर और दक्षिण ध्रुव से गुजरता है, उस स्थान का चुम्बकीय याम्योत्तर कहा जाता है। उसी प्रकार उस स्थान पर खींचा हुआ वह ऊर्ध्वतल, जो भौगोलिक उत्तर और दक्षिण ध्रुव से गुजरता है, उसे उस स्थान का भौगोलिक याम्योत्तर कहते हैं।

दिक्पात (Declination)

भौगोलिक याम्योत्तर और चुम्बकीय याम्योत्तर सब स्थानों में एक नहीं होते हैं। भौगोलिक याम्योत्तर तथा चुम्बकीय याम्योत्तर के बीच के कोण को दिक्पात कहते है।

हमारे देश मे पांडीचेरी और उसी अक्षांश-रेखा पर स्थित दूसरे स्थानों पर इस दिक्पात का मान ०° है। कलकत्ते में दिक्पात १° पूर्व है; लेकिन, किसी स्थान पर दिक्पात सदा एक ही नही रहता; उसमें थोड़ा परिवर्तन होता रहता है।

चुम्बक का उपयोग

चुम्बकीय दिक्सूचक (Magnetic compass)

चुम्बक का एक महत्त्वपूर्ण उपयोग दिक्सूचक यंत्रो में होता है। दिक्सूचक यंत्र द्वारा दिशा का ज्ञान होता है। समुचित रूप से चूल पर बैठाई हुई चुम्बकीय सूई का चुम्बकीय अक्ष हमेशा उत्तर-दक्षिण दिशा में स्थिर रहता है। अर्थात् ऐसी चुम्बकीय सूई का एक सिरा उत्तर की ओर और दूसरा सिरा दक्षिण की ओर रहता है—इस सिद्धांत के आधार पर चुम्बकीय दिक्सूचक बनता है। चुम्बकीय दिक्सूचक दो प्रकार के होते हैं—दिक्सूचक सूई (compass needle) तथा नाविकों का या जहाजी दिक्सूचक (mariner's compass)।

(१) दिक्सूचक सूई—यह छोटी-बड़ी बहुत तरह की बनती है। साधारण दिक्सूचक सूचक सूई, एक पीतल की गोल और चिपटी डिबिया में एक

छोटी-सी चुम्बकीय सूई को चूल पर बैठाकर बनाई जाती है। डिबिया पर कांच लगा दिया जाता है तथा सूई के उत्तरी ध्रुव को लाल रंग से रँग दिया जाता है या उसपर उ और दक्षिण ध्रुव पर द लिख दिया जाता है।
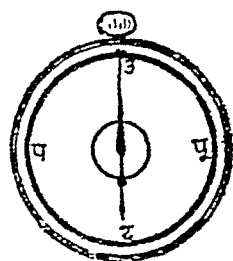
[चित्र १३१—दिक्-सूचक सूई]

(२) नाविकों का दिक्सूचक—अथाह, सीमाहीन समुद्र मे यह दिक्सूचक यंत्र जहाज का सहारा है। इसकी सहायता से दिशाओ का पता लगाकर नाविक जहाज चलाते है। इसकी आकृति भी छोटी दिक्सूचक सूई जैसी होती है। लेकिन यह उससे आकार मे बहुत बड़ी होती है। एक गोलाकार कूट पर दिशाओ का नाम लिखा रहता है और उसकी परिधि को ३२ समान भागो मे विभक्त करके प्रत्येक भाग पर चिह्न लगा दिया जाता है। एक शक्तिशाली चुम्बक के ऊपर इस कूट को इस प्रकार जड़ दिया जाता है कि चुम्बक के उत्तर ध्रुव पर कूट मे लिखा हुआ उत्तर ध्रुव रहे। फिर कूट समेत चुम्बक को डिबिया के अंदर लगे हुए चूल पर इस प्रकार बैठाया जाता है कि वह संतुलित अवस्था मे रहे, स्वतत्रता से घूम सके और जहाज की दिशा मे परिवर्तन के साथ-साथ वह भी घूम-फिरकर उत्तर-दक्षिण दिशा मे आ सके।
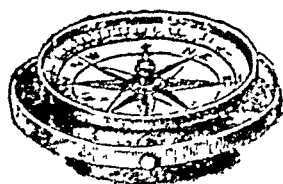
[चित्र १३२—नाविकों का दिक्सूचक यत्र]

जहाज के हिलने-डुलने पर भी दिक्सूचक यंत्र क्षैतिज अवस्था मे बना रहे, इसलिए उसे धुरियो के सहारे एक अन्य बक्से मे लटका दिया जाता है।

दिक्सूचक यत्र का डब्बा प्राय: पीतल की चादर से बनाया जाता है, किसी चुम्बकीय पदार्थ से नही। क्योकि निकट मे चुम्बकीय पदार्थ के रहने से चुम्बक सूई सही उत्तर-दक्षिण दिशा से विचलित हो जाती है। जहाज लोहे का बनता है और उसमे लोहे के बहुत-से यंत्रादि रहते है। इसलिए जहाज मे कंपास को इस प्रकार सावधानी से रखा जाता है कि उसपर इनका कोई प्रभाव न पडे। आजकल मैंगनीज-इस्पात नाम का एक इस्पात निकाला गया है। इस्पात होते हुए भी यह चुम्बकीय पदार्थ

नही है। दिक्सूचक यंत्र का डब्बा बनाने तथा जहाज के उस अंश को बनाने मे, आजकल इस पदार्थ का व्यवहार हो रहा है।

चुम्बक के अन्य उपयोग

डाइनेमो (dynemo) नामक विद्युत्-उत्पादन यंत्र मे, टेलीग्राफ, टेलीफोन, विद्युत् घंटी आदि मे चुम्बक की आवश्यकता होती है। शक्तिशाली विद्युत्-चुम्बक द्वारा कारखानों मे लोहे की भारी-भारी चीजे उठाई जाती है। विद्युतीय फीता अभिलेखी (tape recorder) यंत्र मे ध्वनि-अभिलेखन के समय चुम्बकीय फीते पर ध्वनि की चुम्बकीय आकृति बनती है जिससे उस ध्वनि का पुनरुत्पादन किया जा सकता है।

●

विद्युत् (Electricity)

आँधी-तूफान के समय आकाश मे कड़क के साथ बिजली चमक उठती है, तो लगता है कि तेज प्रकाश की एक सर्पिल रेखा बादलो को फाड़कर क्षण भर के लिए जगमगा उठी है। विद्युत् का ही यह एक सुंदर परंतु डरावना रूप है।

विद्युत् का दूसरा रूप उस समय हमारे सामने आता है जब बटन दबाते ही हमारा अँधेरा कमरा उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है। शहरो में आज विद्युत् के प्रताप से रातें भी दिन बन जाती हैं। विद्युत् से हमे प्रकाश तो मिलता ही है, साथ-साथ इससे हमारे और भी बहुत-से काम होते है। घरो मे प्रकाश देने के साथ-साथ इससे हमें ताप मिलता है। विद्युत् के चुल्हे पर हम खाना बनाते है, जाडों मे विद्युत् से कमरे गरम रखते है तो गरमी में इससे पखे चलाते हैं। इसीसे रेफ्रीजरेटर चलाते है, कपडो पर इस्तिरी करते है तथा और न जाने कितने ही काम साधते है। इन छोटे-मोटे कामो के अलावा, इसकी सहायता से छोटे-बड़े कारखाने तथा ट्राम, रेल आदि चलते है। विद्युत् की सहायता से डॉक्टर कितने ही रोगो का पता लगाते और इलाज करते है। इस प्रकार मनुष्य के जीवन के साथ विद्युत् का गहरा सबध हो गया है। यह कहा जा सकता है कि अब किसी देश की उन्नति उस देश मे विद्युत् के उत्पादन पर बहुत हद तक निर्भर करती है।

लेकिन यह विद्युत् है क्या ? सक्षेप मे कहा जाए तो कह सकते हैं कि विद्युत् ऊर्जा का ही एक रूप है, जिसका व्यवहार आवश्यकतानुसार हम भिन्न-भिन्न रूपो मे भिन्न-भिन्न कार्यो मे करते है।

स्थिर विद्युत् (Static electricity)

अँग्रेजी भाषा मे विद्युत् को इलेक्ट्रीसिटी (electricity) कहते है। हो सकता है कि वह शब्द इलेक्ट्रन (electron) शब्द से सबधित हो, क्योकि

ग्रीक भाषा में अंबर को इलेक्ट्रन कहते है। कहा जाता है कि पहले-पहल ग्रीस देश के दार्शनिक थेल्स (Thales) ने ईसा के ६०० वर्ष पूर्व ही अंबर को अपने ऊनी वस्त्र से रगडकर देखा था कि इस रगड़ से अंबर में एक गुण उत्पन्न होता है जिससे वह छोटी और हलकी वस्तुओं को आकर्षित करता है। तबसे इस अज्ञात शक्ति को इलेक्ट्रीसिटी कहते हैं और बहुत दिन तक यह सिद्धात बना रहा कि केवल अंबर में ही घर्षण से विद्युत् पैदा हो सकती है। १६०० ई० मे डॉ० विलियम गिलवर्ट ने इस भूल का संशोधन किया और प्रयोगो द्वारा सिद्ध किया कि अंबर की नाईं इबोनाइट, काँच, रंजन आदि बहुत-सी ऐसी वस्तुएँ हैं जिनको ऊनी या रेशमी कपड़े से रगड़ने पर उनमें छोटी-छोटी हलकी वस्तुओं को आकर्षित करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। अब हमे पता चल गया है कि प्रायः सभी वस्तुओं में यह गुण होता है और किसी भी वस्तु को अन्य वस्तु से रगड़ने से विद्युत् उत्पन्न होगी। इस प्रकार दो वस्तुओ को रगड़ने से जो विद्युत् उत्पन्न होती है उसे घर्षण विद्युत् (frictional electricity) या स्थिर विद्युत् (static electricity) कहते हैं। जिस वस्तु पर विद्युत् पैदा होती है उस वस्तु को उस अवस्था में विद्युताविष्ट (charged) वस्तु कहते हैं।

स्थिर विद्युत् की उत्पत्ति निम्नलिखित प्रयोग से सिद्ध की जा सकती है—

प्रयोग—काँच की एक मोटी छड़ लीजिए और उसको आग पर अच्छी तरह से सुखाइए। छड़ को रेशम के टुकड़े से घिसिए। अब एक मेज पर कागज के छोटे-छोटे टुकड़े जमा कीजिए और फिर छड़ को कागज के टुकड़ों के पास ले जाइए। देखिएगा कि कागज के वे सब टुकड़े छड़ में उत्पन्न आवेश के द्वारा आकर्षित होकर छड़ के पास आ रहे हैं। यह आकर्षण चुम्बक शक्ति के कारण नहीं है। चुम्बक चुम्बकीय पदार्थो को ही आकर्षित करता है कागज को नही। काँच में वैद्युतिक शक्ति आ जाने के कारण ही ऐसा होता है। इस छड़ को अब विद्युताविष्ट (charged) छड़ कहा जाता है जो इन कागज के टुकड़ो को, जो अनाविष्ट (uncharged) हैं, अपनी ओर खींचती है।

किंतु कागज के टुकड़े छड़ का स्पर्श करने के बाद ही फिर अलग होकर गिर पड़ते हैं। यह इसलिए होता है कि जब कोई अनाविष्ट वस्तु किसी

विद्युताविष्ट वस्तु का स्पर्श करती है तव वह भी विद्युताविष्ट हो जाती है। दोनो मे सदृश आवेश (similar charge) होने के कारण वे दोनों एक-दूसरे को विकर्षित करती है। इसलिए कागज के टुकड़े छड़ को छूने के वाद ही गिर जाते है।

धन तथा ऋण विद्युत्

फ्रासीसी वैज्ञानिक दू फे (Du Fay) ने अपने प्रयोगो द्वारा सर्वप्रथम पता लगाया कि विद्युत् आवेश दो प्रकार के होते हैं। इन दो प्रकार के आवेशो की विशेपता यह है कि सदृश आवेश वाली वस्तुएँ एक-दूसरे को विकर्षित करती है और असदृश आवेशो वाली वस्तुएँ एक-दूसरे को आकर्षित करती है। उन्होने एक का नाम वीट्रियस (vitreous) और दूसरे का नाम रेजिनस (resinous) रखा था। वाद मे एक का नाम **धन विद्युत्** (positive electricity) तथा दूसरे का नाम **ऋण विद्युत्** (negative eletricity) पड़ा। विद्युत् के इन विशेप गुणो को निम्नलिलित प्रयोगों द्वारा जाना जा सकता है—

प्रयोग १—ताँवे या अन्य किसी धातु के वने हुए तार को मोड़कर रकाव (stirrup) जैसा वनाइए। इस रकाव को सूखे रेशम के धागे से वाँध कर किसी स्तभ से लटका दीजिए। फिर एक कचकड़े की छड़ को सूखे फलालैन से रगड़ कर रकाव के किसी भी सिरे के पास लाइए। देखिएगा कि रकाव छड़ से आकर्षित होती है। अव एक सूखे काँच के छड़ को उसी प्रकार सूखे रेशम से रगड़ कर रकाव के पास लाइए। देखिएगा कि रकाव कॉच की छड़ से भी आकर्षित होती है। इस प्रयोग मे रकाव अनाविष्ट वस्तु है और कचकड़ा तथा काँच की छड़े विद्युताविष्ट वस्तुएँ हैं। अतः ऊपर के प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि विद्युताविष्ट वस्तु अनाविष्ट वस्तु को आकर्षित करती है।

प्रयोग २—विद्युताविष्ट कचकड़े की छड़ को अव रकाव पर रख दीजिए। कोई अनाविष्ट वस्तु, जैसे लकड़ी के वने स्केल, को उस छड़ के किसी भी सिरे के पास लाइए। देखिएगा कि रकाव अनाविष्ट वस्तु की तरफ आकर्षित होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि अनाविष्ट वस्तु भी आविष्ट वस्तु को आकर्षित करती है। अर्थात् आकर्षण पारस्परिक है।

प्रयोग ३—कचकड़े की दो छड़ो को पहले प्रयोग की भाँति फलालैन से रगड़ कर विद्युताविष्ट कीजिए। विद्युताविष्ट एक छड को रकाव में रख कर लटका दीजिए। फिर दूसरी छड़ को, जो पहली छड़ की तरह विद्युताविष्ट है, इस लटकी हुई छड़ के किसी भी सिरे के पास लाइए तो देखिएगा कि लटकी हुई छड़ विकर्षित होती है।

कचकड़े की छड़ के वदले मे काँच की दो छड़ो को लेकर रेशम से रगड़ कर इस प्रयोग को कीजिए तो देखिएगा कि उन विद्युताविष्ट छडो मे भी विकर्पण होगा। अगर फलालैन द्वारा रगड़ कर विद्युताविष्ट कचकड़े की छड़ को रकाव मे रखकर लटका दिया जाए और रेशम द्वारा रगड़ कर विद्युताविष्ट काँच की छड़ को उसके पास लाया जाए तो अव विकर्षण के वदले आकर्पण दिखाई पड़ेगा।

ऊपर के इन प्रयोगो से यह सिद्ध होता है कि घर्षण से वस्तुओ में जो विद्युत् उत्पन्न होती है, वह दो प्रकार की होती है। सदृश आवेश वाली वस्तुएँ एक दूसरे को विकर्षित करती हैं और असदृश आवेश वाली वस्तुएँ एक दूसरे को आकर्षित करती है।

कचकडे की छड़ को फलालैन से रगडने से जो विद्युत् उत्पन्न होती है, उसे ऋण विद्युत् (negative electricity) कहते हैं। दूसरी ओर, काँच की छड़ को रेशम से रगड़ने से जो विद्युत् उत्पन्न होती है उसे धन विद्युत् (positive electricity) कहते हैं। किंतु कचकडे पर हमेशा ऋण विद्युत् तथा काँच पर हमेशा धन विद्युत् उत्पन्न नही होती है। अगर काँच की छड को फलालैन से रगडा जाए तो धन विद्युत् उत्पन्न होने के वदले मे ऋण विद्युत् उत्पन्न होगी। इससे यह भी पता चलता है कि विद्युताविष्ट वस्तु के आवेश का रूप रगडे जाने वाली वस्तु (जैसे रेशम या फलालैन) पर भी निर्भर करता है, न कि केवल कचकड़े या काँच पर।

विद्युद्दर्शी (Electroscope)

यह हम पहले ही देख चुके हैं कि विद्युताविष्ट वस्तुएँ जिस प्रकार आवेशरहित वस्तुओ को आकर्षित करती है उसी प्रकार आवेशरहित वस्तुएँ भी विद्युताविष्ट वस्तुओ को आकर्षित करती है। इस कारण कोई

वस्तु विद्युताविष्ट है या नही, इसकी जाँच आकर्षण द्वारा नही, वल्कि विकर्षण द्वारा ही की जा सकती है। इस सिद्धांत के अनुसार विद्युत् आवेश की जाँच करने के लिए एक प्रकार के यत्न का निर्माण किया गया है, जिसे विद्युद्दर्शी (electroscope) कहते है।

प्रयोग—चौड़े मुँह वाली काँच की एक वोतल लीजिए और उसके मुँह पर छेद वाली रवर या कॉर्क की डाट लगा दीजिए। अव डाट के छेद में ताँवे या पीतल की एक पतली छड़ को इस प्रकार वैठाइए कि छड का एक सिरा वोतल के भीतर रहे। छड़ के ऊपर वाले सिरे पर एक पीतल या अन्य धातु की वनी चकती लगा दीजिए। छड़ के निचले सिरे पर दो पतले तथा लगभग ३ से० मी० लवे, और ३ मि० मी० चौडे सोने या एल्युमेनियम के तवक या पत्तियो को जोड़ दीजिए। फिर काग को वोतल मे लगाकर मोम से अच्छी तरह वद कर दीजिए कि हवा अदर न जा सके। इस प्रकार एक साधारण विद्युद्दर्शी यत्र वन गया। अव विद्युत् आवेश की जाँच के लिए कचकड़े की छड़ को फलालैन से रगड़कर चकती के पास लाइए या चकती का स्पर्श कीजिए तो देखिएगा कि छड में लगी हुई दोनो पत्तियाँ एक दूसरे से विकर्षित होकर फेल जाती हे। इससे पता चलता है कि वस्तु विद्युताविष्ट है। ऐसा इसलिए होता है कि चकती और छड मे होकर विद्युत् आवेश पत्तियो मे आ जाता है और दोनो पत्तियाँ सदृश आवेश से आविष्ट होकर एक दूसरे को विकर्षित करती और फैल जाती है।
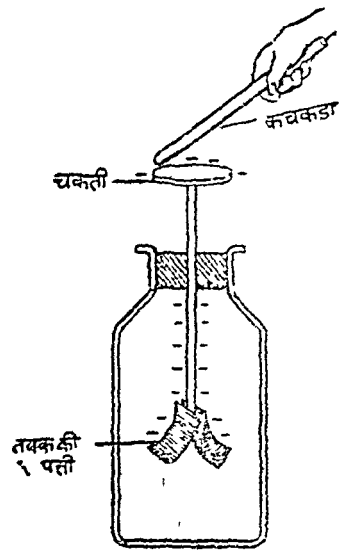
[चित्र १३३—साधारण विद्युद्दर्शी [

स्वर्ण-पत्र विद्युद्दर्शी

प्रयोगशाला मे जिस विद्युद्दर्शी को काम मे लाया जाता है उसे **स्वर्ण-पत्र विद्युद्दर्शी** (gold-leaf electroscope) कहते है। इसकी वनावट ऊपर

दिए गए साधारण विद्युद्दर्शी जैसी ही है। बोतल के बदले काँच के बेल-जार का व्यवहार होता है। बेल-जार के बीच में छड़ से सोने की दो पत्तियाँ लटकती रहती हैं। छड़ के ऊपर वाले सिरे पर धातु की बनी एक चकती लगी रहती है। बेल-जार भी काग से इस प्रकार बंद किया होता है कि हवा अंदर न जा सके। बेल-जार सोने की पत्तियों को बाहरी हवा के झोंकों से बचाता है। इस प्रकार विद्युद्दर्शी मे धातु की चकती, छड़ तथा सोने की पत्तियाँ सम्मिलित रूप मे एक चालक का काम करती है। जब कोई विद्युताविष्ट वस्तु चकती के पास लाई जाती है या चकती से स्पर्श कराई जाती है, तब दोनो पत्तियाँ भी सदृश आवेश मे आविष्ट हो जाती हैं और इस कारण विकर्षित होती है। बेल-जार के दोनो बगल मे टिन के बने लंबे तबक लगे हुए होते हैं। अगर पत्तियाँ ज्यादा फैल जाती है तो वे टिन के तबकों का स्पर्श करती है और विद्युत्-आवेश टिन से चालित होकर पृथ्वी मे चला जाता है। इस प्रकार पत्तियाँ फिर से अनाविष्ट होकर आपस मे चिपक जाती है। अनाविष्ट वस्तु को चकती के पास लाने से या उससे स्पर्श कराने से पत्तियो मे किसी प्रकार का विकर्षण नही होता और पत्तियाँ एक-दूसरे से चिपकी रह जाती हैं। इस प्रकार किसी भी वस्तु मे विद्युतावेश की जाँच स्वर्ण-पत्र विद्युद्दर्शी की सहायता से की जा सकती है।

विद्युत्-चालक (Conductor)

कुछ वस्तुएँ ऐसी है जिनमे से होकर विद्युत् आवेश एक ओर से दूसरी ओर तक आसानी से चली जाती है। उन सब वस्तुओ को विद्युत् चालक (conductor) कहते है। चाँदी और ताँबा अच्छे चालक हैं। इस कारण एक स्थान से दूसरे स्थान मे विद्युत्-धारा ले जाने के लिए ताँबे का तार काम मे लाया जाता है। प्राय. सभी धातुएँ विद्युत् की अच्छी चालक है। लवण या अम्ल मिले हुए पानी के भीतर से विद्युत् जा सकती है। इस कारण ये भी विद्युत्-चालक है। पृथ्वी तथा मानव-शरीर भी अच्छे चालक है।

विद्युत् के अचालक (Non conductor)

कुछ वस्तुएँ ऐसी है जिनमे से होकर विद्युत् प्रवाहित नही हो सकती और इनपर घर्षण द्वारा उत्पन्न विद्युत्-आवेश स्थिर रह जाता है। इन

वस्तुओं को विद्युत्-अचालक या विद्युत्-रोधी (Insulator) कहते है। सूखी लकड़ी एक अच्छा विद्युत्-रोधी है। इस कारण से विजली के काम करने वाले मिस्त्री लकड़ी की वनी सीढी पर चढ कर विद्युत् का काम करते है, ताकि विद्युत् धारा उनके शरीर में से होकर न जा सके। वैसे उनके शरीर से विद्युत् धारा के प्रवाह से उनकी मृत्यु हो सकती है। इसके अतिरिक्त अभ्रक, काँच, रवर, लाह, कचकडा, गंधक, मोम, तेल, सूखा रेशम, सूखी वायु आदि भी अच्छे अचालक या विद्युत्-रोधी है। इनमे अभ्रक सवसे अच्छा अचालक है। कुछ वस्तुएँ ऐसी है जो पानी से भिगो देने से अचालक से चालक हो जाती है। उदाहरण के लिए भीगा रेशम, भीगा सूत, भीगी लकड़ी, नम वायु आदि विद्युत् के चालक है।

निम्नलिखित प्रयोगो से पता चल सकता है कि वस्तु चालक है या अचालक।

प्रयोग १—कचकड़े की एक छड़ लीजिए और उसको फलालैन से रगड़ कर विद्युताविष्ट कीजिए। फिर इस छड से एक स्वर्ण-पत्र विद्युद्दर्शी की चकती का स्पर्श कराइए। विद्युत् का आवेश कचकडे की छड़ से विद्युद्दर्शी की चकती तथा चकती से होकर स्वर्ण-पत्रों को प्राप्त होता है और पत्तियाँ विकर्षित होकर विलग हो जाती हैं। अव यदि इस आविष्ट विद्युद्दर्शी की चकती का काँच, लाह या गंधक, रवर आदि की छड़ से स्पर्श करे तो पाते है कि विद्युद्दर्शी का आवेश नष्ट नही होता है चूँकि पत्तियो का विकर्षण और विलगाव वना रहता है। किंतु यदि चकती का किसी धातु की वनी हुई छड़ से या हाथ से स्पर्श करे तो तुरंत विद्युद्दर्शी का आवेश लुप्त हो जाएगा और पत्तियाँ आपस मे सट जाएँगी, अर्थात् धातु की छड़ या हमारे हाथ में से होकर विद्युत् का आवेश पृथ्वी मे समा जाता है और पत्तियाँ अनाविष्ट हो जाती है।

इस प्रयोग से मालूम होता है कि विद्युत्-प्रवाह के लिए वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैं। एक प्रकार की वस्तुएँ वे हैं जैसे काँच, लाह, गधक, रवर आदि, जिनमें से होकर विद्युत् आवेश प्रवाहित नही हो सकता है, उनको अचालक या विद्युत्-रोधी (nonconductor or insulator) वस्तुएँ कहा जाता है। इसके विपरीत दूसरी प्रकार की वस्तुएँ वे है, जिनमे से होकर विद्युत्-प्रवाहित होती है, जैसे धातु या हमारे शरीर आदि। ये विद्युत् के चालक (conductor) है।

प्रयोग २—तांबे की एक छड के एक सिरे को हाथ से पकड कर दूसरे सिरे को फलालैन से रगडिए। फिर एक विद्युत् दर्शी की चकती का स्पर्श कीजिए। ऐसा मालूम होगा कि तांबे की छड में घर्षण से विद्युत् उत्पन्न ही नही हुई है। लेकिन धातु की बनी छड को सूखी रेशम या फलालैन से रगड़ने से घर्षण-विद्युत् अवश्य ही उत्पन्न होती है। किंतु धातु के चालक होने के कारण, विद्युत् आवेश छड से होकर हाथ मे तथा हमारे शरीर से प्रवाहित होकर पृथ्वी मे समा जाती है। अगर तांबे की छड को सीधे हाथ से न पकड़ कर उस सिरे मे कचकडे या रबर की एक मूठ लगा दी जाए और उसे पकड कर इस प्रयोग को फिर से करे तो हम देखेंगे कि तांबे की छड़ भी विद्युताविष्ट हो गई है। इस अवस्था मे छड़ को विद्युतदर्शी की चकती से स्पर्श करा देने से पत्तियो मे विकर्षण होगा और वे विलग हो जाएँगी। क्योंकि इस बार छड पर उत्पन्न विद्युत्-आवेश अचालक मूठ के कारण, छड़ से मनुष्य के शरीर मे और फिर वहाँ मे प्रवाहित होकर पृथ्वी मे नही समा सका।

इस प्रकार वस्तुओ को दो भागो मे बाँटा गया है—(१) चालक तथा (२) अचालक। किंतु यह विभाजन तथा चालन के सामर्थ्य की भिन्नता सपूर्ण नही है। क्योंकि सही माने मे कोई भी वस्तु पूर्णतया चालक और अचालक नही होती है। लकडी, कागज आदि सूखे रहने पर अचालक हैं, किंतु भीगने पर चालक हो जाते हैं। सूखी हवा अच्छी विद्युत्-रोधी या अचालक है, किंतु नम हवा चालक है। वस्तुओ की चालकता आपेक्षिक है। अभ्रक सबसे अच्छा अचालक है।

विद्युत्रोधी या अचालक वस्तुओं की उपयोगिता

विद्युत् सबधी काम मे इस्तेमाल होनेवाले तार आमतौर से कपडे, सिल्क रबर या प्लैष्टिक आदि विद्युत्रोधी वस्तुओ से ढँके होते हैं। इस प्रकार ढके हुए तार से विद्युत्-आवेश वायुमडल मे फैल कर नष्ट नही होता है, तथा बिजली का इस्तेमाल करनेवाले भी खतरे से बचते है। विद्युत्-संबधी हर प्रकार के काम मे अचालक वस्तु का व्यवहार जरूरी है। बिजली का तार लोहे के खंभो पर नही रखा जाता है, पर चीनी मिट्टी आदि विद्युत्-रोधी वस्तु की बनी प्यालियों पर रहता है। इस कारण विद्युत् खभों से प्रवाहित होकर पृथ्वी मे समा नही पाती है। बिजली की बत्ती, चूल्हा, पखा आदि

चलाने के लिए जो स्विच होता है उसके ढक्कन आदि विद्युत् रोधी वस्तुओं के बने होते है, ताकि विद्युत् हाथ और हमारे शरीर मे से प्रवाहित होकर पृथ्वी मे समा न जा सके। इस प्रकार विद्युत के उपयोग मे अचालक या विद्युत्-रोधी वस्तुओ का बडा महत्त्व है। अचालक वस्तुओ की सहायता के बिना कोई भी वैद्युतिक सामान नही बन सकता और न विद्युत् का किसी प्रकार का उपयोग ही हो सकता है।

वैद्युत्-प्रेरण (Electrical induction)

जिस प्रकार किसी चुम्बक के निकट किसी चुम्बकीय पदार्थ को रखने से उसमे प्रेरण की क्रिया से अस्थायी चुम्बकत्व उत्पन्न होता है उसी प्रकार आविष्ट वस्तु के निकट अनाविष्ट वस्तु को रखने से उसमे प्रेरण से अस्थायी रूप से विद्युत् का आवेश प्रकट होता है। अर्थात् आविष्ट वस्तु अनाविष्ट वस्तु का स्पर्श किए बिना ही अनाविष्ट वस्तु में विद्युत् का आवेश उत्पन्न करती है। पासवाले सिरे पर असदृश आवेश तथा दूर वाले सिरे पर सदृश आवेश उत्पन्न होता है।
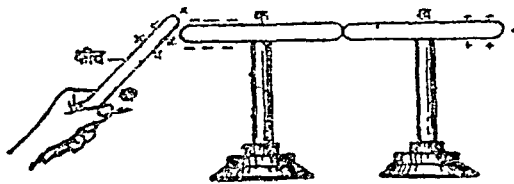
[चित्र १३४—वैद्युत्-प्रेरण]

निम्नलिखित प्रयोग से प्रेरण की क्रिया को अच्छी तरह समझा जा सकता है :—

प्रयोग—चित्र मे क तथा ख जैसे धातु के बने दो बेलनाकार अनाविष्ट चालक लीजिए। दोनो चालको को अचालक वस्तु से बने हुए स्तभ पर रखिए। दोनो को इस प्रकार सटा दीजिए कि दोनो एक चालक बन जाएँ। फिर धन-विद्युत् से आविष्ट काँच की एक छड़ क के पास ले जाइए और उसकी उपस्थिति मे ही दोनो को अलग कर दीजिए तथा विद्युत्-दर्शी से

प्रत्येक के आवेश की जाँच कीजिए तो पता चलेगा कि पहले में ऋण-विद्युत् तथा दूसरे मे धन-विद्युत् उत्पन्न हुई है।

इस प्रयोग मे किसी भी अनाविष्ट वेलन का आविष्ट वस्तु से स्पर्श नही कराया गया। स्पष्ट है कि उनको चालन (conduction) से विद्युत् का आवेश प्राप्त नही हुआ और न घर्षण से ही उनमे विद्युत्-आवेश उत्पन्न किया गया है। अतः ये अनाविष्ट चालक केवल प्रेरण द्वारा ही आविष्ट हुए हैं। इस प्रकार के आवेश को **प्रेरित आवेश** (induced charge) कहते हैं।

इस प्रयोग में यदि प्रेरक को दूर ले जाकर दोनों चालक वेलनो की परीक्षा विद्युत्-दर्शी द्वारा करे तो हम पाएगे कि किसी पर आवेश नही है। प्रेरक को हटाते ही एक का धन आवेश दूसरे के ऋण आवेश को पूरी तरह रद्द कर देता है। स्पष्ट है कि सयुक्त चालक के एक सिरे पर प्रेरित आवेश का परिमाण दूसरे सिरे पर प्रेरित आवेश के परिमाण के बराबर होता है।

प्रेरण-क्रिया की प्रकृति की जाँच के लिए एक और प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रयोग मे प्रेरक के आवेश की जाँच करने के लिए **परीक्षण-पट्टिका** (proof plane) का व्यवहार होता है।

परीक्षण-पट्टिका

यह एक विशेप प्रकार का उपस्कर है जिसे विद्युत्-वाहक (carrier) भी कहा जाता है। इसमे एक चालक वस्तु की बनी गोल चकती होती है जो किसी अचालक वस्तु की छड़ से जुड़ी रहती है। छड़ मूठ का काम करती है और प्रयोग के समय हमेशा इसे ही पकड़ना चाहिए। चकती का हाथ से या अपने शरीर से स्पर्श नही करें, नही तो चकती का आवेश नष्ट हो जाएगा। किसी वस्तु मे आवेश है या नहीं, इसकी जाँच करने के लिए, उस वस्तु से परीक्षण-पट्टिका की गोल चकती का स्पर्श कराकर, चकती को एक विद्युत्-दर्शी के पास लाया जाता है। अगर विद्युत्-दर्शी की पत्तियो में विकर्षण हो तो समझना चाहिए कि वस्तु मे आवेश है।
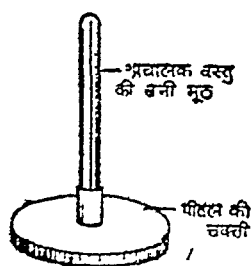
[चित्र १३५—विद्युत्-परीक्षण-पट्टिका]

प्रयोग—धातु के बने एक बेलन को अचालक वस्तु के स्तंभ पर रखिए। काँच की एक छड़ को रेशम से रगड़कर धन विद्युत् से आविष्ट कीजिए। फिर उसे बेलन के एक सिरे के पास लाकर रखिए। प्रेरण से यह सिरा ऋण-विद्युत् से तथा दूसरा सिरा धन-विद्युत् से आविष्ट हो जाता है। किंतु इस चालक बेलन के मध्य भाग में कोई विद्युत्-आवेश नही पाया जाता है। इसे जाँचने के लिए, एक परीक्षण-पट्टिका की चकती का बेलन के पहले सिरे से स्पर्श कराइए और उसे पहले से ही ऋण-विद्युत् से आविष्ट एक विद्युत्-दर्शी की चकती के पास लाइए। देखिएगा कि विद्युत्-दर्शी में स्वर्ण-पत्तियो का फैलाव बढ जाता है। इससे पता चल जाता है कि बेलन के उस सिरे पर प्रेरण से ऋण-विद्युत् उत्पन्न हुई है। इसी प्रकार से बेलन के दूसरे सिरे को जाँच करके देखिए। मालूम हो जाएगा कि उस पर धन-विद्युत् उत्पन्न हुई है। बीचवाला भाग अनावेशित पाया जाएगा। अब काँच की छड़ को बेलन के पास से हटा लीजिए। परीक्षण-पट्टिका द्वारा जाँच करने से अब पता चलेगा कि बेलन के दोनो सिरो पर के विद्युत्-आवेश लुप्त हो गए हैं और बेलन फिर से अनाविष्ट हो गया है।

चालक का आवेश उसकी बाहरी सतह पर ही रहता है। विद्युत्-आवेश के इस गुण का परिचय अँग्रेज वैज्ञानिक माइकेल फैराडे ने कराया था। उन्होने जिस प्रयोग के द्वारा इसे सिद्ध किया था, वह 'तितली-जाली का प्रयोग (butterfly-net experiment) के नाम से प्रसिद्ध है।

तितली-जाली का प्रयोग

तितली पकडने के लिए काम आनेवाली शंकु जैसी आकार की धातु-
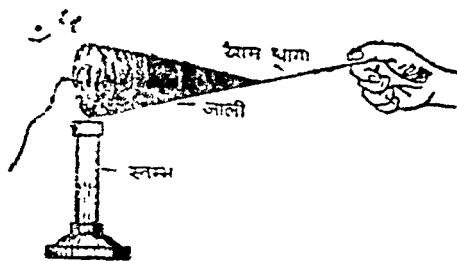
[चित्र १३६—तितली-जाली प्रयोग]

निर्मित जाली को एक अचालक स्तभ से जोड़ दिया जाता है। इसके सिरे से

रेशम के धागे इस प्रकार से लगे होते हैं कि धागे को खींचकर जाली की भीतरी सतह को बाहर किया जा सकता है और बाहरी सतह को भीतर किया जा सकता है। अब जाली को विद्युताविष्ट किया जाता है और परीक्षण-पट्टिका तथा विद्युत्-दर्शी की सहायता से जाँच करके देखा जाता है कि उसकी बाहरी सतह पर आवेश है; लेकिन अंदर की सतह पर कोई आवेश नहीं है।

धागे को खींचकर अंदरवाली सतह को बाहर कर इस प्रयोग को दुहराने से पता लगेगा कि आवेश फिर भी केवल बाहर की सतह पर ही है, अंदर वाली सतह पर नहीं।

फैराडे ने अपने जीवन को खतरे में डालकर एक और प्रयोग से इसकी जाँच की थी। उन्होंने धातु के तार की जाली से एक बड़ा बक्स बनाया। फिर एक स्वर्ण-पत्र विद्युत्-दर्शी साथ लेकर खुद बक्से के अंदर बैठ गए। बक्से को बंद करके उसे विद्युत् का प्रचुर आवेश दिया गया। जब बक्से की बाहरी सतह से बिजली के बड़े-बड़े स्फुलिंग (spark) छूट रहे थे उस समय अंदर रखे हुए विद्युत्-दर्शी की पत्तियों को कुछ भी आवेश प्राप्त नहीं हुआ और न फैराडे का ही बाल बाँका हुआ। इस प्रकार फैराडे ने सिद्ध किया कि आवेश चालक की केवल बाहरी सतह पर ही रहता है।

अध्याय २१

वायुमंडलीय विद्युत् तथा तड़ित्

(Atmospheric-electricity and lightning)

आकाश मे जव वादल घिर आता है तव वादलो के वीच विजली का चमकना किसने न देखा होगा ? साथ ही उसकी कड़कड़ाहट की आवाज भी किसने नही सुनी होगी ? आदिकाल से ही मानव, तड़ित् की चमक तथा कड़क से परिचित है। किंतु कैसे और कहाँ से इस तड़ित् (lightning) की उत्पत्ति होती है, नही मालूम होने के कारण, मानव के मन मे इसके प्रति भय और विस्मय पैदा होता था। सुदूर अतीत से यह खोज शुरू हुई थी कि तड़ित् क्या है ? इसकी उत्पत्ति का कारण क्या है ? इससे क्या लाभ तथा हानि होती है, तथा इससे कैसे वच सकते है ?

कहा जाता है कि स्टिफेन ग्रे (Stephen Gray) नामक वैज्ञानिक ने सर्वप्रथम यह सुझाव दिया था कि स्थिर-विद्युत् से तड़ित् का सवध है। इसके वाद बेंजामिन फ्रैंकलिन नामक प्रसिद्ध अमरीकी वैज्ञानिक ने १७४६ ई० मे तडित् का वैद्युतिक सिद्धांत (electrical theory of lightning) पेश किया। अपने सिद्धात की पुष्टि के लिए उन्होने विद्युत् और तडित् मे निम्नलिखित समानताओ का वर्णन किया —(१) प्रकाश उत्पन्न करने की शक्ति, (२) प्रकाश का वर्ण, (३) टेढा-मेढा रास्ता, (४) तीव्र गति, (५) धातु मे चालित होना तथा (६) विसर्जन होने से ध्वनि का उत्पन्न होना आदि।

उन्होने कहा कि इन गुणो के कारण तड़ित् से विद्युत् का संवंध मालूम होता है। सन १७५२ ई० की १० मई को वेजामिन फ्रैंकलिन ने अपने पतग और कुंजी के प्रयोग से प्रमाणित किया कि वायुमडलीय विद्युत् के उत्सर्जन से ही तडित् की उत्पत्ति होती है।

इस प्रयोग को सम्पन्न करने के लिए उन्होने महीन रेशम के कपडे का एक पतंग वनाया और उसमे पटसन की डोरी लगा दी। वायुमडल से

विद्युत् ग्रहण करने के लिए पतग मे एक नुकीला तार लगा दिया और उसके दूसरे सिरे को डोरी से जोड दिया। डोरी को नीचे से पकड़ने के लिए उसे एक रेशम के टुकडे से बांध दिया गया। इस जोड़ के पास एक लोहे की चाभी लटका दी गई। १७५२ ई० की १० मई को, वरसात के समय, जब बिजली चमक रही थी तथा वादल गरज रहे थे, उन्होने इस पतंग को आकाश मे उड़ाया। जब वर्षा के पानी से डोरी भीग कर चालक वन गयी, तव वायुमडलीय विद्युत पतग मे लगे हुए नुकीले तार द्वारा ग्रहीत होकर डोरी से प्रवाहित होकर चाभी तक पहुँच गयी। चाभी को इस अवस्था मे अगुली से छूने से उनको उसी प्रकार का धक्का लगा तथा साथ ही उसी प्रकार की चिनगारी निकली जैसे घर्षण-विद्युत् से प्राप्त होती है। इस प्रकार से मालूम हो गया कि वायुमडलीय विद्युत् के उत्सर्जन से ही तडित् की उत्पत्ति होती है।

यह प्रयोग काफी खतरनाक है, क्योकि इसमे इतने उच्च वोल्ट विद्युत् धारा आ सकती है कि उससे प्रयोग कर्त्ता की मृत्यु तक हो जा सकती है।

वायुमडलीय विद्युत् की उपस्थिति प्रयोगो द्वारा सिद्ध की जा सकती है। किंतु विद्युत् की उत्पत्ति कहाँ से और कैसे होती है इसका अभी भी पूर्णरूप से पता नही चला है। पहले यह कहा जाता था कि वायु मे वर्त्तमान जलकणो के पारस्परिक घर्षण से वायुमडल मे विद्युत्-आवेश उत्पन्न होता है। किंतु प्रयोग द्वारा यह भी देखा गया है कि वादलहीन वायुमडल मे, अर्थात् वायु मे जलकण न होने पर भी वायु सर्वदा विद्युताविष्ट होती रहती है। आधुनिक वैज्ञानिको के मतानुसार वायुमडलीय विद्युत् की उत्पत्ति का कारण यह है कि सूर्य और अतरिक्ष से आनेवाली अदृश्य परा बैगनी किरणे (ultra violet rays) और कॉसमिक किरणे (cosmic rays) वायुमंडल से होकर, पृथ्वी पर आते समय वायुमंडल के गैसो के कुछ अणुओ को आयनित (ionised) कर देती है। जिसके फलस्वरूप वायु के अणु आविष्ट हो जाते हैं। जब जलवाष्प-कण ऊपर उठ कर इस क्षेत्र मे पहुँचते है तब वायु के आयनित कणो का आवेश इन वाष्प कणो को भी आविष्ट कर देता है। वादल इन आविष्ट वाष्प-कणो के मिलने से वनता है। अतः वादल का विद्युत् आवेश वढ जाता है। वादल मे भी दो प्रकार

की विद्युत् पाई जाती है। कुछ वादलो मे धन विद्युत् का आवेश तथा कुछ मे ऋण विद्युत का आवेश होता है।

इसके अतिरिक्त वायुमडलीय विद्युत् की उत्पत्ति के अन्य कारण भी हैं। कुछ वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी तल के रेडियम जैसे तत्त्व से विकिरित-किरणे भी वायुमडल की निचली सतह के गैसो के अणुओ को आविष्ट कर देती है।

वायुमंडल मे इन सव क्रियाओ के फलस्वरूप दो प्रकार की विद्युत् काफी मात्रा में पाई जाती है।

तड़ित् की उत्पत्ति

दो विपरीत आवेश वादलो के वीच जव विद्यु त् विभवातर (potential difference) ज्यादा हो जाता है तव विद्यु त का विसर्जन होता है। क्योकि जव ऋण तथा धन विद्यु त से आवेशित वादल के दो टुकड़े पास आ जाते है तव उनके विद्यु त् आवेशो मे विभवांतर जितना अधिक होगा, वे उतने ही अधिक वल से एक-दूसरे को आकर्षित करेगे और ऋण आवेश वाले बादल से विद्यु त् विसर्जित होकर धन आवेश वाले बादल पर जा गिरेगी विद्यु त् विसर्जन की क्रिया से तडित् की उत्पत्ति होती है जिसे विजली का गिरना या चमकना कहते है।

वरसात के दिनो मे वादल और पृथ्वी के वीच मे विद्यु त्-विसर्जन के कारण भी तडित् की उत्पत्ति होती है। जव कोई आविष्ट वादल पृथ्वी-तल के समीप आ जाता है तव ठीक उसके नीचे वाली पृथ्वी तल की वस्तुओं पर, जो भीगने से चालक वन गई हैं, असदृश प्रेरित विद्यु त् आवेश उत्पन्न हो जाता है। जव इस प्रेरित आवेश की मात्रा अधिक हो जाती है तथा इसका और आवेशित वादलो का वैद्युत् विभवांतर वहुत अधिक हो जाता है, तव घोर विद्युत् विसर्जन होता है। इस क्रिया से, वादल से लेकर पृथ्वी-तल तक, क्षणिक तेज प्रकाश की एक लंवी तथा टेढी-मेढी रेखा (lightning) दिखाई देती है और साथ ही वड़े जोर की कड़कडाहट की आवाज (thunder) सुनाई पडती है। इसे वज्रपात कहते है। विद्युत् विसर्जन के समय विसर्जित विद्युत् ऐसे पथ से आकर पृथ्वी मे समा जाती है, जिस पथ से उसे चलने में कम-से-कम प्रतिरोध हो। इसलिए आविष्ट वादल

के निकटतम जो चालक उसे मिलेगा, उसी मे होकर वह प्रवाहित होना चाहेगी। ऊँचे पेड़, मकान, धातु निर्मित ऊँचे खभे आदि चालक भी हैं और बादल के निकट भी होते है। इसलिए साधारणतः इन्ही पर वज्रपात होता है।

तड़ित्-चालक (Lightning conductor)

तड़ित्-चालक का आविष्कार भी वैज्ञानिक बेंजामिन फ्रैंकलिन ने ही किया था। उन्होने १७५४ ई० मे अमेरिका के ऊँचे-ऊँचे मकानो मे सर्वप्रथम तड़ित्-चालक का व्यवहार शुरू करवाया था। अब प्रायः सभी शहरो मे तड़ित् के प्रकोप से बचने के लिए ऊँचे-ऊँचे महलो, मीनारो आदि पर तड़ित्-चालक लगाया जाता है।

यह हम जान चुके हैं कि जब कोई बादल पृथ्वी के करीब आ जाता है तब पृथ्वी पर और ऊँची तथा नुकीली वस्तु, जैसे ऊँचे महल, मीनार, पेड़ आदि पर असदृश प्रकार का विद्युत्-आवेश काफी मात्रा मे प्रेरण से उत्पन्न हो जाता है और इन सब ऊँचे स्थानो पर बिजली के गिरने अर्थात् विद्युत्-विसर्जन की सभावना पैदा हो जाती है। जिन मकानो या पेड़ो पर बिजली गिरती है, वे ध्वस्त हो जाते या जल जाते है। आदमी या जानवर पर बिजली गिरने से वे मर जाते हैं।

अत इन सब ऊँचे मकानो को तड़ित् के आघात से बचाने के लिए तड़ित्-चालक लगाया जाता है। तड़ित्-चालक, धातु की छड़ का बना होता है और लंबे त्रिशूल जैसा होता है। इस छड़ को मकान की बाहरी दीवार पर इस तरह लगा दिया जाता है कि दीवार से वह पृथक्कृत रहती है। छड़ के ऊपरी भाग मे तीन या चार नुकीले कॉटे लगे रहते है। छड़ मकान की सबसे ऊँची जगह से भी ऊपर निकली रहती है। छड़ के निचले सिरे को मोटे चालक तार द्वारा धातु के एक प्लेट से लगाकर उसको जमीन मे, काफी नीचे जहाँ मिट्टी मे पानी है, गाड़ दिया जाता है। तड़ित्-चालक की छड़ मे किसी प्रकार का मोड़ नही होना चाहिए।

जब तड़ित्-चालक लगे हुए मकान के पास से आवेशित बादल गुजरता है तब तड़ित्-चालक के सिरे पर प्रेरण द्वारा असदृश आवेग उत्पन्न होता है।

बादल से विसर्जित विद्युत् तडित्-चालक से होकर पृथ्वी में समा जाती है और मकान नुकसान से बच जाता है।

वज्रपात से सुरक्षा

वज्रपात से मकान ध्वस्त हो जाता या जल जाता है। मनुष्य, बड़े-बड़े जीव-जतु, पेड़-पौधे, जिस पर भी वज्रपात हो, वे जलकर नष्ट हो जाते है। इसलिए हमेशा ऊँचे मकानो पर तड़ित्-चालक लगा देना चाहिए।

पानी से भीगे पेड़-पौधे चालक बन जाते है। इसलिए, आँधी-तूफान के समय ऊँचे पेडो पर वज्र गिरने की अधिक संभावना रहती है। अतः बिजली की चमक तथा आँधी-पानी आ जाने पर ऊँचे पेड के नीचे खडा नही होना चाहिए। साथ ही ऊँचे धातु-निर्मित खंभे आदि पर भी बिजली गिरने की अधिक संभावना रहने के कारण ऐसे समय में उनसे भी दूर रहना चाहिए।

आसपास वज्र गिरने से कमरे की धातु-निर्मित चीजे भी प्रेरण द्वारा आविष्ट हो जा सकती हैं। इसलिए विद्युत् के साथ आँधी-पानी के समय धातु-निर्मित बडी-बडी चीजो से दूर रहना चाहिए।

ऐसे समय खुले स्थान में या नदी, तालाब आदि के पानी के अंदर नहीं रहना चाहिए। खुले स्थान मे खडे रहने के बजाए लेट जाने मे ही अधिक सुरक्षा है।

बिजली के साथ आँधी-पानी के समय अगर मोटरगाडी जैसी धातु-निर्मित कोई बद सवारी मिले तो उसमे गाडी की दीवारो से हटकर बैठे रहना चाहिए। ऐसी हालत मे गाडी पर बिजली गिरने से भी अंदर बैठे आदमी बच जाते है। क्योकि गाडी की धातु-निर्मित दीवार से होकर विद्युत् पृथ्वी मे चली जाती है और अदर बैठे आदमी को नुकसान नही पहुँचा सकती है। फैरेडे के प्रयोग से हमे मालूम हो चुका है कि चालक-आवेश केवल उसकी सतह पर रहता है। इसी सिद्धांत पर धातु के बने बक्सनुमा बंद गाडी के अंदर हम तडित् से सुरक्षित रह सकते हैं।

अध्याय २२

विद्युत्-धारा

(Electric current)

विद्युत्-धारा

हम जान चुके हैं कि घर्षण या प्रेरण से वस्तुओ को विद्युताविष्ट किया जा सकता है। अलग-अलग विभववाली आविष्ट वस्तुओ को सुचालक तार आदि से जोड़ देने पर अधिक विभववाली वस्तु से कम विभववाली वस्तु की ओर विद्युत् प्रवाहित होती है। यह प्रवाह तब तक जारी रहता है जब तक दोनो आविष्ट वस्तुओ अथवा एक आविष्ट तथा दूसरी अनाविष्ट वस्तु मे विभवातर (potential difference) बना रहता है। विद्युत्-आवेश के इस प्रवाह को विद्युत्-धारा (electric current) कहते है।

तार से जानेवाले विद्युत्-प्रवाह की तुलना नल से जानेवाले पानी के प्रवाह के साथ की जा सकती है। फर्क यह है कि तार नल जैसा खोखला नही होता और न हम विद्युत्-प्रवाह को आँखो से ही देख सकते हैं। पानी नल द्वारा ऊँचे स्तर से नीचे की ओर बहता है। विद्युत् भी आवेश के ऊँचे स्तर से नीचे स्तर की ओर बहती है। विद्युत्-आवेश के स्तर के अतर को विभवातर (potential difference) कहते है।

[चित्र १३७—वोल्टीय ढेर]
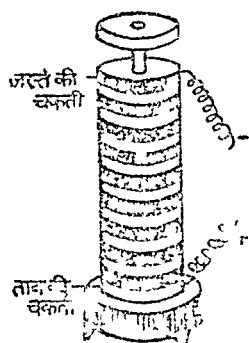
वोल्टा का ढेर

१७६० ई० मे प्रसिद्ध इटालियन वैज्ञानिक एलेस्जौडरो वोल्टा (Alessandro Volta) ने सर्वप्रथम रासायनिक क्रिया से विद्युत् उत्पन्न किया। रासायनिक क्रिया से किसी चालक पर लगातार आवेश उत्पन्न किया जा सकता है और इस प्रकार दो चालको के बीच लगातार आवेश का प्रवाह (यानी विद्युत्-धारा) जारी रखा जा सकता है। इस प्रकार विद्युत्-धारा प्राप्त करने के लिए उन्होने अपने प्रयोग के

लिए एक उपकरण का आविष्कार किया, जो वोल्टा का ढेर (voltaic pile) के नाम से प्रसिद्ध है।

इसे बनाने के लिए उन्होंने ताँबे की बनी हुई कई चकतियाँ ली और उसी नाप के उतनी ही संख्या मे जस्ते की बनी हुई चकतियाँ भी ली। फिर ताँबे की चकती के ऊपर जस्ता की एक चकती, उसके ऊपर फिर ताँबे की एक चकती—इस प्रकार उन चकतियों को एक के बाद एक क्रम मे लगाकर एक स्तभ (pile) बनाया। इस स्तंभ के ताँबे और जस्ते की चकतियों के प्रत्येक जोड़े के बीच मे तनु गंधकाम्ल से भीगे हुए उसी नाप के कागज या कपड़े की बनी हुई चकतियों को रखा। अब इस स्तभ के ऊपरवाली जस्ते की चकती को नीचेवाली ताँबे की चकती से तार द्वारा जोड देने से उसमें विद्युत्-धारा का प्रवाह होता है। विद्युत्-दर्शी से जाँच करने पर ताँबे की चकती पर धन आवेश और जस्ते की चकती पर ऋण आवेश पाया जाता है तथा सबसे ऊपर वाली चकती और सबसे नीचे वाली चकती का विभवांतर भी यथेष्ठ पाया जाता है।

साधारण वोल्टीय सेल

वैज्ञानिक वोल्टा ने विद्युत्-धारा उत्पन्न करने के लिए जो सरल विद्युत्-घट बनाया था, उस उपकरण को, उसके आविष्कारक के नाम पर साधारण वोल्टीय सेल (Simple Voltaic cell) कहते हैं। इस प्रकार का एक विद्युत्-घट निम्नलिखित विधि से प्रयोगशाला में आसानी से बनाया जा सकता है।

काँच के चौड़े मुँह वाले पात्र का तीन चौथाई भाग तनुगंधकाम्ल से; जिसमे एक भाग गंधकाम्ल और चार भाग पानी हो, भरकर उसमे एक जस्ते का तथा एक ताँबे का प्लेट इस प्रकार डुबोकर रखे कि दोनों एक दूसरे से अलग रहे और प्रत्येक का एक सिरा घोल से ऊपर रहे। दोनो प्लेटों के ऊपर वाले सिरो को ताँबे के तार से जोड़ दें तो ताँबे के प्लेट से जस्ते के प्लेट मे और फिर गंधकाम्ल के घोल मे होकर जस्ते के प्लेट से ताँबे के प्लेट तक विद्युत्-धारा प्रवाहित होती रहेगी। इसमे ताँबे का प्लेट धन ध्रुव (+) और जस्ते का प्लेट ऋण ध्रुव (−) होते हैं। जस्ते और ताँबे पर
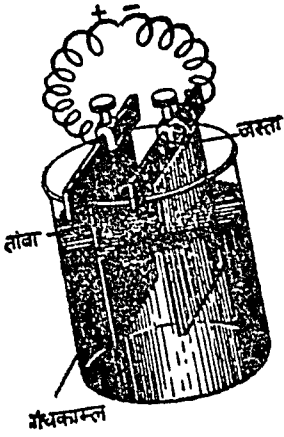
[चित्र १३८—साधारण वोल्टीय सेल]

गंधकाम्ल की क्रिया से दोनों प्लेटों पर असदृश आवेश उत्पन्न होता है और इनके बीच विभवातर उत्पन्न होने के कारण सेल में विद्युत्-धारा प्रवाहित होती है।

लेकिन, इस प्रकार के सेल से अधिक देर तक विद्युत्-धारा नही मिलती है। क्योकि, जस्ते मे साधारणतः नाना प्रकार की अशुद्धियाँ मिली हुई होती हैं, जिनके कारण जस्ता और उसमें मिली हुई धातुओं के स्पर्श से छोटे-छोटे सेल बन जाते हैं जिनसे स्थानीय विद्युत-धारा प्रवाहित होने लगती है। स्थानीय धारा से मुख्य धारा को कोई सहायता नही मिलती है, लेकिन जस्ता निरर्थक घुलता रहता है। जस्ते के प्लेट पर पारे का लेप लगा देने से यह क्रिया रुक जाती ।

साथ ही, इस प्रकार के सेल में जस्ते पर गंधकाम्ल की रासायनिक क्रिया से हाइड्रोजन गैस मुक्त होता है। इस गैस के अनेक बुलबुले जा कर ताँवे के प्लेट पर जमा हो जाते है। इससे ताँवे के प्लेट का अम्ल से स्पर्श नही हो पाता और उस पर अम्ल की क्रिया कम हो जाती है तथा विद्युत्-प्रवाह मंद पड जाता है। इस दोष को दूर करने के लिए ताँवे के प्लेट को थोड़ी-थोड़ी देर मे निकाल कर या ब्रश से साफ कर बुलबुलो को हटाना पड़ता है। सेल के इस दोष को ध्रुवण (polarisation) कहते हैं।

इन कारणो से विद्युत्-धारा उत्पादन के लिए साधारण वोल्टीय सेल के बजाय लेकलांश सेल, डेनियल सेल या सूखे सेल आदि का व्यवहार होता है।

लेकलांश सेल (Leclanche cell)

इस प्रकार के सेल में मिट्टी के सरंध्र पात्र में कार्बन की एक छड रख-कर पात्र को कार्बन तथा मैंगनीज डाइ-आक्साइड के चूर्ण के मिश्रण से भर दिया जाता है। कार्बन की छड़ के ऊपर धातु-निर्मित टोपीनुमा पेच लगा रहता है, जिससे तार जोड़ दिया जाता है। उस मिट्टी के पात्र को एक दूसरे

चौड़े मुँह वाले कांच की बोतल मे रख दिया जाता है और बोतल में अमोनियम क्लोराइड का घोल भर दिया जाता है। बोतल के एक कोने में जस्ते की एक छड होती है। इसके सिरे पर भी तार जोड़ने के लिए पेच लगा रहता है। छडो से लगे तारो को जोड़ देने से उसमे विद्युत्-धारा प्रवाहित होती है। सेल मे रासायनिक क्रिया से, कार्बन-छड़ पर धन-विद्युत् तथा जस्ते की छड पर ऋण-विद्युत् का आवेश उत्पन्न होता है। लेकलाश सेल से अनवरत रूप मे विद्युत्-धारा प्राप्त न होने पर भी अगर थोड़ी देर
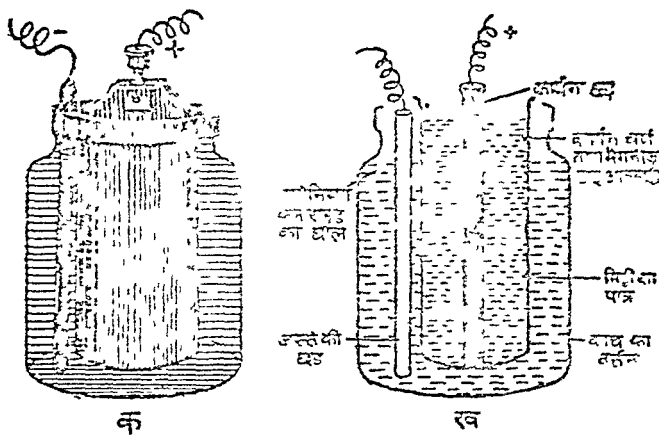
[चित्र १३९ क—लेकलांश सेल की वाहरी वनावट,
ख—अंदर की वनावट]

विश्राम देने के वाद उसे फिर काम मे लाया जाए तो फिर से विद्युत्-धारा वहने लगती है। इस कारण ऐसे प्रयोगों मे, जहाँ आंतरायिक विद्युत्-धारा की जरूरत होती है, लेकलाश सेल वहुत उपयोगी है। लेकलांश सेल मे केवल एक ही प्रकार के घोल का प्रयोग होता है। इस कारण ऐसे सेलों को एक द्रवीय सेल भी कहते है। डेनियल सेल जैसे कुछ सेलों में दो प्रकार के घोलो का प्रयोग होता है। इन्हे द्वि-द्रवीय सेल कहते है।

डेनियल सेल (Daniel's cell)

इस सेल मे गंधकाम्ल और पानी का तनु घोल (diluted sulphuric acid) तथा नीले तूतिये का संतृप्त घोल (saturated solution of

copper sulphate), ये दो प्रकार के घोल इस्तेमाल होते है। चीनी मिट्टी के वने एक सरध्र पात्र मे गंधकाम्ल का तनु घोल रखा जाता है। इस गंधकाम्ल मे जस्ते की एक छड़ इस प्रकार रखी जाती है कि छड का ऊपरी सिरा घोल से वाहर रहे। यह सिरा ऋण ध्रुव का काम करता है और इसपर पेंच से एक तार जोड दिया जाता है। फिर चीनी मिट्टी के सरंध्र पात्र को तॉंवे के वने हुए एक वडे पात्र मे रखा जाता है। तॉंवे के पात्र की दीवार धन ध्रुव का काम करती है। इस पात्र के ऊपरी सिरे के एक किनारे पर
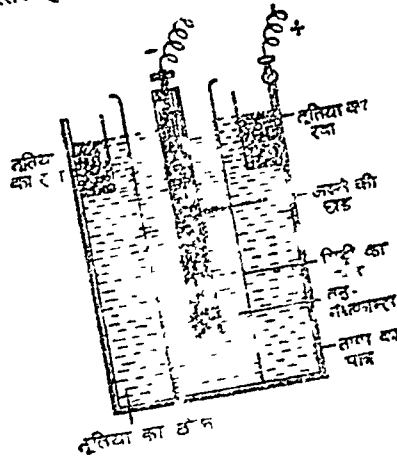
[चित्र १४०—डेनियल सेल]

एक पेंच लगा रहता है, जिसमे तार जोड़ दिया जाता है। पात्र के ऊपरी सिरे पर दो जगह सछिद्र खाने वने रहते है। इनमें नीले तूतिये के क्रिस्टल रखे होते है ताकि तूतिये का घोल इन क्रिस्टलो के संस्पर्श मे आता रहे और हमेशा सतृप्त वना रहे। जव तॉंवे को, जो धन ध्रुव है, जस्ते की छड़ से, जो ऋण ध्रुव है, तार द्वारा जोड दिया जाता है, तव विद्युत् धन-ध्रुव से ऋण-ध्रुव की ओर प्रवाहित होती है।

इस प्रकार के सेल का विद्युत् वाहक-वल प्रायः १·१ वोल्ट होता है और वह काफी समय तक रहता है।

सूखा सेल (Dry cell)

हमलोग टार्च के अंदर जिस सेल का व्यवहार करते है उसे सूखा सेल कहते हैं। इसकी वनावट लेकलांशे सेल की वनावट के आधार पर ही है,

किंतु इसमे किसी प्रकार के घोल का व्यवहार नही होता है। इसे लेकलांश सेल का सशोधित रूप कहा जा सकता है। इसमें घोल न रहने के कारण इसे एक स्थान से दूसरे स्थान मे आसानी से ले जाया जा सकता है। आकार मे छोटा होने के कारण ये अल्प जगह मे ही समा जाते है। रेडियो आदि मे भी सूखे सेल का व्यवहार होता है।

टॉर्च का एक पुराना सेल (जिसे वैटरी कहा जाता है, किंतु असलियत में वह सेल है) लीजिए। फिर उसके ऊपर का कागज हटाकर चाकू से काटकर भीतरी वनावट का निरीक्षण कीजिए। देखिएगा कि सवसे वाहर जस्ते का वना हुआ वेलनाकार एक खोल है, जो केवल एक तरफ से, अर्थात् नीचे की तरफ से खुला हुआ है। जस्ते का खोल ऋण ध्रुव का काम करता है। खोल के अदर, वीच मे, एक कार्वन की छड़ रखी रहती है जिसके ऊपरी सिरे पर एक पीतल की टोपी लगी रहती है। यह छड़ धन ध्रुव का काम करती है।
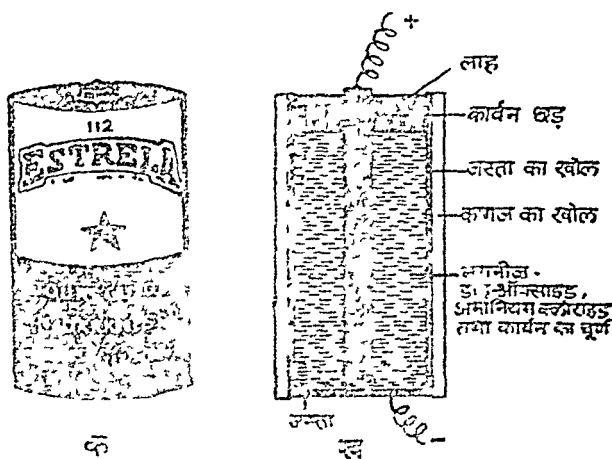
[चित्र १४१—सूखा सेल : क—वाहरी वनावट, ख—अंदर की वनावट]

कार्वन की छड के चारों ओर, जस्ते की खोल के अदर, एक अल्प गीला मिश्रण भरा रहता है। यह मिश्रण मैंगनीज-डाइ आक्साइड १० भाग, लकडी के कोयले का चूर्ण १० भाग, अमोनियम क्लोराइड या नौसादर २ भाग, जिंक क्लोराइड १ भाग और अल्प ग्लीसरीन तथा प्लास्टर ऑफ पेरिस (Plaster of paris) मिला कर वनता है। फिर खोल का मुँह अलकतरे

से बंद कर दिया जाता है और ऊपर तथा नीचे के सिरों को छोड़कर खोल की बाहरी सतह पर मोटा कागज लपेट दिया जाता है ताकि सेल को टार्च के अंदर डालने से जस्ते का खोल टॉर्च की दीवार से नही सटे। सूखे सेल में मिश्रण पूर्णतया सूखा नही होता है, बल्कि लेई (paste) जैसा होता है। बिलकुल सूख जाने से यह सेल काम नही करता। इस अवस्था में अगर सेल के जस्ते की दीवार मे बारीक छेद करके पानी मे डुबा दिया जाए तो मिश्रण गीला हो जाता है और सेल काम करने लगता है।

जब कार्बन-छड़ की पीतल की टोपी, अर्थात् धन-ध्रुव को तार से जस्ते के खोल या ऋण-ध्रुव से सबधित किया जाता है तब कार्बन-छड़ से जस्ते के खोल मे विद्युत् प्रवाहित होने लगती है। इस सेल का विद्युत्-वाहक-बल साधारणतः १·५ वोल्ट होता है। सेल को काम मे लाने से, उसके अंदर के मिश्रण में लेकलाश सेल की तरह रासायनिक क्रिया होती है। अमोनियम क्लोराइड की जस्ते के साथ क्रिया के फलस्वरूप अमोनियम गैस निकलता है। इस प्रकार काम मे लाने के कुछ दिनो के बाद जब सब अमोनियम क्लोराइड खतम हो जाता है तो सेल बेकार हो जाता है।

बैटरी (Battery)

प्रबल विद्युत्-धारा प्राप्त करने के लिए दो या अधिक सेलो को एक साथ जोड़ दिया जाता है। सेलो के इस समूह को बैटरी कहते हैं। साधारणतः सेलों को दो प्रकार से जोड़ा जाता है। जब एक का ऋण ध्रुव दूसरे के धन ध्रुव से जोड़ा जाता है, तब इन्हें श्रेणी मे सबधित कहा जाता है। सेलों को इस विधि से जोड़ने से प्रथम सेल का धन-ध्रुव तथा आखिरी सेल का ऋण-ध्रुव-मुक्त रहता है जो बैटरी के ध्रुव बन जाते हैं। इस प्रकार जोडे गए सेलों में विभवातर भी श्रेणीक्रम से बढता है। इस बैटरी का विद्युत्-वाहक-बल सभी सेलों के विद्युत्-वाहक-बलो का योग होता है।

अगर सेलो के सभी धन ध्रुवो को एक साथ जोड़ दिया जाए और सभी ऋण ध्रुवो को एक साथ जोड दिया जाए तो उन्हें पार्श्व-संबंधित बैटरी कहा जाता है और इस संबंध को पार्श्व-सम्बन्ध कहते हैं।

इस प्रकार से संबंधित सेलों की बैटरी का विद्युत्-वाहक-बल वही होता है जो एक सेल का है।

सेल द्वारा विद्युत्-धारा उत्पन्न की जा सकती है। इसमे रासायनिक क्रिया से विद्युत्-धारा उत्पन्न होती है। लेकिन इस प्रकार से उत्पन्न विद्युत्-धारा से न तो अधिक काम लिया जा सकता है और न लगातार अधिक समय तक ही इससे काम चल सकता है।

घरो मे, कारखानो मे, रेल, ट्राम आदि चलाने आदि के लिए काफी मात्रा में लगातार विद्युत्-धारा की आवश्यकता होती है। इन कामो के लिए विद्युत्-उत्पादन के कारखानो मे, यान्त्रिक ऊर्जा को, यन्त्रो की सहायता से, वैद्युतिक ऊर्जा में परिवर्तित करके, तार के माध्यम से विभिन्न स्थानो मे भेजा जाता है। इस यन्त्र को विद्युत्-जनित्र (electricity generator) या डायनेमो (dynamo) कहते हैं।

विद्युत्-चुम्बकीय प्रेरण (Electro magnetic induction)

सन् १८३१ मे विख्यात अँगरेज वैज्ञानिक फेरेडे ने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण आविष्कार किया—अगर एक तार की बद कुण्डली को चुम्बक के चुम्बकीय क्षेत्र मे घुमाया जाय या कुण्डली के पास चुम्बक को घुमाया जाय तो कुण्डली मे विद्युत्-धारा उत्पन्न होती है। लेकिन दोनो ही अगर स्थिर रहे तो धारा उत्पन्न नही होती। अर्थात् धारा के उत्पादन के लिए चुम्बकीय क्षेत्र और कुण्डली के बीच आपेक्षिक गति का होना आवश्यक है।

प्रयोग—विद्युत्रोधी आवृत ताँबे के तार को लपेटकर कुण्डली बनाइए। तार के सिरो को गैलवेनोमीटर या विद्युत्-धारा-मापी यंत्र के साथ जोड़ दीजिए। एक छड़-चुम्बक लेकर उसके एक ध्रुव को तेजी से कुण्डली के अदर ले जाइए। देखिएगा कि गैलवेनोमीटर की सूई एक ओर विचलित हो गई है। चुम्बक के दूसरे ध्रुव को कुण्डली मे उसी प्रकार से ले जाइए। देखिएगा, गैलवेनोमीटर की सूई दूसरी दिशा मे विचलित होती है। अब चुम्बक को स्थिर रखकर कुण्डली को घुमाइए। देखिएगा कि गैलवेनोमीटर की सूई पहले जैसी विचलित हो रही है। अगर दोनो को स्थिर रखिए तो देखिएगा कि गैलवेनोमीटर की सूई भी स्थिर है। कुण्डली को तेजी से घुमाने पर सूई भी अधिक विचलित होगी।

इस प्रयोग से प्रमाणित हो जाता है कि तार की कुण्डली जब किसी चुम्बक की चुम्बकीय बल-रेखाओ को काटती है तब उसमें विद्युत्-धारा

उत्पन्न हो जाती है। साथ ही, धारा की दिशा कुण्डली तथा चुम्बक के ध्रुवों की पारस्परिक स्थिति और गति के अनुसार होती है। इस प्रकार मे विद्युत् उत्पन्न करने को विद्युत्-चुम्बकीय प्रेरण द्वारा विद्युत् उत्पादन कहते हैं।

डायनेमो

डायनेमो मे एक चुम्बकीय क्षेत्र में अंदर तार की कुण्डली को लगातार घुमाकर विद्युत्-धारा उत्पन्न की जाती है। देखा गया है कि कुण्डली में तार के लपेटन जितने अधिक होगे, उसे जितनी तेजी से घुमाया जाएगा और चुम्बकीय क्षेत्र जितना अधिक शक्तिशाली होगा, उत्पन्न धारा का विद्युत्-वाहक-बल (electro-motive-force) भी उसी हिसाब से अधिक होगा।

डायनेमो मे एक नरम लोहे का बेलनाकार आर्मेचर (armature) होता है। इसपर बारीक तार की बहुत-सी कुण्डलियां अलग-अलग लपेटी हुई रहती है किंतु एक-दूसरे से संबधित रहती है। आर्मेचर एक धुरी पर लगा रहता है। यांत्रिक शक्ति से इस धुरी को घुमाकर, डायनेमो के अंदर के प्रभावशाली चुम्बकीय क्षेत्र मे, आर्मेचर को तेजी से घुमाया जाता है, जिससे कुण्डली में विद्युत्-धारा उत्पन्न होती है। इस प्रकार मे डायनेमो मे यांत्रिक ऊर्जा को विद्युत्-ऊर्जा मे बदला जाता है। डायनेमो की धुरी को घुमाने के लिए तेल या कोयलाचालित इंजन या जल-शक्ति काम मे लायी जाती है। जल-शक्ति द्वारा उत्पन्न विद्युत को जल-विद्युत् (hydro-electricity) कहते हैं।

प्रत्यावर्ती धारा (Alternating current)

डायनेमो के अंदर तार की कुण्डलियों को लेकर आर्मेचर लगातार एक ही दिशा मे घूमता रहता है। इसलिए उसमें प्रेरण द्वारा उत्पन्न धारा की दिशा प्रत्येक आधे चक्र मे विपरीत दिशा मे बदलती रहती है। इस प्रकार से प्रथम आधे चक्र में विद्युत्-धारा का मान शून्य से बढकर उच्चतम मान तक पहुँचता है और फिर घटता हुए शून्य हो जाता है। फिर दूसरे आधे चक्र मे विपरीत दिशा मे शून्य से बढ़ता हुआ उच्चतम मान तक पहुँच जाता है और फिर घटते हुए शून्य हो जाता है। इस प्रकार प्रत्येक संपूर्ण चक्र में दो बार विद्युत्-धारा का मान शून्य हो जाने के कारण धारा का प्रवाह दो बार क्षण-भर के लिए रुक जाता है और प्रत्येक चक्र में आरमेचर के प्रत्येक सिरे पर एक बार धन-ध्रुव तथा एक बार ऋण-ध्रुव उत्पन्न होता

है। प्रत्येक संपूर्ण चक्र को साइकिल (cycle) कहते हैं। साधारणतः डायनेमो मे प्रति सेकेंड ६० साइकिल होते है। इस प्रकार उनमें धारा १२० बार प्रति सेकेंड दिशा बदलती है और इसके प्रत्येक सिरे पर प्रति सेकेंड ६० बार धन-ध्रुव और ६० बार ऋण-ध्रुव उत्पन्न होता है। इसलिए, डायनेमो से उत्पन्न धारा को **प्रत्यावर्ती धारा** (alternating current) कहते हैं।

डायनेमो मे उत्पन्न विद्युत्-धारा को वाह्य परिपथ मे ले जाने के लिए उसकी धुरी मे लोहे के दो छल्लों को विद्युत्-रोधी वस्तु पर चढाकर इस प्रकार लगा दिया जाता है कि छल्लो से धुरी मे विद्युत् प्रवाहित न हो सके। आर्मेचर पर लगी कुण्डलियो का एक-एक सिरा एक-एक छल्ले के साथ लगा दिये जाते हैं। ये छल्ले—जिन्हे स्लिपरिंग (slip ring) कहते हैं—धुरी और आर्मेचर के साथ घूमते रहते है और घूमते समय वे दोनो दो धातु-निर्मित ब्रशों का स्पर्श किए रहते हैं। इन ब्रशो के साथ तार जोड़कर धारा को इच्छानुसार परिपथ मे ले जाया जाता है।

दिष्ट धारा (Direct current)

हम देख चुके है कि सेल का एक सिरा हमेशा धन-ध्रुव और दूसरा ऋण-ध्रुव बना रहता है। इसलिए उससे उत्पन्न होनेवाली विद्युत्-धारा हमेशा धन-ध्रुव से ऋण-ध्रुव की ओर यानी एक ही दिशा मे प्रवाहित होती है। विद्युत्-वाहक-बल अधिक हो या कम, जो विद्युत्-धारा हमेशा एक ही दिशा मे प्रवाहित होती है उसे **दिष्ट विद्युत्-धारा** (*direct current*) कहते है।

प्रत्यावर्ती धारा को दिष्ट धारा में बदलना

डायनेमो से उत्पन्न प्रत्यावर्ती धारा को दिष्ट धारा मे परिवर्तित करने के लिए **दिक्-परिवर्त्तक या कम्युटेटर** (commutator) काम में लाया जाता है। इसमे धुरी पर दो पूरे छल्ले के स्थान पर दो अर्द्ध-छल्ले आमने-सामने इस प्रकार से लगा दिये जाते है कि उनमे वैद्युतिक स्पर्श हो सके। आर्मेचर की कुण्डलियो का एक-एक सिरा एक-एक अर्ध-छल्ले से जोड़ दिया जाता है। प्रत्येक अर्ध-छल्ले का एक-एक धातु निर्मित ब्रश इस तरह से स्पर्श किए रहते है कि धुरी के प्रत्येक आधे चक्र के वाद—जब विद्युत्-धारा की दिशा बदलने लगती है—उस अर्ध-छल्ले से उसका स्पर्श छूट जाता है और दूसरे अर्ध-छल्ले से उसका स्पर्श हो जाता है, अर्थात् प्रत्येक ब्रश आधे

चक्र तक एक अर्ध-छल्ले को और दूसरे आधे चक्र तक दूसरे अर्ध-छल्ले को स्पर्श किये रहता है। इसलिए एक ब्रश का स्पर्श प्रति क्षण उसी अर्ध-छल्ले से रहता है, जो उस क्षण धन-ध्रुव है और दूसरे ब्रश का उस अर्ध-छल्ले से जो उस क्षण ऋण ध्रुव है यानी ब्रशो की ध्रुवता स्थिर रहती है और वाह्य परिपथ मे धारा सर्वदा एक ही दिशा मे प्रवाहित होती रहती है।

उपयोग—दिष्ट तथा प्रत्यावर्ती, दोनो प्रकार की धाराओं से प्रकाश, ताप आदि उत्पन्न किये जा सकते हैं। लेकिन कलई चढाना, बैटरी चार्ज करना आदि काम प्रत्यावर्ती धारा मे नही हो सकते हैं।

प्रत्यावर्ती धारा की मुख्य सुविधा यह है कि उसकी वोल्टता को आवश्यकतानुसार बढाया-घटाया जा सकता है। उच्च वोल्टता पर धारा को दूर ले जाने से मुख्य तार (mains) मे अपेक्षाकृत कम ऊर्जा नष्ट होती है और फिर आवश्यकतानुसार उसी वोल्टता को घटाकर उसे इस्तेमाल किया जा सकता है। जिस यत्र की सहायता से धारा की वोल्टता मे परिवर्तन लाया जा सकता है, उसे ट्रासफार्मर (transformer) कहते हैं।

विद्युत् मोटर

विद्युत् मोटर को हम उलटा डायनेमो कह सकते हैं। इसमें विद्युत् ऊर्जा यान्त्रिक ऊर्जा मे परिवर्तित की जाती है। इसमे भी चुम्बकीय क्षेत्र में आर्मेचर धुरी पर बैठाया हुआ रहता है। आर्मेचर की कुण्डलियो में विद्युत्-धारा प्रवाहित करने मे वह घूमने लगता है। आर्मेचर की घूमती हुई धुरी की सहायता से नाना प्रकार के कल-कारखाने तथा ट्राम, रेलगाड़ियाँ आदि चलाई जाती हैं।

विद्युत् परिपथ (electric circuit)

विद्युत्-उत्पादक से निकलकर विद्युत्-धारा जिस मार्ग से, वैद्युतिक उपकरण, जैसे बिजली का बल्ब, पंखा, चूल्हा, इस्तिरी आदि से होते हुए फिर उत्पादक तक प्रवाहित होती है, उसके प्रवाह के उस मार्ग को विद्युत्-परिपथ या इलेक्ट्रिक सर्किट कहते है। परिपथ चालक वस्तु द्वारा बनता है। इसके लिए धातु के बने तार काम मे लाये जाते हैं। अगर इस परिपथ में कहीं तार टूट जाए या कोई अचालक पदार्थ बीच मे जोड दिया जाए तो परिपथ टूट जाता है और

विद्युत्-धारा का प्रवाह रुक जाता है। हमें यह मालूम है कि विद्युत् का प्रवाह विद्युत्-स्रोत के ध्रुवों के विभवांतर पर निर्भर करता है। विद्युत्-स्रोत, जैसे सेल या डायनेमो, से उत्पन्न विभवांतर को उसका विद्युत्-वाहक-बल (electromotive force) कहते हैं।

कोई भी चालक, चाहे वह कितना ही अच्छा चालक क्यों न हो, विद्युत्-धारा के प्रवाह मे कुछ-न-कुछ रुकावट अवश्य ही डालता है। विद्युत्-धारा के विरुद्ध किसी द्रव्य की इस रुकावट को उसका **प्रतिरोध** (resistance) कहते हैं। वैद्युतिक परिपथ के किसी अनुप्रस्थ परिच्छेद से जितना विद्युत्-आवेश प्रति सेकेंड प्रवाहित होता है उसे ही विद्युत्-धारा कहते है।

विभवांतर और विद्युत्-वाहक-बल के व्यावहारिक मात्रक (unit) को **वोल्ट** (volt), प्रतिरोध के मात्रक को **ओम** (ohm) और विद्युत्-धारा के मात्रक को **ऑपियर** (ampere) कहते हैं।

विद्युत्-घरो से, ताँवा या ऐल्युमिनियम के तार द्वारा, दूर-दूर तक, घरो में, कारखानो तथा अन्य आवश्यक स्थानों मे विद्युत् पहुँचाई जाती है। इन तारो को 'विजली की लाइन' कहते है। अच्छा चालक होने के कारण तांवे के तार का व्यवहार मुख्य लाइन तथा घरेलू लाइन में होता है। मुख्य लाइन से विद्युत्-धारा का सचार उच्च वोल्टता पर होने से, लाइन के प्रतिरोध के कारण, उसपर विद्युत् की ऊर्जा की वरवादी अपेक्षाकृत कम होती है। लेकिन, घरेलू काम के लिए उच्च वोल्टता की विद्युत् का व्यवहार खतरनाक होता है। इसलिए स्थान-स्थान पर उप-विद्युत्-घर (sub station) वनाये जाते है और उनमे **परिवर्त्तक** या **ट्रांसफॉर्मर** नाम के यन्त्र की सहायता से आवश्यकतानुसार वोल्टता (विभवांतर) को घटाकर घरो मे विद्युत् की आपूर्ति की जाती है।

विद्युत्-धारा परिपथ (circuit) को समझने के लिए निम्नलिखित प्रयोग को कीजिए :—

प्रयोग—एक साधारण सूखा सेल लीजिए। सेल के धन-ध्रुव से एक छोटा-सा तार जोडिए। तार के दूसरे सिरे को एक पेच से जोड़ दीजिए। कचकड़े या लकड़ी जैसे किसी अचालक वस्तु के वने हुए आधार पर चालक

धातु के दो छोटे-छोटे प्लेट इस प्रकार बैठाइए कि दोनों के बीच में थोड़ी-सी खाली जगह रह जाए। अब उस खाली जगह में एक धातु-निर्मित चाभी डाल दीजिए ताकि दोनो प्लेटों मे वैद्युतिक संपर्क हो जाए। पहले सेल के धन-ध्रुव मे लगे हुए पेंच को एक प्लेट मे जोड़ दीजिए। दूसरे प्लेट से एक और तार जोडकर इसका दूसरा सिरा विद्युत्-धारा नापने के यंत्र, गैलवेनो-मीटर के एक सिरे से जोड दीजिए। गैलवेनोमीटर के दूसरे सिरे को एक विद्युत् बल्व के एक टर्मिनल से तार द्वारा संयोजित कर दीजिए। बल्व के दूसरे टर्मिनल को सेल के ऋण-ध्रुव से तार द्वारा जोड दीजिए। अब परि-पथ पूरा हो जाता है और बल्व जल उठता है। गैलवेनोमीटर के काँटे को देखकर यह भी मालूम हो जाता है कि कितने एम्पीयर की विद्युत्-धारा प्रवाहित हो रही है। गैलवेनोमीटर के बिना, सीधे बल्व से तार जोड़ कर भी इस प्रयोग को किया जा सकता है।
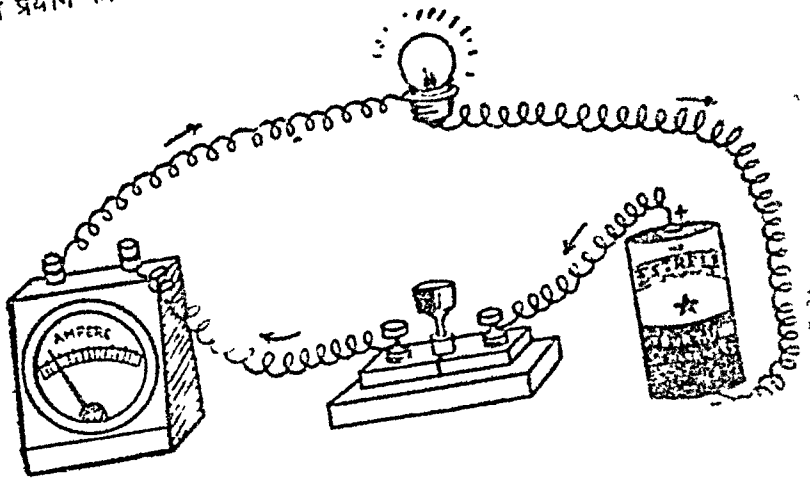
[चित्र १४२—विद्युत्-चक्र]

अगर इस परिपथ मे किसी स्थान का तार टूट जाए या दोनों प्लेटों के बीच से चाभी उठा ली जाए तो विद्युत्-परिपथ पूर्ण नही होगा और बल्व नहीं जलेगा। हर विद्युत्-परिपथ में विद्युत्-धारा को आवश्यकतानुसार बंद करने तथा चालू करने के लिए इस चाभी जैसे किसी-न-किसी साधन का, जिसे बटन या स्विच (switch) कहते हैं, बंदोबस्त रहता है।

स्विच (Switch)

वत्ती, पंखा आदि वैद्युतिक उपकरणो को इच्छानुसार चालू या वद करने के लिए यह आवश्यक है कि जब चाहे, विद्युत्-परिपथ को सपूर्ण किया जा सके या काट दिया जा सके। यह काम स्विच या वटन की सहायता से किया जा सकता है। स्विच का आवरण विद्युत्‌रोधी द्रव्य से वनता है। इसके अदर धातु के दो पत्तर अलग-अलग लगे रहते हैं। प्रत्येक पत्तर के साथ स्क्रू द्वारा परिपथ के धन और ऋण तार जुड़े हुए होते हैं। स्विच का वटन दवाने से उसके साथ लगा हुआ एक तीसरा धातुनिर्मित पत्तर इन दोनों पत्तरो को सवधित कर देता है। इससे विद्युत्-परिपथ पूरा हो जाता है और वैद्युतिक उपकरण मे धारा वहने लगती है। वटन को उठा देने से परिपथ फिर से कट जाता है और विद्युत्-धारा वद हो जाती है। साधारणत. प्रत्येक उपकरण के लिए एक स्विच होता है। सारे घर के लिए एक मुख्य स्विच (main switch) लगाया जाता है। घर में अगर विजली की मरम्मत आदि करनी हो तो इस स्विच को उठा करके वाहर की लाइन से घर की लाइन का सवंध काट दिया जाता है।

वैद्युतिक उपकरण का जोड़ना

किसी भी विद्युत्-परिपथ में दो या अधिक उपकरणो को इस प्रकार जोड़ा जा सकता है जिससे एक को काट देने से भी दूसरा काम करता रहेगा। इस प्रकार मे उपकरणो को आपस में सयोजित करने के ढंग को समातर संवध (parallel connection) कहते है। इस प्रकार संवधित प्रत्येक वैद्युतिक उपकरण पर वही विभवांतर आरोपित होता है जो मुख्य तारो के वीच है। अगर एक उपकरण के भीतर का तार टूट जाए तो उसमें
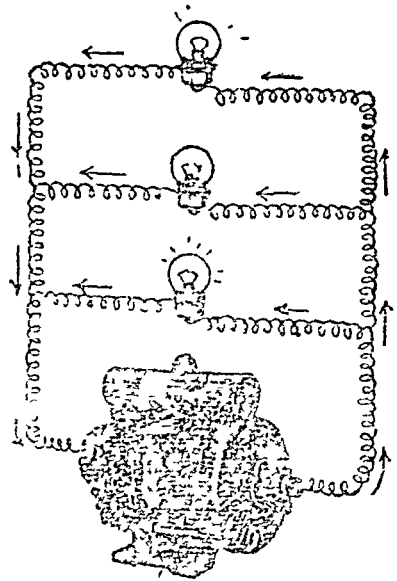
[चित्र १४३—समातर क्रम से वल्वों को जोडना]

से विद्युत् का प्रवाह बंद हो जाएगा और वह काम नहीं कर सकेगा, किंतु बाकी उपकरण काम करते रहेंगे। घरों में समांतर संबंध में ही विद्युत्-पंखे तथा बत्तियाँ आदि लगायी जाती हैं और हरेक में विद्युत्-धारा को रोकने या चालू करने के लिए अलग-अलग स्विच लगा रहता है।

उपकरणों को एक और तरीके से भी जोड़ा जा सकता है। इसे श्रेणी-संबंध (series connection) कहते हैं। इस प्रकार से जोड़ने में एक उपकरण के एक टर्मिनल को विद्युत् उत्पादक के एक ध्रुव से जोड़ा जाता है। फिर उसी का दूसरा टर्मिनल दूसरे उपकरण के एक टर्मिनल से जोड़ा जाता है। फिर दूसरे का दूसरा टर्मिनल तीसरे के एक टर्मिनल से जोड़ा जाता है और इस प्रकार से सभी उपकरण श्रेणीक्रम से जोड़े जाते हैं। आखिरी उपकरण का दूसरा टर्मिनल विद्युत्-उत्पादक के दूसरे ध्रुव से जोडा जाता है। इस प्रकार से जुड़े हुए उपकरणों में अगर एक के भीतर का तार टूट जाए तो पूरे परिपथ में धारा का प्रवाह वद हो जायगा और सभी उपकरणों का काम बंद हो जायगा। इसमे सभी उपकरण एक ही साथ चलाये या वद किए जा सकते हैं, अलग-अलग नही।
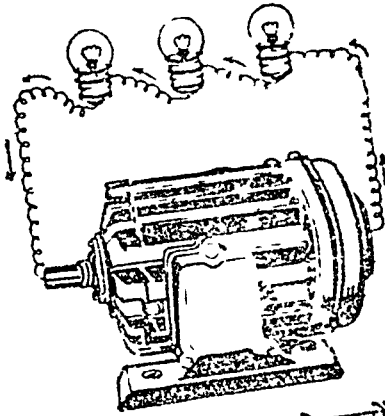
[चित्र १४८ श्रेणीक्रम से वल्वों को जोडना]

प्रतिरोध (Resistance)

संवाहक कितना ही अच्छा क्यो न हो, वह विद्युत्-धारा को प्रवाहित होने मे कुछ न कुछ वाधा अवश्य ही देता है। उसकी इस वाधा को उसका प्रतिरोध कहते है। प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक जार्ज सायमन ओम (George Simen Ohm) ने विद्युत्-वाहक-वल, विद्युत्-धारा और प्रतिरोध के संबंध के एक महत्त्वपूर्ण नियम की स्थापना की। इस नियम को उनके नाम पर ओम का नियम (Ohm's law) कहते हैं। अगर किसी विद्युत्-परिपथ मे विद्युत्-वाहक-वल स्थिर रहे और प्रतिरोध दूना कर दिया जाए तो धारा

आधी हो जायगी। विद्युत् की मात्रा कूलॉम (coulomb) से नापी जाती है। अगर किसी विद्युत्-परिपथ में प्रति सेकेंड एक कूलॉम विद्युत् प्रवाहित होती है तब विद्युत् की उस धारा को एक आम्पीयर की धारा कहते हैं।

ओम के नियम के अनुसार,

$$\text{धारा} = \frac{\text{विद्युत्-वाहक वल}}{\text{प्रतिरोध}} \left(\text{Current} = \frac{\text{electromotive force}}{\text{resistance in ohms}} \right)$$

$$\text{अर्थात, आंपीयर} = \frac{\text{वोल्ट}}{\text{ओम}}$$

अगर किसी सेल का विद्युत्-वाहक-वल २ वोल्ट हो और उससे एक तार जोड़ा जाए जिसका प्रतिरोध ४ ओम है तो उस तार में जो धारा प्रवाहित होगी उसका परिमाण आधा आंपीयर होगा।

$$\text{क्योकि, आंपीयर} = \frac{\text{वोल्ट}}{\text{ओम}} \therefore \text{आंपीयर} = \frac{2}{4} = \frac{1}{2}$$

किसी भी परिपथ में तार का प्रतिरोध उसकी लंवाई, मोटाई तथा वह तार किस धातु का वना है, इसपर निर्भर करता है। तार की लंवाई जितनी ही अधिक होगी उसका प्रतिरोध भी उतना ही वढ़ता जाएगा। इसके विपरीत अगर तार की मोटाई वढा दी जाए तो प्रतिरोध कम हो जाएगा। एक ही लंवाई तथा एक ही मोटाई के तार अगर भिन्न-भिन्न धातुओं के वने हो तो उन तारो का प्रतिरोध भी भिन्न-भिन्न होगा। सवमे कम प्रतिरोध सोने के तार का होता है, इसके वाद चाँदी का और फिर ताँवे के तार का। सोना और चाँदी वहुत कीमती होने के कारण साधारणतः विजली की लाइन मे ताँवे के तार का ज्यादा व्यवहार किया जाता है। ताँवे से लोहे का प्रतिरोध अधिक होता है। प्लैटिनम, टंगस्टन आदि का प्रतिरोध अधिक होने के कारण इनके वारीक तारो से विजली वत्ती का फिलामेंट वनाया जाता है। घरो के विद्युत् परिपथ मे विद्युत् प्रवाहित करने के लिए प्रयुक्त तारो का प्रतिरोध जितना ही कम हो उतना ही फायदा है। इस कारण ऐसे कामों के लिए साधारण मोटाई के ताँवे के तार का व्यवहार किया जाता है।

वैद्युतिक ऊर्जा और शक्ति (Electrical energy and power)

हमे मालूम है कि बिजली या विद्युत् एक प्रकार की ऊर्जा है और इसका परिमाण भी मापा जा सकता है। जिस दर से यानी प्रति सेकेंड जितनी वैद्युतिक ऊर्जा की खपत होती है उसे वैद्युतिक शक्ति (power) कहते हैं और इस शक्ति का मात्रक वाट (watt) है। यदि किसी चालक के सिरो पर एक वोल्ट का विभवांतर हो और उसमे एक आम्पीयर की धारा प्रवाहित हो रही हो तो चालक में एक वाट वैद्युतिक शक्ति की खपत होती है। अथवा वाट = वोल्ट × आंपीयर।

उदाहरण के लिए—यदि कोई ऊष्मक (Heater) २२० वोल्ट और ११०० वाट का हो तो :—

$$११०० = २२० \times \text{धारा (आंपीयर मे)}$$

या धारा $= \frac{११००}{२२०} = ५$ आंपीयर। अर्थात् उस उष्मक से ५ आंपीयर की धारा बहेगी।

एक वाट की दर से एक घंटे तक विद्युत्-शक्ति खपत होने से जो विद्युत् ऊर्जा खपत होती है उसे एक वाट-घंटा (watt-hour) कहते हैं। विद्युत् ऊर्जा का मात्रक बहुत छोटा होने के कारण घरों मे विद्युत्-ऊर्जा की खपत की माप किलोवाट घंटा (kilo-watt-hour, K W H) मे होती है। एक किलोवाट-घंटा एक हजार वाट घंटे के बराबर होता है और इसे ही विद्युत्-ऊर्जा का एक युनिट कहते है। एक सौ वाट की बत्ती अगर दस घंटे तक जलती रहे या एक सौ वाट की दस बत्ती अगर एक घंटे तक जलती रहे तो एक किलोवाट-घंटा या एक यूनिट बिजली खर्च होगी। इस हिसाब से घर मे खर्च होनेवाली बिजली का हिसाब लगाया जा सकता है।

घर में बिजली लगाना

तार लगाना

घर में या जहाँ भी बिजली लगानी हो, सबसे पहले बिजली का तार लगाना (wireing) पड़ता है। घर में लगनेवाले तार साधारणतः ताँबे या ऐल्युमिनियम के होते है। तार के ऊपर रबर या प्लास्टिक जैसे किसी

विद्युत्रोधी पदार्थ का खोल चढा रहता है। तार लगाने के लिए पहले दीवालो पर लकड़ी की पट्टी वैठा दी जाती है और फिर उसपर से धन और ऋण विद्युत् के लिए तार की दो लाइनें दौड़ाई जाती हैं। ये दोनों तार मुख्य लाइन का काम करते हैं। इन्हें गरम तार (live wire) और उदासीन या ठंढा तार (neutral wire) भी कहते है। इस मुख्य लाइन के साथ समांतर संवंध में वत्ती, पखे तथा विजली के अन्य उपकरण जोड़ दिये जाते है, ताकि प्रत्येक का आवश्यकतानुसार अलग-अलग इस्तेमाल किया जा सके। और, प्रत्येक पर वही वोल्टता हो जो लाइन पर है। तार लगाते समय इस वात का खयाल रखना चाहिए कि तार मे कही जोड़ या कटाव न हो। जहाँ भी मुख्य लाइन के साथ उपकरणो को जोड़ना हो, वहाँ लकड़ी का एक छोटा वक्सा जैसा संधि-वक्स (joint box) लगा दिया जाता है और उस स्थान या कमरे के सभी उपकरणों को वही पर मुख्य लाइन से जोड़ दिया जाता है। विजली की मुख्य लाइन हमेशा काफी ऊँचाई पर लगानी चाहिए।

स्विच वोर्ड (Switch board)

प्रत्येक उपकरण के लिए एक-एक स्विच लगाना पड़ता है। सुविधानुसार कई स्विचो को एक खोखले वक्स-जैसे वोर्ड पर लगा दिया जाता है और उस वोर्ड को दीवाल मे ऐसे स्थान पर वैठा दिया जाता है, जहाँ आसानी से हाथ पहुँच सके। इस वोर्ड को स्विच वोर्ड कहते हैं। मुख्य तार के उदासीन (neutral) तार को उपकरण के एक टर्मिनल से जोड़ दिया जाता है और उपकरण के दूसरे टार्मिनल को स्विच के एक विंदु से जोड़ दिया जाता है। स्विच के दूसरे विंदु को लाइन के गरम तार (live wire) से जोड़ दिया जाता है। स्विच को दवाने से विद्युत् परिपथ संपूर्ण हो जाता है और उपकरण काम करने लगता है।

अधिकाश स्विच-वोर्ड मे स्विच के अलावा एक या दो प्लग सॉकेट (plug socket) लगा दिए जाते है। इनके दो विंदुओ के साथ मुख्य लाइन के दोनो तार जोड दिये जाते हैं। उपकरण के दोनो टर्मिनलो के साथ दो तार जोड़कर उन्हे इस प्लग के दो विंदुओ के साथ लगा दिया जाता है। प्लग को सॉकेट मे वैठा देने से विद्युत्-परिपथ संपूर्ण हो जाता है और उपकरण काम करने लगता है। उपकरण को वद करने के लिए प्लग को

सॉकेट से निकाल दिया जाता है। छत से लटकते हुए पखे के लिए स्विच-वोर्ड पर पंखे का नियंत्रक या रेगुलेटर (regulator) लगा दिया जाता है। स्विच से तार, पंखे में जाने के पहले रेगुलेटर मे से होकर जाता है। रेगुलेटर की महायता से पंखे की चाल नियंत्रित की जाती है।

मुख्य स्विच और मीटर (main switch and meter)

घर के अंदर तार लग जाने के बाद उस लाइन के दोनों तारों को लाकर मुख्य स्विच के दोनो टर्मिनलों से जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार घर के अंदर तार लगाना पूरा हो जाता है। फिर, विजली-उत्पादन-घर मे आनेवाली लाइन के दोनों तार से दो तार लाकर घर के मुख्य स्विच-वोर्ड मे लगे हुए फ्यूज (fuse) और विजली के मीटर में से ले जाकर उन्हें मुख्य स्विच से जोड़ दिया जाता है। मेन स्विच को उठाकर विजली-घर की मुख्य लाइन को घर की लाइन से जोड़ देने से घर के अंदर विजली की धारा आ जाती है और उससे आवश्यकतानुसार विजली के उपकरणों को चलाया जा सकता है।

विजली की खपत मापने का यंत्र मीटर है। हम पहले ही देख चुके हैं कि विजली की खपत का मात्रक किलोवाट-घंटा है, जिसे विजली का एक यूनिट कहते हैं। मीटर देखकर पता चल जाता है कि एक निश्चित अवधि में कितनी विजली की खपत हुई है और उसी के अनुसार विजली का विल वनता है।

असल मे मीटर एक विजली का मोटर है। इसके अदर से विजली की धारा प्रवाहित होने से उसका आर्मेचर घूमने लगता है। मीटर के अदर से जितनी ही प्रवल विद्युत्-धारा प्रवाहित होगी, अर्थात् घर मे एक साथ जितनी अधिक विजली खपत होती रहेगी, मीटर का आर्मेचर उतनी ही तेजी से घूमने लगेगा। आर्मेचर के घूमने के साथ-साथ उसके साथ लगे हुए चक्के और चक्के से लगे सूचक भी अंकित डायल पर चलने लगते है। अंकित डायल पर सूचको का स्थान पढकर मालूम किया जाता है कि कितने यूनिट की विजली खपत हुई है।

कुछ मीटरो के घूमते हुए चक्के कुछ वेलनो को घुमाते जाते हैं। इन वेलनों पर अंक लिखे रहते है। जव एक वेलन ० से घूम कर फिर ० पर

आता है तो दूसरा वेलन ० से १ पर आ जाता है। अर्थात् एक वेलन एक चक्कर के बाद दूसरा वेलन $\frac{१}{१०}$ चक्कर पूरा करता है। इस प्रकार दूसरे के एक चक्कर के बाद तीसरा $\frac{१}{१०}$ चक्कर पूरा करता है।

अगर घर के समस्त विद्युत् उपकरण बंद रहें तो मीटर के अंदर से विद्युत्-धारा का प्रवाह बंद हो जाता है और साथ ही मीटर के आर्मेचर का घूमना भी बंद हो जाता है।

हमारे देश मे साधारणत: घरो में २२० वोल्ट के विभवांतर पर विद्युत् धारा की आपूर्त्ति होती है।

फ्यूज (Fuse)

विद्युत्-परिपथ मे फ्यूज तार का व्यवहार रक्षा कपाट (safety valve) का काम करता है। जब विद्युत्-परिपथ मे मुख्य तारो का किसी कारणवश
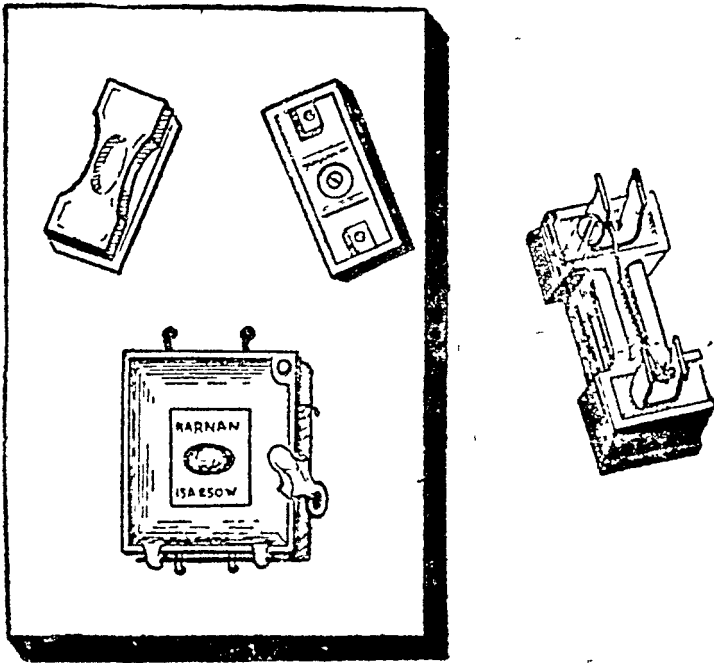
[चित्र १४५—फ्यूज]

भूमि-स्पर्श हो जाता है (जिसे लघुपथन या short circuit कहते है) तब लाइन से अत्यन्त प्रबल धारा बहती है जिससे बिजली के उपकरणों के नष्ट हो

जाने या तारों के जल जाने की सभावना पैदा हो जाती है, तब उस प्रवल धारा से यह फ्यूज तार तप्त होकर खुद-जल जाता है और इस प्रकार विद्युत्-परिपथ टूट जाने से विद्युत्-प्रवाह वंद हो जाता है। लघुपथन से घर मे आग लगने की सभावना भी होती है। इस प्रकार से विजली के वल्व, पंखा, चूल्हे आदि और घर की सुरक्षा होती है। फ्यूज तार टीन और शीशे की मिश्र धातु का वना हुआ होता है। यह तार विद्युतरोधी चीनी मिट्टी से वने होल्डर पर लगा रहता है। फ्यूज तार की मिश्र धातु का द्रवणाक निम्न होता है। इस कारण से जव विद्युत्-परिपथ में कहीं लघुपथन होता है तो मीटर या अन्य उपकरणो के तार के जल जाने के पहले ही फ्यूज तार, उत्पन्न ऊष्मा द्वारा गलकर टूट जाता है और विद्युत्-प्रवाह वंद हो जाता है। फ्यूज-वक्से से होल्डर को निकालकर उस जले हुए फ्यूज तार को हटा करके, नया फ्यूज तार लगाकर, फ्यूज होल्डर को अपने स्थान मे लगा देने से फिर से विद्युत्-परिपथ चालू हो जाता है। इस कारण घर मे कुछ फ्यूज तार रखना चाहिए, जिसे जरूरत पडने पर फ्यूज में लगाया जा सके।

फ्यूज तार वदलना

फ्यूज तार जल जाने पर, उसे वदलने के पहले मुख्य स्विच को वद कर देना चाहिए। फिर पता लगाइये कि कौन-सा फ्यूज जल गया है और यह भी पता लगाने की कोशिश कीजिए कि फ्यूज तार क्यो जल गया है। साधारणतः विजली की लाइन के तारो मे या किसी उपकरण मे लघुपथन (short circuit) हो जाने पर, फ्यूज में उसकी सहन सामर्थ्य से अधिक विद्युत्-धारा प्रवाहित होने के कारण, फ्यूज जल जाता है। तार जल जाने से या टूट जाने से, किसी प्रकार से पृथ्वी से तार का स्पर्श हो जाने से, किसी उपकरण के अंदर या वाहर ही लाइन के दोनों तारो का स्पर्श हो जाने आदि कारणो से लघुपथन हो सकता है। साथ ही फ्यूज तार के सामर्थ्य से अधिक धारा खींचनेवाले उपकरण को लाइन से जोड देने से भी फ्यूज तार जल जाएगा।

नया फ्यूज तार लगाने के पहले, अगर पता लग जाए तो, क्षतिग्रस्त लाइन या दोषी उपकरण की मरम्मत कर लेनी चाहिए। उपकरण अगर मरम्मत न हो सके, या अधिक धारा खीचनेवाला हो, तो उसे लाइन से अलग कर देना चाहिए। घर मे जितने अम्पीयर के सामर्थ्य का मीटर हो,

उससे अधिक धारा-सामर्थ्य का फ्यूज तार कभी भी नही लगाना चाहिए। अगर अधिक धारा लेनेवाला उपकरण इस्तेमाल करना हा तो मीटर को वदलवा लेना चाहिए। अगर फ्यूज तार वार-बार जल जाता हो तो किसी विजली मिस्त्री से पूरे लाइन की जाँच करवानी चाहिए।

फ्यूज वदलने के समय लकड़ी की कुर्सी, स्टूल आदि पर खड़ा होना चाहिए तथा खयाल रखना चाहिए कि शरीर के किसी अंश का दीवाल आदि से या किसी दूसरे आदमी से स्पर्श न हो जाय। अब चीनी मिट्टी से वने हुए फ्यूज होल्डर को खीच कर निकाल लीजिए और उसमे से जले हुए फ्यूज तार के टुकड़ो को निकाल दीजिए, फिर होल्डर मे नया फ्यूज तार लगाकर उसे अपने स्थान मे वैठा दीजिए। अव मुख्य स्विच को फिर से चालू कर दीजिए। कभी भी ताँवे या लोहे के पतले तार फ्यूज तार के वदले मे नही लगाना चाहिए।

●

अध्याय २३

विद्युत् का गृहोपयोग तथा गृहोपयोगी वैद्युतिक उपकरण

सभ्य जगत् के जीवन में दिन-प्रति-दिन विद्युत् अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण करती जा रही है। यह तो निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि अदूर भविष्य मे विद्युत् ही मनुष्य के लिए आवश्यक समस्त प्रकार की ऊर्जा का मुख्य साधन बन जाएगी। कहा जा सकता है कि विद्युतन (electrification) तथा ग्राम स्वराज्य के विस्तार से ही हमारे देश की अधिकतर समस्याओ का समाधान हो सकता है।

विद्युत् की सहायता से बडे-बडे कल-कारखाने, रेल, ट्राम गाड़ी आदि से लेकर खेतो की सिंचाई के लिए पानी के पम्प, सिलाई मशीनें, करघे तथा अन्य छोटे-छोटे गृह-उद्योगो के यत्र, चलाये जाते हैं। टेलीग्राफ, टेलीफोन, एक्सरे यत्र, रेडियो, टेलिविजन, टेपरेकार्डर, लाउड स्पीकर, रेकार्ड प्लेयर, रेफ्रिजेरेटर इत्यादि कितने ही उपकरण विद्युत् की सहायता से ही काम करते हैं। विद्युत् की रोशनी से अधेरी रात जगमगा उठती है। इसकी सहायता से घुटन भरी गर्मी और भयकर जाड़े के मौसमो मे चैन से रहा जा सकता है। आज इसको सहायता से कितनी ही बीमारियों का इलाज हो रहा है और सैंकड़ो काम करने मे मदद मिल रही है।

दिन-प्रति-दिन हमारे घरो मे विद्युत् का उपयोग बढता जा रहा है। बत्ती से लेकर वातानुकूलन (air conditioning); खाना पकाने से लेकर कपड़ा धोने और झाड़ू देने तक के काम आज विद्युत् की सहायता से किये जा रहे हैं।

बिजली की बत्ती (Electric lamp)

घरो मे विद्युत् का सबसे अधिक उपयोग, प्रकाश उत्पन्न करने के लिए होता है। अगर किसी तार का, जिसमे से विद्युत्-धारा प्रवाहित हो रही हो, प्रतिरोध ऊच्च हो तो विद्युत्-धारा से इतनी ऊष्मा उत्पन्न होती है कि

तार तप्त होकर प्रकाशमान हो जाता है। तार जितना ही पतला होगा, उसका प्रतिरोध उतना ही अधिक होगा और उसमे उतना ही अधिक प्रकाश उत्पन्न होगा। इस विधि से उत्पन्न प्रकाश को उद्दीप्त प्रकाश (incandescent light) और वत्ती को उद्दीप्त वत्ती (incandescent lamp) कहते हैं। इसी सिद्धात के आधार सन् १८७८ मे प्रसिद्ध अमेरिकन वैज्ञानिक टामस अलवा एडिसन और अँगरेज वैज्ञानिक स्वान ने फिलामेट वत्ती (filament lamp) या तंतु वत्ती का आविष्कार किया था। पहले-पहल यह वत्ती काँच के निर्वातित गोलक के अंदर कार्वन निर्मित पतला तंतु (filament) लगाकर वनाई जाती थी। तंतु के अदर से विद्युत्-धारा प्रवाहित करने से वह इतना गर्म हो जाता है कि उसमे से श्वेत प्रकाश निकलने लगता है। किंतु देखा गया कि ज्योतिष्मान कार्वन-तंतु के उच्च तापमान पर तंतु से कार्वन के कणों का वाष्पन होता है और ये वाष्पित कार्वन कण काँच के गोलक पर जमा होकर उसे काला कर देते हैं। इस दोष को दूर करने के लिए सन् १९०६ ई० मे कूलीज नाम के वैज्ञानिक ने टंगस्टन के तंतु की वत्ती वनाई। आज भी विजली वत्ती के वल्व वनाने में टगस्टन ततु ही काम आता है। टंगस्टन के वाष्पन से भी वल्व वहुत दिनो वाद थोडा-वहुत काला हो जाता था, वाद में चलकर देखा गया कि अगर वाल्व को वायुशून्य करके उसमे नाइट्रोजन या अर्गन जैसा कोई अक्रिय गैस भर दिया जाए तो यह दोष वहुत हद तक दूर हो जाता है। इसलिए अव टंगस्टन-तंतु वल्व वनाते समय उसे वायुशून्य करके उसके अदर ऐसा ही कोई निष्क्रिय गैस भर दिया जाता है। साधारणतः इस काम के लिए नाइट्रोजन गैस का व्यवहार होता है। आजकल अधिकाश वल्वो मे टगस्टन-तंतु की छोटी-सी कुण्डली वनाकर लगा दी जाती है। इसमे ऊष्मा केंद्रित होकर अधिकतर प्रकाश उत्पन्न करती है। सीधे ततु वाले वल्वो की अपेक्षा कुण्डलीदार तंतु वाले वल्व से १५ से ३० प्रतिशत अधिक प्रकाश मिलता है। इसलिए घरो मे हमेशा कुण्डलीदार-तंतु (coiled coil) वल्व इस्तेमाल करना चाहिए।

हमारे देश में घरो के लिए २२०-२५० वोल्ट पर विद्युत्-धारा की आपूर्त्ति होती है। वल्बो पर उसके उपयुक्त वोल्टेज तथा उसकी शक्ति, वाट मे, छपी हुई होती है। साधारणतः घरो मे २५, ४०, ६०, ७५ तथा १००

वाट के वल्व इस्तेमाल होते हैं। उच्च वोल्टेज विद्युत् सर्किट मे कभी भी निम्न वोल्टेज का उपकरण नही लगाना चाहिए, नही तो वह तुरत जल जाएगा। निम्न वोल्टेज सर्किट मे उच्च वोल्टेज के उपकरण लगाने से, वह उपकरण काम नही करेगा।

खपत होती हुई विद्युत् ऊर्जा, कार्बन-तंतु वल्व मे तीन प्रतिशत, वायु-शुन्य टगस्टन-ततु वल्व मे सात प्रतिशत तथा गैस भरे टंगस्टन-तंतु वल्व मे दस प्रतिशत, प्रकाश मे रूपातरित होती है। इस प्रकार निष्क्रिय गैस से भरे टंगस्टन-तंतु वल्व मे ऊर्जा का अपचय न्यूनतम होता है।

नलिका वत्ती (Tube light)

आजकल नलिका वत्तियो का व्यवहार दिन-प्रतिदिन वढ़ता जा रहा है। इसमे वल्व की तुलना मे प्रति वाट कई गुना अधिक प्रकाश मिलता है और विद्युत् ऊर्जा का अपचय कम होता है।

पहले-पहल सन् १९०० ई० मे पारा वाष्प वत्ती (mercury vapour lamp) के रूप मे नलिका वत्ती वनाई गई थी। इसमे एक कांच की नली के अंदर थोडा-सा पारा रहता है। नली के दो सिरों के साथ विजली के दो ध्रुव जोड दिये जाते हैं। नली के अदर एक ऊष्मक कुण्डली होती है। जव ऊष्मक कुण्डली पारे को गर्म करके वाष्प वना देती है, तव इस वाष्प के माध्यम से विद्युत् का विसर्जन होता है जिससे पारा वाष्प से प्रकाश उत्पन्न होता है।

पारा वाष्प वत्ती से निकलनेवाले प्रकाश मे पीले, हरे तथा नीले रंग के प्रकाश होते है, लाल रंग का नही। इसलिए इस प्रकाश में रंगीन पदार्थों का रंग परिवर्त्तित हुआ मालूम पड़ता है। लाल रंग की वस्तु काले या भूरे रंग की दीखती हैं। मनुष्य का रंग भी कुछ अजीव-सा लगता है। इसलिए यह वत्ती घर के काम लायक नही होती है।

पारा के वदले नली मे सोडियम डालने से सोडियम वाष्प वत्ती (sodium vapour lamp) वनती है। इसमे हरापन मिला हुआ पीला प्रकाश निकलता है। यह वत्ती सड़को पर लगाई जाती है। लेकिन अपने प्रकाश के रंग के कारण यह घर के लिए उपयुक्त नही है।

यदि किसी नली मे निम्न दाव पर भरे हुए नियन जैसे किसी गैस के अंदर से उच्च वोल्टता पर विद्युत्-धारा प्रवाहित की जाए तो गैस प्रकाश देने लगता है। प्रकाश का रंग गैस पर निर्भर करता है। नियन गैस बत्ती (neon light) लाल रंग का प्रकाश तथा हिलियम-गैस वत्ती (helium light) लगभग सफेद रंग का प्रकाश देती है। इन गैसो को विभिन्न रंग की नलिकाओ मे भर-कर और भी कई प्रकार के रंगो का प्रकाश मिल सकता है। विभिन्न रगो की वत्तियो से वनी हुई विज्ञापन-वत्तियाँ इन्ही गैसो की सहायता से वनती है। रंग तथा उच्च वोल्टता की आवश्यकता के कारण नियन वत्ती घर के अंदर काम लायक नही है।

इस तरह की वत्तियो मे काफी मात्रा मे परावैंगनी प्रकाश (ultra-violet light) भी उत्पन्न होता है, जिसे नली का कांच अवशोषित कर लेता है और वह वेकार वरवाद हो जाता है। परावैंगनी प्रकाश दिखाई न देने के कारण काला प्रकाश (black light) कहलाता है।

प्रतिदीप्ति (Fluoresence) तथा स्फुरदीप्ति (Phosphoresence)

कुछ ऐसे पदार्थ हैं जिन पर परावैंगनी प्रकाश के पड़ने से वे दीप्तिमान हो जाते हैं। अगर ऐसा कोई पदार्थ केवल तव तक दीप्तिमान रहता है, जव तक उस पर परावैंगनी प्रकाश गिरता रहे तव उस पदार्थ को प्रतिदीप्त (fluorescent) पदार्थ कहते हैं। अगर परावैंगनी प्रकाश से दीप्तिमान किसी पदार्थ के ऊपर से प्रकाश को हटा लेने पर भी अगर वह दीप्तिमान वना रहता है तो ऐसे पदार्थ को स्फुरदीप्त (phosphorescent) पदार्थ कहते है। प्रतिदीप्त पदार्थ के प्रकाश को प्रतिदीप्ति तथा स्फुरदीप्त पदार्थ के प्रकाश को स्फुरदीप्ति कहते हैं।

अगर नलिका बत्तियो की नलिकाओ की भीतरी सतह पर प्रतिदीप्त पदार्थ का लेप लगा दिया जाय तो परावैंगनी प्रकाश अवशोषण द्वारा नष्ट होने के वजाय उस लेप को दीप्तिमान कर देगा और इस प्रतिदीप्ति के कारण बत्ती की रोशनी काफी वढ़ जाएगी। विभिन्न प्रकार के प्रतिदीप्त पदार्थ का लेप लगाकर विभिन्न रंगो का प्रकाश मिल सकता है।

प्रतिदीप्त नलिका वत्ती (Fluorescent tube light)

घरो में साधारणतः प्रतिदीप्त नलिका वत्ती लगाई जाती है। यह मूलतः पारावाष्प वत्ती होती हैं। इसकी नली की भीतरी सतह पर ऐसे प्रतिदीप्त पदार्थ का लेप लगा रहता है, जिससे इच्छित रग का प्रकाश मिल सके। ऐसी वत्ती मे जो प्रकाश मिलता है वह पारावाष्प वत्ती के प्रकाश तथा प्रतिदीप्ति के प्रकाश का मिश्रण होता है। पारावाष्प से उत्पन्न प्रकाश की तुलना मे प्रतिदीप्ति से उत्पन्न प्रकाश की तीव्रता अति अधिक होने के कारण प्रकाश का रग मुख्यतः प्रतिदीप्ति के अनुसार होता है। नीचे कुछ प्रतिदीप्त पदार्थ के लेप से मिलनेवाले प्रकाश का रंग दिया जा रहा है :—

कैलसियम टगस्टन	—	नीला
मैगनेसियम टगस्टन	—	नीला-सफेद
जिंक सिलिकेट	—	हरा
कैडमियम बोरेट	—	गुलाबी
कैडमियम बोरेट-नली पर लाल फिल्टर के साथ	—	लाल
कैडमियम सिलिकेट	—	पीला-गुलाबी

इन पदार्थों को उचित अनुपात मे मिलाकर 'दिवालोक' प्रतिदीप्त वत्ती (day light fluorescent lamp) बनाई जाती है। 'दिवालोक' प्रकाश का रंग, नीला-सफेद या पीला-सफेद, दोनों प्रकार के हो सकते हैं। इन वत्तियो से दिन की रोशनी से मिलती-जुलती जो रोशनी मिलती है, ऐसी और किसी भी प्रकार की वत्ती मे नही मिलती है।

घरो मे साधारणतः २० तथा ४० वाट की नलिका वत्ती लगाई जाती है। इन वत्तियो मे एक वैलस्ट (ballast) तथा स्टार्टर (startar) लगे हुए होते है, जो वत्तियो मे जानेवाली विद्युत्-धारा को नियंत्रित करते हैं। इन वत्तियों का जीवन-काल, लगभग ३२०० घंटा होता है।

प्रतिदीप्त नलिका वत्तियों की कार्य-क्षमता टंगस्टन-तंतु वत्तियो से बहुत अधिक होती है। हम देख चुके हैं कि तंतु वत्तिओ में अधिकांश ऊर्जा ताप के रूप में नष्ट हो जाती है। आगे विभिन्न प्रकार की विजली की वत्तियो में ऊर्जा के खर्च की तुलना में, उत्पन्न प्रकाश का हिसाब दिया जा

रहा है। इससे आप देखेंगे कि तंतु-वत्तियो की तुलना में प्रतिदीप्त नलिका वत्तिओ मे कितनी कम विजली के खर्च से कितना अधिक प्रकाश मिलता है।

विजली की विभिन्न प्रकार की वत्तिओ की ज्योतिक दक्षता (लगभग)

टंगस्टन	सफेद,	दुधिया	६०	वाट	८४०	लुमेन	अर्थात्	१४	लुमेन	प्रति वाट
,,	,,	,,	१००	,,	१६००	,,	,,	१६	,,	,, ,,
,,	,,	,,	१५०	,,	२५५०	,,	,,	१७	,,	,, ,,
,,	,,	,,	२००	,,	३६००	,,	,,	१८	,,	,, ,,
प्रतिदीप्त नलिका	वत्ती	'दिवालोक'	१५	वाट	४९४	लु०	अर्थात्	३३	लु०	प्रति वाट
,,	,,	,, ,,	३०	,,	१२००	,,	,,	४०	,,	,, ,,
,,	,,	,, हरी	१५	,,	९००	,,	,,	६०	,,	,, ,,
,,	,,	,, ,,	३०	,,	२२५०	,,	,,	७५	,,	,, ,,

टार्च (Torch)

टार्च एक प्रकार की विजली वत्ती है, जिसको हम आसानी से साथ रख सकते है तथा जहाँ चाहे ले जा सकते हैं और जरूरत के समय उससे रोशनी पा सकते है। टार्च हमारे दैनंदिन जीवन में वहुत काम आता है। इसलिए इसकी वनावट के संवंध मे हमे जानकारी होनी चाहिए।

टार्च मे, प्रकाश के लिए, सूखे सेल या वैटरी से विद्युत् ऊर्जा मिलती है। अधिकांश टार्चो का खोल धातु-निर्मित तथा वेलनाकार होता है। खोल का ऊपरी भाग अचालक वस्तु निर्मित एक चकती से वंद रहता है, जिसके वीच मे चालक वस्तु निर्मित पेंचदार वल्व होल्डर लगा हुआ रहता है। खोल के नीचे एक पेचदार ढक्कन लगा हुआ होता है। खोल की लंवाई के अनुसार उसके अदर उचित सख्या में सूखे सेल श्रेणीक्रम से भर दिये जाते हैं। ढक्कन के भीतरी तल पर एक धातु-निर्मित कमानी होती है, जो खोल को वद कर देने पर, नीचे के सेल के ऋण-ध्रुव मे सट जाती है और टार्च की दीवार के साथ उस ध्रुव का सवध जोड़ देती है। ऊपर के होल्डर मे एक छोटा-सा वल्व कस दिया जाता है, जिसका एक ध्रुव ऊपर के सेल के धन ध्रुव से सटा हुआ होता है। वल्व का दूसरा ध्रुव, वल्व होल्डर से सटा हुआ रहता है। वल्व होल्डर अचालक चकती से लगा रहने के कारण उसमे

से होकर विद्युत-चक्र पूरा नहीं हो पाता है और बल्ब नहीं जलता। बल्ब होल्डर की बगल में एक तार लगा हुआ होता है, जिसका दूसरा सिरा खोल के बाहर लगे हुए एक बटन के साथ जुड़ा हुआ होता है। बटन को दबाने से यह तार खोल की दीवार के साथ संयोजित हो जाता है। इससे विद्युत्-धारा-चक्र पूरा हो जाता है और बल्ब जल उठता है।
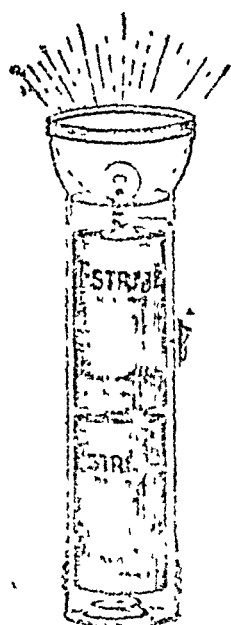
[चित्र १४६—टार्च ।

टार्च के ऊपरी भाग में एक धातु-निर्मित अवतल दर्पण, जिसे परावर्तक कहते हैं, लगा हुआ होता है। बल्ब का प्रकाश इस अवतल दर्पण से परावर्तित होकर, तेज प्रकाश के रूप में दूर तक फेंका जाता है। इस परावर्तक के ऊपर एक काँच की गोल चकती लगी हुई होती है, जिससे बल्ब तथा परावर्तक सुरक्षित रहते हैं।

टार्च का खोल अगर प्लैस्टिक जैसे किसी अचालक पदार्थ से बना हुआ हो तो सेल के ऋण ध्रुव से सटी हुई कमानी के साथ एक तार लगा दिया जाता है, जिसका दूसरा सिरा बटन के साथ ऐसे लगा दिया जाता है कि बटन दबाने से दोनों तारों में संयोग होकर विद्युत्-धारा-चक्र पूरा हो जाता है।

बिजली के पंखे (Electric fan)

बत्ती के बाद, घरों में, विद्युत् का सबसे अधिक उपयोग पंखा चलाने में होता है।

बिजली के पंखे के अंदर एक मोटर लगा हुआ होता है। इसके अंदर से विद्युत्-धारा प्रवाहित होने से उसकी धुरी का दंड तीव्र गति से घूमने लगता है। दंड के साथ लगे हुए ब्लेड भी साथ-साथ घूमने लगते हैं और वायु में चक्राकार प्रवाह उत्पन्न करते हैं।

बिजली के पंखे साधारणतः दो तरह के होते हैं : छत से टँगनेवाले पंखे (ceiling fan) और टेबल पंखे (table fan)।

छत में टँगनेवाला पंखा आकार मे बड़ा होता है और इस प्रकार के अधिकाश पंखों में तीन बड़े-बड़े ब्लेड लगे हुए होते है। साधारणत: ये पंखे ३६ इंच, ४८ इंच और ५६ इंच नाप के मिलते है। टेवल पंखे, एक स्टैड पर लगे रहते है। इनमे साधारणत: १६ इच या १८ इंच के चार ब्लेड लगे हुए होते है।

टेवल पखे में सुविधा यह है कि इसे आवश्यकतानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है। लेकिन इससे, अधिक आदमी को एक साथ, हवा नही मिल सकती है।

बिजली का चूल्हा तथा ऊष्मक (Electric stove and heater)

बिजली का चूल्हा खाना पकाने तथा पानी आदि गर्म करने के काम आता है। बिजली के ऊष्मक की सहायता से जाड़े के दिनो मे कमरा आदि गर्म रखा जाता है। विजली के चूल्हे तथा ऊष्मक दोनो एक ही सिद्धांत के अनुसार बनाये जाते है।
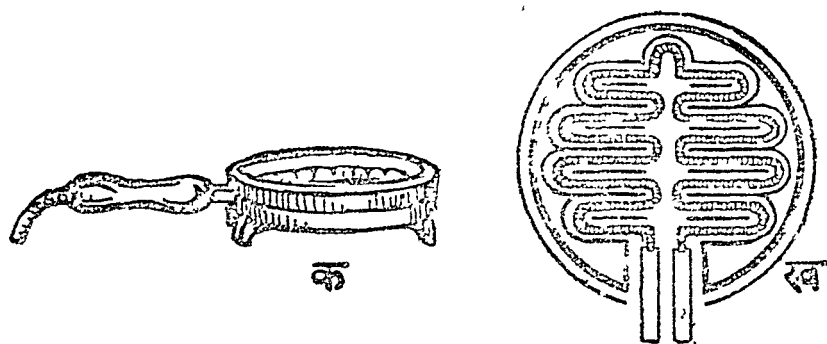
[चित्र १४७—विजली का चूल्हा : क—चूल्हा, ख—रोधक तार]

जव किसी प्रतिरोधक वस्तु के अंदर से विद्युत्-धारा-प्रवाहित होती है, तव उसके प्रतिरोध के विरुद्ध धारा द्वारा किया हुआ कार्य ऊष्मा-ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार से उत्पन्न ऊष्मा से चूल्हे पर खाना आदि पकाया जाता है और ऊष्मक कमरे को गर्म करता है।

विजली के चूल्हे में एक अचालक तथा दुर्गलनीय द्रव्य के ऊपर नाइक्रोम नाम के मिश्र धातु के प्रतिरोधक तार की कुण्डली लगी हुई होती है। कुण्डली

के दो सिरों को विजली की लाइन के साथ जोड़ देने से उसमे विद्युत्-धारा प्रवाहित होने लगती है और प्रतिरोध के कारण कुण्डली में ऊष्मा उत्पन्न हो जाती है। कुण्डली के साथ अचालक द्रव्य की चकती को फ्रेम के अंदर बैठाकर चूल्हा बनाया जाता है। तार की कुण्डली को बैठाने की सुविधा के लिए चकती पर खाँचे बने हुए होते है।

कमरा गर्म करने के लिए काम आनेवाले विद्युत्-ऊष्मक मे एक या एकाधिक विद्युत्रोधी नलियो पर लपेटी हुई नाइक्रोम के तार की कुण्डली होती है। यह कुण्डली धातु-निर्मित गोलीय अवतल परावर्त्तक या परवलयाकार परावर्त्तक के फोकस पर बैठाई रहती है। जब कुण्डली मे विद्युत्-धारा-प्रवाहित होती है तब कुण्डली गर्म होकर ऊष्मा विकिरण करने लगती है। साथ ही पीछे लगा हुआ परावर्त्तक ऊष्मा किरणो को समेट कर सामने फेंकने मे सहायता करता है।

साधारण विजली के चूल्हे मे नाइक्रोम तार की खुली कुण्डली रहती है। गर्म प्लेट (hot plate) नाम के विजली के चूल्हे मे कुण्डली को अभ्रक से अच्छी तरह ढँक करके एक कच्चे लोहे के खोल के अंदर रखा जाता है। फिर खोल को फ्रेम के ऊपर बैठा दिया जाता है। विद्युत्-धारा प्रवाहित होने से कुण्डली गर्म होकर खोल को भी गर्म कर देती है। गर्म खोल के ऊपर रखकर खाना आदि बनाया जाता है। विद्युत् के साधारण चूल्हे से गर्म प्लेट इस माने मे अच्छे होते हैं कि इस पर पानी आदि गिर जाने से या छू जाने से विद्युत्-आघात (electric shock) लगने का खतरा नहीं रहता है।

विजली की इस्तिरी (Electric iron)

विजली की इस्तिरी भी उसी सिद्धात के आधार पर बनती है, जिस पर विजली के चूल्हे बनते हैं। विजली की इस्तिरी के अंदर भी प्रतिरोधक तार की कुण्डली को अभ्रक के पतले परतो के अंदर इस तरह बंद कर दिया जाता है कि वह किसी भी तरह इस्तिरी के धातु-निर्मित अंशो को स्पर्श न कर सके। विद्युत्-धारा प्रवाहित होने पर कुण्डली गर्म होकर इस्तिरी को गर्म कर देती है।

बिजली की अच्छी इस्तिरियों में तापस्थापी यंत्र लगा हुआ होता है। इसकी सहायता से विभिन्न प्रकार के कपड़ों पर इस्तिरी करने के लिए आवश्यक तापमान पर इस्तिरी की ऊष्मा को स्थिर रखा जा सकता है।

बिजली की घंटी (Electric bell)

लोगो को बुलाने के लिए, दरवाजा खुलवाने के लिए, आगमन की सूचना देने के लिए, लोगो का ध्यान आकर्षित करने आदि कामो के लिए इस घंटी का इस्तेमाल होता है। इस घंटी के तीन मुख्य अंग होते है :—(१) एक धातु-निर्मित छोटी-सी घंटी, (२) एक छोटी हथौड़ी और (३) एक वैद्युतिक नाल-चुम्बक। वैद्युतिक चुम्बक मे विद्युत्-धारा प्रवाहित करने से, चुम्बक के अंतरायिक आकर्षण से हथौड़ी घंटी पर चोट करने लगती है और घंटी बज उठती है।

[चित्र १४८—बिजली की घंटी]

चित्र मे बिजली की घंटी में क एक नाल-चुम्बक है। उसके सामने कच्चे लोहे की एक छड़ ख है, जो एक इस्पात-निर्मित हथौड़ी च से जुडी हुई है। हथौड़ी का ऊपरी सिरा एक इस्पात-निर्मित मजबूत कमानी ग के साथ जुडा हुआ होता है। एक और कमानी घ का एक सिरा हथौड़ी से जुडा होता है और दूसरा सिरा पेंच ज को स्पर्श करता है। पेच ज को तार द्वारा बिजली के लाइन के एक सिरे से प स्थान पर जोड दिया जाता है। कमानी ग को नाल-चुम्बक के तार के एक सिरे से संयुक्त कर दिया जाता है। चुम्बक के दूसरे सिरे के तार को फ स्थान पर लाइन के दूसरे सिरे से जोड़ा जाता है। हथौडी के निचले सिरे के सामने एक धातु-निर्मित घंटी लगी रहती है।
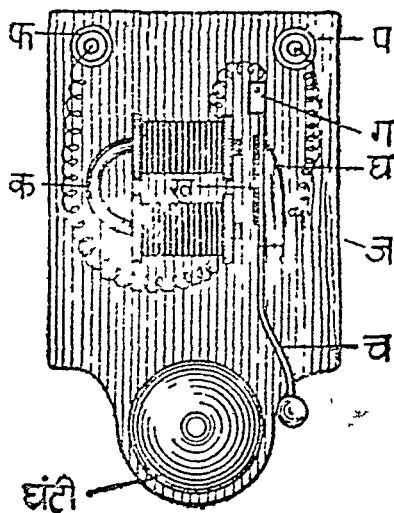
बटन दवाकर घंटी मे विद्युत्-धारा-प्रवाहित करने से, धारा प से पेंच ज तथा घ और ग से होती हुई नाल-चुम्बक को चुम्बकित कर देती है तथा फ पर पहुँचकर विद्युत्-धारा-चक्र को पूरा कर दती है। नाल मे चुम्बकत्व उत्पन्न होते ही वह कच्चे लोहे की छड़-समेत हथौड़ी को अपनी ओर खीच लेता है। इससे हथौड़ी घटी पर चोट करके उसे वजाती है। लेकिन हथौड़ी खिच जाते ही कमानी घ पेंच ज से अलग हो जाती है और विद्युत्-धारा का परिपथ टूट जाता है। साथ ही नाल-चुम्बक का चुम्बकत्व भी लुप्त हो जाता है और हथौड़ी कमानी ग के खिचाव से लौटकर अपने पहले के स्थान पर आ जाती है। हथौडी के लौटते ही कमानी घ पेंच ज से सट जाती है और विद्युत्-धारा चालू हो जाती है तथा नाल को चुम्बकित कर देती है और संपूर्ण क्रिया फिर से दुहराई जाती है। इस प्रकार लगातार हथौड़ी की चोट से घटी तव तक वजती रहती हैं, जव तक बटन दवा हुआ रहता है।

रेफ्रिजरेटर (Refrigerator)

पिछले दिनो मे रेफ्रिजरेटर एक विलास-सामग्री समझा जाता था। लेकिन अव इसे घरेलू उपकरणो मे एक आवश्यक उपकरण समझा जाता है। खास करके जिन परिवारो की महिलाओ को भी पढने-लिखने तथा अन्य काम-काज के लिए वाहर जाना पड़ता है, वहाँ रेफ्रिजरेटर की आवश्यकता और भी अधिक है। पकाया हुआ भोजन, दूध, फल, सब्जी, मिठाई, मक्खन, मास, मछली, अडे आदि को रेफ्रिजरेटर मे रखकर कई दिनो तक ताजा रखा जा सकता है। घर मे रेफ्रिजरेटर रहने से खाने-पीने की चीजें वरवाद नही होती हैं और वहुत-सी चीजो को रोज वाजार से लाना तथा पकाना नही पड़ता है।

रेफ्रिजरेटर तीन प्रकार के होते हैं :—(१) वर्फ की सहायता से काम करनेवाले रेफ्रिजरेटर, (२) विजली से चलनेवाले रेफ्रिजरेटर और (३) गैस से चलनेवाले रेफ्रिजरेटर।

घरो मे इस्तेमाल होनेवाले सभी प्रकार के रेफ्रिजरेटर साधारणतः आलमारीनुमा होते हैं। इनकी दीवारे दोहरी होती हैं। वाहरी और भीतरी दीवारो के वीच तीन से सवा तीन इच खाली स्थान होता है। यह खाली स्थान किसी ऊष्मारोधी पदार्थ से भरा रहता है। साधारणत. इस काम

के लिए खनिज रूई (mineral wool) या रेशेदार कांच (fibre glass) इस्तेमाल होता है। इसके चलते रेफ्रिजरेटर के भीतरी हिस्से मे वाहर के वायुमंडल की ऊष्मा का संचार नही हो पाता है। साथ ही, दीवारें वाहर तथा भीतर, दोनों ओर चिकनी, जलसह (water proof), तापसह तथा धब्बा-रोधक होती हैं। रेफ्रिजरेटर की दीवारे किसी वस्तु या गंध का अवशोषण नही करती हैं और उन्हे आसानी से साफ किया जा सकता है। रेफ्रिजरेटर का दरवाजा भी दोहरी दीवारो से वनता है और ऊष्मारोधी होता है। दरवाजे में रवर का गैसकेट लगा हुआ होता है, जिसके चलते दरवाजा मजवूती से वंद हो जाता है और रेफ्रिजरेटर को वायुरुद्ध वना देता है।

वर्फ से चलनेवाले रेफ्रिजरेटर

यह सवसे साधारण रेफ्रिजरेटर है। घरों के लिए विजली या गैस-चालित्त रेफ्रिजरेटर बनने के वहुत पहले से ही वर्फ का रेफ्रिजरेटर काम मे लाया जाता था और वहुत-से स्थानो मे आज भी काम मे लाया जाता है, क्योकि यह वहुत आसानी से बन सकता है और इसकी कीमत विजली या गैस-रेफ्रिजरेटर की तुलना मे वहुत ही कम होती है। इसके अंदर एक वंद पात्र में वर्फ रखी रहती है। वर्फ, गलने के साथ-साथ, पात्र की पतली दीवार में से, रेफ्रिजरेटर के अंदर रखी चीजो की ऊष्मा का अवशोषण कर लेता है और इस क्रिया से चीजे ठढी हो जाती हैं। समस्त वर्फ गल जाने के वाद, पानी को फेंककर पात्र में फिर से वर्फ भर देना पड़ता हैं। साधारणतः इस प्रकार के रेफ्रिजरेटर में २४ घटे मे दो या तीन वार वर्फ डालना पड़ता है। इस रेफ्रिजरेटर मे चीजे इतनी ठढी नही हो सकती हैं जितनी विजली या गैस-रेफ्रिजरेटर मे होती है।

विजली का रेफ्रिजरेटर

आमतौर पर, जहाँ भी विजली मिलती है, वहाँ विजली का रेफ्रिजरेटर ही घरो मे इस्तेमाल किया जाता है। विजली के रेफ्रिजरेटर का इस्तेमाल करना वहुत ही आसान है। इसलिए तीन तरह के रेफ्रिजरेटरों में इसीका इस्तेमाल सवसे अधिक है।

बिजली-रेफ्रिजरेटर मे एक वैद्युतिक मोटर तथा एक पंप या संपीडित्र (compressor) होते हैं। इसमे एक छोटे-से पात्र मे, प्रशीतक द्रव (refrigerating fluid), अधिक दाब पर भरा रहता है। प्रशीतक द्रव ऐसा होता है जो साधारण दाब और तापमान पर गैस बन जाता है, लेकिन दाब मे अल्प वृद्धि से द्रव बन जाता है। अधिकांश घरेलू रेफ्रिजरेटर में यह द्रव डाइक्लोरोडिफ्लूओरोमिथेन (dichlorodefluoromethane) नाम का यौगिक होता है। इस द्रव के अवस्था-परिवर्तन से रेफ्रिजरेटर मे शीतलन (cooling) होता है। रेफ्रिजरेटर के अदर प्रसार कुण्डलियां (expansion coils) होती हैं, जिन्हे उसका शीतलन एकक (cooling unite) कहते हैं।

मोटर, पप की सहायता से, थोड़े-से प्रशीतक द्रव को प्रसार-कुण्डलियो मे भेज देता है। वहां दाब घट जाने से वह द्रव रेफ्रिजरेटर के अंदर की हवा और अन्य चीजो की ऊष्मा का अवशोषण करके गैसीय अवस्था प्राप्त करता है। गैस कुण्डलिओ के अदर जल्दी-जल्दी प्रसारित हो जाता है और इस क्रिया में ठडा हो जाता है। इस तरह से निर्धारित तापमान पर पहुँच जाते ही, रेफ्रिजरेटर मे लगा हुआ तापस्थायी यंत्र, विद्युत्-धारा को काटकर मोटर को बंद कर देता है। गैस धीरे-धीरे ऊष्मा का अवशोषण करके गर्म होने लगता है और एक निर्धारित तापमान पर आते ही तापस्थायी यंत्र फिर से मोटर को चालू कर देता है। अब द्रव को प्रसार-कुण्डलियो में भेजने के साथ-साथ गर्म गैस को संपीड़ित्र मे खीच लाया जाता है और उसपर उच्च दाब लगाकर उसे सघनित्र कुण्डली (condensing coil) मे ठडा होने के लिए भेज दिया जाता है। घरेलू रेफ्रिजरेटर में सघनित्र कुण्डली को वायु की सहयता से ठडा किया जाता है। दाब तथा शीतलन के फलस्वरूप गैस फिर से द्रव बन जाता है। पप की सहायता से द्रव को पात्र मे वापस भेज दिया जाता है। रेफ्रिजरेटर के अदर बार-बार यह क्रिया होती रहती है। वैद्युतिक रेफ्रिजरेटर मे सपीडित्र रहने के कारण इसे सपीड़न पद्धति (compression system) रेफ्रिजरेटर कहते है। साधारणत. इसमे मोटर तथा सपीडित्र एक सपूर्ण रूप से बद पात्र के अंदर रहते हैं और इनमे तेल आदि देने की आवश्यकता नही पड़ती।

प्रसार-कुण्डलियो के ऊपर की वायु भी शीतल होती रहती है और उसका जलीय वाष्प कुण्डलियो पर वर्फ वनकर जमने लगता है। कुण्डलियों पर जितनी अधिक वर्फ जमेगी, उनकी कार्य-क्षमता उतनी ही कम होती जाएगी। वर्फ ऊष्मा के कुचालक होने के कारण रेफ्रिजरेटर के अदर की वायु तथा अन्य चीजे अब देर से ठंढी होगी और मोटर को अधिक समय तक चलते रहना पड़ेगा, जिससे बिजली का खर्च बढ़ जाएगा और रेफ्रिजरेटर जल्दी खराब होने की सभावना होगी। इसलिए हमेशा खयाल रखना चाहिए कि रेफ्रिजरेटर की प्रसार-कुण्डलियो पर वर्फ जमने न पावे।

सभी रेफ्रिजरेटरो के ताप-नियंत्रक-स्विच मे एक वर्फ गलाने का विंदु होता है। नियत्रक की सूई को इस विंदु पर कर देने से, रेफ्रिजरेटर के अंदर तापमान कम हो जाता है और कुण्डलियों पर जमी हुई वर्फ गल जाती है। समय-समय पर नियंत्रक को इस विंदु पर लाकर तथा आवश्यकतानुसार रेफ्रिजरेटर को कुछ समय के लिए वद करके, उसमे वर्फ का जमना रोका जा सकता है। साथ ही रेफ्रिजरेटर के अंदर रखी हुई चीजो को ढककर रखने से उनमे समाविष्ट जल का वाष्पन कम हो जाने के कारण वर्फ कम जमती है।

अधिकांश घरेलू रेफ्रिजरेटरो में वर्फ जमाने का एक खाना होता है। प्रसार-कुण्डलियाँ इसके चारो ओर लिपटी रहती हैं। इसके चलते इसके अंदर का तापमान रेफ्रिजरेटर के अन्य भागो के तापमान से काफी कम होता है। इसमे पानी रखकर वर्फ जमाई जा सकती है तथा दूध से आइसक्रीम वनाई जा सकती है। इसके अदर मांस, मछली आदि काफी दिनों तक परिरक्षित रहते है।

गैस-रेफ्रिजरेटर

जिन जगहों मे, जलाने के लिए, आसानी से गैस मिल सकता है, वही इस प्रकार के रेफ्रिजरेटर का इस्तेमाल किया जा सकता है।

गैस-रेफ्रिजरेटर में कोई चलायमान पुर्जा नही होने के कारण इसके चलते समय कोई ध्वनि नही होती है। इसमे संपीड़न विधि के वदले अवशोषण विधि से शीतलन होता है। इसमें एक छोटी-सी गैस की लौ से ऊर्जा मिलती है। गैस-रेफ्रिजरेटर में एमोनिया प्रशीतक का काम करता है।

वैद्युतिक रेफ्रिजरेटर की तुलना मे, बहुत ही कम संख्या मे गैस-रेफ्रिजरेटर इस्तेमाल होते हैं।

शून्यक स्वच्छक (Vacuum cleaner)

शून्यक स्वच्छक या वेकुअम क्लीनर (vacuum cleaner) सफाई करने के लिए एक प्रकार का वैद्युतिक यंत्र है। यह यंत्र सफाई करने के साथ-साथ धूल, कूड़ा-करकट आदि को इकट्ठा भी कर लेता है।

वेकुअम क्लीनर के अंदर एक चूषण पंप (suction pump) लगा हुआ होता है। पप के सामने यंत्र का मुँह खुला हुआ रहता है और उसके नीचे एक बक्सानुमा कूड़ादानी लगी रहती है। इस कूड़ेदानी के अंदर धूल, कूड़ा-करकट आदि जमा होते है। यंत्र के नीचे दो या चार छोटे-छोटे चक्के लगे हुए होते है और ऊपर एक लंबा हैंडल लगा रहता है।

चूषण पंप को चालू करके, हैंडल पकड़कर यंत्र को फर्श पर इधर-उधर चलाया जाता है। यंत्र को जहाँ-जहाँ ले जाया जाता है, वहाँ-वहाँ की तमाम धूल तथा कूड़े-करकट आदि चूषण पंप द्वारा चूषित होकर यत्र के अदर चले आते हैं और कूड़ादानी मे जमा हो जाते है। कूडादानी भर जाने पर उसका ढक्कन खोलकर उसमें जमा धूल आदि फेक दी जाती है। इस यंत्र की सहायता से अल्प परिश्रम से घरो की सफाई, अच्छी तरह से की जा सकती है।

इनके अलावा, कपड़ा धोने के यंत्र (washing machine), पानी गर्म करने के दंड (water heating rod), दाढ़ी बनाने के क्षुर (electric razor), सिगरेट लाइटर, मसाला पीसने के यंत्र, फलो के रस निकालने के यंत्र, लस्सी बनाने तथा मक्खन निकालने के यंत्र, बाल सुखाने के यंत्र (hair dryer) आदि कितने ही छोटे-बड़े वैद्युतिक यंत्रो से हम रोज घरो मे काम लेते रहते है।

इन वैद्युतिक यंत्रो की सहायता से न सिर्फ दैनंदिन घरेलू कामो को हम कम परिश्रम तथा कम समय मे, अच्छी तरह कर सकते है, बल्कि साथ ही घर को साफ-सुथरा, सुन्दर, स्वास्थ्यप्रद तथा आरामदेह बनाए रख सकते है। दैनंदिन घरेलू काम-काज के लिए घर मे वैद्युतिक साधन मौजूद रहने से, घरेलू काम-काज का बोझ काफी हल्का हो जाता है और महिलाओ को, पढने-लिखने या अन्य कामो को करने के लिए समय मिल जाता है।

यह सही है कि वैद्युतिक साधनो के इस्तेमाल से, घर के विद्युत् का खर्च बढ़ जाता है। लेकिन इन उपकरणो से जितनी सुविधाएँ मिलती है, उससे यह बढ़ा हुआ खर्च पूरा-पूरा वसूल हो जाता है। साथ ही, थोड़ा-सा ख्याल रखने से विद्युत् का निरर्थक खर्च रोका जा सकता है। अनावश्यक बत्ती या पंखे को चालू नही रखना चाहिए। एक मिनट के लिए भी अनावश्यक होने पर बत्ती, पंखा आदि बंद कर देना चाहिए। कमरे से निकलते समय बत्ती, पखे आदि के स्विच को बंद कर देने की आदत डालनी चाहिए और विशेषकर बच्चो को यह आदत डलवानी चाहिए। पखे, बत्ती आदि की तुलना मे, वैद्युतिक चूल्हे, ऊष्मक, इस्तिरी आदि ताप उत्पन्न करनेवाले उपकरणो मे कही अधिक बिजली खर्च होती है। इसलिए इन्हे सुनियोजित ढंग से इस्तेमाल करना चाहिए।

सुरक्षा

हम देख चुके हैं कि कैसे मनुष्य ने विद्युत् को अपनी सेवा मे लगाया है, कैसे इसकी सहायता से बड़े-बड़े कारखाने, रेल, ट्राम आदि चलाने से लेकर अपने दैनंदिन जीवन को साफ-सुथरा तथा आरामदेह बनाने के कार्य सिद्ध किये है। साथ ही, हमे यह भी ख्याल रखना पड़ेगा कि विद्युत् मनुष्य की सेवादासी तो बनी है, लेकिन वह रूपकथा की उस राक्षसी जैसी है, जो प्रभु के हर आदेश का पालन करने में असभव को संभव तो जरूर कर देती है, पर, प्रभु की पहली गलती पर ही उसे खा भी जाती है। इसी प्रकार विद्युत् के लिए भी कहावत है कि उसके साथ एक बार ही गलती की जा सकती है। क्योंकि विद्युत् के साथ प्रत्येक गलती प्राणघाती हो सकती है। अतः वैद्युतिक उपकरणो का इस्तेमाल करते समय सुरक्षा के नियमो पर पूरा ध्यान देना चाहिए।

मनुष्य तथा अन्य प्राणियो के शरीर विद्युत् के सुचालक होते है। इसलिए विद्युत्-धारा इनमे से प्रवाहित हो सकती है। मानव-शरीर के अंदर से विद्युत्-धारा प्रवाहित होने से उसमे बहुत क्षति पहुँचती है और उसकी मृत्यु का कारण बन सकती है। एक स्वस्थ आदमी अगर सूखे स्थान पर खड़ा हो और उसके हाथ सूखे हो तथा विद्युत्-धारा हाथ के संपर्क में आते ही हाथ हटा ले सके तो घरो में इस्तेमाल होनेवाली २२० वोल्ट की

विद्युत-धारा से उसका वहुत अधिक नुकसान न होगा। यह सही है कि उसके हाथ की पेशियों मे एक झटका लगेगा और कुछ समय तक उनपर उसका असर बना रहेगा। लेकिन अगर वह गीले स्थान पर खड़ा हो, या उसका हाथ गीला हो या वह तुरंत अपने को विद्युत्-धारा के संस्पर्श से अलग न कर सके, तो खतरा वहुत ही बढ जाता है और फल भयंकर हो सकता है। विद्युत्-धारा की वोल्टता जितनी अधिक होगी उसमे उतना ही अधिक खतरा होगा। उच्च वोल्टता धारा के संस्पर्श में आने से उसी क्षण मनुष्य की मृत्यु हो सकती है।

किसी का विद्युत्-धारा से संपर्क हो जाए तो, यथासंभव शीघ्र, उसे विद्युत्-धारा के सपर्क से अलग करना चाहिए। याद रखिए, इस काम मे एक क्षण की भी देर उसके लिए घातक हो सकती है। इस काम के लिए, संभव हो तो, तुरत मुख्य स्विच को वद कर देना, सवसे अच्छा उपाय है। अगर मुख्य स्विच बंद करना सभव न हो या उसमे देर होने की संभावना हो, या अन्य किसी उपाय से विद्युत्-धारा को काट देना सभव न हो तो सूखी लाठी, बाँस या लकडी से ठेलकर उस मनुष्य को विद्युत्-धारा के सपर्क से अलग कर देना चाहिए। कुछ भी हो, कभी भी, हाथ से या किसी गीली चीज से उसे छूना नही चाहिए। ऐसा करने से उसे वचाने के वजाए आप भी उसमे फँस जायेगे और आपकी जान भी खतरे मे पड़ जाएगी। क्योकि ऐसा करने से विद्युत्-धारा आपके शरीर के अंदर से भी प्रवाहित होने लगेगी और आपको भी उतना ही नुकसान पहुँचाएगी। रवर, ऊनी कवल आदि अचालक वस्तुओ से भी हटाने का काम लिया जा सकता है।

विद्युत्-धारा से अलग करने के वाद उसे लिटा देना चाहिए और उसके शरीर को हल्के-हल्के दवाकर तथा मालिश करके रक्त-प्रवाह को ठीक से चालू होने मे सहायता करनी चाहिए। सभव हो तो थोड़ा गर्म दूध, चाय या काफी पिला देनी चाहिए। अगर वह वेहोश हो गया हो, या उसे साँस लेने मे कष्ट होता हो, या साँस रुक गयी हो तो कृत्रिम श्वसन द्वारा साँस चलाने की कोशिश करनी चाहिए और जितनी जल्दी हो सके, डॉक्टरी सहायता का प्रवध करना चाहिए।

सावधानी

विद्युत् की लाइन का तार कही भी कटा-फटा नही होना चाहिए। तार के ऊपर का रबर या प्लैस्टिक का खोल कट-फट जाने से फौरन बिजली मिस्त्री बुलाकर तार को बदलवा लेना चाहिए। घर के अदर बिजली के नंगे तार रखना, भयंकर खतरे को न्योता देना है। मनुष्य के लिए घातक होने के अतिरिक्त नंगे तार से घर मे आग लग जाने की सभावना रहती। बिजली के स्विच ,प्लग ,प्लग-सॉकेट, स्विच-बोर्ड आदि भी टूटे-फूटे नही होने चाहिए।

कोई भी वैद्युतिक उपकरण खरीदने के पहले जाँच कर लेना चाहिए कि उसके आवरण का किसी अंग मे विद्युत् का च्यवन (leakage) ता नही हो रहा है। बिजली के चूल्हे, ऊष्मक, इस्तिरी आदि इस्तेमाल करते समय भी इस बात पर ध्यान देना चाहिए। अच्छा तो यह है कि लकडी की पटरी या रबर की चटाई पर खडे होकर या बैठकर इन चीजो का इस्तेमाल किया जाए। ऐसा करते समय ख्याल रखना चाहिए कि शरीर का कोई अश दीवाल या फर्श को स्पर्श न करे। विशेषकर बिजली के चूल्हे पर खाना पकाते समय या पानी गर्म करते समय अवश्य ही ऐसा करना चाहिए; क्योकि ऐसे समय प्रायः चूल्हे पर पानी आदि गिर जाता है, जिससे चूल्हे के आवरण मे विद्यूत् का च्यवन हो सकता है। लकड़ी की कुर्सी या चौकी पर बैठकर लकड़ी की पटरी पर पैर रख लेने से, आराम से बैठे-बैठे खाना पकाने के साथ-साथ खतरे से भी बचा जा सकता है। इस्तेमाल करते समय चूल्हे को भी लकड़ी की पटरी पर रख लेना चाहिए। नही तो चूल्हे में विद्युत् का च्यवन (leak) हो जाने से उसमें से विद्युत्-धारा धरती मे समा जाने लगेगी और अत्यधिक विद्युत् खर्च होने के साथ-साथ फ्यूज जल जाने की सभावना पैदा हो जाएगी।

किसी उपकरण में विद्युत् का च्यवन (leakage) है या नही यह जांचने के लिए एक छोटा-सा, पेचकशनुमा यंत्र मिलता है। इसे विद्युत्-परीक्षक (tester) कहते है। वैद्युतिक उपकरण बेचने की सभी दुकानों में यह परीक्षक मिलता है। प्रत्येक घर में ऐसा एक परीक्षक अवश्य ही रखना चाहिए। जब किसी भी वैद्युतिक उपकरण में विद्युत् के च्यवन का सदेह हो तो तुरत इस परीक्षक की सहायता से उसकी जाँच कर लेनी चाहिए।

अगर उपकरण से छुआ देने से परीक्षक के अंदर लगी एक छोटी-सी वत्ती जल उठती है तो समझना चाहिए कि उपकरण में विद्युत् का च्यवन है। ऐसी हालत मे उपकरण की विना मरम्मत किये कभी भी इस्तेमाल नही करना चाहिए।

वल्व आदि खोलने या लगाने के समय हमेशा, पहले स्विच को वंद कर देना चाहिए और फिर लकडी की कुर्सी या अन्य किसी अचालक वस्तु पर खडा होना चाहिए। टेवुल पखा, टेवुल वत्ती आदि को हटाने या इधर-उधर करने के पहले प्लग को सॉकेट से वाहर निकाल लेना चाहिए, ताकि वह लाइन से अलग हो जाए।

विजली के खुले तार को कभी भी किसी धातु-निर्मित छड या गीली लाठी, लकड़ी, वाँस आदि से नही छूना चाहिए। तार से अटकी हुई पतग निकालने की कोशिश मे, या तार पर गिरी हुई वस्तु को पाने के लिए धातु-निर्मित छड़ या गीली लकड़ी आदि इस्तेमाल करने के कारण लोगो की जान चले जाने की घटना विरल नही है। विजली के तार पर कभी भी गीला कपड़ा डालने की कोशिश नही करनी चाहिए।

विजली के किसी भी उपकरण की, जो लाइन से जुडा हुआ है, मरम्मत करने के पहले मुख्य स्विच को अवश्य ही वद कर देना चाहिए। घर मे चूने की पोताई करते समय भी मुख्य स्विच को वंद कर देना चाहिए।

जीव-विज्ञान

BIOLOGY

परिचित होने के लिए, प्रकृति की अन्य सजीव सृष्टि के साथ समन्वय बनाए रखने के लिए तथा इनसे अधिकाधिक लाभ उठाने मे सक्षम होने के लिए जीव-विज्ञान का, कम-से-कम, प्रारंभिक ज्ञान अत्यावश्यक है। साथ ही जीव की उत्पत्ति, सजीव पदार्थों पर वातावरण का प्रभाव, प्रकृति मे संतुलन; जीव-विकास आदि के अध्ययन से न केवल सजीव सृष्टि के प्रति हमारी श्रद्धा बढती है, बल्कि स्वय अपने सम्बन्ध मे भी हमे विशेष जानकारी मिल जाती है, क्योकि मनुष्य भी प्रकृति के उन्ही नियमो से प्रशासित होते हैं, जो समस्त सजीव सृष्टि के लिए लागू होते हे। इसलिए अपने से भिन्न जीवों के सबंध मे अध्ययन, अपने आप को भी विशेष रूप से समझने मे सहायक होता है और अन्य सजीव सृष्टि के साथ अपनी स्थिति के संबध मे जानकारी पाने मे मदद देता हैं।

जीव-विज्ञान के अध्ययन का व्यावहारिक मूल्य भी अत्यधिक है। चिकित्सा-शास्त्र की आधारशिला जीव-विज्ञान ही है। कृषि, बागवानी (horticulture) पशु-पक्षि-पालन आदि की उन्नति के लिए भी जीव-विज्ञान का अध्ययन अत्यावश्यक है।

जीव-विज्ञान की शाखाएँ

जीव-विज्ञान दो प्रधान शाखाओ मे विभाजित है :—(१) वनस्पति-विज्ञान (Botany) तथा (२) प्राणि-विज्ञान (Zoology)।

वनस्पति-विज्ञान, जीव-विज्ञान का वह भाग है, जिसमे पेड़-पौधों के विषय मे सागोपाग विवेचन रहता है। प्राणि-विज्ञान, जीव-विज्ञान का वह भाग है जिसमे सभी प्राणियो के विषय में—जिनमें छोटे-से-छोटे जीवाणु से लेकर मनुष्य तक सभी शामिल है—सर्वांगीण विवेचन रहता है।

सजीव (living) तथा निर्जीव (non-living) पदार्थों में अंतर

पृथ्वी पर मिलनेवाली सभी वस्तुओ को दो भागों मे बाँटा जा सकता है :—सजीव तथा निर्जीव। मनुष्य से लेकर जतु-जानवर, चिड़ियाँ, कीड़े-मकोड़े, पेड़-पौधे, जीवाणु आदि सजीव पदार्थ है। उधर बालू, पत्थर, पानी, वायु, रेल, मोटर आदि निर्जीव पदार्थ है।

सभी सजीव पदार्थों मे, चाहे वे प्राणी हो या वनस्पति, कुछ-न-कुछ जीवन-क्रिया अवश्य ही होती रहती है। यही उनकी विशेषता है। जीवन-क्रिया का अभाव निर्जीव पदार्थ की निश्चित पहचान है।

सजीव पदार्थों में निम्नलिखित मुख्य विशेषताएँ होती है :—

(१) संचलन (movement)—संचलन जीवन का एक प्रधान लक्षण है। प्रत्येक सजीव पदार्थ में, चाहे वह पेड़-पौधा हो या जतु-जानवर, किसी-न-किसी प्रकार का संचलन अवश्य ही होता है। सचलन कई प्रकार के होते हैं। प्राणी जब तक जीवित रहता है, एक स्थान से दूसरे स्थान तक अवश्य हा जाता-आता रहता है। इस सचलन को चालन (locomotion) कहते है। चालन-शक्ति केवल प्राणियो में ही होती है। वनस्पति मे चालन-शक्ति नही होती। लेकिन प्राणी तथा वनस्पति दोनो के शरीर के अंदर रक्त, रस आदि के प्रवाह के रूप में संचलन लगातार होता रहता है।

चालन के अलावा सभी सजीव पदार्थों के शरीर के अगो मे भी अल्प मात्रा मे संचलन होता रहता है। यह संचलन सजीव पदार्थों के आकार में वृद्धि के रूप मे होता है। प्राणी तथा वनस्पति मे संचलन या तो उनकी इच्छा से या स्वतः उत्पन्न होता है। स्वतः उत्पन्न सचलन को स्वचालित संचलन कहा जाता है।

निर्जीव पदार्थो मे संचलन नही होता। बालू हो या पत्थर, वह न तो अपने-आप स्थान-परिवर्तन कर सकता है और न अपनी इच्छा से या स्वतः उनका शरीर बढ़-घट सकता है। अगर उनपर कोई बाहरी बल न लगे तो वे जैसे-के-तैसे रह जाते हे। मोटरगाड़ी, रेलगाड़ी आदि मे चालन तो होता है लेकिन वह बाहरी ऊर्जा के प्रभाव से होता है।

(२) रूप तथा आकार—प्रत्येक प्रकार के सजीव पदार्थ का चाहे वह प्राणी हो या वनस्पति, अपना-अपना विशिष्ट आकार, रूप तथा आंतरिक अंग-रचना होती है। उदाहरण के लिए, सभी गायो की बनावट एक-सी होती है तथा सभी का एक विशिष्ट आकार और औसत माप होती है, जिससे अधिक उनकी वृद्धि नहीं हो सकती है। एक गाय को देख लेने के बाद सभी गायो को पहचाना जा सकता है और एक की आतरिक अग-रचना को देख-कर सभी गायो की आतरिक अंगरचना का ज्ञान हो जाता है।

निर्जीव पदार्थ का कोई निश्चित रूप या विशिष्ट आकार नहीं होता है और न उनके शरीर के अदर कोई अग-प्रत्यंग होता है।

(३) जीव-द्रव्य (protoplasm)—प्राणी तथा वनस्पति, अर्थात् सभी सजीव पदार्थ, जिस विशेष वस्तु से मूल रूप मे बने हुए होते हैं, उसे जीव-द्रव्य कहते है। यह जीवन का मूल तत्त्व है। इसके बिना जीवन की सृष्टि नही हो सकती और इसके नष्ट होने के साथ-साथ जीवन का भी अंत हो जाता है। जीव-द्रव्य शरीर की कोशिकाओ मे द्रव-रूप मे रहता है। इसकी रासायनिक बनावट बहुत ही कोमल और जटिल होती है। विश्लेपण करने की प्रचेष्टा मे इसमे से वही पदार्थ नष्ट हो जाता है, जिससे शरीर मे जीवन का संचार होता है। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि जीव-द्रव्य एक रासायनिक यौगिक है, जिसमे प्रोटीन तथा अन्य रासायनिक पदार्थ कोलॉइडी-अल घोल (colloidal solution) के रूप मे पाये जाते हैं। यह घोल अनेक यौगिको का एक परिवर्तनशील मिश्रण होता है।

निर्जीव पदार्थ मे जीव-द्रव्य नही होता है।

(४) उपापचयन (metabolism)—सजीव पदार्थ मे, जीवन को कायम रखने के लिए, आवश्यक है कि एक तरफ खाद्य पदार्थ से शरीर के अदर अनवरत जीव-द्रव्य का निर्माण होता रहे और दूसरी तरफ शरीर के अंदर ही जीव-द्रव्य को जलाकर ऊर्जा उत्पन्न होती रहे। जीव-शरीर के अदर लगातार जीव-द्रव्य का बनना तथा जल कर ऊर्जा उत्पन्न करने की सपूर्ण क्रिया को उपापचयन या उपापचय कहते है। प्रत्येक सजीव पदार्थ जब तक जीवित रहता है, तब तक उनके शरीर के अंदर पाचन-क्रिया (digestion) द्वारा सृजनात्मक काम या उपचय (anabolism) तथा श्वसन (respiration) द्वारा ध्वंसात्मक काम या अपचय (catabolism) होता रहता है।

निर्जीव पदार्थ मे उपापचयन नही होता है।

(५) पोषाहार (nutrition)—प्रत्येक जीव को अपनी जीवन-क्रियाओ के लिए ऊर्जा की आवश्यकता पडती है। यह ऊर्जा उन्हे भोजन से ही प्राप्त होती है। साथ ही, शरीर के अग-प्रत्यंगो को पुष्ट बनाए रखने के लिए तथा उनकी वृद्धि के लिए भी भोजन की आवश्यकता होती है। जीव जतु, पेड़-पौधे सभी, किसी-न-किसी रूप मे, अवश्य ही खाद्य ग्रहण करते है।

लेकिन केवल खाद्य ग्रहण कर लेने से ही वह पोषक पदार्थ नही वन जाता है। शरीर के अंदर पहले खाद्य पदार्थ, विभिन्न क्रियाओं के फलस्वरूप घुलने-मिलने योग्य वनता है और फिर अनेक रासायनिक प्रक्रियाओं से जीवद्रव्य वन जाता है। इस प्रक्रिया को पोषाहार कहते हैं।

निर्जीव पदार्थों मे पोषाहार जैसी कोई प्रक्रिया नही होती है।

(६) वृद्धि (growth)—पोषाहार के फलस्वरूप जव शरीर के अंदर अपचय की तुलना मे उपचय अधिक होता है, तव जीवद्रव्य खास तौर पर वढते है और शरीर के अग-प्रत्यंगो मे वृद्धि होती है। इस प्रकार सजीव में आत्मीकरण की प्रक्रिया (process of assimilation) मे वाहरी पदार्थ को, खाद्य के रूप मे ग्रहण करके, उसे सजीव पदार्थ मे परिणत कर, अगों में वृद्धि होती है। सजीव मे वृद्धि का अर्थ केवल वजन या आकार मे वृद्धि नहीं वल्कि उसका अर्थ है शरीर के अंग-प्रत्यंगो का नवनिर्माण। साथ ही, प्रत्येक सजीव की वृद्धि सीमित हे और वह निश्चित समय तक ही हो सकती है। विशिष्ट आकार प्राप्त हो जाने के वाद अग-प्रत्यगो की वृद्धि रुक जाती है।

निर्जीव पदार्थो मे भी कुछ अवस्थाओ मे वृद्धि हो सकती है। वाहर से पदार्थ जमा होकर निर्जीव के आकार मे वृद्धि हो सकती है। इसलिए यह वृद्धि केवल आकार या वजन की ही वृद्धि है, जिसकी न समय की सीमा और न आकार की ही कोई सीमा होती है।

(७) श्वसन (respiration)—वनस्पति तथा प्राणी, सभी जीव लगातार साँस लेते हैं। साँस लेते समय वायु के साथ ऑक्सीजन अदर खीच लिया जाता है। इस क्रिया को प्रश्वसन (inspiration) कहते हैं। इस आक्सीजन की सहायता से, पोषाहार से प्राप्त पदार्थो को, शरीर के अंदर जलाकर, ऊष्मा के रूप मे ऊर्जा मिलती है। इस क्रिया से उत्पन्न कार्वन-डाइ-ऑक्साइड गैस को साँस छोड़ते समय वाहर निकाल दिया जाता है। इस क्रिया को उच्छ्वसन (expiration) कहते है।

निर्जीव पदार्थो में श्वसन क्रिया नही होती।

(८) उत्सर्जन (excretion —उपापचय प्रक्रिया द्वारा विभिन्न आवश्यक पदार्थो के साथ-साथ, शरीर के अंदर, कुछ अनावश्यक पदार्थ भी उत्पन्न होते

रहते है। ये अनावश्यक पदार्थ साधारणत. शरीर के लिए हानिकारक होते है। इसलिए जीव इन अनावश्यक पदार्थों को शरीर से वाहर निकाल देते है। शरीर के अंदर उत्पन्न अनावश्यक पदार्थों को वाहर निकाल देने की क्रिया को उत्सर्जन कहते है।

निर्जीव मे उत्सर्जन क्रिया नही होती है।

(६) उत्तेजनशीलता तथा उद्दीपनशीलता (irritability and response to stimuli)—प्रत्येक सजीव पदार्थ मे वाहरी उत्तेजना या उद्दीपन की प्रतिक्रिया होती है। प्राणी में, साधारणतः वनस्पति की तुलना मे उत्तेजना या उद्दीपन की प्रतिक्रिया अधिक होती है।

प्राणियो मे, साधारणत. उत्तेजना या उद्दीपन की प्रतिक्रिया किसी-न-किसी प्रकार की गति द्वारा प्रकट होती है। आग से स्पर्श हो जाने से प्राणी तुरत आग के पास से हट जाता है।

निर्जीव पदार्थों पर भी वातावरण की प्रतिक्रिया होती है। लेकिन यह प्रतिक्रिया उत्तेजना या उद्दैपन के कारण नही होती है। ऊष्मा से सभी निर्जीव पदार्थ विस्तारित्त होते है, लेकिन ऊष्मा के उद्दीपन से उनमे गतिरूप प्रतिक्रिया नही होती है।

(१०) प्रजनन (reproduction ,—प्रत्येक सजीव पदार्थ, चाहे वह प्राणी हो या वनस्पति, अपने जैसे दूसरे सजीव पदार्थ उत्पन्न कर सकते है। इस क्रिया को प्रजनन कहते है। प्रजनन क्रिया भिन्न-भिन्न रूपो मे होती है। वैक्टीरिया जैसे जीव अपने शरीर को दो भागो मे वांटकर, अपने जैसे नये जीव की सृष्टि करते है। प्राणी साधारणतः अंडे या बच्चे पैदा करके प्रजनन क्रिया करते हैं। वनस्पतियां, साधारणत. वीज या अपने शरीर के अंश-विशेप की सहायता से प्रजनन करती हैं।

निर्जीव पदार्थो मे प्रजनन शक्ति नही होती है।

(११) जीवन चक (life cycle)—सजीव पदार्थो मे अनवरत जीवन-क्रिया के साथ-साथ उनमे अनवरत परिवर्तन भी होता रहता है। इस परिवर्तन को चक्रिक (cyclic) परिवर्तन कहा जा सकता है; क्योकि प्रत्येक सजीव पदार्थ मे उत्पत्ति, वृद्धि, प्रजनन तथा विनाश या मृत्यु का क्रम एक

स्पज, मूँगा, समुद्री एनीमोनी आदि कुछ ऐसे समुद्री प्राणी हैं जिनमें
।-शक्ति नहीं होती है।
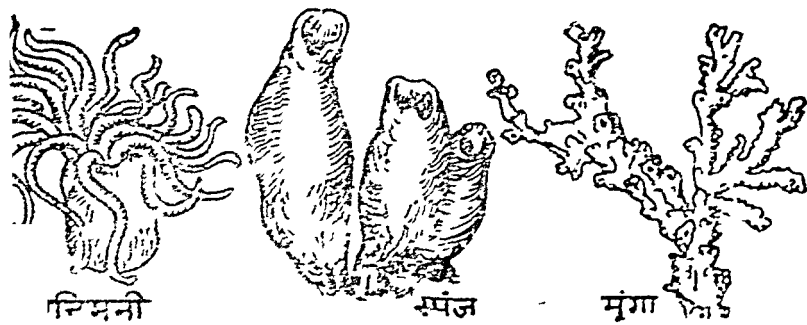
[चित्र १४९]

पर्णहरिम (chlorophyll)—पौधो का रंग हरा होता है, क्योकि
ोशिकाओं में एक प्रकार का हरा पदार्थ होता है, जिसे पर्णहरिम
पर्णहरिम केवल सूर्य किरण के प्रभाव से ही बच सकता है।
पौवों के जिन भागों को सूर्य-किरण मिलती है, उन्ही भागों में
ोता है। परजीवी (parasite), फफूँदी (fungus) आदि कुछ
छोड़कर प्राय: सभी पौधों मे पर्णहरिम पाया जाता है। यूग्लेना
) जैसे कुछ निम्न कोटि के प्राणियों को छोड़कर और अन्य
पर्णहरिम नहीं होता है।

ोपाहार (nutrition)—वनस्पति तथा प्राणियो मे सर्वप्रमुख
पोषाहार-विधि मे है। वनस्पति मे पर्णहरिम
ाक्साइड तथा पानी जैसे अकार्बनिक पदार्थों
कार्बोहाइड्रेट (carbohydrate) जैसे

अध्याय २

प्राणी तथा वनस्पति

जीवित पदार्थो को मुख्यत: दो भागों मे बाँटा जा सकता है :—(१) प्राणी तथा (२) वनस्पति। बैक्टीरिया जैसे असंख्य ऐसे जीवित पदार्थ है जिन्हे न तो ठीक प्राणी की ही श्रेणी में और न ठीक वनस्पति की ही श्रेणी मे रखा जा सकता है। फिर भी, बैक्टीरिया को साधारणत: वनस्पति की श्रेणी मे रखा जाता है। वास्तव मे प्राणी तथा वनस्पति के बहुत ही सूक्ष्म रूपो को एक दूसरे से अलगाना बड़ा कठिन है ; क्योकि इनमे साधारणत: दोनो के बहुत-से गुणो का समावेश रहता है। इस बात से अदाज लगता है कि आदिम जीव दोनो का समन्वय था। संभव है कि इनमे से कुछ ने वनस्पति के रूप मे और कुछ प्राणी के रूप मे विकास प्राप्त किया तथा कुछ जीव अपने आदिम रूप और गुणो को ही आज भी बरकरार रखे हुए है।

प्राणी तथा वनस्पति में अंतर

हम पहले ही देख चुके है कि समस्त जीवित पदार्थो मे कुछ ऐसे गुण होते है जिनके चलते वे निर्जीव पदार्थो से अलग किए जा सकते है। इन समानताओ के बावजूद प्राणियो तथा वनस्पतियो मे बहुत-से अतर भी है :—

(१) चालन शक्ति (locomotion)—प्राणी तथा वनस्पति मे यह एक मुख्य भेद है। प्राणी एक स्थान से अन्य स्थान जा सकता है, वनस्पति नही। वनस्पति की जड़ जमीन के अंदर से भोजन प्राप्त करती है और उन्हे अपने स्थान पर ही भोजन बनाने के लिए प्रकाश तथा आक्सीजन मिल जाता है। इसलिए वनस्पति को भोजन की खोज मे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की आवश्यकता नही पडती है। लेकिन प्राणियो को अपना भोजन जुटाना पडता है, जिसके लिए उन्हे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पडता है। इस प्रकार जीवित रहने के लिए वनस्पति को चालन-शक्ति की आवश्यकता नही होती है, लेकिन प्राणी में यह आवश्यक है।

स्पज, मूँगा, समुद्री एनीमोनी आदि कुछ ऐसे समुद्री प्राणी हैं जिनमें चालन-शक्ति नही होती है ।
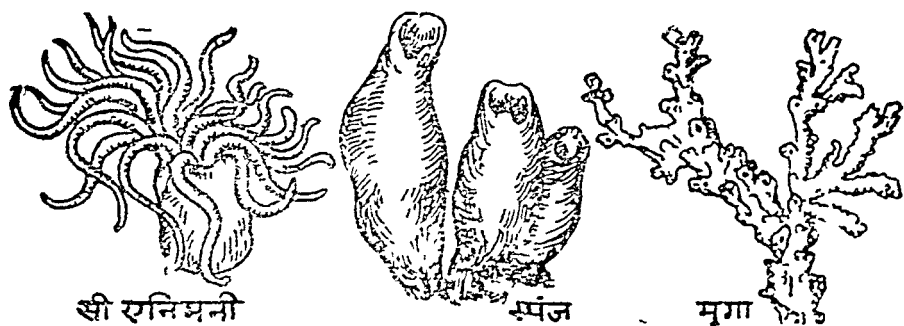
[चित्र १४९]

(२) पर्णहरिम (chlorophyll)—पौधो का रंग हरा होता है, क्योंकि उनकी कोशिकाओं में एक प्रकार का हरा पदार्थ होता है, जिसे पर्णहरिम कहते हैं। पर्णहरिम केवल सूर्य किरण के प्रभाव से ही वच सकता है। इसलिए पौत्रो के जिन भागो को सूर्य-किरण मिलती है, उन्ही भागो में पर्णहरिम होता है। परजीवी (parasite), फफूँदी (fungus) आदि कुछ पौधो को छोड़कर प्राय: सभी पौधो मे पर्णहरिम पाया जाता है। यूग्लेना (Euglena) जैसे कुछ निम्न कोटि के प्राणियो को छोडकर और अन्य प्राणियो मे पर्णहरिम नही होता है ।

(३) पोषाहार (nutrition)—वनस्पति तथा प्राणियो में सर्वप्रमुख अंतर उनकी पोषाहार-विधि मे है। वनस्पति मे पर्णहरिम रहने के कारण वे कार्बन-डाइ-आक्साइड तथा पानी जैसे अकार्बनिक पदार्थो को, सूर्य-किरण की सहायता से कार्बोहाइड्रेट (carbohydrate) जैसे कार्बनिक पदार्थ में रूपातरित करके अपने शरीर के अदर ही अपना खाद्य वना ले सकते है। इस क्रिया को प्रकाश-सश्लेषण (photosynthesis) कहते है ।

कुछ कीट-भोजी पौधो को छोड़कर कोई भी वनस्पति ठोस खाद्य नही ग्रहण कर सकता है। मिट्टी के अंदर मिलनेवाले, खनिज लवण आदि खाद्य का वे पानी के साथ घोल के रूप मे शोषण कर लेते है। इस विधि से खाद्य-

ग्रहण को वनस्पति-सदृश पोषण-विधि (holophytic mode of nutrition) कहते है। पौधो की नाईं प्राणी अपने शरीर के अन्दर अपना खाद्य नही बना सकते है। इसलिए उन्हे अपने खाद्य के लिए वनस्पति तथा अन्य प्राणियो पर निर्भर करना पड़ता है। साथ ही, प्राणी ठोस खाद्य ग्रहण कर सकता है। खाद्य उनके शरीर के अदर नाना प्रकार की रासायनिक क्रियाओ द्वारा जीवद्रव्य मे आत्मीकृत (assimilated) हो जाता है। इस प्रकार से खाद्य-ग्रहण-क्रिया को प्राणि-सदृश पोषज-विधि (holozoic mode of nutrition) कहते है।

(४) वृद्धि—प्राणी तथा वनस्पति दोनो मे वृद्धि होती है। वनस्पति की लवाई मे वृद्धि उनके शरीर के सभी भागो मे न होकर केवल जड़ तथा शाखाओ के अग्र-भाग मे होती है। लेकिन प्राणियों की लवाई मे वृद्धि उनक शरीर के समस्त भागो मे—अग-प्रत्यगो मे—होती है।

वनस्पतियो मे यह वृद्धि जीवन के अत तक होती रहती है; लेकिन प्राणियो की वृद्धि एक निश्चित समय तक ही हो सकती है।

(५) उत्सर्जन (excretion)—प्राणियों मे, उनके सक्रिय स्वभाव के कारण काफी परिमाण मे नाइट्रोजनयुक्त व्यर्थ पदार्थ उत्पन्न होते रहते है। इस कारण उनमे एक विकसित उत्सर्जन अंग होता है। इस अग मे से होकर नाइट्रोजनयुक्त अनावश्यक पदार्थ तथा प्रयोजनातिरिक्त पानी आदि वाहर निकल जाता है।

वनस्पतियो मे शारीरिक क्रिया इतनी कम होती है कि उनके शरीर के अदर अनावश्यक नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ बहुत ही कम उत्पन्न होता है। इसलिए उनके शरीर के अदर कोई उत्सर्जन-अंग नही होता है। उनके शरीर मे उत्पन्न थोड़ा-बहुत अनावश्यक पदार्थ पत्ते और छाल मे जमा होता रहता है। वे समय-समय पर पत्ते और छाल को गिराकर, जमा हुआ ऐसे अनाश्यक पदार्थ को त्यागती है।

(६) अवयव की सममिति (body symmetry)—प्राणियो मे अवयव का विकास द्विपार्श्वीय सममिति (bilateral symmetry) के रूप मे हुआ है। विकास का यह रूप उनके चालनशीलता के कारण ही है। शरीर की द्विपार्श्वीय सममिति के कारण प्राणी स्वतन्त्रता से चल-फिर सकता है।

वनस्पतियो मे अवयवो का विकास अरीय सममिति (radial symmetry) के रूप मे हुआ है। स्पज आदि चालन-शक्तिहीन प्राणियों के अवयव की सममिति वनस्पति जैसी होती है।

प्राणी तथा वनस्पति में परस्पर निर्भरशलिता

प्राणी तथा वनस्पति एक-दूसरे पर निर्भरशील हैं। प्राणी को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से वनस्पति से ही भोजन मिलता है। मासाहारी प्राणी को भी अप्रत्यक्ष रूप मे अपने भोजन के लिए वनस्पति पर निर्भर रहना पडता है, क्योकि उनके शिकार आमतौर पर शाकाहारी प्राणी ही होते है। मनुष्य के जीवन मे तो वनस्पति अत्यावश्यक है। भोजन के अलावा, मनुष्य को. वस्त्र, घर-दरवाजे, उपस्कर, औषधि आदि कितनी ही वस्तुओ के लिए वनस्पति पर निर्भर रहना पड़ता है।

यद्यपि प्राणियो पर वनस्पति की निर्भरशीलता उतना सर्वात्मक नहीं है, फिर भी उन्हे कार्बन तथा नाइट्रोजन के लिए बहुत हद तक प्राणियो पर ही निर्भर रहता पड़ता है। साथ ही बहुत-सी वनस्पतियो को वश-विस्तार के काम मे, परागण (pollination) आदि के लिए प्राणियो पर निर्भर रहना पडता है।

प्राणियो तथा वनस्पतियों मे इस निर्भरशीलता का चक्र निरतर चलता रहता है। इसमे कार्बन-चक्र तथा नाइट्रोजन-चक्र विशेप महत्त्वपूर्ण है। इनसे न केवल उनके पोषाहार में सहायता मिलती है, बल्कि साथ ही वायुमडल मे आक्सोजन, कार्बन-डाइ-आक्साइड तथा नाइट्रोजन के सतुलन की भी रक्षा होती है।

कार्बन-चक्र—प्राणी तथा वनस्पति श्वसन-क्रिया मे वायु से आक्सीजन ग्रहण करके कार्बन-डाइ-आक्साइड त्यागते है। लकड़ी आदि के जलने से और प्राणियो तथा वनस्पतियो के सडने-गलने से भी कार्बन-डाइ-आक्साइड गैस निकलता है। लेकिन पौधो को प्रकाश सश्लेपण के लिए कार्बन-डाइ-आक्साइड की आवश्यकता होती है और वे वायुमंडल से कार्बन-डाइ-आक्साइड ग्रहण करके आक्सीजन त्यागते है। इस प्रकार प्राणियो तथा

वनस्पतियो के सहयोग से वायु में कार्बन-डाइ-आक्साइड की मात्रा संतुलित रहती है।

नाइट्रोजन-चक्र—प्राणी अपने मल-मूत्र के साथ काफी परिमाण मे नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ त्यागते है। साथ ही, मृत प्राणियो के शरीर सड़-गलकर भी कई प्रकार के नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ वनते हैं। पौधों को पोषण के लिए काफी नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है और वे इस प्रकार से वने हुए नाइट्रोजनयुक्त पदार्थों से नाइट्रोजन ग्रहण करके नाइट्रोजन का संतुलन वनाये रखते हैं।

जीवद्रव्य (Protoplasm)

जीवद्रव्य तथा कोशिका

सभी सजीव पदार्थों के शरीर की कोशिका एक विशेष पदार्थ से बनी हुई होती है। इस पदार्थ को **जीवद्रव्य या प्रोटोप्लाज्म** कहते है। जीवद्रव्य जीवन का भौतिक आधार है, जिसके बिना जीव की सृष्टि ही नही हो सकती है। जीवन के समस्त कार्य इसके द्वारा ही होते है।

जीवद्रव्य की भौतिक रचना

भौतिक रचनाओ मे जीवद्रव्य एक स्वच्छ, पारदर्शक, कणहीन या कणयुक्त, गाढा द्रव पदार्थ है। जीवन की नाना प्रकार की क्रियाओ के कारण जीवद्रव्य की भौतिक तथा रासायनिक रचना मे हमेशा परिवर्तन होता रहता है। श्वसन जैसी क्रियाओ के फलस्वरूप जीवद्रव्य आक्सीजन के संयोग से नष्ट होता रहता है और पोपाहार जैसी उपचय क्रियाओं के फलस्वरूप उनके स्थान पर निरतर नया जीवद्रव्य बनता रहता है। साथ ही कोशिकाओ के अपने कार्य के अनुसार जीवद्रव्य की भौतिक अवस्था भी भिन्न-भिन्न होती है तथा इसका गाढ़ापन भी बदलता रहता है।

पानी से गाढा होने के कारण जीवद्रव्य का घनत्व भी पानी से अधिक होता है। इस कारण, रगहीन होने पर भी, माइक्रोस्कोप के नीचे, पानी की बूँद के अदर डूबे हुए, एमीबा (amoeba) का जीवद्रव्य साफ-साफ दिखाई पड़ता है। उसी प्रकार कोशिका-जीवद्रव्य के अदर का केंद्रक या नाभिक (nucleus) जीवद्रव्य से अधिक घनत्वयुक्त होने के कारण माइक्रोस्कोप के नीचे स्पष्ट दिखाई देता है। नाभिक बनानेवाले जीवद्रव्य को नाभिकद्रव्य (nucleoplasm) कहते हैं।

जीवद्रव्य की रासायनिक रचना

जीवद्रव्य की रासायनिक रचना अत्यंत जटिल तथा कोमल है। रासायनिक विश्लेषण करने की प्रचेष्टा मे यह मर जाता हैं। फिर भी इतना

मालूम हो सका है कि जीवद्रव्य मे पाये जानेवाले तत्त्व, प्रकृति मे भी पाये जाते है। जीवद्रव्य मे, ये सब तत्त्व किसी एक निश्चित यौगिक के रूप मे नही, वल्कि नाना प्रकार के यौगिको के कोलॉइडी घोल (colloidial solution) के रूप मे रहते है। जीवद्रव्य की रचना करनेवाले ये सब पदार्थ आधार द्रव्य के अदर छोटे-छोटे कण के रूप मे निलंबित या लटके हुए (suspended) रहते है। जीवद्रव्य मे ७० से लेकर ९० प्रतिशत केवल पानी होता है। इसलिए ठीक ही है कि पानी को 'जीवो का जीवन' कहा गया है। जीवद्रव्य मे निम्नलिखित मुख्य तत्त्व होते है --

आक्सीजन ६५ प्रतिशत, कार्बन १८ प्रतिशत, हाइड्रोजन १० प्रतिशत, नाइट्रोजन ३ प्रतिशत, कैलसियम २ प्रतिशत, फास्फोरस १ प्रतिशत, पोटैशियम ० ३५ प्रतिशत, गधक ०·२५ प्रतिशत, सोडियम ०·१५ प्रतिशत, क्लोरीन ० १५ प्रतिशत, मैग्नेसियम ०·०५ प्रतिशत, लोहा ०·०४ प्रतिशत।

इनके अलावा जीवद्रव्य मे वहुत-से अन्य तत्त्व, जैसे आयोडिन, तांवा आदि वहुत ही अल्प मात्रा मे मिले हुए होते हैं। यद्यपि जीवद्रव्य मे अधिकाश तत्त्व वहुत ही अल्प मात्रा मे रहते है फिर भी उसमे इनका रहना अत्यावश्यक है।

आक्सीजन, कार्वन, हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन के नाना प्रकार सयोग से वने वहुत-से यौगिक जीवद्रव्य मे मिलते है। इनमे प्रोटीन (protein), कार्वोहाइड्रेट (carbohydrate) तथा वसा (fat) प्रधान है। अन्य यौगिको की तुलना मे जीवद्रव्य मे प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है। इसके विना जीवद्रव्य मे वृद्धि नही हो सकती है। कार्वोहाइड्रेट के आक्सीकरण से शरीर को ऊर्जा मिलती है। वसा-रूप में प्राणि-कोशिकाओ मे खाद्य पदार्थ सचित रहता है। आवश्यकता के समय इसके आक्सीकरण से ऊर्जा मिलती है। प्रोटीन - आक्सीजन, कार्वन, हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन का यौगिक है। कार्वोहाइड्रेट तथा वसा—कार्वन, हाइड्रोजन और आक्सीजन के यौगिक है।

इन यौगिको के अलावा, विटामिन (vitamin), हारमोन (hormone) एनजाइम (enzyme), लवण आदि अन्य कई आवश्यक पदार्थ भी जीवद्रव्य मे होते हैं। इनमे से किसी भी पदार्थ की कमी होने से जीवन-क्रिया मे हानि होती है।

कोशिका (Cell)

वनस्पति तथा प्राणी, सभी जीवो के शरीर मे, जीवद्रव्य असख्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रकोष्ठो या इकाइयो मे बँटे हुए होते है। किसी भी जीव के शरीर से एक बहुत पतले टुकड़े को तराश लिया जाए और उसे माइक्रोस्कोप यंत्र के नीचे रखकर देखा जाए, तो दिखाई पड़ेगा कि वह टुकडा असंख्य छोटी-छोटी इकाइयो से बना हुआ है। इन्ही इकाइयो को कोशिका (cell) कहते है। सभी प्राणियो तथा वनस्पतियो के शरीर की रचना कोशिका तथा कोशिका उपज cell products) से होती है और ये कोशिका जीवित पदार्थ का मूल रचनात्मक तथा क्रियात्मक इकाई है। इसे कोशिका सिद्धांत कहते है।

एक कोशिका (unicellular) प्राणियो और वनस्पतियो मे, उसी एक कोशिका मे समस्त जीवन-क्रिया होती है। वही एक कोशिका भोजन करती है, श्वास लेती है, बढती है तथा प्रजनन करती है। बहुकोशिक (multicellular) जीवो मे प्रत्येक कोशिका सपूर्ण शरीर की रचना का एक सूक्ष्म भाग होता हे। जीवन-क्रिया मे इन भागो का काम बँटा हुआ होता है। सभी के सयुक्त कामो को मिलाकर शरीर की जीवन-क्रिया सपूर्ण होती है।

कोशिका की रचना—प्रत्येक प्राणि-कोशिका एक कोमल प्लाज्मा झिल्ली (plasma membrane) से घिरी हुई होती है। इस झिल्ली को कोशिका झिल्ली (cell membrane) कहते है। यह झिल्ली कोशिका-जीवद्रव्य का ही कठिन ऊपरी स्तर होती है।

वनस्पति-कोशिका एक कठोर कोशिका-भित्ति (cell wall) से घिरी हुई होती है। कोशिका-भित्ति-कोशिका जीवद्रव्य की उपज से बनती है और प्राणि-कोशिका की कोशिका झिल्ली से भिन्न होती है। कोशिका-भित्ति मे सेलूलोज (cellulose) जमा हो जाता है, जिससे वह कडी हो जाती है। प्राणियो की तुलना मे वनस्पतियो के शरीर इसी कारण से कठोर और मजबूत होते है।

नाभिक या केंद्रक (nucleus)—प्रत्येक कोशिका के मध्य भाग मे एक छोटा-सा गोलाकार या अडाकार पिंड होता है जिसे **नाभिक या द्रद्रक** कहते

है। यह केंद्रक भी एक पतली झिल्ली से घिरा हुआ रहता है, जिसे केंद्रक झिल्ली (nuclear membrane) कहते हैं। केंद्रक कोशिका का बड़ा ही
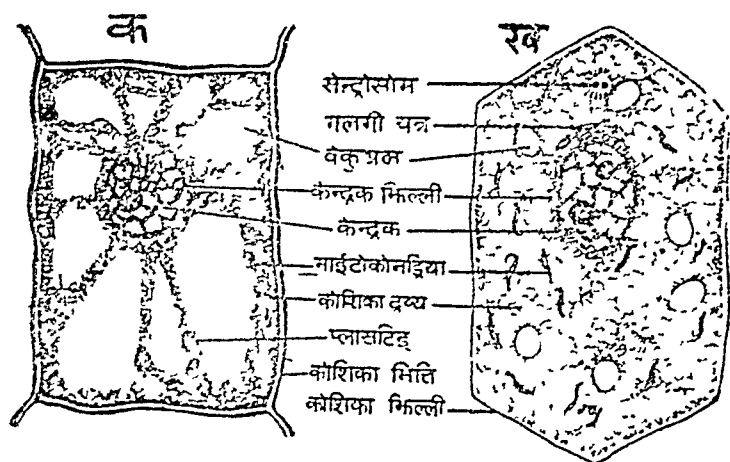
[चित्र १५०—वनस्पति तथा प्राणि-कोशिका : क—वनस्पति कोशिका, ख—प्राणि-कोशिका]

महत्त्वपूर्ण भाग होता है। यह कोशिका की सभी क्रियायों तथा कोशिका-विभाजन को नियंत्रित करता है।

कोशिका-द्रव्य (cytoplasm)—कोशिका मे जीवद्रव्य को दो मुख्य भागो मे बाँटा जाता है—**कोशिका-द्रव्य** और **केंद्रक द्रव्य** (nucleoplasm)। कोशिका के अंदर के समस्त जीवद्रव्य को कोशिका-द्रव्य कहते है। कोशिका के बीच मे, अपेक्षाकृत गाढा जीवद्रव्य के संहति को, जिससे केंद्रक का निर्माण होता है, केंद्रक द्रव्य कहते है।

सेंट्रोसोम (centrosome)—कोशिका द्रव्य मे केंद्रक के पास एक छोटी-सी गोलाकार वस्तु पाई जाती है। इसे सेंट्रोसोम कहते हैं। सेंट्रोसोम के अंदर दो या एक अति सूक्ष्म कण होते है, जिन्हे **ताराकेंद्र** (centriole) कहते हैं। सेंट्रोसोम अपने विश्राम की अवस्था मे छोटा और निष्क्रिय बना रहता है। किंतु कोशिका-विभाजन के समय वह सक्रिय हो जाता है और इसके शरीर के बाहरी भाग से छितराती हुई किरण जैसी निकलती है, जिसे **ताराकिरण** (astral rays) कहते है। वनस्पति-कोशिकाओं मे सेंट्रोसोम

नहीं होता है। लेकिन फफूंदी आदि निम्न कोटि के पौधो मे कभी-कभी सेंट्रोसोम मिलते हैं।

माइटोकोंड्रिया (mitochondria)—लगभग प्राय: सभी कोशिकाओ मे माइटोकोंड्रिया पाये जाते है। ये जीवित कोशिका द्रव्य मे रहते है। साधारणत ये कोशिका तत्त्वो मे बँटे हुए रहते है। लेकिन उनकी स्थिति और रूप वदलते रहते हैं। माइटोकोड्रिया कोशिका द्रव्य की श्वास-क्रिया मे सवधित होता है और ग्रंथि-कोशिका के स्राव (secretion) बनाने मे काम करता है।

गल्जीकाय (golgi bodies)—जीवित कोशिका द्रव्य मे गल्जीकाय मिलते है। ये कोशिका-द्रव्य में छितराये हुए या केंद्रक के पास केंद्रित रहते है। गल्जीकाय अम्ल या एलकोहल मे घुल जाते है। वनस्पति कोशिका की तुलना में प्राणि-कोशिका मे अधिक गल्जीकाय होते है।

प्लैस्टिड (plastid)—प्लैस्टिड या आदिलव वनस्पति-कोशिकाओ मे पाये जाते हैं। प्लैस्टिक एक प्रकार के प्रोटीनकाय है, जो निर्माण पदार्थो से संवधित है। ये जीवित होते हैं और कभी भी नये नही वनते है। जो पहले से ही मौजूद है उनके विखंडन से इनकी सख्या मे वृद्धि होती है। साधारणत: तीन प्रकार के प्लैस्टिड मिलते है—हरिताणु (chloroplast), रंगहीन कणिका (leucoplast) और रग कणक (chromoplast)। हरिताणु हरा रंग का होता है। इसके चलते पौधो के पत्तो आदि मे हरापन होता है। इससे पौधो के पत्तो आदि मे कार्वोहाइड्रेट वनाने मे सहायता मिलती है। रंगहीन कणिका, रंगहीन प्लैस्टिड है। इससे स्टार्च जमा होने मे मदद मिलती है। रगकणक नाना रग के होते हैं और इनमे फल तथा फूलो मे रग आने मे सहायता मिलती है।

धानी या रिक्तिका (vacuoles)—कोशिका द्रव्य मे अनेक छोटे-बडे खाली स्थान पाये जाते हैं। इन्हे धानी या रिक्तिका कहते हैं। प्राणि-कोशिका की तुलना मे वनस्पति-कोशिका मे रिक्तिकाओ की सख्या अधिक होती है और वे आकार मे वड़ी होती है। एमीवा जैसे एककोशिका प्राणी मे दो प्रकार की धानी होती है : खाद्य धानी—जिसमे खाद्य जमा होता है और संकुचनशील धानी—जो उनके प्रचलन के लिए आवश्यक होती है।

ऊतक (Tissue)

हम देख चुके है कि वहुकोशिक जीवो के शरीर मे सभी कोशिकाएँ एक प्रकार का कार्य नही करती है और उनमे श्रम-विभाजन होता है। वहुकोशिक जीवो के शरीर की कोशिकाएँ अपने-अपने कार्य के अनुसार अलग-अलग समूहो मे वँटी हुई होती हे। एक प्रकार का कार्य करनेवाले सभी समूहो के समस्त कोशिकाओ की उत्पत्ति एक ही स्रोत से होती है और समूह की तमाम कोशिकाएँ एक निश्चित प्रकार का कार्य करती हैं। कोशिकाओ के इस प्रकार के समूह को ऊतक कहते है।

वनस्पति शरीर के ऊत्तको को मुख्यतः दो वर्गों मे वाँटा जा सकता है—**विभाजी ऊतक** (meristematic tissue) तथा **स्थायी ऊतक** (permanant tissue)।

विभाजी ऊतक—पौधो की जड तथा तने के अग्रभाग और पार्श्व मे होते है ; अर्थात् पौधे के शरीर के उन भागो में विभाजी ऊतक होते है जहाँ लवाई या मोटाई मे वृद्धि होती हैं। कही-कही स्थायी ऊत्तको के समूहो के वीच मे भी विभाजी ऊतक होते है। विभाजी ऊतक ऐसी कोशिकाओ से वनता हे, जो जीवित होती है और जिनमे विभाजित होकर संख्या-वृद्धि करने की क्षमता होती है। जीवन के शुरू मे सभी पौधो का शरीर विभाजी उत्तक से ही वनता है। शुरू मे सभी कोशिकाओ की सरचना लगभग एक-सी होती है। लेकिन जैसे-जैसे कार्य मे भिन्नता आती जाती है, वैसे-वैसे वे भिन्न-भिन्न रूप लेकर स्थायी ऊतक वनाती है।

ऐसे ऊतक, जिनकी कोशिकाओ की विभाजन-क्षमता का अंत हो गया है और जिन्होने निश्चित आकार तथा रूप पा लिया है, उन्हे स्थायां ऊतक कहते है। स्थायी ऊतक जीवित तथा मृत, दोनो प्रकार की कोशिकाओ से वनते है।

उच्च कोटि की वनस्पतियो के शरीर के समस्त ऊतको को तीन ऊतक तन्त्रो (tissue system) में वाँटा जा सकता है। वे है—(१) वाह्य ऊतक तन्त्र (epidermal tissue system), (२) आधार ऊतक तंत्र (fundamental tissue system) और (३) वाहिनी ऊतक तन्त्र (vascular tissue system)।

वाह्य ऊतक तन्त्र पौधो के शरीर की वाह्य त्वचा (epidermis) या छाल वनाता है। इसका मुख्य काम पौधे के शरीर को वाहरी आघातो आदि से रक्षण प्रदान करना होता है। वाह्य त्वचा पौधे की जड से लेकर पत्ती तक समस्त अगो पर फैली होती है। वाह्य त्वचा मे, विशेषकर पत्तियो तथा अन्य हरे भागो मे अनेक सूक्ष्म छिद्र होते हैं। इन्हे रध्र (stomata) कहते है।

आधार ऊतक तंत्र पौधे के विभिन्न अंगो की वाह्य त्वचा के नीचे होता है और पौधे के शरीर का मुख्य भाग है। इसमे प्रधानतः मृदूतक (parenchyma) ऊतक होते है। मृदूतक ऊतक की कोशिका समव्यासीय (isodiametric) होती है और उनकी भित्तियाँ पतली होती है। पौधो के सभी कोमल भागो में मृदूतक ऊतक होते हैं। आधार ऊतक तन्त्र का मुख्य काम, उपापचयन (metabolism), खाद्य सचयन तथा कुछ हद तक पौधे के शरीर को यान्त्रिक अवलंब देना होता है। तना तथा जड मे, इस तन्त्र में, वाह्य त्वचा के अदर की अंतस्त्वचिका (cortex) होती है। अंतस्त्वचिका के अदर और तना तथा जड़ के केंद्र मे मध्यपरिचक्र (pericycle), मज्जका (medulla or pith) और मज्जका किरण (medullary rays) होती है। केंद्र के वाहर मध्यपरिचक्र मे मज्जका के विस्तार को मज्जका किरण कहते हैं।

वाहिनी ऊतक तन्त्र साधारणत. मध्यपरिचक्र के अंदर होता है। इस तंत्र की सहायता से जड द्वारा अवशोषित पानी, खनिज लवण आदि का घोल इत्यादि पत्ते तक पहुँचते है तथा पत्तो मे बने खाद्य पदार्थ पौधो के शरीर के विभिन्न भागो मे पहुँचते है।

साधारणत उच्च कोटि के प्राणियो के शरीर मे चार प्रकार के मुख्य ऊतक पाये जाते है : (१) धारिच्छद ऊतक (epithelial tissue), (२) संयोजी ऊतक (connective tissue), (३) पेशी ऊतक (muscle tissue) और (४) तंत्रिका ऊतक (nerve tissue)।

धारिच्छद ऊतक विभिन्न अंगो की वाहरी तथा भीतरी सतह पर होता है, जो उन अगो पर आच्छादन का काम करता है। प्राणियो की त्वचा तथा अंतस्त्वचा धारिच्छद ऊतक से वनती है। इसका काम शरीर की रक्षा करना होता है। इस ऊतक मे कोशिकाएँ एक-दूसरे से सटी हुई होती है और

इनके बीच मे अंत.कोशिकीय आधार द्रव्य (intercellular matrix) की मात्रा कम या कतई नही होती है।

संयोजी ऊतक प्राणि-शरीर के भीतर विभिन्न प्रकार के ऊतको या अंगो को संयोजित करता है। सयोजी ऊतक मे कोशिकाओ के बीच अंतः-कोशिकीय आधार द्रव्य अधिक रहने के कारण कोशिकाएँ एक-दूसरे से सटी हुई नही होती हैं। अस्थि (bone) तथा उपास्थि (cartilage) परिवर्तित सयोजी ऊतक है। रक्त तथा लसीका भी द्रव सयोगी ऊतक हैं। इनका आधार द्रव्य रंगहीन द्रव पदार्थ से बनता है, जिसे प्लाविका (plasma) कहते हैं। इस ऊतक के द्वारा शरीर की अन्य कोशिकाओं को खाद्य तथा आक्सीजन मिलते हैं।

पेशी ऊतक की सभी कोशिकाओ मे फैलने तथा संकुचित होने का गुण होता है। इस संकुचनशीलता के गुण के कारण पेशी ऊतक को संकुचनशील ऊतक भी कहते हैं। तंत्रिका तंत्र के निर्देशानुसार इस ऊतक में प्रसार तथा संकुचन होते हैं। इससे प्राणि-शरीर के अंगो में गति उत्पन्न होती है।

तन्त्रिका ऊतक तन्त्रिका कोशिका (nerve cell) तथा तंत्रिका तंतुओ (nerve fibre) से बनते हैं। इनका प्रधान कार्य शरीर के सभी भागों से उद्दीपनों (stimuli) को लेना तथा एक स्थान से दूसरे स्थान या मस्तिष्क तक पहुँचाना और फिर मस्तिष्क से प्रेरणा लेकर उन अंगो को, जिन्हे कुछ करना है, पहुँचाना होता है। मस्तिष्क तथा कशेरुक दंड के भीतर की रीड-रज्जु इन ऊतकों से बनती हैं। पूरे शरीर मे इन ऊतकों का जाल-जैसा बिछा हुआ होता है।

विकास तथा आनुवंशिकता

(Evolution and heredity)

पृथ्वी पर असंख्य प्रकार के जीव रहते हैं। इनके रूप भिन्न-भिन्न हैं। इनके रहन-सहन में भी भिन्नता होती है। साथ ही इनके अंदर बहुत-सी समानताएँ भी है। प्रश्न उठता है—कि ये सब जीव कहाँ से आये है ? क्या सृष्टि के प्रारंभ से ही वे ऐसे ही थे, जैसे आज है ? क्या सभी जीवों की सृष्टि एक ही समय मे, एक ही साथ हुई ? इन प्रश्नों का उत्तर विकासवाद के सिद्धांत (theory of evolution) द्वारा मिलता है।

प्राचीनकाल में लोगो का ख्याल था कि पृथ्वी पर के सभी प्राणियो और वनस्पतियों की सृष्टि एक ही साथ हुई थी और वे हमेशा ऐसे ही थे तथा ऐसे ही रहेगे। प्रचलित धर्म-विश्वास से इस बात की पुष्टि होती थी। उस युग के महान दार्शनिक अरस्तू (Aristotle) ने इस पर संदेह प्रकट करते हुए कहा था कि वर्तमान जीव अपने अविकसित पूर्वजो का विकसित रूप है। उनसे भी पहले कई भारतीय दार्शनिको ने जीवों की उत्पत्ति के सबंध में विचार करते हुए प्राचीन विचारधारा का खडन करने की कोशिश की थी। लेकिन इसके बहुत दिन बाद, पहले फ्रेंच वैज्ञानिक लेमार्क Lamarck) और फिर डारविन (Darwin) नाम के अँगरेज वैज्ञानिक ने विकासवाद के सिद्धात को वैज्ञानिक रूप दिया। अब दुनिया के लगभग सभी प्राणिशास्त्री डारविन के सिद्धात को सही मानते है।

विकास का अर्थ है—क्रमश उन्नत होना। जैसे फूल की नन्ही-सी कली धीरे-धीरे प्रस्फुटित होकर एक सुन्दर फूल बन जाती है ; उसी प्रकार समस्त जीवों ने, एक अति साधारण रूप से, धीरे-धीरे विकसित होकर आज के रूप को प्राप्त किया है। अति साधारण जीव से क्रमश' उन्नत होकर अपेक्षाकृत जटिल तथा विकसित जीव की उत्पत्ति को विकास (evolution) और इस सिद्धात को विकासवाद (theory of evolution) कहते है।

विकासवाद के शिद्धात के अनुसार भू-पृष्ठ पर जीव की उत्पत्ति एमीवा जैसे एककोशिक जीव के रूप मे हुआ था। यह जीव पानी मे रहनेवाला था और करोड़ो साल तक पृथ्वी पर इनके एकछत्र साम्राज्य बना रहा। धीरे-धीरे इन एककोशिक जीवो से बहुकोशिक जीव उत्पन्न हुए। समय बीतने के साथ-साथ विभिन्न स्थानो के पर्यावरण (environment) मे विभिन्न प्रकार के परिवर्त्तन होते गए और उसके साथ-साथ विभिन्न प्रकार के बहु-कोशिक जीव उत्पन्न हुए। फिर इनसे मछली के रूप मे कशेरुकदंडी (vertebrate) प्राणी की उत्पत्ति हुई। इसके बाद मेढक जैसे उभयचर और फिर रेंगकर जमीन पर चलनेवाले सरीसृप (reptile) धरती पर आए। इनके बाद पक्षी और स्तनधारी प्राणी (mammal) का विकास हुआ। इसी प्रकार एककोशिक जीव से वनस्पति जगत् का भी विकास हुआ।

लेकिन, इस प्रकार से विकसित होने में कितने करोड़ साल लगे हैं यह कहना एक तरह से असभव है। अनुमान है कि मछली जातीय प्रथम कशेरुक-दडी प्राणी का विकास लगभग चार करोड़ साल पहले हुआ था। इस हिसाब मे पृथ्वी पर मनुष्य बहुत ही नया प्राणी है, क्योंकि वर्तमान रूप में मनुष्य का विकास, केवल लगभग एक लाख साल पहले हुआ है। लेकिन विकास का पथ हमेशा एक-सा नहीं रहा। कितने ही प्राणी एक विशेष पर्यावरण मे उत्पन्न हुए, लाखों-लाख साल तक बने रहे, पर पर्यावरण मे परिवर्तन के साथ अपने को उपयुक्त न बना सकने के कारण फिर लुप्त हो गए। पृथ्वी पर करोड़ो-करोड़ साल के इतिहास में ऐसे कितने जीव विकसित हुए और फिर लुप्त हो गए, यह कहना असंभव है।

प्रश्न उठ सकता है कि विकास जब इतना धीरे-धीरे होता है तब यह कैसे कहा जा सकता है कि जीवो की उत्पत्ति उनसे सरलतर जीवो से हुई है। यह सही है कि विकास का प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित करना संभव नहीं है। लेकिन, इस संबंध में अप्रत्यक्ष प्रमाण इतना सुदृढ़ है कि अब विकासवाद के सिद्धात पर कुछ भी सदेह नही रह गया है।

विकासवाद का एक बहुत मजबूत प्रमाण भ्रूण-विज्ञान (embryology) के अध्ययन से मिलता है। विभिन्न प्राणियों के भ्रूण के विकास को देखने से पता लगता है कि भ्रूण पूर्ण रूप पाने के पहले उन समस्त रूपो से गुजरता है, जिनसे उसका विकास हुआ है।

प्रत्येक प्राणी अंडाणु के रूप मे एककोशिक जीवन प्रारंभ करता है, फिर कोशिका-विभाजन के फलस्वरूप वहुकोशिक हो जाता है और एक-एक करके विभिन्न रूपो मे परिवर्तन के वाद उस प्राणी का निश्चित रूप ग्रहण करता है। इस प्रकार समस्त कशेरुकदंडी प्राणी के भ्रूण प्रथम अवस्था मे देखने में एक-से रहते है। मनुष्य, खरगोश, मुर्गी, मछली आदि सभी के भ्रूण प्रारंभ मे लगभग एक-जैसे होते है। इनमे मछली को छोड़कर और किसी को श्वसन के लिए गिल (gill) की आवश्यकता नही रहती। फिर भी
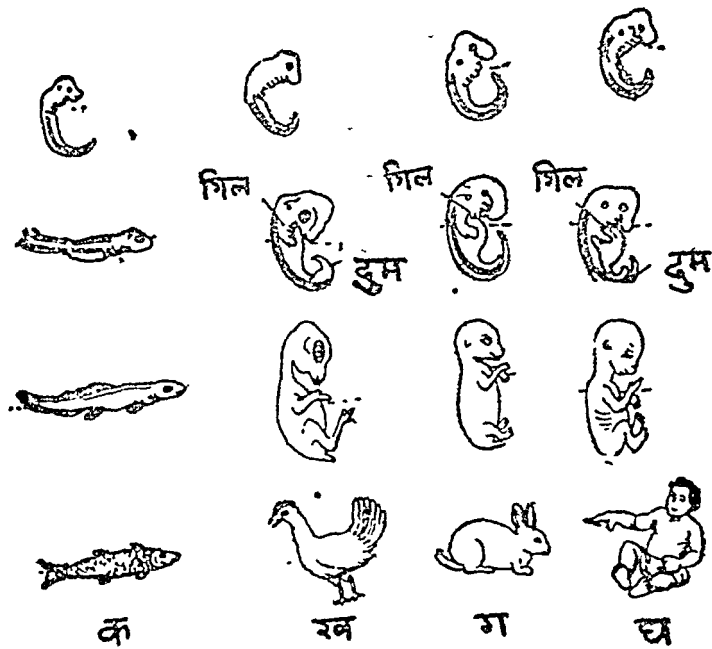
[चित्र १५१—विभिन्न प्राणियो का भ्रूण : क—मछली, ख—पक्षी, ग—खरगोश, घ—मनुष्य]

सभी कशेरुकदंडी प्राणियो के भ्रूण मे किसी-न-किसी अवस्था मे गिल अवश्य ही रहता है। ज्यो-ज्यो भ्रूण वढता है, त्यो-त्यो विभिन्न प्राणियों के भ्रूणों मे अंतर वढता जाता है और अंत मे वे अपने-अपने निश्चित रूप लेते है। इन वातो से यह प्रमाणित होता है कि ये सव प्राणी एक ही पूर्वज से विकसित हुए है।

धरती के अंदर पाये जानेवाले, जीवाश्म (fossil) से भी विकासवाद के सिद्धांत की पुष्टि होती है। हमारी धरती माता की गोद मे युग-युग का इतिहास छिपा हुआ है। इसकी छाती पर कालांतर से शिलाओं की चट्टानें एक के ऊपर एक जमती आ रही हैं और इन चट्टानो मे कितने ही जीव दब कर रह जाते हैं। इनमें कुछ अपनी प्रस्तर-समाधि मे लाखो-लाख साल तक सुरक्षित रहकर अंत मे प्रस्तरीभूत होकर जीवाश्म बन जाते हैं। कही-कही चट्टानो मे उनके शरीर के चिह्न भी बन जाते है। चट्टानो के बनने का समय जानने का उपाय वैज्ञानिको ने निकाल लिया है। इसलिए जिस चट्टान पर जीवाश्म या जीव-शरीर की छाप निकल आती है, उसको देखकर यह जाना जा सकता है कि वह जीव किस समय का है। देखा गया है कि चट्टान जितनी पुरानी है, उसपर मिलनेवाले जीवाश्म या जीव-शरीर की छाप उतने ही सरलतर जीव की है। जीवाश्म के आधार पर मनुष्य के विकास का भी प्रमाण मिल गया है। इसके आधार पर यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि यद्यपि यह सही नही है कि बंदर मनुष्य का पूर्वपुरुष है, लेकिन यह सही है कि बंदर और मनुष्य के पूर्वपुरुष एक ही थे। साथ ही जीवाश्मो से यह भी मालूम हो गया है कि गुफाओं में रहनेवाले, समस्त शरीर मे केशयुक्त मनुष्य ने कैसे-कैसे विकसित होकर आज के मनुष्य का रूप पाया है।

प्राणियो मे समजात अंग (homologous organ), अवशेषी अक्रिय अंग आदि की उपस्थिति भी विकासवाद के सिद्धात को प्रमाणित करती है। विभिन्न प्रकार के काम करने पर भी प्राणियो के कुछ अंगो, जैसे मनुष्य के हाथो, चिड़ियो के डैनो, चौपायो के अगले पैरो, ह्वेल मछली के सुफने आदि की हड्डियों, तंत्रिकाओं, पेशियों आदि की सरचना लगभग एक-सी है। ऐसे अंगो को 'समजात अग' कहते है। इससे यह मालूम हो जाता है कि एक समय इन सब के पूर्वज एक ही थे। इसी प्रकार, अवशेषी अक्रिय अंग, जैसे मनुष्य मे वर्मीफार्म एपेंडिक्स (vermiform appendix), पुच्छास्थि (coccyx) आदि की उपस्थिति से यह प्रमाणित हो जाता है कि मनुष्य तथा जिन जीवो मे ये अंग मौजूद है, सभी किसी ऐसे पूर्वपुरुष से आते हैं, जिसमे ये अंग बड़े और सक्रिय थे।

डारविन का सिद्धांत

सन् १८५९ मे चार्ल्स डारविन की विश्वविख्यात पुस्तक 'ओरिजिन ऑफ स्पेसिस' (Origin of species) प्रकाशित हुई। इस पुस्तक को लिखने के पहले वे पाँच साल तक, दुनिया के विभिन्न भागो में जीव-जंतु, पेड़-पौधे आदि का अध्ययन करते हुए भ्रमण करते रहे। इन्ही अध्ययनों के आधार पर उन्होने अपने विकासवाद के सिद्धात का प्रतिपादन किया।

उन्होंने दिखाया कि प्रत्येक जीव अत्यधिक संतान उत्पन्न (over production) करते है। अगर संतानों मे सब या अधिकाश जिंदा रह जाएँ तो पृथ्वी पर, थोडे ही समय के अंदर, रहने के लिए स्थान नही रहेगा ; क्योंकि पृथ्वी पर स्थान सीमित है, भोजन सीमित है और अन्य जीवनोपयोगी सामग्रियाँ भी सीमित है। इसलिए यहाँ सीमित संख्यक जीव ही रह सकते है। अत: इनके लिए, अर्थात् जीने के लिए, सबको सघर्ष करना पड़ता है। डारविन ने इस सघर्ष को **अस्तित्व के लिए संघर्ष** (struggle for existence) कहा है। अस्तित्व के लिए इस संघर्ष में वे ही सफल हो सकते है, जो या तो दूसरो से अधिक बलशाली या अधिक बुद्धिमान हो। बाकी इस सघर्ष मे नष्ट हो जाते है। दूसरे शब्दो मे, पृथ्वी पर वे ही जीवित रह सकते है जो बल-बुद्धि मे श्रेष्ठ हो। डारविन ने इसे **योग्यता की अतिजीविता** (survival of the fittest) कहा है। इस प्रकार प्राकृतिक नियमों से ही अयोग्य जीव नष्ट हो जाते है और योग्यतम जीवित रह जाते हैं। प्रकृति के इस नियम को **प्राकृतिक वरण** (natural selection) कहते है।

डारविन ने दिखाया कि पर्यावरण (environment) में परिवर्तन होता रहता है और जीव उसके अनुसार अपने मे परिवर्तन लाने की कोशिश करते रहते हैं। इसमें जो सफल होते है, अर्थात् जो जीव अपने शरीर में, पर्यावरण मे परिवर्तन के अनुसार, परिवर्तन (variation) लाने मे सफल होते हैं, वे बचे रहते है और बाकी प्रतिकूल पर्यावरण मे मर जाते है। इस प्रकार के परिवर्तन मे लाखोलाख साल लग जाते है और विभिन्न प्रकार के पर्यावरण मे, विभिन्न प्रकार के परिवर्तन से, विभिन्न प्रकार के नये-नये जीवों का विकास होता है।

pollination) किया और संकर (hybrid) पौधा उत्पन्न किया। देखा गया कि पहली पीढी मे सभी पौधे लंबे पैदा हुए। लेकिन इन लंबे पौधों के स्वय परागण से उत्पन्न द्वितीय पीढी मे तीन-चौथाई लंबे और एक चौथाई नाटे पौधे पैदा हुए। इन पौधों के स्वय परागण से तीसरी पीढी मे उत्पन्न पौधो में देखा गया कि सभी नाटे पौधो से केवल नाटे पौधे, और एक तिहाई लवे से केवल लवे पौधे पैदा हुए अर्थात् ये शुद्ध वंशक्रम मे चले गए। लेकिन, दो तिहाई लंबे पौधो ने पहली पीढी के लवे पौधों की तरह व्यवहार किया अर्थात् तीन चौथाई लवे और एक चौथाई नाटे पौधे उत्पन्न किए।

इन प्रयोगो के आधार पर मेडेल ने वताया कि पौधो का प्रत्येक लक्षण (character) स्वय एक स्वतंत्र एकक लक्षण (independent unit character) है। आनुवशिकता के मामले मे प्रत्येक लक्षण स्वतंत्र होता है। नयी पीढी मे स्वतत्र एकक लक्षण की अभिव्यक्ति को एकक लक्षण का निश्चित निर्धारक (determiner) नियंत्रित करता है। वाद मे चलकर इस निर्धारक को जीन (gene) कहा गया। लंवापन, नाटापन, लाल फूल, सफेद फूल, आदि प्रत्येक लक्षण के लिए पृथक्-पृथक् जीन उत्तरदायी होता है। जीन माता-पिता से सतान (offspring) में आता है और उसमे पैतृक लक्षणों के लिए उत्तरदायी होता है। जीवो में जीन जोड़ो के रूप मे रहता है। दो या अधिक विकल्प लक्षणवाले शुद्ध वंशक्रम के जनको से उत्पन्न संतान को संकर (hybrid) कहते है।

प्रयोग से यह भी देखा गया कि यद्यपि दूसरी पीढी मे लवे और नाटे पौधों का अनुपात ३ : १ था, फिर भी उनमे, वाहर से देखने मे एक-से लगने पर भी, केवल एक तिहाई ही शुद्ध लंवे थे ; क्योकि केवल वे ही स्वयं परागण से वाद की पीढियो मे लवे पौधे पैदा कर सके। वाकी दो तिहाई सकर-लवे थे, क्योकि वाद की पीढ़ी मे स्वय परागण से उनसे दोनो प्रकार के पौधे उत्पन्न हुए। इसलिए सही अर्थ मे दूसरी पीढी मे १ : २ : १ के अनुपात मे शुद्ध-लवे, सकर-लवे तथा शुद्ध नाटे पौधे उत्पन्न हुए।

प्रयोग मे देखा गया कि यद्यपि सकरण मे दो पृथक् लक्षणों का समावेश हुआ फिर भी प्रथम पीढ़ी में केवल एक ही लक्षण के पौधे उत्पन्न हुए और

फिर उन्ही एक लक्षणवाले पौधों से विना संकरण से ही; अर्थात् स्वयं परागण से दोनों लक्षणों के पौधे उत्पन्न हुए। मेंडेल ने इससे यह नतीजा निकाला कि एकक लक्षणो मे कुछ अधिक प्रभावी और कुछ अपेक्षाकृत कम प्रभावी होते हैं। किसी पीढ़ी में अधिक प्रभावी लक्षण, कम प्रभावी लक्षण को ढक सकता है और उसे प्रकट होने में रोक सकता है। उस पीढ़ी मे प्रकट होनेवाले एकक लक्षण को प्रभावी लक्षण (dominant character) और दब जानेवाले एकक लक्षण को अप्रभावी लक्षण (recessive character) कहते है। दब जाने पर भी अप्रभावी एकक लक्षण का अंत नहीं हो जाता है और वह उस पीढी के अंदर मौजूद रहता है। अगली पीढी में उसका प्रकट होना इस बात का प्रमाण है।

देखा गया है कि लंबापन नाटापन पर और अन्य रंग सफेद रंग पर प्रभावी होते है।

अगर प्रथम पीढ़ी को F_1, दूसरी पीढी को F_2 और तीसरी पीढ़ी को F_3 तथा लंबेपन के लक्षण को T और नाटेपन के लक्षण को t कहा जाय तो लंबेजनक मे जीन TT के रूप में और नाटेजनक में tt के रूप में होंगे।
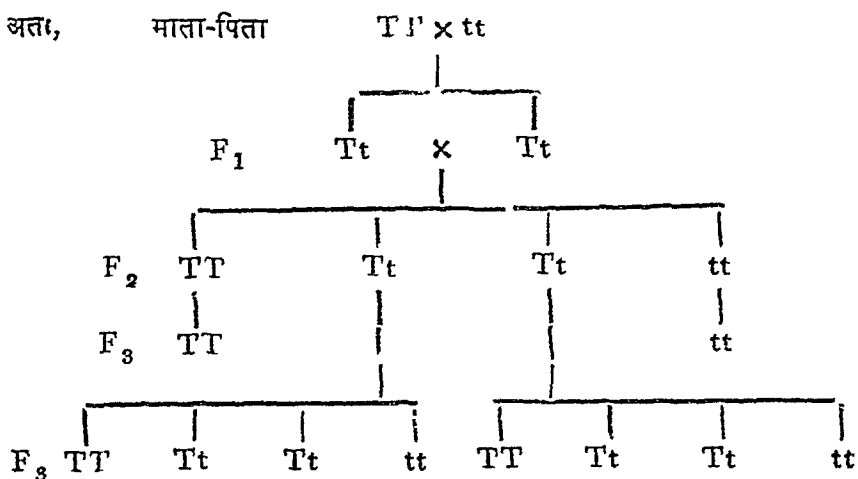
क्योकि इस संकरण में T प्रभावी और t अप्रभावी लक्षण है; इसलिए पहली पीढ़ी F_1 में Tt मे केवल T का ही लक्षण अर्थात् लंबापन प्रकट

हुआ। F_2 में २५% में पितामह-मातामही की तरह TT अर्थात् शुद्ध लंबापन और २५% tt अर्थात् शुद्ध नाटापन आया। लेकिन ५०% में अपने पिता-माता की तरह Tt अर्थात् संकरपन आया और उन्होंने वाद की पीढ़ी मे उनके जैसे, उसी अनुपात में (अर्थात् १ : २ : १) संतान उत्पन्न किये।

हर वार के प्रयोग मे, चाहे उसमे लंबे का नर हो और नाटे की मादा या नाटे का नर और लंबे की मादा हो, नतीजे मे कोई अंतर नही आता है।

वनस्पति-विज्ञान

BOTANY

वनस्पति-जगत् का दिग्दर्शन

वनस्पति केवल प्रकृति की शोभा ही नहीं है बल्कि वह हमारी परम मित्र भी है। जन्म से लेकर मृत्यु तक, हर समय, हर काम में, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में हमें उसकी आवश्यकता पड़ती है।

पृथ्वी पर असंख्य प्रकार के पेड़-पौधे होते हैं। इनमें से बहुत-से हमारे लिए लाभदायक तथा कुछ हमारे लिए हानिकारक होते हैं। इनके संबंध में उचित जानकारी पाने के लिए इन्हें पहचानना आवश्यक है। इसलिए वनस्पति-विज्ञान मे समस्त वनस्पति-जगत् (plant kingdom) को समानता के आधार पर विभिन्न उपजगतों (sub kingdom), संघों (phylum), उपसंघो (sub phylum), वर्गों (classes), गणों (order), वंशो (genus) तथा जातियों (species) में बाँटा जाता है। इसे वर्गीकरण (classification) कहते हैं।

अपने चारों ओर साधारणतया जिन पौधों को हम देखते हैं, उनमें अधिकांश में कभी-न-कभी फूल और फल अवश्य ही लगते हैं। लेकिन बहुत-से ऐसे भी पौधे होते हैं जिनमें फूल और फल नहीं लगते हैं। इस हिसाब से वनस्पति-जगत् को दो मुख्य उपजगतों में बाँटा जाता है:—फेनीरोगैम (phanerogam) और क्रिप्टोगैम (cryptogam)।

फेनीरोगैम उपजगत् के पौधे उच्चकोटि के होते हैं और इनकी संख्या क्रिप्टोगैम उपजगत् के पौधों की तुलना मे बहुत ही अधिक है। फेनीरोगैम उपजगत् के पौधो को दो संघों में बाँटा जाता है:—(१) विवृत बीज (gymnosperm), अर्थात् अनावृत बीजवाले पौधे और (२) आवृत बीज (angiosperm) अर्थात् बंद बीजवाले पौधे।

विवृत बीज आमतौर पर शीतप्रधान देशो में या पहाड़ो मे पाये जाते है। देवदार, चीड़, चिलगोजा, साइकस आदि इस श्रेणी के पौधे हैं। इन

पौधो के बीज पर कोई आवरण न होने के कारण वे वाहर से दिखाई पड़ते है। इन पौधो मे होनेवाले बीजों की संख्या बहुत अधिक होती है। साधारणत. इनके बीज एक लवे 'कोन' मे लगे रहते है। देवदार के 'कोन' देखने में बहुत सुन्दर होते है।

आवृत बीज साधारणत. फल के अंदर बंद रहता है। फेनीरोगैम उपजगत् के अधिकाश पौधे आवृत बीजवाले होते है। फल के अदर बंद रहने के कारण इनके बीज वाहर से नही दिखाई पड़ते हैं। वनस्पति-जगत् मे आवृत बीजवाले पौधे सबसे अधिक उन्नत पौधे है।

आवृत बीजवाले पौधो को दो वर्गों मे बाँटा जाता है :—एक बीजपत्री (monocotyledon) और द्विबीजपत्री (dicotyledon)।

एक बीजपत्री पौधो के बीज मे एक दल होता है। गेहूँ, मकई, धान आदि इस वर्ग के पौधे है। इनके बीज एक ही खंड मे बने हुए होते हैं। चना, मटर, आम, इमली आदि द्विबीजपत्री पौधे है। इनके बीज मे दो खंड या दल होते हे।

क्रिप्टोगैम उपजगत् के पौधे, फेनीरोगैम उपजगत् के पौधो की तुलना मे निम्न कोटि के होते हैं। इनमे फूल, फल या बीज नही होते हैं। इनका प्रजनन बीजाणु की सहायता से होता हे। क्रिप्टोगैम उपजगत् के पौधो को चार सघो मे विभाजित किया जा सकता है :—

१. शेवाल (Algae)—यह एक प्रकार की काई जैसे पदार्थ के रूप में दिखाई पड़ता है। आमतौर पर पानी मे या वरसात के दिनों में दीवाल आदि पर हरे रग की पतली सतह की तरह इस पौधे के समूह उगते हैं। शेवाल का प्रत्येक पौधा इतना छोटा होता है कि माइक्रोस्कोप यंत्र की सहायता के बिना इन्हे अलग-अलग देख पाना संभव नही है।

२. मॉस (Moss)—मॉस भी गीली भूमि या दीवालों पर हरे रंग की काई जैसी उगती है। असल मे यह काई असख्य छोटे-छोटे पौधो की समष्टि है। शेवाल तथा मॉस मे पर्णहरिम होता है और इसलिए ये अपने शरीर के अंदर अपना खाद्य बना सकते है।

३. कवक (Fungus, pl fungi)—इन्हे साधारणत: फफूँदी भी कहते हैं। ये भी एक तरह के पौत्रे हैं, जिनमे पर्णहरिम नही होता है। इसलिए कवक अपने खाद्य अपने आप नही वना सकते हैं और भोजन के लिए उन्हे दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है अर्थात् ये परजीवी होते हैं। इसलिए नम स्थान मे रखे हुए चमड़े, सड़े-गले फल, रोटी आदि पर सफेद या रंगहीन परत के रूप में ये उग आते हैं। इनमे कुछ आकार मे वड़े भी होते हैं। छत्रक (mushroom), कुकुरमुत्ता आदि वड़ी जाति के कवक है।

४. पर्णाग (Fern)—साधारणत पर्णा ग जातीय पौधे छाया में उगते है। इनमे अधिकांश की पत्तियाँ देखने मे सुन्दर तथा हरे रंग की होती है। इनका प्रजनन वीजाणु (spore) की सहायता से होता है। पत्तियों की निचली सतह पर ये वीजाणु पैदा होते हैं।

वनस्पतियो का वर्गीकरण उनकी प्रजनन-विधि तथा शारीरिक रचना के आधार पर भी किया जाता है। इस प्रणाली मे भी समस्त वनस्पति-जगत् को दो भागों मे वाँटा जाता है :—(१) थैलोफाइटा (thallophyta) और (२) एंब्रायोफाइटा (embryophyta)।

थैलोफाइटा

थैलोफाइटा उपजगत् के अंतर्गत पौधे अत्यंत निम्नकोटि के होते है। इनमें न तो सही माने मे जड़ होती है और न तना या पत्ता। इनमें से कुछ तो इतने छोटे होते है कि खाली आँखो से दिखाई ही नही पड़ते। थैलोफाइटा उपजगत् के वहुत-से पौधे एककोशिक होते हैं। चाहे एक-कोशिक हो या वहुकोशिक, इस उपजगत् के समस्त पौधो के शरीर की रचना वहुत ही सरल होती है। थैलोफाइटा उपजगत् को केवल एक ही संघ में वाँटा जाता है जिसे थैलोफाइटा ही कहते हैं। इस उपजगत् के पौधों का प्रजनन भ्रूण द्वारा न होकर वीजाणु द्वारा या अपने शरीर को दो भागों में वाँटकर होता है।

थैलोफाइटा संघ के पौधो को दो उपसंघो (sub-phyla) मे वाँटा जाता है :—(१) पर्णहरिमयुक्त शेवाल (Algae) और (२) पर्णहरिम हीन कवक (Fungi)।

शेवाल साधारणत: पानी मे या नमीयुक्त स्थानो मे मिलता है। अधिकांश शेवाल बहुत ही छोटे होते हैं और बिना माइक्रोस्कोप यंत्र के अलग-अलग दिखाई नही पड़ते। इनमें पर्णहरिम रहते हुए भी समस्त शेवाल हरे रंग के नही होते है। रंग के आधार पर इन्हे पांच वर्गों मे बांटा जाता है :—

(१) सायनाफाइसी (**Cynophyceae**) या मिक्सोफाइसी (**Mixeophyecae**)—रग नीलापन के साथ हरा।

(२) क्लोरोफाइसी (**Chlorophyceae**)—रग हरा।

(३) बेसिलारिओफाइसी (Bacillariophyceae) या डायटम (**Diatom**)—रंग हरा। शरीर पर एक आवरण-सा रहता है।

(४) फेइयोफाइसी (Phaeophyceae)—रग भूरा।

(५) ढोडोफाइसी (Dhodophyceae)—रंग लाल।

कवक या फफूंदी मे पर्णहरिम न होने के कारण इसका रंग साधारणत. सफेद या रंगहीन होता है। इसी कारण ये अपने खाद्य अपने शरीर के अंदर नही बना पाते हैं। इसलिए इन्हें भोजन के लिए दूसरो पर निर्भर रहना पड़ता है। सडी-गली वस्तुओ पर, प्राणियो या पौधों के शरीर पर या शरीर के अंदर ये पाये जाते है। इन्हे तीन वर्गो मे बांटा जाता है :—

(१) साइजीमाइसीटीस (Schizomycetes) एककोशिक जीव है और इन्हे बैक्टीरिया कहा जाता है। इनमे कुछ तो हमारे लिए हानिकारक तथा कुछ लाभदायक होते हैं।

(२) मिक्सोमाइसीटीस (Mycsomycetes) या स्लाइम मोल्ड (Slime mould) सडी गली वस्तु, जैसे पत्ते, लकड़ी आदि पर उगते हैं।

(३) यूमाइसीटीस (Eumycetes) या प्रकृत फफूंदी (true fungi)।

एम्ब्रायोफाइटा

एम्ब्रायोफाइटा उपजगत् के पौधे उच्च श्रेणी के होते हैं। इनमे जड़, तना, पत्ता आदि होते है। इनका प्रजनन भ्रूण की सहायता से होता है। एम्ब्रायोफाइटा उपजगत् के पौधो को दो संघो मे बांटा जाता है :— ब्रायोफाइटा (Brayophyta) और ट्रेकियोफाइटा (Tracheophyta)।

ब्रायोफाइटा हरे रंग के होते है। इन्हे दो वर्गो में बाँटा जाता है :—(१) हीपाटीली (Hepaticeae) या लीवरवर्ट्स (Liverworts)। इस वर्ग के पौधे जमीन पर रेंगते हुए बढते हैं। (२) मॉस (Moss) दीवार आदि पर काई जैसे जमते है। इस जाति के पौधे सीधे खडे रहते है।

ट्रैकियोफाइटा संघ के अंदर छोटे से लेकर बडे-से-बडे पौधे आते हैं। इनमें चार उपसंघ होते है :—(१) सिलोप्साइडा (Celopsida), (२) स्फिनोप्साइडा (Sphenopsida) या अश्वपुच्छ (Horsetail); (३) लाइकोप्साइडा (Lycopsida) या क्लब मॉसेस (Club mosses) तथा (४) टेरोप्साइडा (Pteropsida)।

टेरोप्साइडा उपसंघ में पर्णांग तथा समस्त बीजवाले पौधे शामिल हैं। इस उपसघ के अंदर के पौधो को तीन वर्गो मे बाँटा जाता है :—

(१) फिलिसाइनी (Filicinae)—इस वर्ग में पर्णांग या फर्ण जाति के सभी पौधे आते हैं।

(२) जिम्नोस्पर्मी (Gymnospermeae)—इस वर्ग के पौधों के बीज फल के अंदर न होकर बाहर होते है। इसलिए इन्हे विवृतबीज पौधे कहते हैं। देवदार, चीड आदि इस वर्ग के पौधे है। इनके दो उपवर्ग होते हैं :—चौड़े और संयुक्त पत्ते वाले साइकेडालीस (Cycadales) तथा पतले और नुकीले पत्ते वाले कोनीफेरालास (Coniferales)।

(३) एंजीओस्पर्मी (Angiospermae) या आवृतबीज पौधे वनस्पति-जगत् मे सबसे उन्नत है तथा दृष्टिगोचर पौधों में सबसे अधिक संख्या इसी वर्ग की है। अब तक इस वर्ग के १,९९,००० से भी अधिक का पता लग चुका है। इनमे फूल से फल और फल के अंदर बीज होते हैं। आम, जामुन आदि फलो के पौधो से लेकर धान, गेहूँ, चना, मटर आदि इस वर्ग के पौधे हैं। फल के अंदर दलो की सख्या के अनुसार इस वर्ग के पौधो को तीन उपवर्गो में बाँटा जा सकता है :—

(१) एक बीजपत्नी (Monocotyledonous) पौधो के बीज मे एक ही दल होता है। धान, गेहूँ आदि इस उपवर्ग के पौधे है।

(२) द्विबीजपत्री (Dicotyledonous) उपवर्ग के पौधों के बीज मे दो दल होते है। आम, चना, मटर आदि के पौधे इस उपवर्ग में आते हैं।

(३) बहुबीजपत्री (Polycotyledonous) पौधो के बीज मे दो से अधिक दल होते है।

इनके अतिरिक्त इस वर्ग के पौधों को और भी अनेक भागो मे बांटा जाता है। साथ ही, वनस्पति-जगत् का भी अन्य उपायों से वर्गीकरण किया जाता है; लेकिन ऊपर दिये गए विभाजन ही वनस्पति-जगत् के मुख्य वर्गीकरण हैं।

●

अध्याय २

बैक्टीरिया (Becteria)

बैक्टीरिया या जीवाणु, कवक (Fungi), फफूंदी (Mould) तथा वाइरस (Virus) जीव-जगत् के क्षुद्रतम जीव है। इनमें कवक तथा फफूंदी से बैक्टीरिया क्षुद्रतर होता है। लेकिन वाइरस इन सबसे बहुत ही अधिक क्षुद्र होता है। इनमें किसी के भी शरीर मे पर्णहरिम नही होता है।

बैक्टीरिया, वनस्पति-जगत् के क्रिप्टोगैम (Cryptogam) उपजगत् के थैलोफाइटा (Thallophyta) संघ के कवक (Fungi) उपसंघ के सूडोमाइसेटीस (Pseudomycetes) समूह (group) के शाइजोमाइसेटीस (Schizomycetes) वर्ग के जीव है। वनस्पति-जगत् में बैक्टीरिया, कवक, फफूंदी तथा वाइरस के स्थान इस प्रकार है :—

वनस्पति-जगत

- (उपजगत) क्रिप्टोगैम (Crvotogam) (अपुष्पक निम्नकोटि के पौधे)
  - (सघ) थैलोफाइटा (Thallophyta)
    - (उपसंघ) कवक (Fungi)
      - (समूह) सूडोमाइसेटीस (Pseudomycetes)
        - (वर्ग) शाइजोमाइसेटीस (Schizomycetes) नैक्टीरिया वाइरस
        - मिक्सोमाइसेटीस (Mixomycetes) फफूंदी
      - यूमाइसेटीस (Eumycetes)
        - सत्य कवक (True fungi)
          - (वर्ग) साइकोमाइसेटीस (Psycomy-cetes) लैंगिक तथा अलैंगिक बीजाणु द्वारा जननशील कवक
          - एसकोमाइसेटीस (Ascomy-cetes) एस्कस बीजाणु (ascospore) द्वारा जननशील कवक
          - बैसिडिओमाइसेटीस (Basidiomy-cetes) बैसिडिओ बीजाणु (basidiospore) द्वारा जननशील कवक
          - फंजाइ इमपारफेक्टी (fungi imparfecti)
    - शेवाल (algae)
- फेनेरोगैम (Phanerogam) (सपुष्पक उच्चकोटि के पौधे)

बैक्टीरिया का आविष्कार, हालैंड देश के एक शौकिया लेंस वनानेवाले, एंटोनी वान ल्यूवेनहाक नाम के व्यक्ति ने, अपने वनाये हुए माइक्रोस्कोप यत्र की सहायता से, सन् १६८३ मे किया था। लेकिन इससे लगभग दो सौ साल बाद फ्रेंच वैज्ञानिक लूई पास्तुर ने, सन् १८७६ मे, दुनिया के सामने जीवाणु-विज्ञान की रूपरेखा प्रस्तुत की। उन्होने दिखाया कि किण्वन (fermentation), क्षय (decay) आदि तथा जलसंत्रास (hydrophobia) जैसे भयंकर रोग जीवाणुओ के कारण ही होते है। प्राणघातक जलसंत्रास रोग की चिकित्सा के लिए उन्होने वैक्सीन भी तैयार किया। चिकित्सा-विज्ञान मे लूई पास्तुर का आविष्कार एक युगांतरकारी घटना है। ऐंटिसेप्टिक शल्य-चिकित्सा के जनक लॉर्ड लिस्टर के अनुसार "सही माने मे समस्त दुनिया मे कोई ऐसा दूसरा व्यक्ति नही है, जिसके प्रति चिकित्सा-विज्ञान पास्तुर से अधिक ऋणी है।" १६वी सदी के मध्य मे कोहन, नाइजेली, जोसेफ लेइडले आदि वैज्ञानिक निश्चय कर सके कि वैक्टीरिया एककोशिक ववस्पति है।

वैक्टीरिया एककोशिक जीव है जिसकी कोशिका, कोशिका-भित्ति (cell wall) से घिरी हुई होती है। आकार में वैक्टीरिया साधारणत एक माइक्रॉन या उससे भी कम लंवा होता है (एक माइक्रॉन १/१००० मि० मि० या लगभग १/२५००० इंच होता है)। विभिन्न जाति के वैक्टीरिया की लंवाई में भिन्नता होती है।

वैक्टीरिया नाना प्रकार के होते हैं :—(१) वेलनाकार दंड रूप (cylindrical rods), (२) अल्प विराम चिह्न कॉमा (comma) रूप, (३) गोलाकार (spherical), (४) तंतु रूप (filamentous) तथा (५) सर्पिल रूप (spiral)।

बैक्टीरिया मे गोलाकार रूप की लंवाई ०·५ माइक्रान से १ माइक्रान तक और दंड रूप की लंबाई १० माइक्रान तक होती है।

बैक्टीरिया मे प्रजनन विखंडन (fission) द्वारा होता है। एक वैक्टीरिया दो भागो मे विभाजित होकर और फिर आकार मे बढ़कर दो बैक्टीरिया वन जाते है। पहले परिपक्व कोशिका का मध्य भाग दवने लगता है और अंत में

टूटकर दो टकड़े होकर दो कोणिकाओ मे परिणत हो जाता है। विखंडन की दर वैक्टीरिया की जाति तथा अवस्थान की परिस्थिति पर निर्भर करती है। अनुकूल परिस्थितियो मे कुछ वैक्टीरिया एक घटे के अंदर दो-तीन वार
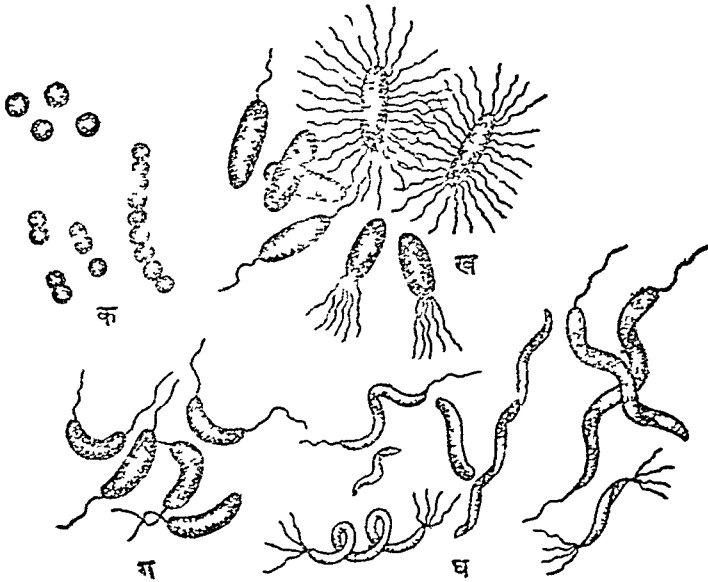
[चित्र १५२—विभिन्न आकार के वैक्टीरिया : क—गोलाणु, ख—दडाणु, ग—वक्रिल दंडाणु, घ—सर्पिल दंडाणु]

परिपक्व होकर विखडित हो सकते है। घंटे मे दो वार विखंडित होने पर एक वैक्टीरिया से १२ घटे मे १,६७,७७,२१६ वैक्टीरिया वन सकते है।

रूप तथा आकार की विशेषता के अनुसार वैक्टीरिया को चार भागों में बाँटा जा सकता है :—

१. गोलाणु या कोक्काइ (coccus—pl. cocci)—यह गोलाकार होता है। विखडन तथा पृथक्करण (seperation) की विशेषता के अनुसार गोलाणु विभिन्न प्रकार के समूहो में हो सकते हे :—

(क) जो गोलाणु केवल एक ही अक्ष पर से विखडित होते है और कोशिका भित्ति की संयोज्यता के कारण एक दूसरे से जंजीर की तरह जुड़े हुए होते हैं, उन्हे स्ट्रेप्टो कोक्काई (Streptococci) कहते है। गलदाह

(sore throat), टासिल शोथ (tonsillitis) आदि रोग उत्पन्न करनेवाला स्ट्रेप्टोकोक्कास पायोजेनस हेमोलाइटिकस (Streptococcus pyogenes haemolyticus) इस जाति का बैक्टीरिया है।

(ख) जो गोलाणु अनियमित रूप से विखडित होकर अंगूर के गुच्छे जैसे समूह बनाते है, उन्हे स्टेफाइलोकोक्काइ (Staphylococci) या माइक्रोकोक्काइ (Micrococci) कहते है। फोड़े, फुंसी, कार्बंकल आदि रोग उत्पन्न करनेवाला स्टेफाइलोकोक्कास ओरेयास (Stephylococcus aureus) इस प्रकार का बैक्टीरिया है।

(ग) एक ही अक्ष पर विखडित होकर जोडे-जोडे मे रहने की प्रवृत्ति रखनेवाले गोलाणु को डिप्लोकोक्काइ (Diplococci) कहते है। इस जाति के डिप्लोकोक्कास न्यूमोनियाइ (Diplococcus pneumoniae) न्यूमोनिया, ब्रंको न्यूमोनिया आदि रोग उत्पन्न करता है।

(घ) दो स्तरो मे परस्पर के साथ समकोण मे विखडित होकर चार-चार के समूहो मे रहनेवाले गोलाणु को टेट्राकोक्काइ (Tetracocci) कहते है। इस जाति के माइक्रोकोक्कास टेट्राजेनस (Micrococcus tetragenus) की रोग उत्पन्न करने की क्षमता कम होती है। फिर भी यह श्वास-नली के ऊपरी भाग पर हमला करता है।

(ङ) सरसिना लूटिया (Sarcina lutea)—जैसे रोग न उत्पन्न करनेवाला गोलाणु तीन स्तरो मे विखंडित होकर घन (cube) जैसे वन जाते है। इन्हे सरसिनाइ (Sarcinae) कहते है।

२. दंडाणु (bacillus—pl. bacilli)—सीधे या थोडे-से मुडे हुए वेलनाकार दड जैसे होते हैं। अधिकांश क्षेत्रो मे इनके दोनों सिरे गोल होते है। विभिन्न प्रकार के दडाणु की लबाई और व्यास मे काफी अतर होता है। एन्थ्रक्स दडाणु (Anthrax /bacillus) के व्यास ०·७ माइक्रान से १·५ माइक्रान तक तथा लंबाई ६ माइक्रान से १२ माइक्रान तक हो सकती है। लेकिन आँत मे रहनेवाले विभिन्न प्रकार के दंडाणु के व्यास साधारणतः ०·३ माइक्रान और लबाई १·२ माइक्रान तक होती है। दंडाणु मे कुछ सचल और कुछ अचल होते है।

पिछले दिनो में सभी दडाकार जीवाणुओ को वैसिलस कहा जाता था। लेकिन अब, दंडाकार जीवाणुओ के चरित्र मे महान अंतर को ध्यान में रख कर उन्हें भिन्न-भिन्न जातीय (generic) नाम दिए गये हैं ; जेसे—

(क) वेसिलस (Bacillus)—उदाहरण : वैसिलस एन्थ्रासिस (Bacillus anthracis) जो भेड़-बकरियों में प्लीहा-ज्वर (splenic tever) उत्पन्न करता है।

(ख) सलमोनेल्ला (Salmonella)—उदाहरण : सलमोनेल्ला टाइफोसा (Salmonella typhosa) जो टायफायड (typhoid) ज्वर उत्पन्न करता है।

(ग) शाइजेल्ला (Shigella)—उदाहरण : शाइजेल्ला शिगाइ (Shigella shigae) जो पेचिश (bacillary desentery) उत्पन्न करता है।

(घ) पास्तुरेल्ला (Pasteurella)—उदाहरण : पास्तुरेल्ला पेस्टिस (Pasteurella pestis) जो प्लेग रोग उत्पन्न करता है।

३. वक्रिल दंडाणु (vibrio) वेलनाकार कॉमा जैसे मुड़ा होता है। इस जाति के सभी वैक्टीरिया सचल होते हैं। इसमें विब्रियो कॉलेरी (Vibrio cholerae) नाम का जीवाणु हैजा रोग उत्पन्न करता है।

४. सर्पिल दंडाणु (spirillum)—कड़ा, तन्तु जैसा सर्पिल तथा सचल जीवाणु है। इस जाति का स्पिरिल्लम माइनस (spirillum minus) नामक एक जीवाणु चूहा काटने से ज्वर उत्पन्न करता है।

५ तरंगिल दंडाणु (spirochaetes)—पतला, लचीला, तंतु जैसा तथा पेंच की तरह मरोडा हुआ होता है। यह सचल होता है। इसमें सचलता जीवद्रव्य मे संकुचन-प्रसारण या मरोड़ से उत्पन्न होती है। उपदंश (syphilis) रोग का जीवाणु ट्रेपोनेमा पेल्लिडम (Treponema pallidum) इस जाति का जीवाणु है।

वैक्टीरिया एककोशिक जीव है। इसकी इसी एक ही कोशिका में समस्त जीवन-क्रिया होती है। वैक्टीरिया की कोशिका मे वनस्पयि अन्तयो की कोशिका की तरह कोशिका भित्ति होती है। लेकिन वैक्टीरिया की कोशिका

भित्ति मे साधारणतः सेलूलोस नही होता है। अधिकांश क्षेत्रो मे इसकी कोशिका भित्ति प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट से बनती है। कोशिका भित्ति पर एक प्रकार अवपंक (slime) का स्तर दिखाई देता है। कुछ अवस्थाओं मे, काफी मात्रा मे अवपक जमा होकर बैक्टीरिया को सम्पुटिका (capsule) का रूप दे देता है। सम्पुटिका-रूप में बैक्टीरिया प्रतिकूल अवस्था का काफी हद तक प्रतिरोध करने मे सक्षम होता है। इसलिए रोग उत्पन्न करनेवाले बैक्टीरिया का सपुटिका-रूप अत्यंत उपचार-प्रतिरोधी होता है।

लाभदायक तथा हानिकारक बैक्टीरिया

रूप तथा आकार के अनुसार बैक्टीरिया को विभिन्न जातियो में बाँटने के अलावा, साधारणत इन्हें तीन भागो मे बाँटा जा सकता है :—(१) ऐसे बैक्टीरिया जो मनुष्य को लाभ पहुँचाते है, अर्थात् लाभदायक बैक्टीरिया, (२) ऐसे बैक्टीरिया जो मनुष्य को नुकसान पहुँचाते हैं, अर्थात् हानिकारक बैक्टीरिया और (३) ऐसे बैक्टीरिया जो न तो मनुष्य को लाभ ही पहुँचाते है और न नुकसान ही।

साधारणत' लोग बैक्टीरिया को अपना शत्रु मानते हैं और अनेक प्रकार के रोगो का जन्मदाता भी। इसमे कोई शक नही कि कुछ ऐसे बैक्टीरिया हैं जो नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करते है तथा अन्य उपायो से जीवजगत् को हानि पहुँचाते है। लेकिन बैक्टीरिया की विशाल सत्ता की तुलना मे इनकी सख्या अत्यत नगण्य है। साथ ही इनकी तुलना मे लाभदायक बैक्टीरिया की सख्या बहुत ही अधिक है। कहा जा सकता है कि हानिकारक बैक्टीरिया, मनुष्य समाज के उन थोड़े-से लोगो के जैसे हैं, जो चोरी, डकैती, हत्या आदि समाज-विरोधी काम करते है।

लाभदायक बैक्टीरिया मे सर्वप्रथम उनका स्थान है जो हानिकारक जीवाणुओ से हमारी रक्षा करते हैं। मनुष्य-जीवन के प्रारभ से ही, शरीर के विभिन्न अगो—यथा मुँह, पाचनतत्र, श्वसनतत्र आदि—के अंदर अनेक प्रकार के बैक्टीरिया स्थायी रूप से रहने लगते है। ये बैक्टीरिया इन अगों को हानिकारक जीवाणुओ के आक्रमण से बचाते है। शरीर के अंदर हानिकारक जीवाणु प्रवेश करने से वे प्रतिजैविक पदार्थ (antibiotics) बनाकर उन्हे

नष्ट कर देते है। कई प्रकार के जीवाणुओं से उत्पन्न प्रतिजैविक पदार्थ औपधि के रूप में काम आते है।

प्रतिजैविक पदार्थ

जब दो जीवाणु, किसी उपयुक्त माध्यम मे बढने लगते हैं, उस समय, कुछ क्षेत्रो मे, इनमें से एक दूसरे का प्रतिरोधी बन जाता है। इस क्रिया को प्रतिरोध (antagonism) या प्रतिजीवाणुता (antibiosis) कहते हैं। प्रतिजीवाणुता के लिए उत्पन्न पदार्थ को प्रतिजैविक पदार्थ (antibiotics) कहते है।

पेनिसिलिन (Penicillin)

प्रतिजैविक पदार्थ के रूप मे पेनिसिलिन का आविष्कार, चिकित्साशास्त्र के इतिहास मे एक युगांतरकारी घटना है। सर्वप्रथम अलेकजदर फ्लेमिंग नाम के एक वैज्ञानिक ने देखा कि एक तस्तरी मे, जहाँ ऐगार (agar) के माध्यम मे स्टैफाइलोकोक्कस अरेरस (staphylococcu aureus) का सवर्धन (culture) किया जा रहा था, पेनिसिलिन नोटाटम (P. notatum) नामक एक प्रकार का कवक संक्रमित हो गया है। उन्होने यह भी देखा कि इस कवक ने अपने चारो ओर का स्टैफाइलोकोक्कस अरेरस को नष्ट कर दिया है। उन्होने सन १९२९, १९३१ और १९३२ में दिखाया कि द्रव माध्यम मे यह कवक एक प्रकार का पदार्थ बनाता है जो स्टैफाइलोकोक्काइ की वद्धि का प्रतिरोधी है। उन्होने इस पदार्थ को पेनिसिलिन नाम दिया। इसके दस साल बाद फ्लोरी नाम के वैज्ञानिक और उनके सहयोगी-गण यथेष्ट मात्रा में पेनिसिलिन अलग करने मे सक्षम हुए ताकि इसे चिकित्सा के काम में लाया जा सके।

टेट्रासाइक्लिन औषधि (Tetracycline drugs)

अरिओमाइसिन (Aureomycin) जैसी टेट्रासाइक्लिन औषधि, स्ट्रेप्टोमाइसीस अरिओफैसाइनस (streptomyces aureofaciens), से जो सुनहरा पीला रजक (pigment) उत्पन्न करता है, बनती है।

टेरामाइसिन (Terramycin)

टेरामाइसिन, स्ट्रेप्टोमाइसीस रिमोसास (streptomyces rimosus) नाम के भूमि बैक्टीरिया (soil bacteria) से बनती है।

क्लोरमफेनिकोल (Chloramphenicol)

यह औषधि भी एक भूमि-बैक्टीरिया स्ट्रेप्टोमाइसीस वेनिजुएलाइ (streptomyces venezuelac) से बनती है।

कृषि-कार्यों में बैक्टीरिया मनुष्य का बहुत बड़ा और महत्त्वपूर्ण सहायक है। वायुजीवी, परजीवी और जलीय पौधों को छोड़कर बाकी सभी पौधे मिट्टी से अपने खाद्य के लिए आवश्यक वस्तु संग्रह करते है। शाकाहारी प्राणी पौधो से और मासाहारी प्राणी शाकाहारी प्राणी से अपने पोषक पदार्थ पाते है। इस प्रकार लगभग सम्पूर्ण जीव-जगत् मिट्टी मे मिलनेवाले पोषक पदार्थ पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे निर्भर करता है। मिट्टी की उर्वरता उसमें इन पोषक पदार्थों की उपस्थिति पर निर्भरशील है। मिट्टी को उर्वर बनाने के लिए आवश्यक अधिकाश पदार्थ, विभिन्न बैक्टीरिया तथा अन्य अणजीव (micro-organism) की क्रिया से बनते है।

पेड-पौधे, जीव-जतु आदि के मरने के बाद, उनके शरीर पर बैसिलस सेरेउस (Bacillus cereus), बैसिलस माइकोइडीस (Bacillus mycoides), बैसिलस मेगाथेरियम (Bacillus megatheriuem) आदि की क्रिया से प्रोटीन निर्मुक्त होता है। प्रोटीन का पहले एमोनिकरण और फिर हरे पौधो के लिए अत्यावश्यक नाइट्रेट के रूप मे आवर्साकरण होता है। बैसिलस सबटिलिस (Bacillus subtiles), बैसिलस सेरेउस आदि अनेक जीवाणु स्टार्च का किण्वन (fermentation) करते है और उसे पौधो के अवशोषण-योग्य बनाते है। प्राणियो के शरीर में उत्पन्न नाइट्रोजनयुक्त व्यर्थ पदार्थ यूरिया, मल-मूत्र आदि के रूप मे उत्सर्जित होता है। इस यूरिया को, सूडोमोनस यूरियाइ (Pseudomonas ureac), सॉरसिना यूरियाइ (Sercina ureac), माइक्रोकोक्कस यूरियाइ (Micrococcus ureac) आदि यूरिया जीवाणु, पौधो के ग्रहण योग्य बनाने के लिए एमोनीकरण करते है। फलो के पेकटीन (pectin) तथा पोलीसिकेराइड (polysaccharide) को, बैसिलस मैसेंटेरिकस (Bacillus masentericus), क्लोस्ट्रीडियम बुटिरिकम (Clostridium butyricum) आदि जीवाणु तोड़कर पौधो के ग्रहण-योग्य शर्करा, जैविक अम्ल, कार्बन-डाइ-आक्साइड तथा हाइड्रोजन में परिणत करते हैं।

कुछ जीवाणु वायु से नाइट्रोजन अलग करके, उसका यौगिकीकरण करते हैं और पौधो के लिए ग्रहण-योग्य वनाते है। इस क्रिया को नाइट्रोजन विनिवेशन (nitrogen fixation) कहते हैं। उनमे एजोटोवैक्टर (Azoto-bactor) तथा क्लोस्ट्रडियम (clostridium) जाति के जीवाणु स्वतंत्र रूप से भूमि मे रहते हैं और वायु से नाइट्रोजन लेकर उसका विनिवेशन करते हैं। लेकिन राइजोवियम लेगूमिनोसरियम (Rhizobium leguminosorium) जैसे राइजोवियम जाति के जीवाणु, छीमीदार पौधों की जड में, गुटिका के अंदर सहजीवी (symbiotic) के रूप में रहकर नाइट्रोजन विनिवेशन करते है। साथ ही गोवर आदि के खाद में परिणत होना, कपोस्ट खाद वनना, पत्ते आदि से ह्युमस (humus) मिट्टी वनना आदि भी मुख्यतः जीवाणुओं की क्रिया से संभव होता है। वहुत-से जीवाणु, अणुजीव, फफूँदी, कवक आदि तरह-तरह के पदार्थो को तोडकर या सडा-गलाकर या किण्वन आदि करके, घुलनशील वना देते है, ताकि पौधे अपनी जड़ की सहायता से उनका अवशोपण कर सकें।

वहुत-से उद्योगों मे भी जीवाणु मनुष्य के सहायक होते है। विशेषकर खाद्य पदार्थ वनानेवाले उद्योगो में वहुत-सी प्रक्रियायो मे जीवाणु की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। जीवाणु की सहायता से किण्वन द्वारा पावरोटी, विस्कुट आदि के लिए मैदा तैयार किया जाता है। शर्करा के किण्वन से अलकोहल, शराव आदि वनते हैं। ऐसिटोवैक्टर एसिटी (Acetobacter aceti) या उसी जाति के अन्य जीवाणु की क्रिया से अलकोहल से सिरका (vineger) वनता है। कई प्रकार के अचार मे जीवाणु की क्रिया से स्वाद तथा गंध उत्पन्न होते हे। दूध से पनीर तथा दही वैसिलस एसिटी लैक्टस की क्रिया से वनते हैं। मास मे स्वाद, सुगंध तथा रंग लाने के लिए भी विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं की सहायता ली जाती है। जीवाणु की क्रिया से ही तम्वाकू की पत्तियो में विशेप प्रकार की गंध, चाय की पत्तियों मे स्वाद-गंध आदि उत्पन्न होते है।

लाभदायक जीवाणु से सख्या मे वहुत कम होने पर भी हानिकारक जीवाणु का प्रभाव जीव-जगत् पर वहुत अधिक पड़ता है। ये न केवल रोग उत्पन्न करते है, वल्कि चीजो को सड़ा-गलाकर वरवाद करने के साथ-साथ

भोज्य-विषाक्तता (food poisoning) भी उत्पन्न करते हैं। क्लोस्ट्रीडियम बोटुलिनम (Clostridium botulinum) ऐसी भोज्य-विषाक्तता उत्पन्न करता है जिससे श्वसन-तंत्र तथा रक्त-परिवहन-तंत्र मे पक्षाघात (paralysis) हो जाने के कारण ६५ फी सदी से भी अधिक मृत्यु हो जाती है। इसके अतिरिक्त बहुत-से रोग उत्पन्नकारी बैक्टीरिया के संबंध मे जानकारी पहले ही दी जा चुकी है।

यीस्ट (Yeast)

खमीर या यीस्ट भी बैक्टीरिया की तरह एककोशिक वनस्पति है। यह वनस्पति-जगत् के थैलोफाइटा सघ के कवक उपसघ मे पडता है। अन्य सभी एककोशिक जीव की तरह यीस्ट की भी एक ही कोशिका मे संपूर्ण जीवन-क्रिया होती है। यीस्ट की कोशिका गोलाकार, अडाकार या लबी होती है। इसमे कोशिका भित्ति होती है, जिसके अदर कोशिका द्रव्य रहता है। कोशिका के मध्य भाग मे एक केद्रक होता है। यीस्ट के केद्रक मे एक विशेषता यह है कि उसके अदर एक बड़ी-सी धानी होती है। कभी-कभी काशिका के अदर माइटोकोड्रिया (mitochondria) भी पाया जाता है।

यीस्ट का प्रजनन विखडन (fission) या मुकुलकायन (budding or gemmation) द्वारा होता है। विखडन के समय पहले कोशिका लंबी होने लगती है और उसका केद्रक दो भागो मे बँट जाता है। केद्रक के दो टुकड़े कोशिका के दो सिरे की ओर चले जाते है और फिर कोशिका बीच में से टूटकर दो कोशिकाएँ बन जाती है। कुछ जाति के यीस्ट मुकुलकायन द्वारा सख्या-वृद्धि करते है। परिपक्व कोशिका अपने शरीर मे एक या अधिक उद्‌र्ध्व (outgrowth) उत्पन्न करती है। फिर केद्रक के विभाजित होने पर, उसके एक-एक टुकड़ा प्रत्येक उद्‌र्ध्व मे पहुँच जाता है। एक हद तक वृद्धि के बाद उद्‌र्ध्व कोशिका से अलग हो जाता है और नयी कोशिका बन जाता है। इसे मुकुलकायन कहते है। इन दो विधियो से प्रजनन के अलावा कई जाति के यीस्ट लैंगिक विधि से भी प्रजनन करते है। इनमे दो कोशिकाएँ पास आकर परस्पर सयुक्त हो जाती हैं और उनके संयुक्त शरीर के अंदर पहले कई केद्रक और फिर प्रत्येक केद्रक को केद्र बनाकर एक-एक नयी कोशिका उत्पन्न हो जाती है।

जिन कार्वनिक पदार्थो मे शर्करा की मात्रा अधिक होती है, उनमे यह रंगहीन जीवाणु भी काफी मात्रा मे मिलते है। अंगूर तथा ताड-खजूर के रस मे यीस्ट की उपस्थिति के कारण ही किण्वन होता है। यीस्ट शर्करा को अलकोहल मे परिर्वात्तत कर देता है। ताड या खजूर के रस में यीस्ट की उपस्थिति के कारण ही मादक पेय ताडी वनती है। इसी प्रकार अंगूर के रस से नाना प्रकार की शरावे भी यीस्ट के कारण ही वन सकती है।

पावरोटी, केक आदि वनाने के लिए भी यीस्ट की आवश्यकता होती है। यीस्ट शर्करा को अलकोहल में परिवर्त्तित करने के साथ-साथ कार्वन डाइ-आक्साइड गैस भी उत्पन्न करता है। यीस्टयुक्त गुंधे हुए मैदे मे मे कावन-डाइ-आक्साइड गैस ऊपर निकलने लगता है और इस क्रिया से पावरोटी, केक आदि मे स्पंजीपन आ जाता है। घर मे केक आदि वनाते समय मैदे मे सोडा-वाइकार्व (खाने का सोडा) मिला देने से उसमे से कार्वन-डाइ-ऑक्साइड गैस निकलकर केक मे स्पंजीपन ला देता है।

वाइरस (Virus) या विषाणु

दुनिया मे जितने जीव हैं वाइरस उनमें सबसे सूक्ष्मतम जीव हैं। इसे साधारण माइक्रोस्कोप यत्न से देखा नही जा सकता है। केवल इलेक्ट्रन माइक्रोस्कोप (electron microscope) की सहायता से इसका फोटो उतारा जा सकता है। वाइरस निर्जीव पदार्थ के माध्यम से न तो जीवित ही रह सकता है और न वशवृद्धि ही कर सकता है। यह सपूर्ण रूप से परजीवी है और केवल जीव-कोशिका के अदर ही जीवित रह सकता है तथा वशवृद्धि कर सकता है। मनुष्य, पशु-पक्षी, पेड-पौधे यहाँ तक कि जीवाणु आदि पर भी वाइरस का आक्रमण होता है।

किसी जीव के शरीर के अंदर वाइरस की उपस्थिति, उसकी क्रिया द्वारा उत्पन्न प्रभाव से मालूम हो जाता है। अभी तक मनुष्य, अन्य प्राणियो तथा वनस्पतियो मे नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करनेवाले तीन सो से अधिक प्रकार के वाइरस का आविष्कार हुआ है।

चेचक (small pox), छोटी माता (chicken pox), पीतज्वर (yellow fever), पोलियो माइलाइटिस (poliomyelitics), खसरा (measles),

कनपेड़ (mumps), इन्फ्लूएंजा (influenza), साधारण जुकाम (common cold), एनकेफेलाइटिस (encephalitis), कैंसर (cansor), ट्रकोमा (trachoma) आदि बीमारियाँ वाइरस द्वारा उत्पन्न होती है।

आलू, टमाटर, मूंगफली, तवाकू आदि का चित्ती रोग, मूली वंदगोभी, चुकदर आदि का कुंचिताग्र (curly top) रोग आदि भी वाइरस द्वारा उत्पन्न होते हैं।

वाइरस जीवजगत् को कोई लाभ नही पहुँचाता वल्कि अपनी विर्षक्रिया द्वारा नुकसान ही पहुँचाता है। इसलिए इसे विषाणु भी कहते है।

अध्याय ३

पौधों के विभिन्न अंग

बहुकोशिक जीव के शरीर की कोशिकाओ मे कार्य-विभाजन होता है और सबके भिन्न-भिन्न कार्यों को मिलाकर बहुकोशिक जीव की जीव-नक्रिया संपूर्ण होती है। उन्नत जीवों मे विभिन्न जीवन-क्रियाओं के लिए अलग-अलग अंग होते हैं। उदाहरण के लिए मनुष्य के शरीर में हाथ, पैर, मुँह, दाँत, कान, आँत, हृदय, फेफड़े आदि अनेक अंग-प्रत्यग होते हैं। ये अंग-प्रत्यंग विभिन्न प्रकार के कार्य करते है और सबके सामूहिक कार्यो को मिलाकर मनुष्य की जीवन-क्रिया चलती रहती है। इसी प्रकार पौधो के शरीर में जड़, तना, पत्ती, फूल आदि अनेक अंग-प्रत्यंग होते हैं और वे विभिन्न प्रकार के काम करते है।

साधारणतः पौधे बीज द्वारा वंश-विस्तार करते हैं। बीज के अंदर शिशु-पौधा या पौधे का भ्रूण (embryo) निष्क्रिय पडा रहता है। अनुकूल परि-स्थिति पाते ही वह सक्रिय हो उठता है और बीज के ऊपर के आवरण को तोड़ कर बीजाकुर या शिशु पौधे (seedling) के रूप मे बाहर निकल आता है। इसे अंकुरण (germination) कहते हैं। बीज के अंदर पौधे का भ्रूण तथा उसके लिए खाद्य—दोनो मौजूद होते है ; क्योकि सक्रिय होते ही भ्रूण को खाद्य की आवश्यकता पड़ती है और उस समय वह बाहर से खाद्य जुटाने में असमर्थ रहता है। अंकुरण के समय पौधों के सभी अंग विकसित नही रहते है। अंकुरण के बाद धीरे-धीरे पौधे के शरीर में विभिन्न अग निकल आते हैं और उनके विकास के साथ-साथ बीज से पूर्ण पौधा बन जाता है।

पौधे के शरीर को दो मुख्य भागो में बाँटा जाता है, वे है—(१) जड़ (root) तथा (२) प्ररोह (shoot)।

जड साधारणतः प्रकाश से दूर मिट्टी के अंदर चली जाती है और प्ररोह प्रकाश की ओर हवा मे फैलता है। अपने स्वभाव के कारण इनके रूप, रंग,

कार्य आदि मे भी काफी भिन्नता होती है। प्ररोह का अधिकतर भाग आमतौर से हरा होता है, लेकिन जड साधारणतः हरी नही होती है। अधिकाश जड सफेद, भूरी, मटमैली या रंगहीन होती है। प्ररोह मे कली, पत्ते, फूल, फल, पर्व, गाँठ आदि होते है, लेकिन जड मे ये सब नही होते। किसी पौधे की जड मे अगर कली निकलती है तो उसमे पत्ते या फूल के बजाय नया प्ररोह जन्म लेता है।

जड़ या मूल (root)

अधिकाश बीजो के अदर पौधे के भ्रूण, उनके लिए खाद्य तथा एक सूत-जैसी पतली सरचना होती है। इस सरचना के उस सिरे को, जो बढ़कर मिट्टी के नीचे चला जाता है और जड बनता है, मूलाकुर (radical) कहते है। इस सरचना के दूसरे सिरे को, जो बढकर मिट्टी के ऊपर निकल आता है और प्ररोह बनाता है, प्राकुर (plumule) कहते हैं। बीज के अंदर भ्रूण का क्रियाशील होकर बढने लगने की क्रिया या अकुरण के लिए वायु, पानी तथा उचित मात्रा मे गर्मी अत्यावश्यक है। इनमे एक की भी कमी होने से ठीक से अकुरण नही हो सकता है।

अंकुरण के समय अधिकाश बीजो के मूलाकुर बढकर मिट्टी के अंदर चले जाते हैं और पौधे की पहली जड बन जाते हैं। परजीवी, वायवीय और जलज पौधो को छोडकर लगभग सभी पौधो की जडें मिट्टी के अंदर रहती हैं और वही शाखा-प्रशाखाएँ फैलाकर बढती है।

उत्पत्ति के हिसाब से जड़े दो प्रकार की होती हैं :—(१) मूसल जड़ (tap root) तथा (२) आगंतुक जड़ (adventitious root)।

मूसल जड़

बीज के मूलाकुर बढकर पौधो की प्रथम जड बनाते हैं। लगभग सभी ऐसे पौधो की, जिनके बीज के अंदर दो दल होते हैं, मूलाकुर से बनी प्रथम जड़, उनके जीवन-काल तक बनी रहती है और मूलतत्र की मुख्य जड़ का रूप ले लेती है। इसे मूसल जड़ कहते हैं। इस प्राथमिक मुख्य जड़ से बहुत-सी शाखा-प्रशाखाएँ निकलती हैं। शाखा जडो को परवर्ती जड़ (secondary root), तथा उनसे निकली प्रशाखाओ को प्रमूल (tertiary root) कहते है। ये सब जड़े मिलकर, पौधे के नीचे, मिट्टी के अंदर एक जाल-सा

फैला देती हैं, जिसे मूसल मूल तत्र (tap root system) कहते है। चना, मटर, आम, इमली, गाजर, मूली आदि की जड़ मूसल जड़ है।

आगंतुक जड़

मूलाकुर से वननेवाली प्राथमिक जड से असवधित जडों को आगतुक जड़ कहते है। आगंतुक जड केवल मिट्टी के नीचे ही नही निकलती, वल्कि कुछ पौधो के अन्य भागो से भी निकलती है।

साधारणत उन पौधो की, जिनके वीज के अंदर एक ही दल होता है, मूलांकुर से वननेवाली प्राथमिक जड, कुछ दिनो के वाद सूख जाती है। इसके सूख जाने के पहले ही पौधे के नीचे से या उनकी गाँठो से पतली-पतली वहुत-सी जड़े निकल आती है और जमीन के अंदर फैल जाती है। ये आगतुक जड हैं। ऐसी जड को तंतुमय जड (fibrous roots) भी कहते हैं। धान, गेहूँ, मकई आदि की जड़ आगतुक जड़ है।
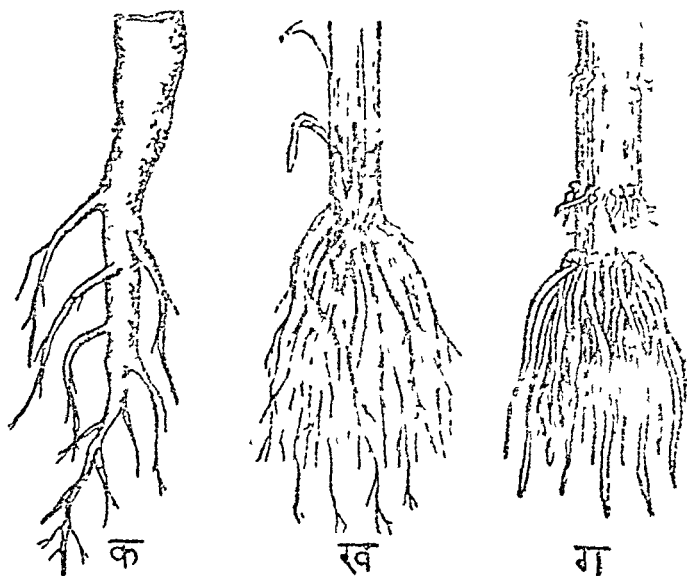
[चित्र १५३—क—मूसल जड, ख तथा ग—आगतुक जड़]

जड के कार्य

सभी प्रकार की जडे मुख्यतः तीन काम करती है :—

(१) जमीन के अंदर शाखा-प्रशाखाएँ या तंतुजाल फैलाकर पौधो को मिट्टी से बाँध रखती है। मिट्टी के अदर जड़ के फैलाव के कारण ही पौधे जमीन पर खड़े रह सकते है और आँधी-तूफान आदि से आसानी से गिरकर नष्ट नही होते है।

(२) जड मिट्टी से पानी के साथ घोल के रूप मे विभिन्न प्रकार के पोषक पदार्थों को चूसकर ऊपर भेज देती है, ताकि वह पौधो के शरीर के उचित भागो मे पहुँच सके।

(३) सभी पौधो की जड़ मे थोडा-बहुत खाद्य जमा रहता है, ताकि समय पर काम आ सके।

इन कामो के अतिरिक्त कुछ पौधो की जड़े और भी बहुत-से काम करती है। इन कामो को करने के लिए उनकी आकृति भी परिवर्त्तित हो जाती है। इस प्रकार परिवर्त्तित जड को रूपांतरित जड़ (modified root) कहते है। रूपातरित जड़ें कई प्रकार की होती है, जिनमे निम्नलिखित प्रधान है :—

१. *संग्रही मूल* (storage root) : कई प्रकार के पौधे अपनी जडो मे अधिक परिणाम मे खाद्य जमा करते है, जिससे उनकी जड़े फूलकर नाना प्रकार के आकार ले लेती है। मूसल तथा आगंतुक, दोनो प्रकार की जडो मे इस प्रकार रूपातरण होता है। आकार के अनुसार रूपातरित जड को भिन्न-भिन्न नाम दिये गए है।

(क) तुर्करूप (fusiform) जड़ ऊपर-नीचे पतली और बीच मे मोटी होती है। ऊपरी भाग नीचे से मोटा होता है। उदाहरण—मूली।

(ख) शंकुरूप (conical) जड़ का ऊपरी भाग सबसे मोटा होता है और वहाँ से जड धीरे-धीरे नीचे की ओर पतली होती जाती है। उदाहरण—गाजर।

(ग) कुम्भीरूप (napiform) जड़ देखने मे हंडी-जैसी होती है। इसका ऊपरी भाग काफी मोटा तथा निचला भाग पतला होता है। उदाहरण—शलजम, चुकंदर।

जड़ के ये तीनो रूपातरण केवल मूसल जड की मुख्य जड में होता है।

(घ) कंदरूप (tubercular) जड़ विभिन्न अनियमित आकारो की होती है और पौधो की अलग-अलग गाँठो से निकलती है। उदाहरण—शकरकंद।

(च) गुच्छ कंदरूप (fascicular) जड तने के ठीक नीचे ही एक साथ गुच्छे मे होती है तथा अनियमित आकार की होती है। उदाहरण—दहलिया फूल की जड़।

(छ) ग्रंथिल (nodulose) जड़ मे, पतली जड़ के नीचे का अंश फूल कर ग्रंथि जैसा वन जाता है। उदाहरण—आवा हलदी।

ये तीनो आगंतुक जड के रूपातरित रूप है।
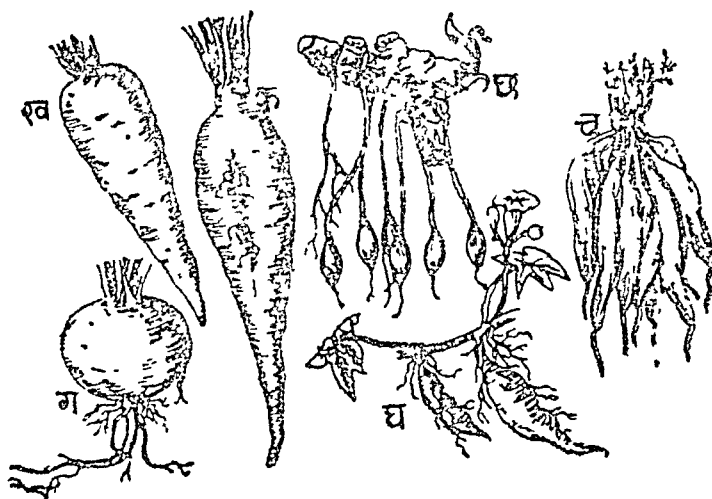
[चित्र १५४—विभिन्न प्रकार के संग्रही मूल : क—तुर्करूप, ख—शंकुरूप, ग—कुंभीरूप, घ—कदरूप, च—गुच्छ कंदरूप, छ—ग्रंथिल।]

२. स्वांगीकारक मूल (assimilatory roots) : दूसरे पौधों पर उगनेवाले कुछ पौधो की जड़े वायु में लटकी हुई रहती हैं और पत्ती-जैसे पौधो के लिए खाना बनाती है। इनमे पर्णहरिम होता है तथा इनका रंग हरा होता है। उदाहरण—गुर्जे की जड़।

३. *उपरिरोही मूल* (epithytic roots) : उपरिरोही मूल भी दूसरे पौधों पर उगनेवाले पौधों मे होता है और लटकता रहता है। इस प्रकार जड मे असख्य छोटे-छोटे छिद्र होते है, जिनकी सहायता से पौधे वायु से नमी चूसकर पानी की आवश्यकता को पूरा करते हैं। उदाहरण—ऑर्किड की जड़।

४. *परजीवी मूल* (parasitic root or haustarium) : यह जड़ परजीवी पौधो मे होती है। यह पोषक पौधे के शरीर के अंदर घुस जाती है और वहाँ से खाद्य तथा पानी चूसती है। उदाहरण—आकाशबेल की जड।

५. *आरोही मूल* (climbing and clinging roots). दूसरो का सहारा लेकर ऊपर चढनेवाली बेलो की गाँठो से यह जड़ निकलती है और सहारे से चिपक कर बेल को ऊपर चढ़ने मे मदद करती है। उदाहरण—आइवी, पान आदि की गाँठो से निकलनेवाली जड।

६. *स्तंभ मूल* (prop root) : इस तरह की जड पेड की शाखाओ से निकलकर जमीन तक आ जाती है और शाखाओं को स्तंभ-जैसा सहारा देती है। उदाहरण—बरगद को सहारा देने वाली जड़।

७. *जटा मूल* (stilt root) : यह जड पौधे के तने से निकलकर जमीन तक पहुँच जाती है और फिर तने को खड़ा रहने मे सहायता करती है। उदाहरण—केवडे को सहारा देनेवाली जड़।

८. *तैरता मूल* (floating root) · पानी मे होनेवाले कुछ पौधो की गाँठों से फूली हुई सफेद रंग की एक प्रकार की जड़ निकलती है। यह पौधे को तैरने मे तथा श्वसन-क्रिया मे सहायता करती है। उदाहरण—जूसिया की जड़।

९. *श्वसन मूल* (breathing roots) : दलदल आदि मे होनेवाले कुछ पौधों की साधारण जड से निकलकर इस प्रकार की जड़ें, दलदल या पानी से ऊपर निकल आती हैं। इनके ऊपरी सिरे पर छोटे-छोटे छेद होते है, जिनसे होकर वायु जड़ तक पहुँच जाती है।

१०. *प्रजनन मूल* (reproductive roots) : कुछ पौधो की जडो मे कलियाँ निकलती है और उनसे नये पौधे जन्म लेते है। उदाहरण—परवल, शकरकंद।

जड़ की रचना

जड़ की रचना उसके कार्य के अनुरूप होती है। जड़ साधारणत. मिट्टी के अंदर प्रकाश से दूर रहती हे; इसलिए अधिकांश क्षेत्रों में इसका रंग सफेद या मटमैला या भूरा होता है। इसे मिट्टी के अंदर प्रवेश करना पड़ता है, इसलिए जड़ के अग्रभाग को घर्पण से बचाने के लिए प्रत्येक के अग्रभाग में एक टोपी-जैसा आवरण होता है। इस आवरण को **मूलछद** (root cap) कहते है।
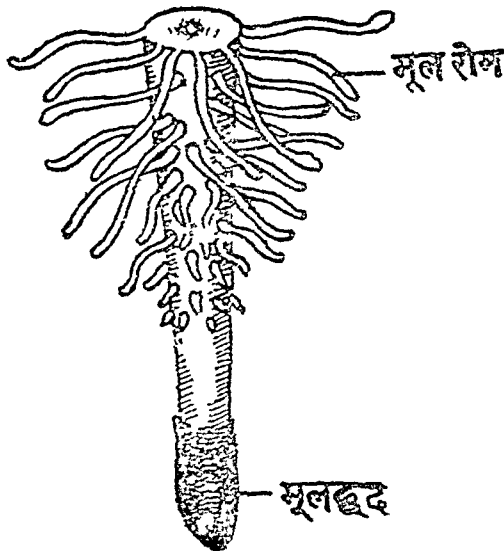
[चित्र सं० १५५—जड़ का अग्रभाग]

जड़ मे असंख्य छोटे और पतले वालो जैसी सरचना होती है। इन्हें **मूलरोम** (root hair) कहते है। मूलरोम का मुख्य काम है मिट्टी के अंदर से पानी के साथ घुले हुए पोपक पदार्थों को चूसना। साथ ही वे पौधे को मिट्टी से जमे हुए रहने मे भी सहायता करते है। मूलरोम अधिक दिन तक नही जीते है। जैसे-जैसे जड में वृद्धि होती है, वैसे-वैसे ऊपर के मूलरोम सूख कर झड़ जाते और नीचे नये-नये मूल रोम निकल आते है।

तना (Stem)

अंकुरण के समय प्राकुर बढकर मिट्टी के ऊपर प्रकाश की ओर फैलता है और प्ररोह (shoot) को जन्म देता है। धीरे-धीरे प्ररोह तना, कलिका,

शाखा-प्रशाखा, पत्ते, फूल आदि पौध के विभिन्न अ ग-प्रत्यगो मे वट जाता है और एक पूर्ण विकसित पौधे का रूप ले लेता है। अधिकाश क्षेत्र मे तना शुरू मे हरा तथा कोमल होता हे और कुछ पौधो मे अ ततक वैसा ही रह जाता है। लेकिन वहुतो मे, वृद्धि के साथ-साथ तना कड़ा होता जाता है और उसके ऊपर भूरे रग की छाल का मजवूत आवरण जम जाता है।

तना मोटा-पतला, कडा-कोमल, शाखायुक्त-शाखाहीन हो सकता है। कुछ पौधो के तने मिट्टी के नीचे भी होते है। लेकिन सभी मे कुछ विशेष लक्षण होते है, जिन्हे देखकर तने को पहचाना जा सकता है। तने में या उससे निकली शाखा-प्रशाखाओ मे कलिका, पत्ते, फूल तथा फल लगते है। उसपर गाँठ तथा पर्व अवश्य ही होते है।

तने के, एक पत्ते से लेकर दूसरे पत्ते तक के अ श को पर्व (internode) कहते है। तने की जिन जगहो से पत्त निकलते हैं उन्हें पर्व-सधि या गाँठ (node) कहते है। तने के साथ पत्ते द्वारा वनाये हुए कोण को कक्ष (axil) कहते है। पर्व-सधि पर पत्ते की वगल मे एक कोणाकार सरचना निकलती है, जिसे कक्षकली (axillary bud) कहते है। कक्षकली वढकर शाखा वन जाती है। तने के सिरे पर भी कलिका निकलती है। इसे अग्रकली (terminal bud) कहते है। जव तक अग्रकली निकलती रहती है तव तक पौधो मे वृद्धि होती रहती है। शाखा-प्रशाखाओ मे भी इसी प्रकार, पर्व, पर्व-सधि, कक्षकली तथा अग्रकली होती है।

तने का प्रकार-भेद

साधारणत तना भूमि के ऊपर वायु मे रहता है। ऐसे तने को वायवीय तना (aerial stem) कहते है। कुछ पौधो के तने या तनो का एक अ श भूमि के नीचे होता है। ऐसे तने को भूमिगत तना (subterranean stem) कहते हैं।

वायवीय तना दो प्रकार के होते हैं —(१) सशक्त तथा (२) निर्वल। सशक्त तना कडा और मजवूत होता है और इसलिए भूमि पर सीधा खड़ा रह सकता। निर्वल तना कमजोर और कोमल होन के कारण सीधा खडा नही रह सकता है। इसलिए या तो वह जमीन पर फैलता है या किसी मजवूत सहारे को पकडकर ऊपर चढता है। दूसरो का सहारा लेकर ऊपर चढनेवाले तने को आरोही (climber) तना कहते हैं।

पान-जैसे कुछ पौधो के आरोही तने की गाँठो से एक प्रकार की जड़ निकलती है, जिसके सहारे से चिपककर पौधा ऊपर चढता है। ऐसे तनो को मूलारोही (root climber) तना कहते है। कुछ पौधो के तनो से सूत-जैसे तंतु (tendril) निकलते है। इन तंतुओ की सहायता से सहारा पकडकर पौधा ऊपर चढता है। इन्हे ततु आरोही (tendril climber) कहते हैं। लौकी, कुम्हड़ा आदि इस प्रकार के पौधे है। वाउगेनवेलिया या आरोही गुलाव जैसे कुछ पौधे, हूक जैसे टेढ़े काँटो की सहायता से, सहारे को पकडकर ऊपर चढते है। इन्हे कटकारोही (hook climber) कहते है। मालती जैसे कुछ पौधे अपने तने से ही सहारे को लपेटते हुए ऊपर चढते हैं। इन्हे वेल या वल्ली (twinner) कहते हैं।

रूपांतरित तना (Modifid stem)

आवश्यकता के अनुसार तना कई रूप ले लेता है। कुछ भूमिगत तने अपने मे खाद्य जमा करते है और फूलकर विभिन्न रूप ले लेते है, मुख्यत ये चार प्रकार के होते है :—

(१) कंद तना (tuber) मिट्टी के नीचे होता है और देखने मे गोल या अंडाकार होता है। भूमिगत तने की शाखा-प्रशाखाओ के अग्रभाग में खाद्य जमा होकर इस प्रकार का रूप ले लेता है। इसपर गाँठ, पर्व आदि चिह्न देखकर इन्हे तने के रूप मे पहचाना जा सकता है। उदाहरण—आलू।

(२) प्रकंद तना (rhizome) लवा होता है। इससे वहुत-सी शाखा-प्रशाआएँ निकलती है और उनमे भी खाद्य जमा होने के कारण सभी फूली हुई होती है। इनपर गाँठो का चिह्न स्पष्ट दिखाई पडता है। उदाहरण—अदरक, हल्दी।

(३) घनकद तना (corm) गोल या लवा होता है। इनपर भी गाँठ, पर्व आदि साफ दिखाई पडते है। इनसे शाखाएँ निकलकर नये घनकंद तना वन जाते है। उदाहरण—अरवी, जमीकद।

(४) वल्व तना (bulb) छोटी-सी उन्नतोदर चकती-जैसा होता है। इसके नीचे से आगंतुक जड निकलती है और ऊपर एक वड़ी-सी कलिका होती

है। प्याज, वल्व का एक उदाहरण है। इसमें सवसे नीचे का अपेक्षाकृत कडा सफेद अंश, असल मे, तना है।

[चित्र १५६—रूपांतरित तना : क—आलू, ख—अदरक, ग—प्याज, घ—लंवाई से कटा हुआ प्याज]

कायातरित तना (**Metamorphosed stem**)

कुछ पौधो का तना इस प्रकार से वदल जाता है कि देखकर पहचानना मुश्किल हो जाता है। इन्हे कायातरित तना कहते हैं जो मुख्यतः तीन प्रकार के होते है :—

(१) पर्णायित तना (phylloclade) पत्ता जैसा चिपटा लेकिन गुद्दे दार होता है। इसमें पर्णहरिम होने के कारण इसका रंग पत्ता जैसा हरा
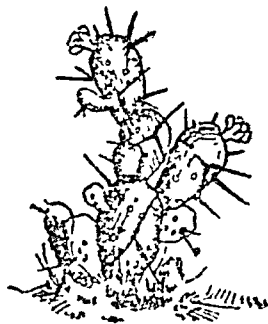
[चित्र १५७—नागफनी]

होता है और यह पत्ते की तरह खाना भी वनाता है। यह अपने में खाद्य भी जमा करता है और इसलिए गुद्दे दार होता है। कुछ पर्णायित तनो मे पत्ते

काँटे का रूप ले लेते है। जिन जगहों मे पानी की कमी होती है, वहाँ इस प्रकार के तने के पौधे अधिक होते हैं। उदाहरण—नागफनी, घीकुमार।

(२) स्तभ तंतु (stem tendril) एक प्रकार की सूत-जैसी संरचना होती है। इसकी सहायता से पौधे सहारे को पकड़कर ऊपर चढ़ते हैं। साधारणतः स्तंभ-तंतु शाखा के कायांतरित रूप होते हैं। उदाहरण—लौकी, कुम्हड़ा आदि के आरोही तंतु।

(३) स्तंभ कंटक (stem thorn) काँटा-जैसी संरचना है। किसी-किसी पौधे मे कक्षकली शाखा के रूप मे विकसित न होकर काँटे के रूप में कायांतरित हो जाती है। ड्यूरेटा जैसे कुछ पौधो के काँटो में फूल, पत्ते आदि लगते हैं। उदाहरण—आरोही गुलाव के काँटे।

लेकिन, सभी पौधो के काँटे तनो के कायांतरित रूप नही है। गुलाव के काँटे उनके तने पर उभार मात्र हैं। नागफनी के काँटे पत्ते के कायांतरित रूप हैं।

तने का कार्य

सभी पौधो का तना कम-से-कम दो काम अवश्य ही करता है। एक तो अपने में शाखा-प्रशाखा, पत्ते, फूल-फल आदि उत्पन्न करता है तथा उन्हें सहारा देता है। दूसरा, जड़ द्वारा शोषित पानी तथा पोषक पदार्थों को पत्तों और पौधो के अन्य भागो में पहुँचा देता है, साथ ही पत्तियो में वने खाद्य को भी तना पौधों के सभी अंगो मे पहुँचा देता है। कुछ पौधो के तने पौधे को खड़ा रखते है। कुछ पौधो के तने रूपातरित या कायातरित होकर और भी नाना प्रकार के काम करते हैं।

पत्ते

जैसे आदमी को चेहरा देखकर पहचाना जाता है, उसी प्रकार, साधारणतः, पौधो को उनके पत्ते देखकर पहचाना जाता है; क्योंकि विभिन्न प्रकार के पौधो के पत्तो मे कुछ-न-कुछ भिन्नता अवश्य ही होती है और उन्हें देखकर पौधे का वोध हो जाता है।

पत्तों की उपयोगिता

पत्ते, पौधो के वहुधंधी अंग है। पेड़-पौधों की शाखा-प्रशाखाओ मे चारो ओर पत्ते लगे होते हैं और इस प्रकार फैले होते है कि उन्हे अधिक-से-अधिक सूर्य-किरण मिल सके। अधिकाश पौधो के पत्तो मे पर्णहरिम होने के कारण पत्तो का रग हरा होता है। हरे पत्तो को 'पौधो का रधनशाला' कहा जा सकता है। मिट्टी से पानी और वायु से कार्वन-डाइ-आक्साइड लेकर पौधे, हरे पत्तो मे, सूर्य-किरण और पर्णहरिम की सहायता से, अपना खाद्य वनाते है। इस क्रिया को प्रकाश-सश्लेपण (photosynthesis) कहते है। मुख्यत पत्तो की ही सहायता से पौधो की श्वास-क्रिया भी चलती रहती है। पौधे मिट्टी मे प्रचुर मात्रा मे पानी ग्रहण करते है। जितना पानी पौधे की जीवन क्रिया के लिए आवश्यकता मे अधिक हो जाता है, उसे भी वह पत्तो की ही सहायता मे त्यागता है। इस क्रिया को वाष्पोत्सर्जन (transpiration) कहते है। कुछ पौधे अपने पत्तो मे खाद्य भी जमा करते है।

पत्तों के विभिन्न भाग

पत्ते को मोटे तौर पर तीन भागो मे वाँटा जा सकता है · (१) पर्णाधार (leaf base), (२) पर्णवृन्त (petiole) तथा (३) पर्णदल या फलक (blade)।

पत्ते का जो अश तने के साथ लगा हुआ होता है, उसे पर्णाधार कहते है। पर्णाधार से पर्णवृन्त निकलता है और पत्ते के अत तक चला जाता है। पत्ते के चौडे भाग को पर्णदल या फलक कहते है। कुछ पौधो के पत्ते मे पर्णवृन्त नही होता। ऐसे पत्ते को अवृन्तक (sessal) और पर्णवृन्तयुक्त पत्ते को सवृन्तक (petiolate) पत्ता कहते है।

पत्ते विभिन्न आकार तथा रूप के होते है। इनके अदर शिरा-विन्यास (venation) भी विभिन्न प्रकार के होते है। अधिकाश पत्तो के मध्य भाग मे एक वड़ी शिरा होती है और उससे शाखा-प्रशाखाएँ निकलती है, जो पर्णदल के दोनो छोर तक चली जाती है। कुछ पत्तो मे मध्य शिरा की सख्या एकाधिक होती है।

पत्र-विन्यास

पौधो मे पत्ते इधर-उधर अनियमित ढंग से नही लगते हैं। बल्कि प्रत्येक पौधे मे पत्ते एक निश्चित क्रम से लगते है। सरसो, पीपल आदि की प्रत्येक गाँठ पर एक ही पत्ता लगता है। पत्ता एक दूसरे से विपरीत दिशा मे निकलता है। इसे एकांतरित क्रम से पत्र-विन्यास कहते हैं। तुलसी-जैसे बहुत-से पौधों की प्रत्येक गाँठ की दो बगलो मे दो पत्ते निकलते है। साथ ही, पत्तो का एक जोडा, दूसरे जोडे से विपरीत दिशा मे निकलता है। इसे विपरीत क्रम से पत्र-विन्यास कहते हैं। कनेर जैसे कुछ पौधो मे एक ही गाँठ पर कई पत्ते निकलते है। इसे गुच्छ पत्र-विन्यास कहते है।

विभिन्न प्रकार के पत्ते

पौधो मे चार प्रकार के पत्ते लगते है। सही माने मे पत्ते होते हुए भी इनमे से तीन, साधारण पत्तो से रंग-रूप-गुण आदि मे भिन्न होते है :—

(१) सत्य पत्र (foliage leaf) को ही आमतौर पर पत्ता कहा जाता है। इनका रंग हरा होता है और इन्ही मे ऊपर दी गई विशेषताएँ तथा क्रियाएँ होती हैं।

(२) पुष्पपत्र (floral leaves) फूल की रंग-बिरंगी पंखुडियो को कहते है। ये तथा फूल के निचले भाग मे लगी हुई हरे रंग की संरचनाएँ भी असल मे पत्ते ही है।

(३) बीजपत्रीय पत्र (cotyledonary leaves) अंकुरण के समय ऐसा पत्र कुछ पौधो के प्ररोह के साथ निकलता है। इमली, आम आदि कुछ द्विबीजपत्री पौधो के अंकुरण के समय प्ररोह के साथ दोनों दल बाहर निकल आते है और शिशु पौधे के प्रथम दो पत्ते बन जाते है। इनकी बनावट उस पौधे के सत्यपत्र से भिन्न होती है।

(४) शल्क पत्र (scale leaves) भूमिगत तने में छोटी-छोटी पत्तियों के रूप मे निकलता है। आकार मे काफी छोटा होने के अलावा साधारणतः इसका रंग भूरा या मटमैला होता है। प्याज के अंदर रंगहीन और ऊपर लाल रंग के शल्क पत्र होते है।

इस प्रकार विभाजन के अतिरिक्त रचना के हिसाब से पत्तो को दो भागों मे बांटा जाता है—एकदल पत्र (simple leaves) तथा बहुदल पत्र (compound leaves) ।

एकदल पत्र के पर्णवृन्त मे केवल एक ही पर्णदल होता है। आम, जामुन आदि के पत्ते इस श्रेणी के है। वहुदल पत्र मे एक पर्णवृन्त मे एकाधिक पर्णदल होते है। बहुदल पत्र के पर्णदल को अणुपर्णदल कहते है। विभिन्न
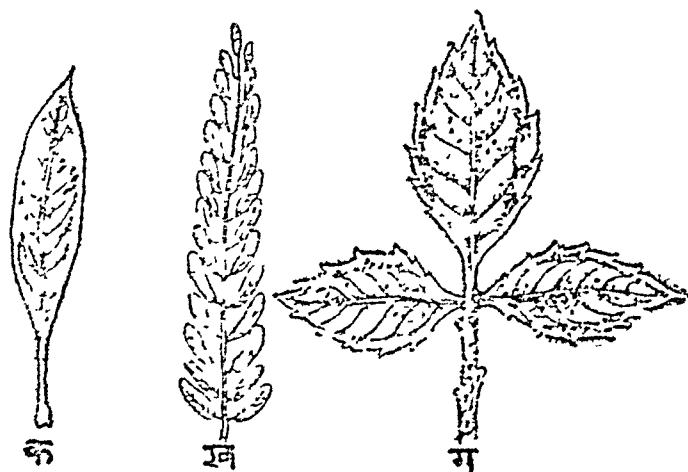
[चित्र १५८—क—एकदल पत्र, ख तथा ग—बहुदल पत्र]

पौधो के अणुपर्णदल, एक पर्णवृन्त के दोनों ओर विभिन्न क्रम मे सजे हुए रहते है। गुलाब, इमली आदि के पत्ते बहुदल पत्र हैं।

फूल

वनस्पति का सबसे सुन्दर अग फूल है। जो फूल दिन मे खिलते है, वे साधारणत. रग-बिरगे होते है और जो रात मे खिलते है, वे साधारणतः सफेद होते है। फूल मनोरजन के साधन है। फूल से लोग घर सजाते है। इसका आभूपण शरीर की शोभा बढाता है। फूल से नाना प्रकार के सुगंधित द्रव्य तथा दवाएँ बनती है। कई प्रकार के फूलो को लोग खाते भी हैं। फूल पौधों का प्रजनन करनेवाला अंग है जो तने से लगा रहता है। इसके अन्दर जननेन्द्रियाँ भी रहती हैं।

फूल के विभिन्न भाग

अधिकाश फूलो मे चार भाग होते है। इन भागो को चक्र कहते है। ज्यादातर फूल एक वृन्त या डठल के माध्यम से तना या शाखा-प्रशाखा से जुडे हुए होते है। वृन्त के जिस सिरे पर फूल लगना है वह अपेक्षाकृत मोटा होता है। इसे पुष्पासन (thalamus) कहते है।

(१) वाह्य दलपुंज (calyx)—फूल के प्रथम चक्र को वाह्य दलपुंज कहते है। इसे फूल का वहिरावरण भी कहा जाता है। यह फूल के बाहर की ओर, सबसे नीचे और पुष्पासन के ऊपर होता है। अधिकाश फूलो मे वाह्य दलपुंज हरे रंग की छोटी-छोटी पत्तियो से वनता है। इन पत्तियो को वाह्य दल या आच्छादन पत्र (cepals) कहते हैं। अधिकाश पौधो के फूल मे वाह्य दल अलग-अलग होते हैं और इन्हे पृथक्दली वाह्यदल (polysepalous) कहते हैं। कुछ फूलो में वाह्य दल परस्पर एक-दूसरे के साथ जुडे हुए होते ह। इन्हे युक्तदली वाह्यदल (gamosepalous) कहते है। वाह्य दल कली या नन्ही अवस्था मे फूल और फल की रक्षा करता है।

(२) दलपुज (corolla)—यह फूल का दूसरा चक्र तथा उसका अतरावरण है। अधिकांश फूलो मे यह चक्र रंगीन पखुड़ियो से वनता है, जिसे दलपत्र कहते हैं। फूल का यह सवसे सुन्दर अंश है। कुछ फूलो के दलपत्र मे सुगधि होती है। अधिकतर फूलो मे दलपुज के दलपत्र अलग-अलग होते हैं। इन्हे पृथक्दली दलपत्र कहते है। कुछ फूलो मे दलपत्र एक-दूसरे से जुड़े हुए होते है। इन्हे युक्तदली दलपत्र कहते है।

फूल की शोभा होने के साथ-साथ दलपत्र फूल मे परागण की क्रिया मे सहायता करता है, फूल के अंदर के जननेद्रियो की रक्षा करता है और जरूरत पड़ने पर अपने मे खाद्य जमा करता है।

(३) पुमंग (androecium)—यह फूल का तीसरा चक्र है, जो दलपुंज के अंदर होता है। पुमग मे लम्बे-लम्बे दड जैसे पुंकेसर (stamens) होते है। पुंकेसर के सिरे पर पिटारी की तरह छोटे-छोटे कोष होते है। इन्हे पराग-कोष (anther) और पुंकेसर के दड को पुतंतु (filament) कहते है। पराग-कोष के अदर पीले रंग का एक चूर्ण होता है, जिसे

पराग (pollen) कहते हैं। साधारणत पुंतंतु की जड़ में एक प्रकार की ग्रंथि होती है, जिसमें एक मीठा स्वादिष्ट रस होता है। इस ग्रंथि को मकरंद-कोष (nectary) और रस को मकरंद (nectar) कहते हैं।

(४) स्त्री अंग (gynoecium)—यह फूल का चौथा चक्र है, जो फूल के ठीक मध्य भाग में सभी चक्रों से घिरा हुआ होता है। इसमें एक लंबा डंठल जैसा स्त्री-केसर (pistil) होता है, जो योनि-नलिकाओं से बनता है। प्रत्येक योनि-नलिका में तीन भाग होते हैं। सबसे ऊपर में वर्तिकाग्र (stigma), बीच में लंबी वर्तिका (style) और नीचे अंडाशय (ovary) होते हैं। अंडाशय में छोटे-छोटे बीजांड (ovules) होते हैं।

[चित्र १५९—फूल के विभिन्न अंग]

वर्तिकाग्र पर परागकण गिरने से, पराग वर्तिका में होकर अंडाशय में चला जाता है और बीजांड के साथ मिलकर बीज उत्पन्न करता है। परागकण और बीजांड के मिलने की क्रिया को संसेचन (fertilisation) तथा वर्तिकाग्र पर परागकण के गिरने की क्रिया को परागण या परागसेचन (pollination) कहते हैं।

पुमंग और स्त्री-अंग, जननेंद्रिय होने के कारण, इन्हे फूल का अनिवार्य अंग और वाह्य दलपुंज तथा दलपुंज को सहकारी अंग कहते है। जिन फूलो में ये सभी अंग मौजूद होते हैं उन्हे पूर्णांग पुष्प (complete flowe;) कहते है। अधिकांश फूल पूर्णांग पुष्प है। लेकिन लौकी, कुम्हड़े, खीरे आदि जैसे कुछ पौधों में दो प्रकार के फूल होते हैं। एक प्रकार के फूल में पुमाग तथा दूसरे में स्त्री-अंग रहता है। प्रथम को पुरुष पुष्प और द्वितीय को स्त्री पुष्प कहते हैं। स्त्री पुष्प में फल लगता है; लेकिन इसके लिए परागण की आवश्यकता होती है। इनमें परागण वायु तथा चीटी, मधुमक्खी, तितली आदि कीट-पतंगों द्वारा होता है। पूर्णांग पुष्प में स्वयं सेचन (self pollination) होता है। वायु, कीट-पतंग आदि भी इनमें परागण में सहायता करते है। कीट-पतंग फूल का सुगध, रंग या मकरंद से आकृष्ट होकर फूल पर जा बैठते है और परागण मे सहायता करते है।

गुच्छ पुष्प (Composite flower)

कुछ जाति के पौधो में फूल अलग-अलग खिलने के वजाए, एक साथ वहुत-से मिलकर खिलते है। देखने में एक मालूम पड़ने पर भी इस जाति के फूल असल मे छोटे-छोटे वहुत-से फूलों के समूह हैं। गेंदे, सूर्यमुखी आदि इस प्रकार के फूल है। इन्हें गुच्छ पुष्प कहते हैं।

फल

फल, पौधे का वह अंग है, जो हमारे सवसे अधिक काम मे आता है। साथ ही, फल पौधो के वंश-विस्तार का भी साधन है। ससेचन हो जाने के वाद अडाशय तथा कभी-कभी फूल के अन्य भागो मे भी वृद्धि शुरू हो जाती है और फल की रचना होती है। साधारणत· फूल के अन्य सभी भाग मुरझा-कर गिर जाते है और केवल अंडाशय वड़ा होकर फल वन जाता है। फूल के दूसरे अंग भी जिन फलो की रचना मे भाग लेते है उन्हें कृत्रिम फल (talse fruit) कहते है।

प्रत्येक फल के दो मुख्य भाग होते है। पहला, फल का वाहरी भाग, जो परिपक्व अंडाशय की दीवार का रूपातरित रूप है। इसे

फलावरण (pericarp) कहा जाता है। दूसरा भाग बीज है, जो बीजाण्ड से बनता है।

साधारणतः फलावरण के तीन भाग होते हैं —

(१) उपरिच्छद (epicarp) : यह फल का सबसे बाहरी भाग है। यह साधारणतः पतला और चिकना होता है। साधारण भाषा में इसे छिलका कहते हैं।

(२) मध्य छद (mesocarp) यह फल का मध्य भाग है। यह साधारणतः मोटा तथा गूदेदार होता है। खानेवाले अधिकांश फलों के इसी अंश को खाया जाता है।

(३) अन्तछद (endocarp) यह भाग फल के सबसे भीतर होता है। साधारणतः यह कठोर या झिल्लीदार होता है और बीज की रक्षा करता है।

फल तीन प्रकार के होते हैं —

१. सधारण फल (simple fruit) : जब केवल एक ही फूल से फल बनता है, तब उसे साधारण फल कहा जाता है। साधारण फल दो प्रकार के होते हैं। शुष्क फल और सरस फल। शुष्क फल तैयार हो जाने से उसका फलावरण सूखकर कठोर हो जाता है। जिसिया बादाम, गेहूँ, चना, मटर आदि शुष्क फल हैं। सरस फल गूदेदार होता है। इसका फलावरण मोटा होता है। सरस फल कई प्रकार के होते हैं :—

[चित्र १६०—लम्बाई से कटा हुआ आम।]
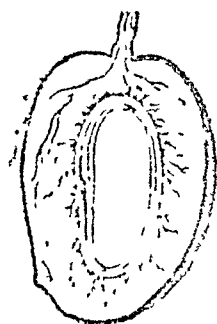
(क) गुठलीदार (drupe)—इसके फलावरण में स्पष्ट तीन भाग होते हैं। उपरिछद पतला, मध्यछद गूदेदार मोटा और अंतछद कठोर होता है। अंतछद कठोर होने के कारण इसे स्टोन फ्रुट (stone fruit) भी कहते हैं। उदाहरण—आम।

(ख) पोम (pome) . यह कृत्रिम फल है। इसमे गुद्दार भाग फूल के पुष्पासन से वनता है। असली फल इसके अंदर होता है। उदाहरण –सेव।
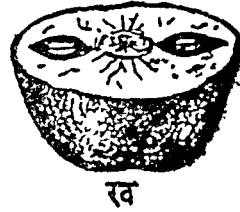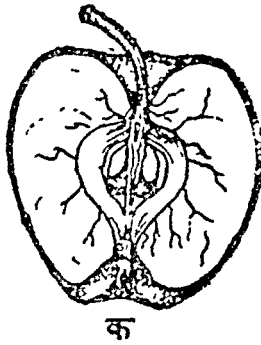
[चित्र-सख्या १६१—लवाई और वीच से कटा हुआ सेव]

(ग) वेरी (berry) इस फल के फलावरण मे तीन भाग तो होते है, लेकिन अतछद कठोर नही होता है। वेरी एक वीज वाला या वहुवीज वाला हो सकता है। उदाहरण—वैंगन, अमरूद।

(घ) हेसपेरेडियम (hesperidium) : यह अनेक वीज वाला फल है। इसमे फलावरण के दो भाग—ऊपरिछद और मध्यछद—सटे हुए होते हैं।
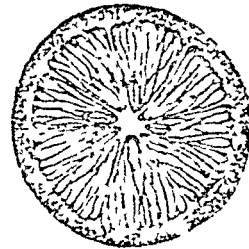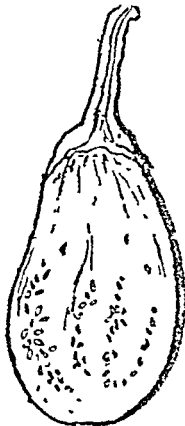
[चित्र १६२—क—लवाई मे कटा हुआ वैगन ख—वीच मे कटा हुआ नीवू]

दोनों को मिलाकर साधारणत. छिलका समझा जाता है। अतछद झिल्ली-दार होता है। उदाहरण—नीवू, सतरा, वैंगन।

(२) समूह फल : समूह फल भी साधारण फल के समान एक फूल से बनता है। किंतु इसके फूल के स्त्री केसर मे बहुत-से स्वतंत्र अंडाशय होते हैं और प्रत्येक अंडाशय एक साधारण फल बन जाता है, जिसे लघु फल (friutlet) कहते हैं। एकत्रित लघु फलो के समुदाय से बने हुए फल को समूह फल कहा जाता है। उदाहरण—शरीफा।

(३) सयुक्त फल : संयुक्त फल गुच्छ-पुष्प के गुच्छ से बनता है। यह कृत्रिम फल होता है। उदाहरण—अनन्नास, कटहल।

फल के कार्य

फल बीज की रक्षा करता है। जब तक बीज पककर तैयार नही हो जाता है, तब तक वह साधारणत. फल के अंदर छिपा हुआ रहता है। साथ ही, फल बीज के फैलने मे भी मदद करता है।

बीज का फैलना

वायु, पशु, पक्षी, पानी का बहाव, मनुष्य आदि बीज को दूर-दूर ले जाकर पौधो के वंश-विस्तार मे सहायता करते हैं। बीज के उपयुक्त जमीन मे गिरने से तथा उपयुक्त मात्रा मे पानी, वायु और गर्मी पाने से ही नये पौधे उत्पन्न हो सकते है।

पौधे की जीवन-क्रिया

पोषाहार

प्रत्येक जीव को, चाहे वह प्राणी हो या वनस्पति, जीवन-क्रिया के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ऊर्जा आहार से मिलती है। अंग-प्रत्यंगों या शाखा-प्रशाखाओं को पुष्ट रखने के लिए तथा वृद्धि के लिए भी भोजन की आवश्यकता होती है।

केवल थोडे-से कीट-भोजी पौधो को छोडकर और कोई भी पौधा ठोस खाद्य ग्रहण नही कर सकता। उन्हे घोल के रूप में खाद्य का शोषण करना पड़ता है। खाद्य-ग्रहण की इस विधि को **वनस्पति-सदृश पोषाहार-विधि (holophytic mode of nutrition)** कहते है। वनस्पति और प्राणी में पोषाहार-विधि मे ही सर्वप्रधान अंतर है। पौधा अपने शरीर के अंदर अकार्वनिक पदार्थ, जैसे कार्वन-डाइ-ऑक्साइड और पानी को कार्वोहाइड्रेट जैसे कार्बनिक पदार्थ में परिवर्तित कर सकता है। प्राणी ऐसा नही कर सकता है।

प्रकाश-संश्लेषण (photosynthesis)

पौधो के शरीर वनाने का मुख्य उपादान, कार्वोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा वसा है। ये तीनो कार्वन के यौगिक हैं और इन्ही से पौधो को ऊर्जा भी मिलती है। कोई भी पौधा बाहर से कोई कार्वनिक पदार्थ खाद्य के रूप में ग्रहण नही करता। सभी पौधे अपने शरीर के अंदर ही अपने पोषाहार के लिए कार्वनिक पदार्थ वना लेते है। यह काम उनके शरीर के प्रत्येक हरे अंश में होता है; लेकिन पत्तो मे यह काम विशेष रूप से होता है। सूर्य के प्रकाश की सहायता से ही यह काम हो सकता है। इसलिए इसे **प्रकाश-संश्लेषण** कहते हैं। पौधो के हरे भाग की कोशिकाओं में पर्णहरिम (chlorophyll) नाम के हरे रंग का एक पदार्थ होता है। इसकी उपस्थिति के बिना प्रकाश-संश्लेषण नही हो सकता।

पत्तो की सतह पर असख्य छोटे-छोटे छिद्र होते है। ये छिद्र इतने छोटे होते है कि इन्हे खाली आँखो से देखा नही जा सकता है। इन्हें स्टोमैटा (stomata) कहते है। पौधो की शाखाओं मे भी छोटे-छोटे छिद्र होते है। इन्हें वातरंध्र कहते है।

स्टोमैटा तथा वातरध्रो मे मे होकर वायु पत्ते आदि मे प्रवेश करती है। वहाँ जड द्वारा शोपित जल भी तना तथा शाखा-प्रशाखाओ मे होकर पहुँच जाता है। वायु मे से कार्वन-डाइ-ऑक्साइड उम पानी मे घुल कर पर्णहरिम-युक्त कोशिकाओ मे प्रवेश करता है। यहाँ पर पर्णहरिम तथा प्रकाश की क्रिया से कार्वन-डाइ-ऑक्साइड, कार्वोहाइड्रेट तथा ऑक्सीजन मे परिवर्तित हो जाता है। अर्थात् वनस्पतियो मे कार्वन-डाइ-ऑक्साइड + पानी, पर्णहरिम तथा सूर्यकिरण की क्रिया से परिवर्तित होकर, कार्वोहाइड्रेट + ऑक्सीजन हो जाते है। इनमे कार्वोहाइड्रेट पौधो के पोपाहार मे काम आता है और ऑक्सीजन वाहर निकल जाता है। यह क्रिया सूर्य-किरण की उपस्थिति के विना नही हो सकती है। इसलिए प्रकाश-संश्लेपण केवल दिन में ही हो सकता है।

पौधो मे प्रकाश-सश्लेपण न केवल पौधो के पोपाहार के लिए आवश्यक है, वल्कि समस्त जीव-जगत् के लिए यह एक आवश्यक क्रिया है। इस क्रिया से न केवल वायु मे ऑक्सीजन तथा कार्वन-डाइ-ऑक्साइड गैसो का सतुलन वना रहता है, वल्कि इससे समस्त प्राणि-जगत् को भोजन भी मिलता है। पौधो से या पौधों को खाकर जीवित रहनेवाले प्राणियो के मास से मनुष्य तथा अन्य सभी जंतुओ को पोषाहार के लिए कार्वनिक पदार्थ मिलता है। इसलिए हरे पत्तो को 'दुनिया का रसोईघर' कहा जा सकता है।

पौधो के पोषाहार के लिए आवश्यक अन्य अकार्वनिक पदार्थो तथा पानी का पौधे, अपनी जड़ की सहायता से, घोल के रूप मे शोपण कर लेते हैं। इस प्रकार अधिकाश पौधे अपना खादय अपने-आप वना लेते है और मिट्टी से शोषण कर लेते है। इन्हें स्वयंपोषी (autotropic) पौधे क. ते है। लेकिन कुछ पौधो की पोपाहार-विधि भिन्न होती है, जिनमे परजीवी, कीटभोजी, तथा मृतोपजीवी पौधे आते हैं।

परजीवी पौधे (Parasitic plants)

इस श्रेणी के कुछ पौवो में पर्णहरिम न रहने के कारण वे अपना खाद्य अपने-आप नही वना सकते ; इसलिए उन्हें दूसरे स्वयपोपी पौधो से अपना खाद्य जुटाना पड़ता है। जिस पौधे से परजीवी पौधे अपना खाद्य ग्रहण करते है उसे 'पोपक पौधा' कहा जाता है। परजीवी पौधे अपनी सूक्ष्म जड़े पोषक पौधे के तनो तथा शाखा-प्रशाखाओं के अंदर प्रवेश करा देते है और पोपक द्वारा प्रस्तुत खाद्य का शोपण कर लेते है। अमरवेल एक पर्णहरिमहीन परजीवी पौधा है। इसका रग हलका पीला होता है।

कुछ परजीवी पौधो मे पर्णहरिम होता है और वे अपना कार्वनिक खाद्य खुद वना लेते है। लेकिन वे अकार्वनिक खाद्य तथा पानी पोपक के शरीर से ग्रहण करते हैं। इन्हे 'आंशिक परजीवी' कहते है।

कीटभोजी पौधे

इन पौधो मे पर्णहरिम होता है और वे अपना कार्वनिक खाद्य वना लेते हैं। लेकिन, आमतौर से वे ऐसे स्थानों मे उगते है, जहाँ मिट्टी से उनके नाइट्रोजन की आवश्यकता पूरी नही होती है। इस कमी को पूरा करने के लिए वे कीड़ो को पकड़कर पचा लेते है। असम मे मिलनेवाला सुराहीवाला पौधा (pitcher plant) या नेपेंथिस (nepenthes), ड्रोसिरा या सनड्यू (drosera or sundew), ब्लैडरवर्ट (bladderwort) आदि कीटभोजी पौधे है। ये विभिन्न उपायो से कीड़ो को पकड़ते और पचा जाते है।

सुराहीवाला पौधे मे पत्ते के अगले भाग कीड़े पकडने के लिए एक ढक्कनदार सुराही जैसा वन जाता है। सुराही का किनारा, कीड़ो को आकर्षित करने के लिए, सुन्दर सजा हुआ होता है और उसके तले में पाचक रस मिला हुआ एक अम्लीय द्रव भरा रहता है। सुराही मे कीडा आ वैठने पर निकल नही पाता और नीचे के द्रव मे डूवकर मर जाता है। पौधा धीरे-धीरे कीड़े को पचा लेता है।

ड्रासिरा के पत्तों पर वहुत-से वाल जैसे सस्पर्शक (tentacles) होते हैं, जिनके सिरे पर एक-एक ग्रंथि होती है। इस ग्रथि से एक प्रकार का चिपचिपा रस निकलता है। जव कोई कीड़ा इनपर आ वैठता है, उस समय वह इस

रस मे चिपक जाता है और साथ ही चारो ओर से सस्पर्शक मुड़कर उसे अंदर बंद कर लेता है। फिर पौधा धीरे-धीरे उसे पचा लेता है। पाचन-
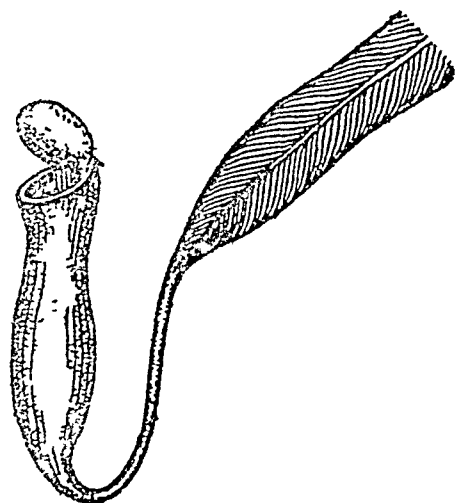
[चित्र स० १६३—सुराहीवाला पौधे का एक पत्ता]

क्रिया संपूर्ण हो जाने के वाद पत्ते के संस्पर्शक फिर फैलकर पूर्वाकार धारण कर लेते है।
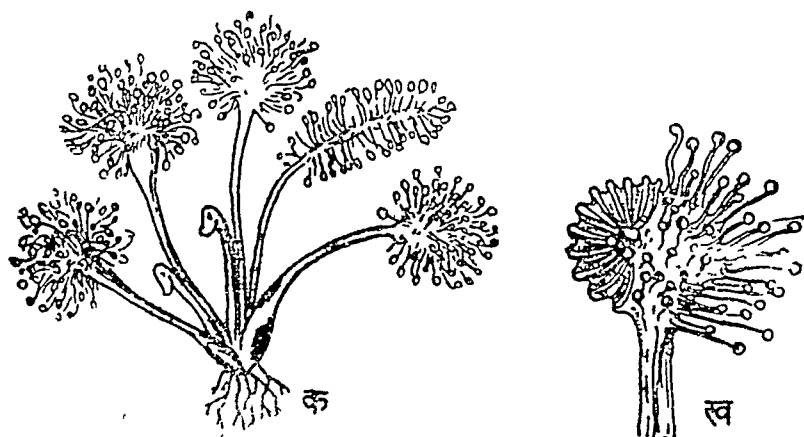
[चित्र १६४-क—ड्रासिरा का पौधा, ख—एक पत्ता]

मृतोपजीवी पौधे (Saprophytic plants)

इस श्रेणी के पौधो मे पर्णहरिम नही होता। और वे अपने कार्वनिक खाद्य के लिए मृत जीव-जतु, पेड़-पौधे आदि पर निर्भर करते है। छत्रक (mushroom) इसका एक साधारण उदाहरण है।

श्वसन (respiration)

जीवमात्र ही श्वास लेते हैं। पौधा भी जीवित पदार्थ है और जन्म से मृत्यु तक श्वास लेता रहता है।

प्रत्येक जीवित पदार्थ सर्वदा कुछ-न-कुछ काम करते रहते हैं। देखने मे अक्रिय लगने पर भी पौधो मे भी वहुत-सी क्रियाएँ—रस-शोषण, प्रकाश संश्लेषण, वास्पोत्सर्जन, वृद्धि आदि—चलती रहती है। दूसरे जीवों की तरह पौधो को भी इन क्रियाओ के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह ऊर्जा शरीर के अंदर भोजन को जलाकर ही प्राप्त हो सकती है। इसके लिए आक्सीजन की आवश्यकता पडती है और श्वसन द्वारा आक्सीजन मिल जाता है।

यह वात सही है कि प्राणियो के समान पौधो मे कोई निश्चित श्वसन अंग नही होता। वल्कि कहा जा सकता है कि पौधो के शरीर की प्रत्येक जीवित कोशिका इस काम को करती है। वायु के साथ आक्सीजन स्टोमैंटा तथा वातरंधो में से होकर पौधो के शरीर में प्रवेश करता है और शरीर के अंदर उत्पन्न कार्वन-डाइ-ऑक्साइड इन्ही छिद्रो से वाहर निकल जाता है। इस प्रकार पौधो के सभी अगो मे श्वसन-कार्य दिन-रात चलता रहता है, लेकिन दिन के समय श्वसन द्वारा उत्पन्न कार्वन-डाइ-ऑक्साइड प्रकाश-सश्लेपण मे काम आ जाता है और वहुत कम मात्रा मे वाहर निकलता है। दिन मे पौधे प्रकाश-संश्लेषण के लिए वायु से भी कार्वन-डाइ-ऑक्साइड लेकर ऑक्सीजन त्यागते है। इसलिए दिन मे पौधो के आसपास वायु मे अधिक मात्रा मे ऑक्सीजन मिलता है, लेकिन रात को प्रकाश-सश्लेपण वद हो जाता है और पौधे श्वसन से कार्वन-डाइ-ऑक्साइड त्यागते है। इसलिए रात मे पौधो के नीचे कार्वन-डाइ-ऑक्साइड की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक हो जाती है और रात में पेड के नीचे सोना नुकसानदेह होता है।

श्वसन और प्रकाश-संश्लेषण में अतर

(१) श्वसन दिन-रात चलता रहता है। इसपर सूर्य-किरण का कोई प्रभाव नही होता है। प्रकाश-सश्लेषण केवल दिन मे, सूर्य के प्रकाश मे ही हो सकता है।

(२) श्वसन पौधो की प्रत्येक जीवित कोशिका मे होता है। प्रकाश-सश्लेषण केवल उन कोशिकाओ मे हो सकता है, जिनमे पर्णहरिम हो।

(३) श्वसन द्वारा ऊर्जा उत्पन्न होती है। प्रकाश-सश्लेपण द्वारा ऊर्जा-सग्रह होता है।

(४) श्वसन एक नाशकारी क्रिया है। इससे ऊर्जा उत्पन्न होते समय पौधे के शरीर का पदार्थ जलकर नष्ट होता है। प्रकाश-सश्लेषण पोषक क्रिया है। इससे शरीर बनानेवाला पदार्थ बनता है।

(५) श्वसन द्वारा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड गैस उत्पन्न होता है। प्रकाश-सश्लेषण द्वारा ऑक्सीजन गैस उत्पन्न होता है। दोनो क्रियाएँ वायुमडल मे ऑक्सीजन तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड गैसो के सतुलन की रक्षा करने मे सहायता करती है।

वाष्पोत्सर्जन (transpiration)

जीवित रहने के लिए पेड-पौधो को पानी की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए पेड-पौधे, जड की सहायता से मिट्टी से पानी का शोषण करते है। साधारणत. पौधे अपनी आवश्यकता से अधिक पानी का शोषण करते हैं। आवश्यकता से अधिक इस पानी को पौधे जलीय वाष्प के रूप मे वाहर निकाल देते है। इस क्रिया को वाष्पोत्सर्जन कहते है। पेड़-पौधो के सभी भागो से स्टोमैटा तथा वातरध्रो की सहायता से थोड़ा-वहुत वाष्पोत्सर्जन होता है। लेकिन, अधिकतर पौधो मे यह काम मुख्यतः पत्तो द्वारा ही होता है और पत्तो के निचले तल से सवसे अधिक होता है।

पानी को किसी जगह खुला छोड देने से वह अपने-आप भाप वनकर उडने लगता है। पानी का भाप वनना एक सरल प्रक्रिया है और केवल पानी की सतह पर ही होता है। यह एक भौतिक घटना है, लेकिन वाष्पोत्सर्जन

जीवित पदार्थ के अंदर जीवद्रव्य की क्रिया द्वारा संचालित एक जीवन-क्रिया है।

वाष्पोत्सर्जन द्वारा पौधे हवा मे जलीय वाष्प त्यागते हैं। इसलिए, यदि हवा मे जलीय वाष्प का परिमाण अधिक हो जाता है तो वाष्पोत्सर्जन की क्रिया भी धीमी पड जाती है। सूखी हवा वाष्पोत्सर्जन को तेज कर देती है। साथ ही, हवा जितनी तेजी से वहेगी, पौधो द्वारा वाष्पोत्सर्जन-क्रिया भी उतनी ही अधिक होगी। रोशनी भी वाष्पोत्सर्जन को बढ़ाने में सहायक होती है। वाष्पोत्सर्जन पर ऊष्मा का कोई सीधा प्रभाव नही पड़ता है। लेकिन, ऊष्मा से वायु सूख जाती है और इसलिए गर्मी के दिनो में वा पोत्सर्जन बढ जाता है। जमीन के नीचे पौधो के लिए मिलनेवाले पानी की मात्रा पर भी वाष्पोत्सर्जन का परिमाण निर्भर करता है।

जिन स्थानो में पानी कम मिलता है, वहाँ वाष्पोत्सर्जन खेती, बागवानी आदि के लिए एक समस्या है ; क्योकि साधारणत: इन स्थानों मे वायु भी शुष्क होती है, जिसके चलते वाष्पोत्सर्जन भी अधिक होता है। इसलिए इन स्थानो मे पौधो को बचाना मुश्किल हो जाता है। इस कारण से मरुभूमि-अंचलो मे पौधो के पत्ते काँटो मे रूपांतरित हो जाते है, ताकि वाष्पोत्सजेन कम-से-कम हो।

वाष्पोत्सर्जन की आवश्यकता

(१) वाष्पोत्सर्जन द्वारा पौधा अनावश्यक पानी को बाहर निकाल देता है।

(२) वाष्पोत्सर्जन के चलते जड़ द्वारा अधिक परिमाण मे पानी का शोषण होता है और उसके साथ पौधों को अधिकतर परिमाण मे खनिज लवण आदि मिल जाता है।

(३) जड़ से रस को ऊपर चढ़ने मे वाष्पोत्सर्जन के कारण सहायता मिलती है अर्थात् इस क्रिया से पौधो में खाद्य-परिवहन-कार्य में सहायता मिलती है।

(४) इस क्रिया के कारण अत्यधिक गर्मी मे भी पौधो का शरीर शीतल रहता है और जलकर नष्ट नही होता। इसके कारण गर्मी के दिनो मे पेड़ के नीचे ठंढक रहती है।

वाष्पोत्मर्जन मुख्यतः पत्ते की सतह् से होता है। सतह जितनी अधिक फैली होगी, वाष्पोत्सर्जन का परिमाण उतना ही अधिक होगा। इसलिए अधिक धूप या गर्मी होने से सूखी हवा मे वाष्पोत्सर्जन कम करने के लिए पौधे अपने पत्तो को सिकोड लेता है और उन्हे झुका देता है ताकि उनकी सतह कम हो जाय और वाष्पोत्सर्जन का परिमाण घट जाय।

उत्सर्जन (Excretion)

प्रत्येक जीव के शरीर के अंदर, जीवन-क्रिया के फलस्वरूप, कुछ-न-कुछ व्यर्थ पदार्थ अवश्य ही उत्पन्न होता रहता है। प्राणियो की तुलना मे, कम क्रियाशील होने के कारण, वनस्पति मे इस प्रकार अनावश्यक व्यर्थ पदार्थ कम उत्पन्न होता है। इसलिए वनस्पति मे कोई उत्सर्जन अंग नहीं होता।

वनस्पति अपने शरीर मे उत्पन्न अनावश्यक पदार्थों को पत्ते तथा छाल मे जमा करता है और समय-समय पर उन्हें गिराकर अनावश्यक पदार्थों को शरीर से बाहर निकाल देता है।

आर्थिक और व्यवहारिक महत्त्व की वनस्पतियाँ

वनस्पतियाँ मनुष्य का चिर सहचर है। जन्म से लेकर मृत्यु तक शायद ही कोई ऐसा समय आता है, जब हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वनस्पति-जात द्रव्यो से काम न लेते हों। हमारे खाने की अधिकाश वस्तुएँ—भात, दाल, रोटी, तेल, सब्जी आदि—वनस्पतियो से मिलती हैं। हम बैठते है तो लकड़ी से बनी कुर्सी आदि पर। सोते है तो लकडी की खाट पर। आग जलाते है तो लकडी, लकडी के कोयले या लकडी की ही उपज—कोयले से। हमारे पहनने-ओढने के कपडे भी वनस्पतियो की ही देन है। सफर करने की गाडी, नाव आदि मे भी लकडी अनिवार्य है। बीमार पडने पर वनस्पति-जात दवाएँ हमे स्वस्थ बनाती है। हमारे लिखने-पढने के कागज का भी मुख्य उपादान वनस्पति ही है। इस प्रकार मनुष्य के जीवन के हर पहलू के साथ वनस्पति का बहुत ही गाढा सबंध है।

वनस्पतिजात पदार्थों का सर्वप्रधान उपयोग खाद्य के रूप मे होता है। खाद्य के रूप मे शरीर की विभिन्न आवश्यकताओ को पूरा करने के साथ-साथ वनस्पतियों से हमे शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अत्यावश्यक विटामिन भी मिलते है। विटामिनों में मुख्य तीन विटामिन—ए, बी और सी—हमे वनस्पतियो से मिलते है। टमाटर, गाजर, हरी सब्जियो आदि से विटामिन ए; सेम, सोयाबीन, हरी सब्जी, मूँगफली, दाल आदि से विटामिन बी और हरी सब्जी, टमाटर, गाजर, सलाद की पत्ती, पालक, गोभी, सतरे, नीबू, आँवले आदि से विटामिन सी मिलते है।

खाद्य

मौसमी फसल

कुछ पौधे ऐसे होते है जो एक बार उगने के बाद बहुत दिन तक जिंदा रहते है और उनमें बार-बार फूल-फल आदि लगते है। आम, कटहल, सखुआ,

शीशम, गुलाब आदि इस श्रेणी के पौधे हैं। इन्हे वर्षानुवर्षी (perennial) पौधे कहते हे। किंतु बहुत-से पौधे ऐसे होते है जो साल के किसी विशेष मौसम मे उगते हे और थोडे ही दिनो के अदर फूल-फल आदि देकर सूख कर मर जाते है। ये मौसमी पौधे (seasonal plants) हैं। लगभग सभी खाद्य शस्य, दलहन, तेलहन, शाक-सब्जी, जूट, कपास आदि मौसमी पौधे हैं। इन्हे मौसमी फसल कहते है। मौसमी फसल उपजाने की क्रिया को कृषि या खेती कहते है।

कृषि

अधिकतर वनस्पतियाँ जगली पौधे के रूप में अपने-आप उगती है ; लेकिन बहुत-से पौधों को मनुष्य प्रयास करके उपजाते है। मुख्यत: फल-फूल, साग-सब्जी, अनाज और अन्य खाने-पीने तथा पहनने की चीजो के लिए पौधे उपजाये जाते हैं। दवा आदि बनाने के लिए, लकडी के लिए तथा अन्य व्यापारिक कामो के लिए भी पौधे लगाये जाते हैं।

विभिन्न प्रकार के अनाज, सब्जी आदि उपजाने के लिए कृषि-कार्य किया जाता है। स्टार्चप्रधान अनाज—धान, गेहूँ, मकई आदि की खेती बहुत बड़े पैमाने पर होती है। इन्हे सीरियल (cereal) कहते है। छीमीदार पौधे—चना, मटर, सरसो आदि की खेती भी काफी परिमाण मे की जाती है।

धान

धान भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण फसल है और खाद्य-शस्य मे इसकी खेती सबसे अधिक होती है। धान, घास-जातीय मौसमी पौधा है। इससे हमे चावल मिलता है। ससार के अधिकांश लोग इसे ही अपना मुख्य खाद्य मानते हैं। ग्रीष्मप्रधान देशों मे, जहाँ काफी पानी मिलता है, धान की अच्छी फसल होती है, क्योकि धान की खेती के लिए काफी पानी तथा गर्मी की आवश्यकता होती है। धान लगभग सभी प्रकार की मिट्टी मे उपजता है। किंतु इसके लिए चिकनी मिट्टी या बालू-ककड़-मिश्रित चिकनी मिट्टी अच्छी होती है।

धान बहुत प्रकार के होते हैं। रोपने तथा काटने के हिसाब से हमारे देश मे धान की फसल को तीन मुख्य भागो मे बाँटा जा सकता है :—

(१) **भदई या आउस धान**—इसे बैशाख-जेठ महीने मे बोया जाता और भादो के महीने मे काट लिया जाता है। इसमे अपेक्षाकृत कम पानी लगता है। लेकिन इसकी उपज भी कम होती है।

(२) **अमन धान**—हमारे देश में यह धान की मुख्य फसल है। इसे जेठ-अषाढ में बोया जाता है। अगहन-पूस तक यह पककर तैयार हो जाता है और काट लिया जाता है। अमन धान पहले एक छोटे-से खेत में छींट दिया जाता है। पौधा उगकर ९-१० इंच लंबा हो जाने के वाद, उसे जड़-समेत उखाडकर, पहले से जोत-कोडकर तैयार की हुई जमीन मे, कई पौधो का एक-एक गुच्छा एक साथ बैठा दिया जाता है। इसे रोपनी (transplantation) कहते हैं। रोपनी के समय खेत मे पानी होना अत्यावश्यक है। अमन धान की खेती के लिए काफी पानी की आवश्यकता होती है और इसकी उपज भी अच्छी होती है।

(३) **बोरो धान**—यह धान भादो के महीने मे बोकर कार्तिक महीने मे काटा जाता है। कही-कही इसकी दो फसले होती है। दूसरी फसल फागुन-चैत मे बोकर वैशाख-जेठ मे काट ली जाती है। इसका चावल काफी मोटा होता है। यह धान सब जगह नही बोया जाता।

हर प्रकार के धान का जन्म, वृद्धि तथा फलने का क्रम लगभग एक-सा होता है।

धान एकबीजपत्री पौधा है। इसकी जड़ गुच्छेदार होती है। बड़ा होने पर धान के पौधो से बालियाँ निकल आती है और उनसे फूल और फिर फूलों से धान फलता है। फसल पक जाने के साथ-साथ धान का पौधा सूख जाता है और उसका हरा रग सुनहरे-पीले रग मे बदल जाता है।

दाने निकाल लेने के बाद, धान के पौधे से, जिसे खर या पुआल कहते है, पशु-खाद्य तथा छप्पर आदि छाने का काम लिया जाता है। इस प्रकार धान के पौधे के सभी अग हमारे काम मे आते हैं। धान की फसल को खरीफ फसल कहा जाता है।

गेहूँ

गेहूँ भी मनुष्य का एक मुख्य खाद्य है। यह भी एक तृण-जातीय पौधा है। इसकी बहुत-सी जातियाँ होती है। हमारे देश मे पंजाब, उत्तर प्रदेश,

हरियाणा, विहार आदि राज्यो मे वडे पैमाने पर गेहूँ की खेती होती है। गेहूँ सूखे मौसम मे होता है और रब्बी-फसलों में प्रधान है। गेहूँ के लिए धान के बराबर पानी की आवश्यकता नही होती। फिर भी, अच्छी फसल के लिए तीन बार पर्याप्त सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। नवम्बर महीने मे गेहूँ बोया जाता है और मार्च तक वह पककर तैयार हो जाता है। अप्रैल तक इसे काट लिया जाता है।

जौ, मकई, ज्वार, बाजरे आदि को भी खाद्यान्न के रूप मे लगभग सारी दुनिया मे उगाया जाता है।

सरसो

हमारे देश की सर्वप्रधान तेलहन फसल सरसो है। इससे हमे सरसो का तेल मिलता है। यह भी एक रब्बी फसल है और लगभग गेहूँ के साथ ही बोयी तथा काटी जाती है। गेहूँ तथा सरसो के लिए, जलवायु, मिट्टी आदि की आवश्यकता एक ही तरह की होती है।

मटर

मटर से हमे एक प्रकार की दाल मिलती है। मटर एक छीमीदार पौधा है। इसका बीज द्विबीजपत्री होता है। इसका तना नरम, बेलनाकृति तथा खोखला होता है और अपने-आप खड़ा नही रह सकता। मटर भी रब्बी-फसल है। इसके लिए अधिक पानी की आवश्यकता नही होती।

मटर के फल को मटरछीमी कहते है, जिसके अंदर कई बीज सजे हुए होते है। फल पकने के साथ-साथ मटर का पौधा सूखकर मर जाता है।

चना

चना भी एक छीमीदार पौधा है। छीमीदार पौधों मे इसकी खेती सब से अधिक होती है। इसके लिए पानी की आवश्यकता बहुत कम होती है। यह भी रब्बी फसल है। चना हमारे देश में लगभग सभी जगह उपजाया जाता है।

छीमीदार पौधों की विशेषता

साधारणत: पेड़-पौधे मिट्टी से नाइट्रोजनयुक्त खाद्य ग्रहण करते है और उसके चलते मिट्टी मे नाइट्रोजनयुक्त पदार्थों की कमी हो जाती है। लेकिन,

छीमीदार पौधो के चलते जमीन में नाइट्रोजन की कमी के वजाए उसमें नाइट्रोन बढ़ जाता है।

कारण यह है कि इन पौधो की जड़ में एक प्रकार का वैंक्टीरिया रहता है। वैंक्टीरिया के रहने के लिए इन पोधो की जड़ में गाँठ होती है। वैंक्टीरिया इन गाँठो मे रहता है और हवा से नाइट्रोजन लेकर खाद्योपयोगी वनाता है। इससे न केवल पौधे को नाइट्रोजन मिल पाता है वल्कि साथ ही मिट्टी मे भी नाइट्रोजन की मात्रा वढ़ जाती है। वदले मे पौधे से वैंक्टीरिया को कार्वोहाइड्रेट-जातीय पदार्थ मिल जाता है। इस प्रकार से परस्पर आदान-प्रदान को **सहजीविता** (symbiosis) कहते है।

भूमि की ऊर्वराशक्ति की रक्षा करने के लिए अन्य जातीय पौधो के वाद छीमीदार पौधे की फसल उपजानी चाहिए। इससे मिट्टी में नाइट्रोजन की सतुलन-रक्षा होती है और उसकी उर्वरा शक्ति वनी रहती है। इसे फसल-चक्र (crop rotation) कहते हैं।

साग-सब्जी

हमारे भोजन का महत्त्वपूर्ण अ ग साग-सब्जियाँ भी है। इनके अभाव मे हमारा खाद्य संपूर्ण नही होता और शरीर के लिए आवश्यक समस्त पदार्थ नही मिल पाते हैं। साग-सब्जियो से शरीर के लिए अत्यावश्यक विटामिन तथा विभिन्न प्रकार के खनिज लवण मिलते हैं। साग-सब्जियो मे वदगोभी, पालक आदि के पत्तो को, टमाटर, वैगन, लौकी कुम्हड़े, आदि के फल को; आलू, कच्चू, प्याज आदि के रूपातरित तने को, फूलगोभी के फूल को तथा मूली, गाजर आदि की रूपातरित जड़ को हम विभिन्न तरीको से खाते है।

साग-सब्जियो की खेती मौसम, आवोहवा, मिट्टी की अवस्था तथा पानी की उपलब्धि पर निर्भर करती है। इसी हिसाव से विभिन्न स्थानो मे नाना प्रकार की सब्जियाँ उपजाई जाती है। धान, गेहूँ आदि फसलो की खेती से सब्जी की खेती मे अधिक तथा लगातार परिश्रम करना पड़ता है, साथ ही आर्थिक दृष्टि से इसमे लाभ भी वहुत अधिक है।

आलू

केवल हमारे देश मे ही नही, दुनिया के अधिकाश देशो मे आलू एक मुख्य सब्जी है। कुछ देशो मे तो आलू, भात-रोटी के स्थान पर मुख्य खाद्य पदार्थ

है। पटना आलू के बीज के लिए विख्यात है। आलू की खेती मे बहुत अधिक पानी की आवश्यकता नही होती है। बरसात के अंत से लेकर जाड़े तक इसकी दो फसले उगायी जाती हैं।

घरेलू बगीचा

घरेलू बगीचा घर की शोभा है। इसमे घर के आस-पास की पड़ी हुई जमीन साफ-सुथरी तथा सुन्दर बन जाती है।

घर मे अगर थोडी-सी भी ऐसी जमीन हो, जहाँ धूप मिलती है तो आसानी से घरेलू बगीचा बन जा सकता है। इसमे नाना प्रकार के फूल-पत्ते लगाये जा सकते है और साथ ही कुछ सब्जी भी उगायी जा सकती है। लौकी, कुम्हड़ा, सेम, खीरे, टमाटर, बैंगन, मिर्च आदि के थोडे-थोडे पौधे समय पर लगा देने से, बहुत कम परिश्रम से हमे ये सब्जियाँ मिल सकती हैं। इसमे आर्थिक लाभ के साथ-साथ मनोरंजन भी उपलब्ध होता है।

वस्त्र

वनस्पतिजात पदार्थो मे खाद्य के बाद वस्त्र का स्थान है। साधारण सूती कपड़े से लेकर सुन्दर और चमकीले नकली रेशम, रेयन आदि के कपडो का मुख्य उपादान वनस्पति ही है। पहनने, ओढने, बिछाने आदि सभी कामो मे, सारी दुनिया मे, सूती कपडे ही सबसे अधिक इस्तेमाल होते है। सूती कपड़े कपास के पौधे से मिलनेवाली रूई से बनते है।

कपास

कपास के पौधे भी मौसमी पौधे है और धान, गेहूँ आदि की तरह इनकी भी खेती की जाती है। हमारे देश मे दक्षिण भारत की काली मिट्टी के इलाके में बडे पैमाने पर कपास की खेती होती है।

कपास के पौधो मे पहले फूल और फिर फल लगता है। कपास के फल के कोष के अंदर रूई होती है। असल मे रूई कपास के वंश-विस्तार का साधन है। पक जाने के बाद कपास का फल फट जाता है और रूई बीज लेकर उडती हुई दूर-दूर तक चली जाती है और कपास के वंशविस्तार मे सहायता करती है। कपास के फल के पक जाने के साथ ही उसे पौधे से तोड लिया जाता है ताकि रूई उड़कर बरबाद न हो सके।

रूई से, सूत वनाकर, नाना प्रकार के कपड़े तो बनते ही हैं, साथ ही उससे तोशक, रजाई, गद्दे आदि भी बनते हैं। घाव की मरहम-पट्टी के लिए तथा अन्य वहुत-से कामो में रूई की आवश्यकता होती है।

कपास के वीज को विनौला कहते है। इसमे तेल निकलता है। विनौले के तेल से दालदा जैसा वनस्पति घी वनता है।

जूट या पटसन

यह भी एक मौसमी पौधा है। इसकी खेती के लिए काफी पानी की आवश्यकता होती है। पश्चिम वगाल, आसाम तथा विहार के पूर्वी भाग मे वड़े पैमाने पर इसकी खेती होती है। भारतवर्प को छोड़कर केवल वगलादेश मे वडे पैमाने पर इसकी खेती की जाती है।

जूट मुख्यत वोरा, टाट आदि वनाने मे काम आता है। साथ ही इससे रस्सी आदि भी वनती है ; साथ ही इससे नाना प्रकार के कपड़े भी वनते हैं। इससे गलीचा आदि भी वनाया जाता है।

काष्ठ (Timber)

खाद्य और वस्त्र के वाद ही वनस्पति का इस्तेमाल काष्ठ रूप में होता है। जहाज, नाव, रेल के डव्वे, रेल की पटरियाँ विछाने के पटरे तथा नाना प्रकार की गाड़ियो से लेकर घर के दरवाजे, खिड़कियाँ, छत के शहतीर, कुर्सियाँ, आलमारियाँ, वच्चों के खिलौने, पेंसिल, दियासलाइयाँ आदि वनाने मे काष्ठ की आवश्यकता पडती है।

स्पष्ट है कि छोटे-छोटे पौधे घास-जातीय पौधे, झाड़ियाँ, शाक-जातीय पौधे, आरोही पौधे आदि से काष्ठ नही मिल सकता ; केवल वृक्ष-जातीय पौधो से जो मोटे मजवूत तथा वडे होते है, काष्ठ मिल सकता है। लेकिन, सभी वृक्ष-जातीय पौधो से भी व्यवहार-योग्य काष्ठ नही मिलता। केवल उन्ही वृक्षो से अच्छा काष्ठ मिलता है, जिनके अंदर रेशे घनसन्निविष्ट तथा सीधे होते हैं और जिनमे पुराने तथा नये रेशे एक साथ नही मिले हुए होते हैं। इस प्रकार के वृक्ष को काष्ठ वृक्ष (timber tree) कहते हैं। ऐसे वृक्ष

३. क्राइथिडियल— क्राइथिडियल अवस्था मे ट्रीपानोसोमा का शरीर और लंबा हो जाता है। इस अवस्था मे फ्लैजेल्लाम शरीर के मध्य भाग से एक हिलनेवाली झिल्ली से जुड़ा हुआ होता है और केंद्रक शरीर के बीच मे रहता है।

४. ट्रीपानोसोमाल तथा मेटासाइक्लिक ट्रीपानोसोम—ट्रीपानोसोमाल अवस्था मे ट्रीपानोसोमा का शरीर पूर्ण रूप से लंबा होकर थोड़ा टेढ़ा हो जाता है और फ्लैजेल्लाम समस्त शरीर से दो या चार तह की झिल्ली से जुड़ा हुआ होता है। इस अवस्था में भी केंद्रक शरीर के बीच मे होता है।

मेटासाइक्लिक ट्रीपानोसोम अवस्था इसकी ट्रीपानोसोमाल अवस्था के ही अनुरूप है। लेकिन साधारणतः इस समय ट्रीपानोसोमा का आकार कुछ छोटा हो जाता है। इस अवस्था में ट्रीपानोसोमा, कीट से मनुष्य मे संक्रमित होता है।
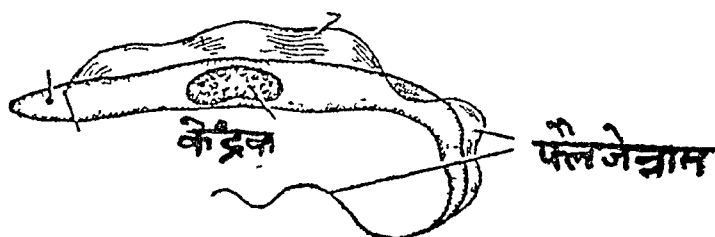
[चित्र १७३—ट्रीपानोसोमा]

एक मनुष्य से दूसरे मे यह परजीवी, खून चूसनेवाले कीटो की सहायता से सक्रमित होता है। संक्रमित मनुष्य के खून के साथ-साथ ट्रीपानोसोमा भी कीट के शरीर में प्रवेश करता है। वहाँ अपने जीवन की विभिन्न अवस्थाओ को पार करता हुआ मेटासाइक्लिक ट्रीपानोसोम अवस्था में विकसित होने के बाद जब वह कीट किसी मनुष्य या अन्य पोषक प्राणी को काटता है, उस समय यह परजीवी उस पोषक के शरीर में प्रवेश कर जाता है।

मनुष्य में संक्रमित होनेवाले चार जातियो के ट्रीपानोसोमा मिलते हैं :

१. ट्रीपानोसोमा गैंबियेनसि (T. gambiense)—ट्रीपानोसोमा गैंबियेनसि मध्य तथा पश्चिमी अफ्रीकी स्लिपिंग सिकनेस (sleeping sickness) उत्पन्न करता है। यह परजीवी सेटसी (Tsetse) नाम की मक्खी द्वारा मनुष्य मे संक्रमित होता है।

२. ट्रीपानोसोमा रोहडेसियेनसि (T. rhodesiense)—यह परजीवी पूर्वी अफ्रीकी स्लिपिंग सिकनेस पैदा करता है। यह भी सेटसी मक्खी द्वारा फैलाया जाता है।

३ ट्रीपानोसोमा क्रूजी (T. cruze)—ट्रीपानोसोमा क्रूजी दक्षिणी अमेरिका मे चागास रोग (Chagas disease) नाम की बीमारी पैदा करता है। रिडुवीड खटमल (Riduvid bug) नाम के कीट द्वारा इस परजीवी का संक्रमण होता हैं।

४. ट्रीपानोसोमा रंजेली (T. rangeli)—ट्रीपानोसोमा रंजेली नाम का परजीवी वेनिनजुएला (Venenzuela) तथा कोलंबिया (colombia) मे मनुष्य के रक्त मे मिलता है। लेकिन यह परजीवी कोई रोग नही पैदा करता हैं।

लैशमैनिया डोनोवानी (Leishmenia donovani)

लैशमैनिया डोनोवानी एक परजीवी प्रोटोजोआ है तथा मैस्टीगोफोरा वर्ग मे आता है। लैशमैन तथा डोनोवान (Leishman and Donovan) नाम के दो व्यक्तिओ के नाम पर इस परजीवी का नाम पडा है। सन् १९०३ के मई महीने में लदन से लैशमैन ने और जुलाई महीने में मद्रास से डनोवान ने इस जीवाणु के अस्तित्व को प्रचारित किया।

लैशमैनिया डोनोवानी मनुष्य में कालाजार (Kala-azar) नाम के रोग उत्पन्न करता है। इस रोग मे शरीर का रंग काला पड़ जाता है, इसीलिए इसे कालाजार कहते हैं।

लैशमैनिया डोनोवानी अपने जीवन-चक्र को दो पोषको के अंदर पूरा करता है। इसके जीवन-चक्र मे दो अवस्थाएँ होती है—(१) लैशमैनियल

अवस्था (leishmanial form) तथा (२) लेप्टोमोनाड अवस्था (lepto-monad form) ।
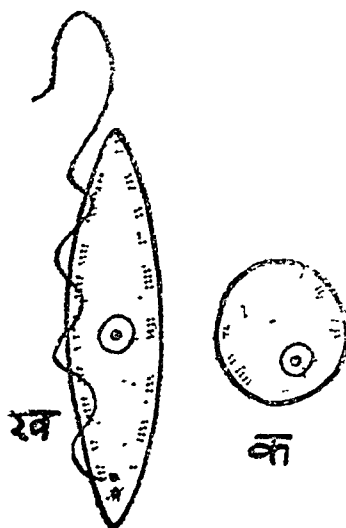
[चित्र १७४—लंशमैंनिया डोनोवानी की : क—लशमैंनियल तथा ख—लैप्टामोनाड अवस्था]

(१) लैशमैंनियल अवस्था—लैशमैंनिया डोनोवानी मनुष्य के शरीर मे लैशमैंनियल अवस्था मे पाया जाता है। इस अवस्था में वह मनुष्य की लिम्फ-वाहिनियो के ऊतको (lymphoid tissues) मे तथा प्लीहा (spleen) की रेटीकुलर कोशिकाओ (raticular cells) में घुस जाता है तथा विभाजन द्वारा द्रुत-गति से संख्या-वृद्धि करने लगता है। यह प्लीहा की कोशिकाओ को नष्ट करने के साथ-साथ एक प्रकार का विषैला पदार्थ वनाकर रक्त को दूपित कर देता है, जिससे रक्त की लाल रक्त-कणिका (red blood corpuscle) नष्ट होती जाती है और रक्त मे श्वेत रक्त-कणिका (white blood corpuscle) की सख्या बढती जाती है।

कालाजार की वीमारी हो जाने से जाड़े के साथ वुखार आने लगता है। शुरू मे वुखार लगातार लगा रहता है या अल्प विरामी (remittent) होता है। बाद मे चलकर वुखार विरामी (intenmittent) हो जाता है। लगभग

२० प्रतिशत रोगियो मे इस अवस्था मे २४ घटे मे दो बार बुखार चढ जाता है। प्लीहा के आकार मे वृद्धि इस रोग का एक प्रमुख लक्षण है। रोग के बाद प्लीहा धीरे-धीरे बढने लगती है और रेटीकुलर कोशिकाएँ नष्ट होने के कारण नरम हो जाती है। इसमे यकृत भी बडा हो जाता है, लेकिन प्लीहा के जितना नही। साथ ही लाल रक्त-कणिका नष्ट हो जाने के कारण रोगी के शरीर मे रक्त की कमी हो जाती है और त्वचा का रंग काला पड जाता है। त्वचा खुरदरा हो जाती है और सिर के बाल कुरकुरा होकर टूटने-गिरने लगते हैं। समय पर दवा न करने से ७५ से ९५ प्रतिशत रोगी दो साल के अदर मर जाते है।

लैशमैनियल अवस्था मे इस परजीवी के शरीर मे फ्लैजेला (flagella) नहीं होता है। इस समय इसका शरीर गोल या अडाकार और लंबाई मे २ से ४ माइक्रॉन होता है। कोशिका झिल्ली (cell membrane) बहुत पतली होती है और केंद्रक शरीर के मध्य भाग मे या एक किनारे रहता है। केंद्रक गोलाकार या अंडाकार होता है और उसका व्यास लगभग एक माइक्रॉन होता है। शरीर के एक किनारे एक धानी (vacuole) होती है।

इस अवस्था में यह परजीवी जब मनुष्य के रक्त मे मुक्तावस्था मे रहता है, उस समय रक्त चूसनेवाले कीट, जैसे सैंड फ्लाई (sand fly—Phlebotomus argentipes), मच्छर, खटमल आदि द्वारा रक्त चूसते समय उनके शरीर में चला जाता है और फिर उनमे दूसरे मनुष्य मे सक्रमित होता है।

लैप्टोमोनाड अवस्था (leptomonad stage)—सैंड फ्लाई के शरीर के अंदर परजीवी की लैशमैनिया अवस्था लेप्टोमोनाड अवस्था मे बदल जाती है। इस अवस्था मे परजीवी के शरीर मे एक फ्लैजेला निकल आता है। पूर्ण विकास के बाद यह पतला तथा लंबा आकार ले लेता है। इस समय इसकी लंबाई १५ से २० माइक्रॉन और चौडाई १ से २ माइक्रॉन तक होती है। फ्लैजेला भी लगभग इतना या इससे कुछ अधिक लंबा होता है, जो शरीर के सामने से निकला हुआ होता है। केंद्रक शरीर के बीच मे होता है और एक धानी सामने की ओर फ्लैजेला के मूल के पास होती है।

संक्रमित मनुष्य का खून चूसने के बाद सैंड फ्लाई के पेट मे लैप्टोमोनाड अवस्था में परजीवी खंड-विभजन से बढता है और ६ से ९ दिन मे मुखगुहा मे

आ जाता है और फिर वहाँ से मनुष्य में सक्रमित होता है, जहाँ परजीवी लैशमैनिया अवस्था प्राप्त कर रोग उत्पन्न करता है।

सैंड फ्लाई के शरीर के अदर के अलावा कृत्रिम रूप से सवर्धन (culture) करने पर भी इसे लैप्टोमोनाड अवस्था मे पाया जाता है।

कालाजार से बचने के लिए सैंड फ्लाई तथा मच्छर, खटमल आदि खून चूसनेवाले कीटो को मारने का प्रबंध करना चाहिए और मच्छरदानी लगाकर सोना चाहिए। कालाजार की बीमारी हो जाने पर तुरत इलाज का प्रबंध करना चाहिए। प्रारंभ में ही दवा करने मे यह बीमारी आसानी से ठीक हो जाती है।

फीता कृमि (Tape worm)

फीता कृमि प्लैटीहेल्मिथिस संघ (phylum platyhelminthes) के सेस्टोडा वर्ग (class cestoda) का प्राणी है। फीता कृमि मनुष्य की आँत मे पाया जाता है। इसके दो प्रकार है—(१) **टीनिया सैजिनाटा** (Taenia saginata) तथा (२) **टीनिया सोलियम** (Taenia solium)। मनुष्य के शरीर मे फीता कृमि घुस जाने से रक्तक्षीणता (anaemia) हो जाती है, जिससे मनुष्य आसानी से अन्य रोगो का शिकार हो जाता है। साथ ही इन परजीवियो के चलते मनुष्य मे अजीर्णता तथा आँत की नाना प्रकार की बीमारियाँ हो जाती है।

फीता कृमि के जीवन-चक्र को सपूर्ण करने के लिए दो पोपको की आवश्यकता होती है। टीनिया सैजिनाटा का जीवन-चक्र मनुष्य तथा गाय-भैस मे और टीनिया सोलियम का जीवन-चक्र मनुष्य तथा सुअर मे संपूर्ण होता है।

फीता कृमि का शरीर चिपटा, लंबा तथा खडो मे बँटा हुआ होता है। इसके शरीर को तीन भागो मे बाटा जा सकता है—सिर, गर्दन तथा धड। इसका सिर एक छोटी-सी घुंडी जैसा होता है। उसमे कई हूक और चार चूसक (suckers) होते है। इन्ही की सहायता से फीता कृमि मनुष्य की आँत की दीवारो से चिपका रहता है। इसमे आँख, मुँह आदि नही होते

और यह अपनी त्वचा की सहायता से ही पोषक के शरीर से पचे हुए भोजन का रस सोख लेता है।

सिर के नीचे फीता कृमि की गर्दन होती है। इसी अंग मे इसके शरीर की वृद्धि होती है और नये-नये देह-खंड बनते है।

गर्दन के नीचे फीता कृमि का धड़ होता है। इसका धड़ देहखंड (segments or proglottids) में बँटा हुआ होता है। टीनिया सँजिनेटा के धड मे १००० से २००० देहखंड होते है। टीनिया सोलियम के धड़ मे देह-खड की सख्या ८०० से ६०० तक होती है। पूर्ण विकसित टीनिया सैजिनेटा ५ से १० मीटर तक और टीनिया सोलियम २ से ३ मीटर तक लबे होते है। इनके देह खड १ से १½ से० मी० चौड़े होते है। टीनिया सँजिनेटा १० साल तक और टीनिया सोलियम २५ साल तक जिंदा रह सकते है।

फीता कृमि मे नर और मादा अलग-अलग नही होते। इसके प्रत्येक देहखड मे स्त्री तथा पुरुष जननाग मौजूद होते है। पूर्ण विकसित देहखड अडे से भर जाता है और फिर शरीर से टूटकर अलग हो जाता है तथा मनुष्य के मल के साथ वाहर निकल जाता है। टीनिया सैजिनेटा का प्रत्येक देहखड अलग-अलग टूटकर वाहर निकलता है, लेकिन टीनिया सोलियम के देहखड के ५ या ६ खड एक साथ जजीर की तरह वाहर निकल आते है। वाद मे देहखड फट जाने से अडे वाहर निकल आते है। फीता कृमि के अडे काफी प्रतिरोधी (resistant) होने के कारण ८ हफ्ते तक जनन-उपयोगी बने रहते है।

फीता कृमि का जीवन-चक्र

टीनिया सैजिनेटा

मनुष्य टीनिया सैजिनेटा का मुख्य पोषक है। गाय, वैल तथा भैस इसके मध्यवर्त्ती (intermediate) पोषक होते है।

पूर्ण विकसित कृमि मनुष्य के क्षुद्रान्त्र के (small intestine) मे रहता है। यहाँ से अंडे से पूर्ण देहखंड मल के साथ बाहर निकल जाता है और उसमें से अडा निकल कर आस-पास के घास-पात पर पड़ा रहता है। जब गाय-भैसें आदि इन घास-पातो को खा लेती है उस समय अडे इनके साथ उनके आहार-नाल (alimentary canal) मे पहुँच जाते हैं। आहार-नाल के अंदर अडे टूट

जाते है और उनसे भ्रूण निकल आते है। भ्रूण आँत की दीवार मे घुसकर निवाहिका शिरा (portal vain) में होकर यकृत, हृदय और फेफड़े में पहुँचता है और फिर रक्त के साथ चलकर पेशियों के ऊतको के अदर जम जाता है। सक्रमण के लगभग ८ दिन के वाद भ्रूण एक अडाकार पुटी (vesicle) मे वदल जाता है। पुटी के निचले भाग मे कृमि का लार्वा होता है जो वाद मे चलकर इसका सिर बन जाता है। इसे **सिस्टीसर्कस** (cysticercus कहते है। भ्रूण से सिस्टीसर्कस वनने मे ६० से ७० दिन तक लगता है। यह कृमि, रहने के लिए, साधारणत जिह्वा, गर्दन, कधा तथा कूल्हे की पेशियो को चुनती है।

गाय-भैंस आदि का, इस प्रकार से संक्रमित मांस, अच्छी तरह पकाये विना खा लेने से सिस्टीसर्कस मनुष्य के आहार-नाल मे चला जाता है और
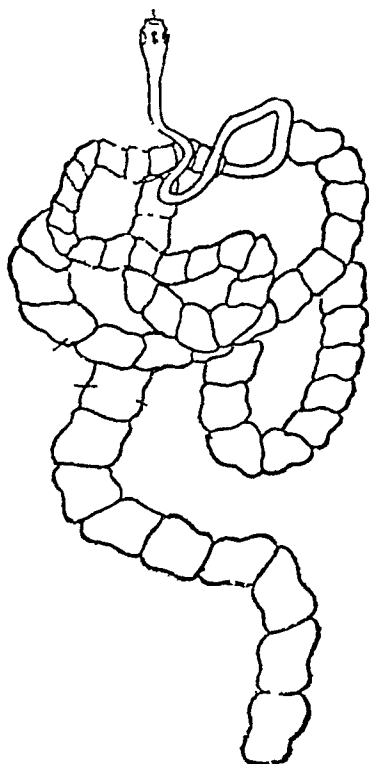
[चित्र १७५—फीता कृमि—टीनिया सोलियम]

वहाँ पित्त-रस के संपर्क मे आ जाने पर उसके अंदर का लार्वा या स्कोलेक्स (scolex) सक्रिय हो उठता है। फिर स्कोलेक्स अपने हूकों की सहायता से

आँत की दीवार मे चिपक जाता है और धीरे-धीरे उसके नीचे देहखंड उत्पन्न होने लगता है। दो-तीन महीने के अन्दर कृमि पूर्ण विकसित हो जाती है और देहखडो मे अडा पैदा होने लगता है। फिर अडे समेत देहखंड टूट-कर मल के साथ बाहर निकल जाता है और कृमि के जीवन-चक्र का नया दौर शुरू हो जाता है।

टीनिया सोलियम

टीनिया सोलियम का भी मुख्य पोषक मनुष्य है। लेकिन इसका मध्यवर्ती पोषक सुअर (pig) है। टीनिया सोलियम का जीवन-चक्र भी टीनिया सैजिनेटा के जीवन-चक्र जैसा ही है। कृमि के अंडे-समेत मनुष्य के मल को खा लेने के बाद टीनिया सैजिनेटा की तरह इसके भी सिस्टीसर्कस सुअर की पेशियो के ऊतको के अन्दर जाकर जम जाता है और बिना अच्छी तरह पकाया हुआ ऐसा मांस खा लेने के बाद मनुष्य इससे संक्रमित हो जाता है।

इसलिए फीता कृमि केवल उन्ही मनुष्यों पर आक्रमण कर सकता है जो गाय-भैंस या सुअर का मास खाते हैं। इस कृमि के आक्रमण से बचने के लिए मास को खूब पकाकर खाना चाहिए। साथ ही, इधर-उधर मल-त्याग नही करना चाहिए तथा यथासंभव मल को या तो मिट्टी मे गहरे दबा देना चाहिए या जला देना चाहिए।

हूक वर्म (Hook worm) या अंकुश कृमि

हूक वर्म एनकाइलोस्टोमा डुओडोनेल (ancylostoma duodonale) निमाथेल्मिथिस (Nemathelminthes) संघ के निमाटोडा (nematoda) वर्ग का प्राणी है। यह मनुष्य के क्षुद्रांत्र की दीवार मे लटका रहता है और खून चूसता है। इससे मनुष्य के शरीर मे खून की कमी हो जाती है, मनुष्य सुस्त पड जाता है और आसानी से अन्य रोगो का शिकार हो जाता है।

पूर्ण विकसित हूक वर्म भूरापन लिये हुए सफेद रंग का होता है। इसमें नर और मादा, दोनो होते हैं। नर लगभग ८ मि० मी० और मादा कृमि लग-भग १२ मि० मी० लम्बे, बेलनाकार तथा सूत जैसे पतले होते हैं। कृमि के शरीर का अग्रभाग पीठ की ओर थोडा-सा हूक जैसा मुड़ा हुआ होने के कारण इसे हूक वर्म या अंकुश कृमि कहते हैं। मुख शरीर के अग्रभाग के

अंत मे न खुलकर पीठ की ओर खुलता है। बड़े से मुख-कोष (buccal capsule) मे नीचे की ओर ६ दांत और ४ हूक जैसी सरचना तथा ऊपर की ओर २ त्रिकोण गाँठ जैसे प्लेट होते है। इसके पाचक तंत्र के साथ ५ ग्रंथियाँ होती है, जिनमे से एक ग्रन्थि से निकला हुआ रस खून को थक्का बधने (clotting) से रोकता है।

इस कृमि के जीवन-चक्र मे एक ही पोषक होता है। यह पोषक मनुष्य है। लेकिन मनुष्य के शरीर के अन्दर इसका जीवन-चक्र पूरा नहीं हो पाता है।

हूक वर्म का जीवन-चक्र

मनुष्य की आँत के अन्दर मादा कृमि अडे देती है। अंडे रगहीन, अंडाकार या दीर्घवृत्ताकार (elliptical) होते है। इसकी लम्बाई लगभग ६५ माइक्रान और चौड़ाई ४० माइक्रान होती है। अण्डा पारभासक झिल्ली से घिरा हुआ रहता है तथा बाहर निकलते समय ४ कोशिकीय अवस्थाओ मे होता है। मनुष्य के मल के साथ अडे बाहर निकल आते हैं और वही थोडी-सी नमी पाने से प्रत्येक अण्डे मे एक रेवडिटीफर्म (Rhabditiform) लार्वा निकल आता है। इस समय इसकी लम्बाई लगभग २५० माइक्रान होती है। मिट्टी पर अण्डे से लार्वा निकलने मे लगभग ४८ घटे लगते है। तीसरे और पाँचवे दिन दो बार निर्मोचन (moulting) के बाद रेवडिटीफर्म लार्वा, ५०० माइक्रान से ६०० माइक्रान लबा, फिलारी फर्म लार्वा (filariform larva) बन जाता है। आम तौर पर अंडे से फिलारी फर्म लार्वा बनने में ८ से १० दिन लगता है। हूक वर्म फिलारीफर्म लार्वा अवस्था मे मनुष्य मे सक्रमित होता है।

फिलारीफर्म लार्वा जमीन पर इधर-उधर रेगता रहता है और मनुष्य के नगे पैर से चिपककर अगुलिओ के बीच के नरम स्थान को छेद करके शरीर के अन्दर घुस जाता है और रक्त के साथ घूमता हुआ आँत मे पहुँच जाता है। इस दौरान मे उसका तीसरा निर्मोचन होता है और मुखकोष बन जाता है। आँत मे पहुँचने के बाद इसका चौथा तथा अन्तिम निर्मोचन होता है और दाँत, हूक आदि के साथ मुख-कोष निकल आता है। अब वह आँत की दीवारो से लटक जाता है और उसका नया जीवन-चक्र शुरू हो

जाता है। तीन हफ्ते मे कृमि संपूर्ण विकसित हो जाता है और मादा अण्डा देने लगती है। त्वचा पर सक्रमण से लेकर मल के साथ अण्डा निकलने में लगभग छह सप्ताह समय लगता है।

इधर-उधर मलत्याग करना इस बीमारी को फैलाने में सबसे अधिक सहायक होता है। प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक कर्त्तव्य होता है कि निश्चित स्थान मे मलत्याग करे तथा उसे गहरे मिट्टी मे दवा दे या जला दे। खाली पैर नही चलने से इसके आक्रमण से बचा जा सकता है। इसका आक्रमण होने से तुरत चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए। कई प्रकार की दवाओ से हूकवर्म मर जाता है।

सूत्र कृमि (Thread worm) या चुन्ने

सूत्र कृमि—एटेरोवियस वार्मिकुलारिस (Enterobius vermicularis निमाटोडा वर्ग का प्राणी है। यह कृमि साधारणत बच्चो मे पाया जाता है। कभी-कभो वयस्क व्यक्तियो मे भी यह कृमि हो जाता है। यह वडी आँत, सीकम (caecum) तथा वार्मिफॉर्म एपेंडिक्स (vermiform appendix) मे रहता है और खून चूसकर पोपक को कमजोर बना देता है। बच्चो मे यह कृमि हो जाए तो उनका वढना मद हो जाता है और सोते समय वे दाँत मे दाँत रगडते रहते है।

सूत्र कृमि देखने मे छोटे-छोटे सूत के टुकडे जैसे होते है। इनमें मादा तथा नर, दोनो होते है। नर २ से ४ मि० मी० लंवे और मध्य में ०·१ से ०·२ मि० मी० चौडे होते है। नर के शरीर का पिछला भाग मुडा हुआ तथा टूटा हुआ जैसा होता है। मादा की लंवाई ८ से १२ मि० मी० और मध्य भाग की मोटाई ० ३ से ०·५ मि० मी० तक होती है। इसका पिछला भाग सीधा और नुकीला होता है।

जीवन-चक्र

सूत्र कृमि का जीवन-चक्र एक ही पोपक मे सपूर्ण होता है। मनुष्य ही इसका एक मात्र पोषक होता है। खाने-पीने की चीजो के साथ या अन्य किसी तरीके से मनुष्य के पेट मे पहुँचने के बाद हजमी रसों से अंडे का खोल घुल जाता है और कृमि का लार्वा छोटी आँत में निकल आता है। यहाँ लैंगिक

रूप से परिपक्व हो जाने पर नर मादा को संसेचित कर देता है और मर जाता है। संसेचित मादा कृमि वहाँ से बडी आँत, सीकम तथा वार्मिफॉर्म एपेन्डिक्स मे आ जाती है और जबतक अंडे पूर्ण विकसित नही होते तब तक वही रह जाती है। अंडे विकसित हो जाने के बाद मादा कृमि मलद्वार से बाहर निकल आती है और मलद्वार के चारो ओर के चमडे पर अंडे देती
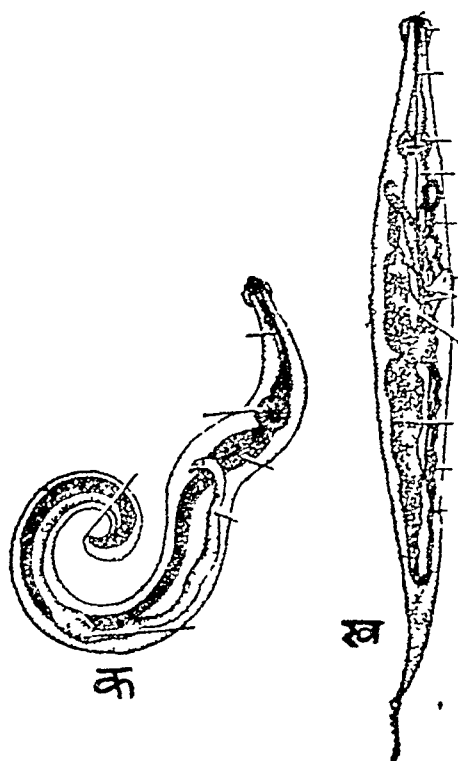
[चित्र सं० १७६—सूत्र कृमि, क—नर, ख—मादा]

है। अंडे देने के बाद मादा सूत्र कृमि २ से ३ हफ्ते के अंदर मर जाती है। प्रत्येक अंडे के अंदर टैडपोल नुमा (tadpole-like) एक लार्वा होता है जो आक्सीजन की उपस्थिति में २४ से ३६ घंटे में पूर्ण विकसित हो जाता है। अंडा किसी तरह मनुष्य के पेट मे पहुँच जाने पर सूत्र कृमि का जीवन-चक्र फिर से शुरू हो जाता है। इसका जीवन-चक्र २ से ४ सप्ताहो में पूरा होता है।

इससे बचने के लिए हमेशा साफ-सुथरा रहना चाहिए। खाने की कच्ची चीजो को अच्छी तरह धोकर ही खाना चाहिए। पानी उबाल कर पीना चाहिए। खाने-पीने से पहले हाथ-मुँह अच्छी तरह धो लेना चाहिए। बच्चो के कपडे और बिस्तरे को गर्म पानी से साफ करना चाहिए।

गोल कृमि (Round worm)

गोल कृमि ऐस्केरिस लुंब्रीकोइडिस (Ascaris lumbricoides)—देखने मे साधारण केंचुआ जैसा होता है। यह कृमि मनुष्य की आँत में सक्रमित होनेवाले परजीवी नेमाटोड मे सबसे बड़ा होता है। मनुष्य में इसका जीवन-काल लगभग एक साल होता है। गोल कृमि बेलनाकार लंबा और दोनो सिरे पर पतला होता है। इसका मुँह सामने की ओर खुलता है, जिसमे बारीक दाँतवाले तीन ओंठ होते है। इनमे मादा और नर दोनों होते है। नर का पिछला भाग हूक जैसा मुडा हुआ होता है, जिसके अत मे क्लोएका द्वार (cloacal aperture) तथा दो कटिकाएँ (spicules) होते है। नर १५ से २५ सें० मी० लम्बा होता है और इसके शरीर का व्यास ३ से ४ मि०मी० होता है।

मादा कृमि नर से बडी होती है। इसकी लम्बाई २५ से ४० सें० मी० और व्यास ५ मि० मी० होता है। मादा का पिछला भाग कोनाकार तथा सीधा होता है, जिसके नीचे की ओर एक दरार की तरह गुदा खुलती है। मादा गोल कृमि प्रति दिन लगभग २,००,००० तक अण्डे दे सकती है। मादा का योनि-द्वार शरीर के सामने से दो तिहाई भाग पर होता है। यह स्थान पतला होता है और इसे भग-कमर (vulvar waist) कहते है।

जीवन-चक्र

गोल कृमि का जीवन-चक्र एक ही पोषक-मनुष्य मे संपूर्ण होता है। मादा कृमि मनुष्य की छोटी आँत मे अण्डे देती है जो मल के साथ बाहर निकल आता है। शुरू मे यह अण्डा मनुष्य में संक्रमण योग्य नही होता है, लेकिन १० से ४० दिन मे अण्डे के खोल के अन्दर एक रेबडिटी फार्म लार्वा (rhabditi form larva) विकसित होता है। लार्वा के विकास के लिए आवश्यक समय, वातावरण के तापमान तथा नमी पर निर्भर करता

है। यह विकास पोषक मनुष्य के शरीर के बाहर मिट्टी पर होता है। रेवडिटो फार्म लार्वा वन जाने के वाद अण्डा मनुष्य को संक्रमित कर सकता है।

खाने-पीने की चीजों के साथ इस प्रकार परिपक्व अण्डा मनुष्य के आहार-नाल मे प्रवेश करके ग्रहणी (duodenum) मे चला जाता है। जहाँ
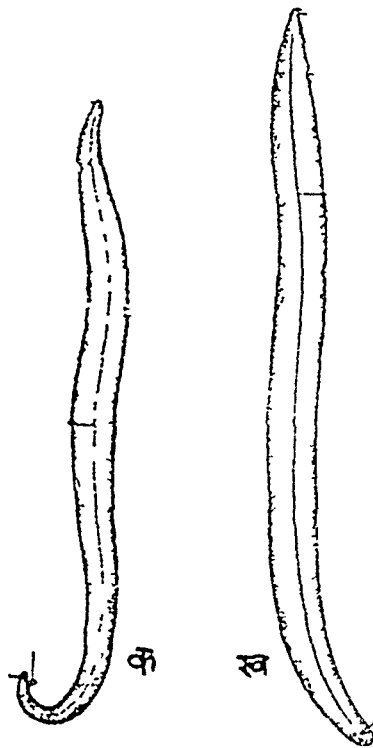
[चित्र १७७—गोल कृमि : क—नर, ख—मादा]

पर पाचक रस अडे के खोल को कमजोर वनाने के साथ-साथ लार्वा को सक्रिय कर देता है और अंत मे खोल टूट जाता है तथा रेवडिटी फार्म लार्वा वाहर निकल आता है। इस समय इसकी लम्बाई लगभग ०.२५ मि० मी० और चौड़ाई लगभग १४ माइक्रान होती है। लेकिन यह लार्वा सीधे कृमि नही वनता। पहले वह आँत की श्लेष्म झिल्ली में घुसकर रक्त के साथ यकृत मे पहुँचता है। वहाँ से ३ से ४ दिन वाद निकलकर हृदय में

पहुँचता है और फिर फेफडे मे। यहाँ उसका दो बार निर्मोचन (moulting) होता है—पहले पाँचवाँ या छठे दिन और फिर दसवे दिन। फेफडे से रेंगता हुआ लार्वा गले के अन्दर ग्रसनी मे आ जाता है और फिर आहार-नाल से पेट के अन्दर आकर छोटी आँत के ऊपरी भाग में रह जाता है। इस बीच मे २५ वें से २९ वें दिन के अन्दर लार्वा का एक और निर्मोचन होता है और लार्वा कृमि के रूप मे विकसित हो जाता है। संक्रमण के ६ से १० हफ्ते के अंदर कृमि का पूर्ण विकास हो जाता है और संनेचित मादा अंडे देने लगती है। अण्डा मल के साथ बाहर निकल आता है और कृमि का जीवन-चक्र फिर से शुरू हो जाता है।

गोल कृमि के चलते मनुष्य मे रक्त की कमी हो जाती है। कभी-कभी यह आँत मे बाधा उत्पन्न करके मनुष्य का जीवन संकट मे डाल देती है। गोल कृमि के शरीर से निकलनेवाला रस शरीर मे विष-क्रिया करके टायफायड जैसा ज्वर उत्पन्न कर सकता है। इस रस की विष-क्रिया से मुँह पर त्वचा-शोथ (oedema) आदि एलार्जी उत्पन्न होता है। अधिक संख्या मे लार्वा द्वारा फेफड़े संक्रमित होने से न्यूमोनिया (pneumonia) जैसा बुखार, खाँसी आदि हो जाती है।

आक्रांत व्यक्ति का मल मिट्टी मे गहरे दबा देना चाहिए ताकि कृमि दूसरे मे संक्रमित न हो सके। यह हमारा सामाजिक कर्तव्य है। आक्रांत व्यक्ति की उचित चिकित्सा कराना चाहिए।

यूचेरेरिया बैंक्रफ्टाई (*Wuchereria bancrofti*)

फाइलेरिया रोग उत्पन्न करनेवाला यह कीड़ा केवल मनुष्य के लसीका-वाहिका (lymphatic vessels) या लसीका-ग्रंथियों (lymphatic nodes) मे मिलता है। यह मुख्यत. गर्म देशों मे पाया जाता है। यह नेमाटोड वर्ग का प्राणी है। इसका शरीर बाल जैसा और पारदर्शी होता है। पूर्ण विकसित सूत्राकार कीड़े का सिर थोड़ा-सा फूला हुआ गोलाकार होता है। विकसित कीड़े का जीवन-काल ४ से ५ साल तक होता है। इसका नर लम्बाई मे २.५ से ४ से०मी० और मोटाई मे ०.१ मि०मी० होता है। इसकी मादा की लम्बाई ८ से १० से० मी० और मोटाई ०.२ से ०.३

मि०मी० होती है। इसके नर और मादा एक साथ लिपटे हुए मिलते हैं और दोनों को अलग करने में कठिनाई होती है।
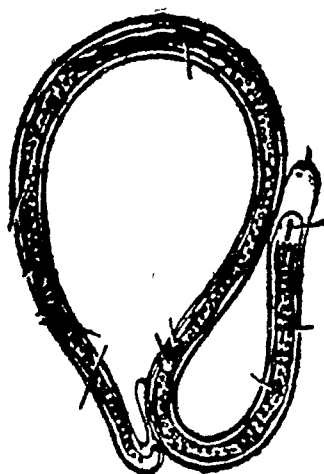
[चित्र १७८—यूचेरेरिया बैंक्रफ्टाई-लार्वा]

जीवन-चक्र

यूचेरिया बैंक्रफ्टाई का जीवन-चक्र दो पोषको मे पूर्ण होता है। मनुष्य इसका प्रधान पोषक तथा खून चूसनेवाली मादा मच्छर इसका मध्यवर्ती पोषक है।

मादा कीट लसीका के अन्दर, सक्रिय भ्रूण, जिसे माइक्रो फाइलेरियाई कहते हैं, उत्पन्न करती है जो लसीका-ग्रन्थि से मुख्य लसीका-काड (lymphatic trunk) से होता हुआ रक्त स्रोत मे पहुँचता है। यह बहुत सक्रिय होता है और रक्त स्रोत की दिशा मे या विपरीत दिशा मे जा सकता है। भ्रूण की लम्बाई लगभग २९० माइक्रान और चौडाई लगभग ६ से ७ माइक्रान होती हैं। भ्रूण एक पारदर्शक खोल के अन्दर बन्द रहता है जो आकार मे उससे काफी लबा—३९५ माइक्रान तक होता है। भ्रूण इसके अदर आगे-पीछे चल सकता है। भारत और चीन मे मिलनेवाला माइक्रो फाइलेरियाई हमेशा परिधिस्थ (peripheral) रक्त मे नही मिलता है। इन देशो मे यह केवल

रात मे १० से ४ बजे तक ही परिधिस्थ रक्त मे मिलता है। दिन के समय वह फेफड़े, गुर्दे, हृदय तथा वृहत् धमनी मे चला जाता है। संभवतः, चूँकि इसका मध्यवर्ती पोषक मादा मच्छर केवल रात को ही खून चूसती है, इसलिए यह रात को परिधिस्थ रक्त मे चला आता है ताकि इसका जीवन-चक्र चलता रहे। भारत मे क्यूलेक्स फेटीगनस (Culex fatigans) जाति की मादा मच्छर इस कीडे के मध्यवर्ती पोषक का काम करती है तथा रोग फैलाती है।

खून चूसते समय खोल-समेत भ्रूण मादा मच्छर के जठर के सामने के अंश मे जाकर जमा होता है। यहाँ एक से दो घंटे के अंदर वे अपने खोल से निकल आते हैं और जठर की दीवार में घुस जाते हैं तथा गले की पेशियों मे चले आते है। यहाँ तीन बार अवस्था परिवर्तन के बाद १०वें या ११वें दिन उनका परिवर्तन सम्पूर्ण हो जाता है। अब उनके जननांग, पाचक-तंत्र तथा देहगुहा संपूर्ण रूप से विकसित हो जाते है। इस तृतीय अवस्था मे लार्वा १५०० माइक्रान से २००० माइक्रान तक लंबा और १८ से २३ माइक्रान तक चौडा होता है। इस अवस्था मे लार्वा मनुष्य मे संक्रमण योग्य बन जाता है और लगभग १४ वें दिन मादा मच्छर के शुंड (proboscis) मे आ जाता है। यह मादा मच्छर जब मनुष्य को काटती है उस समय लार्वा, मैलेरिया परजीवी जैसा, सीधे खून मे नही चला जाता, बल्कि साधारणतः जोडे-जोड़े मे त्वचा मे मच्छड़ द्वारा किये गए छेद के पास छोड दिये जाते हैं। वहाँ से लार्वा उस छेद मे से होकर अपने आप मनुष्य के शरीर मे घुस जाता है और लसीका-वाहिका या लसीका-ग्रन्थि मे जाकर जम जाता है। यहाँ वह बढने लगता है और ५ से १८ महीने मे पूर्ण विकसित हो जाता है। इसके बाद नर द्वारा संसेचित मादा माइक्रोफाइलेरियाई की नयी पीढ़ी को जन्म देती है और कीड़े का जीवन-चक्र फिर से शुरू हो जाता है।

वूचेरेरिया बैंक्रफटाई मनुष्य के केवल लसीका-तंत्र (lymphatic system) पर ही आक्रमण करता है और उसमे हानिकारक परिवर्तन लाता है। इस कीडे के आक्रमण से उत्पन्न रोग को फाइलेरिया रोग (filariasis) कहते हैं। पूर्ण विकसित वूचेरेरिया बैंक्रफटाई जीवित या मृत, दोनों अवस्थाओं मे फाइलेरिया रोग उत्पन्न कर सकता है। फाइलेरिया मे लसीका-तंत्रमे

लसीकायनी शोथ (lymphangitis) रोग उत्पन्न होता है, जिसमें लसीका तंत्र मे स्थान-विशेष सूज जाता है और कभी-कभी वह बहुत बडा हो जाता है। हाथी पाँव (elephantiasis) रोग इसी कीड़े के चलते हो जाता है। वर्षो तक इस परजीवी का शिकार होने के फलस्वरूप यह रोग हो जाता है। उस स्थान की त्वचा भी मोटी तथा खुरदरी हो जाती है। लेकिन आमतौर पर नीचे की पेशियो तथा हड्डियो पर इसका कोई असर नही पड़ता है। साथ ही, इस परजीवी द्वारा उत्पन्न विष के कारण समय-समय पर बुखार भी चढ जाता है।

रक्त के अंदर रहने तथा सक्रिय होने पर भी माइक्रो फाइलेरियाई अवस्था मे युचेरेरिया बैंक्रफ्टाई का भ्रूण मनुष्य को कोई हानि नही पहुँचाता है।

मच्छर का नाश करना इस रोग से बचने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। इस रोग के सक्रमण से बचने के लिए हमेशा मच्छरदानी लगाकर सोना चाहिए तथा मच्छर के काटने से बचने का प्रबंध करना चाहिए। फाइलेरिया रोग के रोगी को तो अवश्य ही रात मे मच्छरदानी के अंदर सोना चाहिए ताकि मच्छर उनके खून के साथ माइक्रो फाइलेरियाई को अपने अंदर न ले सके। फाइलेरिया से रोगग्रस्त हो जाने पर, चिकित्सक के परामर्श के अनुसार लंबे अर्से तक हेट्राजन आदि दवा इस्तेमाल करनी चाहिए।

घरेलू मक्खी

दुनिया में शायद ही ऐसा कोई स्थान हो जहाँ मक्खी न दिखाई पड़ती हो। फिर भी यह सही है कि मक्खी गदे स्थानो मे ही अधिक मिलती है। बरसात के दिनो मे मक्खियाँ अधिक मिलती हैं। मक्खी परजीवी प्राणी नही है और न मनुष्य का खून ही चूसती है। साथ ही, मक्खी अपने-आप कोई रोग उत्पन्न नही करती ; लेकिन रोग-जीवाणु के वाहक के रूप में घरेलू मक्खी जैसी भयंकर हानिकारक प्राणी और कोई नही है।

मक्खी आरथ्रोपोडा संघ के इनसेक्टा वर्ग की प्राणी है। इसका शरीर सिर, वक्ष तथा उदर मे बँटा हुआ होता है। इसके वक्ष के नीचे तीन जोडी टाँगे होता हैं। टाँगों के नीचे एक-एक जोड़ा नुकीले काँटे और एक-एक गद्दी जैसी संरचना होती है। इन गद्दियों से एक प्रकार का चिपचिपा रस निकलता

रहता है, जिसकी सहायता से मक्खी चिकनी सतह पर या उल्टी लटक कर चल सकती है। इसके वक्ष के ऊपर दो जोडे पंख होते हैं। इनमे केवल अगले दो पख उडने में काम आते है। पिछले दो पंख छोटे होते हैं और शरीर की सतुलन-रक्षा करने मे सहायता करते है।

घरेलू मक्खी के सिर पर दो बड़ी-बड़ी लाल रग की सयुक्त आँखें होती हैं। इनके चलते मक्खी की दृष्टि-शक्ति काफी तेज होती है और आँखे उभरी हुई होने के कारण, बिना सिर घुमाये ही वह चारो ओर देख सकती है।

मक्खी के सिर पर दो शृंगिकाएँ (antenna) होती हैं और नीचे की ओर एक शुंड (proboscis) होता है। मक्खी ठोस पदार्थ नही खा सकती। वह शुंड की सहायता से केवल द्रव पदार्थ ही चूस सकती है। ठोस पदार्थ को अपनी लार की सहायता से घोल बनाकर मक्खी उसे चूस लेती है। मल-मूत्र आदि गदे-से-गदे पदार्थ से लेकर अच्छे-से-अच्छे खाद्य पदार्थ सभी मक्खी के भोजन हैं। गदे पदार्थ से खाद्य पदार्थ पर जा बैठने मे मक्खी को कुछ भी देर नही लगती और इसी क्रम मे मक्खी रोग-विस्तार करती है।

जीवन-चक्र

गर्मी और बरसात के दिनो मे मादा मक्खी अडे देती है। वह एक बार मे लगभग एक सौ से डेढ़ सौ तक अंडे देती है और प्रति वर्ष चार-पाँच बार अडे देती है। अंडे देने के लिए मादा मक्खी सड़े-गले गोबर का ढेर, कूड़े का ढेर, सड़े-गले फल या अन्य गदे पदार्थ खोज लेती है। मक्खी के अडे सफद रंग के होते है और लगभग एक मिली मीटर लबे होते है। अंडा देने के ८ से २४ घटे के अदर उनमे से बहुत-से छोटे-छोटे लार्वा निकल आते हैं। सड़े-गले पदार्थ का रस खाकर लार्वा तेजी से बढने लगता है और ३-४ दिन के अदर दो बार चोला बदलकर लगभग १२ मि० मी० लंबा हो जाता है। लार्वा के टाँगे नही होती है; लेकिन चलने के लिए उनके शरीर के अतिम खंड में सात जोडी कटीली गद्दी जैसी सरचनाएँ होती है। श्वास लेने के लिए उनके शरीर मे दो श्वास-रंध्र होते है। लगभग सात दिन बाद, तीसरी बार, चोला बदल कर लार्वा सिकुड कर, ढोल के आकार का, निष्क्रिय प्यूपा बन जाता है।

प्यूपा का आवरण कड़ा तथा भूरे रंग का होता है। इस आवरण के अंदर रूपांतरण होकर प्यूपा से मक्खी बन जाती है। रूपांतरण संपूर्ण होने मे ४-५ दिन लगता है। उसके बाद प्यूपा के ऊपर का आवरण—जिसे प्यूपा-कोष (puparium) कहते है—का एक सिरा टूटकर अलग हो जाता है और अंदर से मक्खी बाहर निकल आती है।
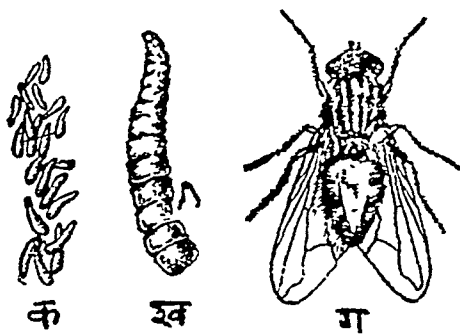
[चित्र स० १७९—मक्खी का जीवन-चक्र]
क—अडा, ख—लार्वा, ग—मक्खी

रोग-विस्तार

मक्खी बहुत ही गंदी आदतवाली और लालची होती है। अपनी गंदी और लालची आदत के कारण मक्खी रोग-जीवाणु, परजीवी के अंडे तथा अन्य विषैले पदार्थयुक्त मल-मूत्र, रक्त, कै, थूक, घाव, मवाद तथा अन्य सड़ी-गली वस्तुओ पर जा बैठती है और उनके कुछ अश अपनी बालयुक्त टॉगो तथा शरीर के अन्य भागो मे चिपकाकर लाकर खाद्य पदार्थ मे या शरीर पर लगा देती है। साथ ही, मक्खी जीवाणु आदि को अपनी आहार-नली मे जमा कर लेती है और खाद्य पदार्थो पर उन्हे उगल देती है। इस प्रकार से मक्खी हैजा, पेचिस, टायफायड, दस्त की बीमारी, आँख की बीमारी, क्षय रोग, चेचक आदि कितने ही रोगो को फैलाकर मनुष्य को हानि पहुँचाती है।

बचाव

मक्खी गदगी मे पनपनेवाली है। यह सडी-गली गदी चीजो पर ही अडे देती है और गदगी मे ही बढती है। इसलिए मक्खियो से बचने का सर्वश्रेष्ठ

उपाय सफाई से रहना है। गोबर, कूड़ा-करकट, सड़ी-गली चीजें आदि जमीन मे गड्ढा खोदकर दवा देनी चाहिए। नालियों, पाखानो आदि को नियमित रूप से फिनाइल से धोना चाहिए। फिनाइल, चूना, डी० डी० टी० आदि से मक्खी के अंडे तथा लार्वा मर जाते हैं। घरो में डी० डी० टी०, पलीट आदि कीटनाशक दवाएँ छिडकने से मक्खी मर जाती है। साथ ही, खाने-पीने की चीजो को हमेशा ढककर रखना चाहिए ताकि उनपर मक्खी न बैठने पावे।

दीमक

धातु, काँच आदि थोड़ी-सी चीजों से बनी हुई वस्तुओं के अलावा शायद ही कोई ऐसी चीज हो, जिसे दीमक खराब न करती हो। लकडी की चीजे, उपस्कर, कपडे-लत्ते, किताव, कागज, अनाज, चमड़े की चीजे, पेड़-पौधे आदि सभी पर दीमक हमला कर देती है और उन चीजो को ऐसे चट कर जाती है कि वे किसी काम लायक नही रह जाती।

दीमक भी मधुमक्खी जैसी सामाजिक प्राणी है। ये भी वस्ती बनाकर, हजारो की सख्या मे, एक साथ रहती है। इनकी वस्ती मिट्टी के नीचे होती है। दीमक की प्रत्येक वस्ती मे एक रानी दीमक, थोड़े-से नर दीमक, हजारो श्रमिक दीमके और कुछ सैनिक दीमके होती है। रानी दीमक अन्य सभी दीमको से काफी वडी होती है और उसका काम केवल अंडा देना होता है। रानी दीमक प्रतिदिन कई हजार अंडे देती है। नर दीमक का काम केवल अंडो को संसेचित करना होता है। इसलिए प्रत्येक वस्ती मे उनकी सख्या अधिक नही होती। सैनिक दीमके काफी तगड़ी होती है और वे शत्रु के आक्रमण से वस्ती की रक्षा करती है। वस्ती का अन्य सभी काम श्रमिक दीमके करती हैं। वे वस्ती वनाती है, उसकी मरम्मत करती हैं, सब के लिए खाना जुटाती हैं, अंडो की देखभाल करती है और अन्य सभी काम करती हैं। हमे साधारणतः श्रमिक दीमके ही दिखाई पड़ती है। इस प्रकार दीमको के समाज मे स्पष्ट श्रम-विभाजन है।

जबतक रानी दीमक को मारा नही जाता, तबतक दीमक से बचना संभव नही है। ऊपर से कितनी ही दीमको को क्यो न मारा जाय, फिर भी

इनके हमल चलते ही रहते हैं। कारण यह है कि रानी दीमक वस्ती में वैठ कर रोज हजारो अंडे देती रहती है और उनसे रोज हजारो नयी दीमकें पैदा होती रहती हैं। वस्ती मिट्टी में, काफी गहराई में होती है, इसलिए उसे खोजकर रानी दीमक को मारना कठिन काम है।

दीमक चीजो को खाकर मिट्टी वना डालती है। कभी-कभी इस प्रकार की वनाई गई मिट्टी के टीले काफी ऊँचे होते हैं।

लकड़ी में तारकोल, मिट्टी का तेल आदि लगा देने से उनमें दीमक नहीं लगती है। डी० डी० टी०, गैमेक्सिन आदि कीटनाशक दवाओ से भी दीमक मर जाती है।